# संस्कृत निबन्ध-पथ-प्रदर्शक

## Students' Guide to Sanskrit Composition

BY

VAMAN SHIVARAM APTE, M A

Translated Into Hindi

BY

RAM KRISHNA SHUKLA, M A, B T

ALLAHABAD

RAM NARAIN LAL

BOOKSELLER & PUBLISHER

1951

विषय-सूची

# प्रथम भाग

## तृतीय भाग

### व्याकरण में आने वाले शब्दों और रूपों का अर्थ

# चतुर्थ भाग

## वाक्य-विश्लेषण तथा वाक्य-संकलन

(अभ्यास-सहित)

### सेक्शन १

## इस पुस्तक में प्रयुक्त सङ्केतों की सूची

| | | |
|---|---|---|
| भर्तृ० या भर्तृहरि | से | भर्तृहरिशतक समझना चाहिए |
| | | "भर्तृ० २" से "नीतिशतक" अभिप्रेत है |
| | | २ के बाद वाले अंक से श्लोक संख्या अभिप्रेत है |
| | | "भर्तृ० ३" से "वैराग्यशतक" अभिप्रेत है |
| | | ३ के बाद दिए हुए अंक से श्लोक संख्या अभिप्रेत है |
| श्रीमद्भगवद्० | से | श्रीमद्भगवद्गीता समझना चाहिए |
| भट्टि० | से | भट्टिकाव्य—अध्याय संख्या—श्लोक संख्या |

| | | |
|---|---|---|
| दशकुमार० | से | दशकुमार चरित समझना चाहिए |
| ग० म० | से | गण रत्न महोदधि ” ” |
| हितोप० | से | हितोपदेश ” ” |
| ह० च० | से | हर्षचरित ” ” |
| काद० | से | कादम्बरी ” ” |
| किरात० | से | किरातार्जुनीय ” ” |
| कुमार० | से | कुमारसम्भव ” ” |
| मालविका० | से | मालविकाग्निमित्र नाटक |
| मालती० | से | मालती माधव नाटक ” ” |
| मनु० | से | मनुस्मृति ” ” |
| मृच्छ० | से | मृच्छकटिक नाटक ” ” |
| मुद्रा० | से | मुद्राराक्षस ” ” |
| महावीर० | से | महावीर-चरित नाटक ” ” |
| नागा० | से | नागानन्द ” ” |
| पञ्च० | से | पञ्चतन्त्र--तन्त्रसंख्या—कथा संख्या |
| रघु० | से | रघुवंश—सर्ग संख्या—श्लोक संख्या |
| रत्ना० | से | रत्नावली—नाटिका |
| शकु० | से | शकुन्तला—नाटक |
| शा० भा० | से | शाङ्कर भाष्य |
| शिशु० | से | शिशुपालवध—सर्ग संख्या—श्लोक संख्या |
| सि० कौ० | से | सिद्धान्तकौमुदी |
| सुभाषित० | से | सुभाषितरत्नाकर |
| उत्तर० | से | उत्तररामचरित नाटक--अंक संख्या--श्लोक संख्या |
| विक्रमो० | से | विक्रमोर्वशीय नाटक—अंक संख्या—श्लोक संख्या |
| वासव० | से | वासवदत्ता |
| वेणी० | से | वेणीसंहार नाटक—अंक संख्या—श्लोक संख्या |

# संस्कृतनिबन्ध-पथ-प्रदर्शक

—----*०*----—

## भाग १

### अन्तर्दर्शन

संस्कृत-जैसी प्रत्यय-प्रधान भाषाओं में "वाक्यरचना विधि" का न तो कोई निश्चित क्षेत्र ही है, न उसका कोई विशेष महत्व ही है। प्रत्यय-निष्पन्न पदों में स्वयं ही स्पष्ट हो जाता है कि वाक्य के अन्दर आए हुए एक शब्द का दूसरे शब्द के साथ क्या सम्बन्ध है। इसलिए, यदि वाक्यरचना के साधारण क्रम का पालन न किया जाय, तो भी कोई क्षति अथवा अशुद्धि नहीं हो सकती। उदाहरणार्थ हिन्दी का एक वाक्य लीजिए—"राम ने गोविन्द को देखा।" यहाँ पर यदि शब्दों के विन्यास का स्थान बदल दिया जाय, तब भी अर्थ में कोई अन्तर न पड़ेगा। "गोविन्द को राम ने देखा", "देखा राम ने गोविन्द को," "देखा गोविन्द को राम ने"—इन सभी वाक्यों का अर्थ एक ही है। यही

दशा संस्कृत में भी है। "रामो गोविन्दमपश्यत् गोविन्दं रामोऽपश्यत्, अपश्यद्रामो गोविन्दम्—इन सभी वाक्यों का एक ही अर्थ है। इससे यह निष्कर्ष निकला कि संस्कृत-वाक्यों में शब्दों का क्रम कोई विशेष महत्व नहीं रखता। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि वाक्य-रचना में पूर्ण स्वेच्छाचारिता बरती जा सकती है। कुछ ऐसे स्थल हैं जहाँ शब्दों को एक क्रमविशेष के अनुसार रखना आवश्यक हो जाता है।

संस्कृतव्याकरणों में रचना और क्रम के नियम बहुत कम दिये जाते हैं। साधारणतया यह समझा जाता है कि सिद्धान्त-कौमुदी के कारक-प्रकरण में वाक्य-रचना का विवेचन किया गया है। परन्तु ऐसा समझना ठीक नहीं। सिद्धान्त कौमुदी के कारक-प्रकरण में वास्तविक वाक्य-रचना के केवल एक अङ्ग अर्थात् सम्बन्ध ( Government ) या अन्वय का विवेचन किया गया है। वाक्यों में शब्दों को जोड़ते समय उपसर्गों, अव्ययों और व्याकरणसम्बन्धी रूपों के प्रयोग और अर्थ भी ध्यान में रखने चाहिएँ। संस्कृतव्याकरणों में जहाँ शब्दों की रचना समझाई गई है, वहाँ साथ ही साथ उन शब्दों का प्रयोग भी समझाया और दिया गया है। उदाहरणार्थ 'लटः शतृशानचावप्रथमा समानाधिकरणे' सूत्र में यह बताया गया है कि शत्रन्त और शानजन्त शब्द किस प्रकार बनाए जाते हैं और इनका प्रयोग कब होता है।

यह पहिले ही कहा जा चुका है कि संस्कृत में शब्दक्रम का कोई विशेष महत्व नहीं होता। परन्तु कतिपय ऐसे स्थल हैं जहाँ शब्द-क्रम पर विशेष ध्यान देना चाहिए। इस विषय पर चौथे भाग में कुछ नियम दिए जायँगे।

२—संस्कृत में तीन 'पुरुष' और तीन 'लिङ्ग' होते हैं। संस्कृत में 'पुरुषों' का प्रयोग बिल्कुल वैसा ही होता है जैसा हिन्दी में।

परन्तु सस्कृत मे सज्ञाओ के लिगों का अन्तर समझाने के लिए कोई निश्चित नियम नही बनाए जा सकते । सस्कृत मे लिग-वर्गीकरण बिल्कुल मनमाना है। अलबत्ता जहाॅ पुरुष और स्त्री बिल्कुल स्पष्ट मालूम पडते हे और पुरुष तथा स्त्री का अन्तर स्वाभाविक है, वहाॅ तो अवश्य कहा जा सकता है कि सज्ञाओ मे किन्ही विशेष नियमो का पालन किया गया है। उदाहरणार्थ 'चटक' (नर गौरैया), 'चटका' ( मादा गौरैया ) इसी प्रकार 'हस. हसी अजः अजा' इत्यादि ।

लिग के बारे मे सस्कृत मे कितना मनमानापन है—यह तो इसी से जाना जा सकता है कि 'स्त्री' के बोधक सस्कृत मे 'दार', 'कलत्र' और 'भार्या'—ये तीन शब्द हैं, और तीनो भिन्न भिन्न लिग मे हैं—'दार' पु लिग है, 'कलत्र' नपुसकलिग, और 'भार्या' स्त्रीलिग। इसी प्रकार 'शरीर' के बोधक 'काय', 'तनु' और 'शरीर'—ये तीन शब्द हैं, और तीनों भिन्न भिन्न लिग मे हैं—'काय' पु लिग है, 'तनु' स्त्रीलिंग, और 'शरीर' नपुसक लिग। इसलिए लिग का अध्ययन प्राय कोष से किया जाना चाहिए ।

सस्कृत मे तीन वचन होते है। इनके प्रयोगो की कुछ विशेषताएँ नीचे दी जाती हैं—

१—सस्कृत मे तीन वचन होते है—एक वचन, द्विवचन, बहुवचन। एक वचन से 'एक' का बोध होता है, परन्तु प्राय एक वचन से 'सम्पूर्ण जाति' का भी बोध होता है, जैसे 'नर' ( एक आदमी )। 'सिंहः सर्वश्वापदेषु बलिष्ठ.' (सिह सब जानवरो से बली होता है )।

'सम्पूर्ण जाति' या 'वर्ग' का बोध कराने के लिए एक वचन अथवा बहुवचन दोनो मे से किसी का भी प्रयोग हो सकता है। 'ब्राह्मणो की पूजा की जानी चाहिए' इस अर्थ का बोध कराने के लिए 'ब्राह्मणा. पूज्या.' अथवा 'ब्राह्मण पूज्य' दोनो मे से किसी का भी प्रयोग हो सकता है ।

४—द्विवचन मे 'दो' का बोध होता है, 'बालकौ' का अर्थ हुआ 'दो लडके' , 'दम्पती' का अर्थ हुआ 'जोडा'—अर्थात् 'स्त्री और पुरुष' । परन्तु 'द्वय, द्वितय, युगल, युग, द्वन्द्व' इत्यादि 'दो' या 'जोडा' का अर्थ देने वाले शब्द सर्वदा एकवचन मे रक्खे जाते है, जैसे 'बाहुद्वयम्' का अर्थ हुआ एक जोडा भुजाएँ अर्थात् दो भुजाएँ', **'सुकुमारचरणयुगलम्'** का अर्थ हुआ 'एक जोडा कोमल कोमल चरण अथवा दो कोमल कोमल चरण ।'

कभी-कभी द्विवचन जो कि एकशेषद्वन्द्वसमास के रूप मे आता है एक ही वर्ग के स्त्री तथा पुरुष दोनो का बोधक होता है जैसे 'जगत **पितरौ वन्दे पार्वती-परमेश्वरौ**'( मै विश्व के माता पिता पार्वती तथा परमेश्वर (शिव) को प्रणाम करता हूँ )।

५—हिन्दी मे बहुवचन मे प्रयुक्त होने वाले कुछ शब्दो का अनुवाद सस्कृत मे द्विवचन से होना चाहिये जैसे, 'उसने अपने हाथ पॉव धोए' का अनुवाद **हस्तौ पादौ च प्राक्षालयत**' होगा 'उसने ऑखे मूँद लीं' का अनुवाद **स नेत्रे न्यमीलयत**' होगा ।

६—बहुवचन 'दो' से अधिक का बोध कराता है और एक वचन के समान सम्पूर्ण वर्ग या जाति का प्रतीक है, जैसे, खग (चिडियॉ ) अथवा ( चिडियो का समूह )।

सस्कृत मे कुछ ऐसे शब्द है जो आकार अथवा स्वरूप मे तो बहु-वचनान्त हैं पर अर्थ मे 'एक' ही के बोधक है जैसे, दारा (स्त्री), इसी प्रकार आप (जल), वर्षासु(वर्षा मे), सिकतासु (बालू मे), असव (प्राण), प्राणा (प्राण) इत्यादि ।

कभी कभी बहु वचन का प्रयोग आदर दिखलाने के लिए होता है जैसे, **'इति शकराचार्या'** ( श्री पूज्य शकराचार्य जी का ऐसा **मत है** ) ।

यदि वक्ता उच्चकोटि का व्यक्ति हो, तो उत्तम पुरुष मे बहुवचन

का प्रयोग एकवचन के स्थान पर भी होता है, जैसे, 'वयमपि भवत्यौ सखीगत किमपि पृच्छाम·' ( हम भी— अर्थात् मैं—आप दोनो से आपकी सखी के विषय मे कुछ पूछता है।) इसी प्रकार 'वयमपि स्वकर्मण्यभियुज्यामहे' ( हम भी—अर्थात् मैं—अपने कार्य मे तत्पर होगे । ( परन्तु यह विधि सर्वथा आवश्यक अथवा अनिवार्य नही है, जैसे, कित्वरण्यमद्दो वयमनभ्यस्तरथचर्या. ( उत्तर०५ ) ।

७—संस्कृत मे देशो के नाम सर्वदा बहुवचनान्त होते हैं क्योकि वे वहाँ के निवासियो के नाम पर बने होते हैं, जैसे, अह गतः कदाचित् कलिगान (दशकुमार० २७)—एक बार मै कलिगदेश गया अर्थात् कलिग लोगो के देश गया ।

टिप्पणी— जब देशो के नाम के साथ 'देश' विषय' इत्यादि शब्द लगे रहते है तब एकवचन का ही प्रयोग होना चाहिए, जैसे 'मगधदेशे पाटलिपुत्र नाम नगरम्'—मगध देश मे पाटलिपुत्र नामक एक नगर है।

८—व्यक्तिवाचक सज्ञाओ का बहुवचन प्राय वश अथवा परिवार का बोध कराता है, जैसे, रघूणामन्वय वक्ष्ये (रघुवश० १। ६ )—मैं रघुवशियो का परिवार वर्णन करूँगा ।'जनकाना रघूणां च सम्बन्धः कस्य न प्रियः'—जनकवशियो और रघुवशियो का सम्बन्ध किसे प्रिय नही लगता ।

— - —

# प्रथम पाठ

९—"जब दो सम्बद्ध शब्द एक ही लिंग, वचन, पुरुष अथवा काल के होते हैं, तब वे एक दूसरे के **अन्वयी** अथवा परस्पर **समन्वित** कहे जाते हैं। किसी एक पुरुष अथवा स्त्री के विषय मे हम 'वह' का प्रयोग करेगे, परन्तु जब बहुत से पुरुषो अथवा स्त्रियो के विषय मे बोलना होगा तब 'वे' का प्रयोग करेगे"—बेन।

संस्कृत मे तीन प्रकार के **समन्वयो** पर ध्यान देना चाहिये —

(१) कर्ता और क्रिया का समन्वय

(२) संज्ञा और विशेषण का समन्वय

(३) सम्बन्धी और सम्बन्धवाची का समन्वय

## कर्त्ता और क्रिया का समन्वय

१०—जिसके विषय मे कुछ कहा जाता है उसे वाक्य का कर्ता कहते हैं और प्रथमा विभक्ति मे रखते हैं। क्रिया का वचन और पुरुष कर्ता के अनुसार होता है अर्थात् जिस वचन और जिस पुरुष का कर्ता होगा उसी वचन और उसी पुरुष की क्रिया भी होगी, जैसे, आसीद्राजा शूद्रको नाम (कादम्बरी)—शूद्रक नाम का राजा था। **साधयामो वयम्**(शकु०१)—हम लोग जाते हैं।

११—विधेय (अथवा उद्देश्य के विषय मे जो कुछ कहा जाता है वह) या तो क्रियापद होगा जैसा कि ऊपर के उदाहरण मे है या संज्ञापद होगा या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से असू धातु से युक्त कोई विशेषण होगा। ऐसी दशाओं मे संज्ञापद अपने स्वाभाविक लिग मे प्रयुक्त होगा और कारकमात्र मे, न कि लिग मे भी, उद्देश्य अथवा कर्ता का अनुगामी होगा, जैसे, सा कुलपतेरुच्छ्वसितम् (शकु० ३)—वह कन्या मानो कुलपति का प्राण है। यहाँ विधेय उच्छ्वसितम् का प्रयोग अपने स्वाभाविक लिग अर्थात् नपुंसकलिंग मे हुआ है और यह शब्द कर्ता 'सा' का केवल कारक मे अनुगामी हुआ है, न कि लिग मे भी, अर्थात्, जैसे कर्ता 'सा' प्रथमा विभक्ति में है उसी प्रकार विधेय उच्छ्वसितम्' भी प्रथमा विभक्ति मे है। 'ककुदं वेदविदाम्'—जो कि वेद जानने वालो के कूबड़ (अग्रणी) हैं।

(विशेषण का समन्वय द्वितीय पाठ मे दिया जायगा)

(क) ऐसी दशाओं मे क्रिया सर्वदा कर्ता (उद्देश्य की अनुगामिनी होती है जैसे, तस्मात्सखा त्वमसि (उ० ५)—इसलिए तू मित्र है।

(ख) जब पात्र, आस्पद, स्थान, पद, प्रमाण, भाजन इत्यादि शब्द विधेय के तौर पर प्रयुक्त होते है, तब ये सर्वदा एक वचन और नपुंसकलिंग मे होते हैं चाहे कर्ता (उद्देश्य) किसी भी लिग या वचन मे हो, और क्रियापद कर्ता का अनुगामी होता है न कि विधेयस्थानीय संज्ञा का, चाहे यह विधेयस्थानीय संज्ञा जिस भी स्थान पर हो, जैसे गुणाः पूजास्थानं गुणिषु (उ० ४)— गुणी पुरुषो मे गुण ही पूजा का हेतु होता है आर्यमिश्राः प्रमाणम् (मालविका० १)—आप (श्रीमान्) प्रमाण हैं अर्थात् आपकी सम्मति मान्य है, सम्पदः पदमापदाम् (हितोप०)-धन विपत्तियो का घर है, त्वमसि महसां भाजनम् (मालती० १)—आप तेज के आधार है, विविधमहमभूवं पात्रमालोकितानाम् (मालती० १) —मै अनेक प्रकार से उस (स्त्री) की दृष्टि का विषय हुआ। यहाँ पर

गुणा. पूजास्थानमस्ति और 'अहं पात्रमभूत' कहना अशुद्ध प्रयोग होगा चाहे स्थानम्' और 'पात्रम्' शब्द वाक्य में किसी भी स्थान पर हो।

१२—'होना' मालूम पडना' 'दिखाइ पडना इत्यादि•अपूर्ण विधेय वाली क्रियाओं का अर्थ पूरा करने के लिए जो सज्ञा अथवा विशेषण शब्द प्रयुक्त होता है वह प्रथमा विभक्ति मे रक्खा जाता है,जैसे,यदि सर्ग एष त (रघु० ३।५१)—यदि आप का यह संकल्प है। प्रभुर्बुभूषुर्भुवन-त्रयस्य (शिशु० १।४९)—तीनो लोको का स्वामी होने की इच्छा करता हुआ। मदनाक्लिष्टेयमालक्ष्यते( शकु० ३ )।

( क) पुकारना', 'नाम रखना', 'बनाना', 'सोचना','चुनना', 'नियुक्त करना' इत्यादि अपूर्ण विधेय वाली सकर्मक क्रियाओं के कर्मवाच्य मे भी उपर्युक्त ही नियम लगता है, जैसे, कुक्कुरो व्याघ्रः कृतः ( हितोप० ४)—कुत्ता बाघ बना दिया गया। नायं मूर्खो मन्तव्यः—वह मूर्ख नहीं समझा जाना चाहिए।

१•—'और" द्वारा जुडे हुए दो या दो से अधिक सज्ञापद जब कर्ता होते हैं, तब क्रिया कर्तृपदों के सयुक्तवचन की अनुगामिनी होती है, जैसे, तयोर्जगृहतुः पादान राजा राज्ञी च मागधी ( रघु० १।५७ )—राजा और रानी मागधी-दोनो ने उनके पॉव पकडे।

( क ) जब सज्ञाएँ इकट्ठा नहीं मानी जातीं, बल्कि प्रत्येक पृथक् पृथक् समझी जाती हैं, अथवा वे सब एक साथ मिलकर केवल एक विचार-विशेष की वाचक होती हैं तब क्रिया एकवचन की होती है, जैसे, न मा त्रातु तातः प्रभवति न चाम्बा न भवती ( मालती० २ )—मुझे न तो मेरे पिता बचा सकते हैं, न मेरी माता, न आप ही। पटुत्व सत्यवादित्व कथायोगेन बुध्यते (हितोप० १)—निपुणता और सत्यवादिता वार्तालाप से प्रकट होती है।

( ख ) कभी-कभी क्रिया आसन्नतम कर्तृपद के अनुरूप होती है और शेष कर्तृपदों के साथ समझ लिए जाने के हेतु छोड़ दी जाती है, अहं च

रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्मोपि जानाति नरस्य वृत्तम् ( पचतत्र १।४ ) —दिन और रात, दोनो गोधूलियाँ, और धर्म भी मनुष्य के कार्य को जानते हैं।

१४—'अथवा' 'या' 'वा' द्वारा जुडे हुए एकवचनान्त कर्तृपद के लिए एक वचन की क्रिया आती है, जैसे, रामो गोविन्दः कृष्णो वा गच्छतु—राम या गोविन्द या कृष्ण जाय। शिशुत्व स्त्रैण वा भवतु ननु वन्द्यासि जगत· (उत्तर०४ ।

( क ) जब कर्ता मे भिन्न भिन्न वचनो के शब्द होते हैं, तब क्रिया आसन्नतम कर्तृपद के अनुरूप होती है, जैसे, ते वा अय वा पारितोषिकं गृह्णातु—चाहे वे लोग चाहे यह आदमी इनाम ले।

१५—जब कर्ता मे भिन्न भिन्न पुरुषो के दो या दो से अधिक पद "और" द्वारा जुडे होते हैं तब क्रिया उनके सयुक्त वचन के अनुरूप होती है। जब कर्ता मे उत्तम, मध्यम तथा अन्य ( प्रथम )—सभी पुरुषों के पद होते हैं, तब क्रिया उत्तम पुरुष की होती है। परन्तु जब कर्ता मे केवल मध्यम और अन्य ( प्रथम ) पुरुष के पद हो तब क्रिया मध्यम पुरुष की होती है, जैसे, त्व चाह च पचाव· ( महाभाष्य )—तू और मै पकाते हैं। इसी प्रकार ते किकरा अह च श्वो ग्राम प्रतिष्ठेमहि—वे नौकर और मैं कल गाँव को चल देगे। त्व चैव सोमदत्तिश्च कर्णश्चैव तिष्ठत (महाभारत७।८७।१२ )—तू और सोमदत्ति और कर्ण रहे।

१६—जब कर्ता में 'अथवा' या 'वा' द्वारा जुडे हुए भिन्न भिन्न पुरुषों के दो या दो मे अधिक पद आते हैं तब क्रिया का वचन और पुरुष आसन्नतम पद के अनुरूप होता है, जैसे, उसने अथवा तुम लोगों ने यह काम किया है—स वा यूयं वा एतत कर्म अकुरुत। या तो वे लोग या हम लोग इस कठिन कार्य को कर सकते हैं—ते वा वयं वा इद दुष्कर कार्यं सम्पादयितु शक्नुमः।

१७—जब दो या दो से अधिक कर्तृपद किसी संज्ञा या सर्वनाम के समानाधिकरण होते हैं, तब विधेय संज्ञा अथवा सर्वनाम के अनुरूप होता है, जैसे, माता मित्रं पिता चेति स्वभावात् त्रितयं हितम् (हितोप० १)—माता, मित्र और पिता—ये तीनों स्वभाव से ही हितैषी होते हैं।

## अभ्यास

१—उर्वशी सुकुमारं प्रहरणं महेन्द्रस्य। प्रत्यादेशो रूपगर्वितायाः
श्रियः। अलंकारः स्वर्गस्य।

२—सर्वत्रौदरिकस्याभ्यवहार्यमेव विषयः।

३—हा कथं महाराजदशरथस्य धर्मदाराः प्रियसखी मे कौसल्या।
क एतत् प्रत्येति सैवेयमिति।

४—सार्थवाहस्यार्थपते र्वमर्दका बहिश्चराः प्राणाः।

५—ममापि दुर्योधनस्य शंकास्थानं पाण्डवाः।

६—त्वं चाहं च वृत्रहन्नुभौ सम्प्रयुज्यावहै।

७—प्रवृद्धं यद्वैरं मम खलु शिशोरेव कुरुभि
र्न तत्रार्यो हेतुर्न भवति किरीटी न च युवाम्।

८—त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयम्
त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमंगे।

९—बलवानपि निस्तेजाः कस्य नाभिभवास्पदम्।
निःशंकं दीयते लोकैः पश्य भस्मचये पदम्।

१०—तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः।

११—इक्ष्वाकुवंश्यः ककुदं नृपाणां ककुत्स्थ इत्याहितलक्षणोऽभूत्।

## अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—अस्ति तावदेकदा प्रसंगेन कथित एव मया माधवाभिधानः कुमारो यस्त्वमिव मामकीनस्य मनसो द्वितीयं निबन्धनम् ( मालती० ३ ) ।

२—एकस्मिन् जीर्णकोटरे जायया सह निवसतः पश्चिमे वयसि वर्तमानस्य कथमपि पितुरहमेवैको विधिवशात्सूनुरभवम् (काद०) ।

३—देव, काचिच्चाण्डालकन्यका शुकमादाय देवं विज्ञापयति । सकलभुवनतलसर्वरत्नानामुदधिरिवैकभाजनं देव. । विहंगमश्चायमाश्चर्यभूतो निखिलभुवनतलरत्नमिति कृत्वा देवपादमूलमागताहमिच्छामि देवदर्शनसुखमनुभवितुमिति (काद०) ।

४—आयु कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च पञ्चैतान्यपि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः (हितोप०) ।

५—रहस्यभेदो याच्ञा च नैष्ठुर्यं चलचित्तता । क्रोधो निःसत्यता द्यूतमेतन्मित्रस्य दूषणम् (हितोप०) ।

६—अदेयमासात्त्रयमेव भूपतेः शशिप्रभं छत्रमुभे च चामरे ( रघु० ३ । १६ ।)

७—निसर्गभिन्नास्पदमेकसंस्थमस्मिन्द्वयं श्रीश्च सरस्वती च (रघु० ६ । २९) ।

८—व्यतिकरितदिगन्ताः श्वेतमानैर्यशोभिः
सुकृतविलसितानां स्थानमूर्जस्वलानाम् ।
अकलितमहिमान. केतनं मङ्गलानाम्
कथमपि भुवनेऽस्मिंस्तादृशाः सम्भवन्ति ॥ (मालती०)

## संस्कृत में अनुवाद कीजिए

१—वंग के राजा ने युद्ध में प्राण दे दिए ।

२—जब उस स्त्री ने वह भयंकर दृश्य देखा, तो उसके हाथ पाँव काँपने लगे ।

३—ऐ गोविन्द, तुम मेरे प्राण, मेरे आनन्द, मेरे गौरव के पात्र, और मेरे सारे ससार हो।

४—व लोग बिना अपराध के ही सन्देह के पात्र हो गए।

५—अच्छी पत्नियाँ सारे धार्मिक कृत्यो के मूल कारण हैं।

६—ऐ राजन्, भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण, तू, बलशाली भोज, शकुनि, द्रौणि और मै आप की सेना हूँ।

७—जब वह घोडे पर से गिरा, उस समय राम, गोपाल और हम दोनो उपस्थित थे।

८—तुम और कृष्ण इस काम को पूरा करने का प्रयत्न क्यो नहीं करते। क्या यह बहुत कठिन है।

९—आज्ञाकारिता, सत्यवादिता, अभिमान का अभाव, अपने काम मे परिश्रमशीलता—ये नौकर के गुण हैं।

१०—तुमने, राम ने और मै ने दण्डकारण्य मे सुखपूर्वक समय बिताया।

११—इस ससार मे धन असख्य विपत्तियो का कारण है।

१२—हरि का पुत्र परशुराम अपनी कक्षा का रत्न तथा अपने कुल का आभूषण है।

१३—चाहे वह आदमी, चाहे ये लडके इस फल को ले।

१४—हरि और मै, अथवा तुम और कृष्ण इस काम को कर सकते हो, न तो गोपाल, न उसके छोटे भाई इसे कर सकते हैं।

१५—तुम दोनो को, पुष्पमित्र के तीनो भृत्यो को और दो और आदमियो को राजकीय दरबार (सभा) मे जाना चाहिए।

# द्वितीय पाठ

## विशेष्य और विशेषण का समन्वय

१८—अंग्रेजी भाषा में विशेष्य के लिंग के कारण विशेषण के स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं होता। विशेष्य चाहे पुंलिंग हो, चाहे स्त्रीलिंग हो, चाहे नपुंसकलिंग हो, पर विशेषण का स्वरूप सदा एक सा रहेगा। परन्तु संस्कृत में विशेषण का वही लिंग, वही वचन और वही कारक होगा जो विशेष्य का होगा, चाहे विशेषण कृत्प्रत्ययनिष्पन्न हो, चाहे सर्वनामिक हो, चाहे साधारण हो जैसे गच्छन्ती नारी, का तृप्तिः, तत् सुखम्, **शोभनानि गृहाणि, शोभनेभ्यो गृहेभ्यः, शोभनाभ्यो वापीभ्यः, हरिं पश्यन् मुच्यते**। तात्पर्य यह कि संस्कृत में विशेषणों के रूप ठीक उसी प्रकार लिंग, वचन और कारक में चलते हैं जैसे कि संज्ञा अथवा सर्वनाम के।

**विशेष**—संख्याबोधक विशेषण साधारण विशेषणों से भिन्न होते हैं। उनके प्रयोग के विशेष नियम हैं जो व्याकरण की पुस्तकों में मिलेंगे।

१९—जब विशेषणों का प्रयोग समानाधिकरण अथवा बहुव्रीहि समास में होता है, तब उनका मौलिक तथा अविकृत रूप ही प्रयुक्त होता है जैसे **कृष्णमृगः**—काला हिरन **रक्तनेत्रा**—लाल नेत्र वाली, **रूपवद्भार्या**—खूबसूरत पत्नी **गृहीतधनुः**—लिया हुआ धनुष, **अन्यसक्तहृदयो नरः**—ऐसा मनुष्य जिसका हृदय किसी दूसरी में लगा हो।

(क) उपर्युक्त नियम के कुछ अतिरेक भी हैं।

जब स्त्रीलिंग विशेषण 'अभिधान' या 'नाम' माना जाता है अथवा

जब पूरणी-सख्या-वाचक स्त्रीलिंग-विशेपण किसी समास का पूर्वपद होता है, अथवा जब पूर्वपद किमी वर्गविशेष का वाचक होता है, तब स्त्रीलिंग का प्रत्यय लुप्त नही होता, बल्कि बना रहता है, जैसे, दत्ताभार्य पचमीभार्य, शूद्राभार्य, सुकेशीभार्य, स्रौघ्नीभार्य। विशेष ज्ञान प्राप्त करने के लिए सिद्धान्त-कौमुदी मे पाणिनीय सूत्र ६।३।३४-४१ पर की गई व्याख्या पढिए।

२०—जब कृत्प्रत्ययनिष्पन्न विशेषण विधेय के तौर पर प्रयोग में आते हैं और विधेय के तौर पर प्रयुक्त की हुई एक समानाधिकरणी सज्ञा उद्देश्य के बाद आती है तब कृत्प्रत्ययनिष्पन्न विशेषण उद्देश्य के अनुसार होता है (११ अनुच्छेद देखिए), जैसे मालविका उपायनं प्रेषिता (मालविका० १)—मालविका उपहार के तौर पर भेज दी गई।

२१—जब एक ही विशेषण दो या अधिक विशेष्यो की विशेषता बतलाता है तो विशेपण का वही वचन होता है जो कि सब विशेष्यो का इकट्ठा मिलकर होता है। रही लिग की बात, जब विशेष्य पु लिग और स्त्रीलिग होंगे, तब विशेपण पु लिग होगा। परन्तु जब विशेष्यो मे पु लिग, स्त्रीलिग और नपु सकलिग सभी मिले रहेगे तब विशेपण नपु सकलिग होगा, जैसे, पक्षपातिनौ अनयोः अहं देवी च (मालविका० १)—मैं और रानी इन दोनों के पक्षपाती हैं। तस्मिन सत्य धृति ज्ञान तपः शौच दमः शमः। ध्रुवाणि पुरुषव्याघ्रे लोकपालसमे नृपे (महाभारत ३।५८।१०)—लोकपालो की समता करने वाले तथा मनुष्यो मे श्रेष्ठ उस राजा मे सत्य, साहस, ज्ञान, तपस्या, पवित्रता, इन्द्रियनिग्रह, और शान्ति दृढ हैं।

विशेष—यह नियम पाणिनीय सूत्र १।२।७२ त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम् के आधार पर बना है। इस पर एक यह वार्तिक है—"त्यदादितः शेषे पुंनपु सकतो लिगवचनानि, सा च देवदत्तश्च तौ, तच्च देवदत्तश्च यज्ञदत्ता च तानि, तच्च देवदत्तश्च ते।"

२२—प्राय. सस्कृत मे विशेषण निकटतम विशेष्य के अनुरूप होता है जैसे, यस्य वीर्येण कृतिनो वय च भुवनानि च (उत्तर राम० १)—जिसकी वीरता से हम तथा तीनो लोक सुखी हैं, कामश्च जृम्भितगुणा नवयौवन च (मालविका० १)—कामदेव तथा नई युवावस्था दोनों ने अपनी अपनी शक्ति प्रदर्शित की । यहाँ हम लोगोको लिगविपरिणाम" की विधि स्मरण रखनी चाहिए। लिगविपरिणाम विधि का अर्थ यह हुआ कि जो दूसरा विशेष्य प्रयोग मे आया है उसके अनुसार विशेषण का लिग समझकर लगा लेना चाहिए।

## सम्बन्धवाचक तथा सम्बन्धी का समन्वय

२३— सस्कृत मे सम्बन्धवाचक सर्वनाम तथा उसके सम्बन्धी के सम्बन्ध मे कोई विचित्र विशेषताएँ नही हैं। सम्बन्धवाचक सर्वनाम के लिग, वचन और कारक उसके सम्बन्धी के लिग, वचन और कारक के अनुसार होते हैं और सम्बन्धवाचक का जैसा भी सम्बन्ध उसके उपवाक्य के साथ होगा उसी सम्बन्ध द्वारा अथवा उसी सम्बन्ध के आधार पर सम्बन्धवाचक का कारक निर्णीत होगा। सस्कृत के अन्य सर्वनामो की भाँति सम्बन्धवाचक अकेला भी आ सकता है अथवा विशेषण के तौर पर भी।

सम्बन्धवाचक सर्वनाम का जिस सज्ञा के साथ सम्बन्ध होता है प्राय उसके पहिले ही वह आता है। अथवा सम्बन्धवाचक सर्वनाम अकेला आ सकता है और उससे सम्बन्ध रखने वाली सज्ञा सकेतवाचक सर्वनाम के साथ आ सकती है। कभी कभी तो सम्बन्धवाचक मे सम्बन्ध रखने वाली सज्ञा बिल्कुल प्रकट ही नही की जाती अन्तर्या मृग्यते स स्थाणुर्वो निःश्रेयसायास्तु (विक्रमोर्वशीय १)—वह स्थाणु जो अन्त करण मे खोजे जाते हैं तुम लोगों को सर्वोच्च सुख दे। बुद्धिर्यस्य बल तस्य

( पञ्चतन्त्र १।६ )—जिसके पास बुद्धि होती है उसके पास बल होता है। धिगस्मान् सर्वान् ये एकाकिना बटुना सह युध्यामहे—हम सबो को धिक्कार है जो अकेले लडके के साथ लड रहे हैं।

२४—जब सम्बन्धवाचक सर्वनाम का विधेय कोई ऐसा सज्ञा शब्द होता है जिसका लिग उसके सम्बन्धी के लिग से भिन्न होता है, तब सम्बन्धवाचक सर्वनाम साधारणतया विधेय के अनुरूप होता है जैसे, शैत्य हि यत् सा प्रकृतिर्जलस्य ( रघुवश ५।५४ )—क्योंकि जो शीतलता है वह जल का स्वाभाविक धर्म है। इसी प्रकार—मातुस्तु यौतक यत् स्यात् कुमारीभाग एव स· ( मनु ६।१३१ )।

विशेष—इन उदाहरणों से यह स्पष्ट हो गया कि सम्बन्धवाचक सर्वनाम का लिग उस सज्ञा के अनुसार होता है जिसकी वह विशेषता बताता है। परन्तु सूत्र सख्या १।४।३२ मे पाणिनि ने "कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्" ऐसा प्रयोग किया है, न कि 'तत् सम्प्रदानम्।"

२५—जब सम्बन्धवाचक सर्वनाम किसी सम्पूर्ण वाक्य का वाचक होता है, तब वह सदा नपुसकलिग एकवचन मे आता है, जैसे, ननु वज्रिण एव वीर्यमेतद्विजयन्ते द्विषतो यदस्य पक्ष्या. ( विक्रमोर्वशीय १ )--क्या वस्तुत यह इन्द्र की वीरता नही है कि उसके मित्र पक्षवाले अपने शत्रुओ को हरा देते है। मम तु यदिय याता लोके विलोचनचन्द्रिका। नयनविषय जन्मन्येक: स एव महोत्सव· ( मालविका० १ )—लेकिन मेरे नेत्रो की चाँदनी वह कन्या ( या स्त्री ) मेरे नेत्रो के विषय मे आई—यह बात मेरे सारे जीवन का एक मात्र सर्वश्रेष्ठ उत्सव है।

ऐसे प्रयोगो मे, प्रधान वाक्य मे सकेतवाचक सर्वनाम का लिग वही होता है जो कि सम्बन्धी सज्ञा ( महोत्सव ) का। यदि यह कहा जाय कि 'यत्' नपुसकलिग है इस लिए सकेतवाचक सर्वनाम भी नपुसकलिंग होना चाहिए तो ऐसा कहना ठीक नही।

## अभ्यास

१—तयैव देवतया तयोः कुशलवाविति नामनी प्रभावश्चाख्यातः। (उत्तर राम० २)।

२—यदेते चन्द्रमरोरक्षकास्त्वया निःसारितास्तदनुचित कृतम्। (हितोपदेश)।

३—यस्मिन्नेवाधिक चक्षुरारोपयति पार्थिवः।

४—अकुलीनः कुलीनो वा स श्रियो भाजनं नरः (पचतत्र)।

५—कृताः शरव्य हरिणा तवासुराः।

६—शरासन तेषु विकृष्यतामिदम् (शाकुन्तलम् ६)।

७—स सुहृद् व्यसने यः स्यान् स पुत्रो यस्तु भक्तिमान्।
सभृत्यो यो विधेयज्ञः सा भार्या यत्र निर्वृतिः॥

८—पाण्डवाश्च महात्मानो द्रौपदी च यशस्विनी।
कृतोपवासा. कौरव्य प्रययुः प्राङ् मुखास्ततः॥(महाभारत १७। १।३७)

९—धर्मः कामश्च दर्पश्च हर्ष क्रोधः सुखं वयः।
अर्थादेतानि सर्वाणि प्रवर्तन्ते न सशयः॥ (रामा-६। ६२। ३७)

१०—उमावृषाकौ शरजन्मना यथा यथा जयन्तेन शची पुरन्दरौ।
तथा नृपः सा च सुतेन मागधी ननन्दतुस्तत्सदृशेन तत्समौ (रघु-वश ३। २३)

### अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—धन्या सा या ऽऽर्यपुत्रेण बहु मन्यते या चार्यपुत्र विनोदयत्याशानिबन्धनं जाता जीवलोकस्य।

२—सोऽय पुत्रस्तव मदमुचा वारणाना विजेता।
यत्कल्याण वयसि तरुणे भाजन तस्य जात (उत्तर० ३)।

३—न प्रमाणीकृत पाणिर्बाल्ये बालेन पीडित।

नाहं न जनको नाग्निर्नानुवृत्तिर्न संतति (उत्तर० ७)

४—य ब्राह्मणमियं देवी वाग्वश्यैवानुवर्तते ।
उत्तर रामचरित तत्प्रणीत प्रयुज्यते ॥ (उत्तर राम०१) ॥

५—चतुर्दश सहस्राणि रक्षसा भीमकर्मणाम् ।
त्रयश्च दूषणखरत्रिमूर्द्धानो रणे हता ॥ (उत्तर राम०२) ॥

६—रोगी चिरप्रवासी परान्नभोजी परावमथशायी ।
यज्जीवति तन्मरण यन्मरण सोऽस्य विश्राम ॥ (हितोप०) ॥

७—मित्र प्रीतिरसायन नयनयोरानन्दन चेतस
पात्र यत्सुखदु खयो सह भवेन्मित्रेण तद्दुर्लभम् ।
ये चान्ये सुहृद· समृद्धसमये द्रव्याभिलाषाकुला
स्ते सर्वत्र मिलन्ति तत्वनिकषग्रावा तु तेषा विपत् ॥ (हितोप०) ।

८—यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः ।
यस्यार्था स पुमाल्लोके यस्यार्था स हि पण्डित ॥ (हितोप०) ॥

९—हिसाशून्यमयत्नलभ्यमशन धात्रा मरुत्कल्पितम्
व्यालाना पशवस्तृणाङ्कुरभुज सृष्टा· स्थलीशायिन ।
ससारार्णवलघनक्षमधिया वृत्ति कृता सा नृणाम्
यामन्वेषयता प्रयान्ति सतत सर्वे समाप्ति गुणा ॥ (भर्तृहरि नीति शतक) ॥

१०—महिमान यदुत्कीर्त्य तव सह्रियते वच ।
श्रमेण तदशक्त्या वा न गुणानामियत्तया ॥ (रघुवंश १० । ३२ ) ॥

११—यस्मिन् सत्य च मेधा च नीतिश्च भरतर्षभे ।
अप्रमेयाणि दुर्धर्षे कथ स निहतो युधि ॥ (महाभारत ६ । ६ । २६)

## संस्कृत में अनुवाद कीजिये—

१—इस नगर मे बहुत से सज्जन हैं, परन्तु वे कतिपय संकीर्णविचार, दुष्ट तथा चिड़चिडे स्वभाव वाले मनुष्यो से घृणा किये जाते हैं ।

२—पाटलिपुत्र का राजा तथा उसकी रानी—दोनों बहुत ही उदार है।

३—कल मै ने तीन सुन्दर झील, छ गहरे कुएँ, और छप्पन विशाल बगीचे देखे।

४—जो अपने अपराध को छिपाने के लिये असत्य बोलता है वह दो अपराध करता है।

५—तुम ऐसी बात कह रहे हो—यह आश्चर्य है।

६—मनुष्य को सर्वदा पुण्यात्मा होना चाहिये—यह प्राचीन तथा अर्वाचीन सभी दार्शनिको का मत है।

७—ये मीठे आम मेरे छोटे भाई द्वारा उपहार के तौर पर भेजे गये हैं ( कृत्प्रत्ययनिष्पन्न विशेषण का प्रयोग कीजिये )।

८—दुष्ट लोग पुण्यात्माओं से घृणा करे—यह तो उनका जन्मसिद्ध स्वभाव है।

९—जो लोग प्रत्युत्पन्नमति होते हे वे कठिनाइयो को पार कर सकते हैं।

१०—इस घटना के कारण मै उनकी ईर्ष्या का पात्र बन गया ( जन् धातु-निष्पन्न विशेषण का प्रयोग कीजिये )।

११—धैर्य, परिश्रम, और ईमानदारी सर्वदा प्रशसनीय है, परन्तु जल्दबाजी, आलस्य, और विश्वासघात निन्दनीय है।



# द्वितीय भाग

## सम्बन्ध

# तृतीय पाठ

## कर्म कारक

२६—वाक्यो मे शब्दो के व्याकरणात्मक मेल के नियामक सिद्धान्त को 'सम्बन्ध' कहते हैं। इस पाठ मे इसी 'सम्बन्ध' का निरूपण होगा। किसी भी शब्द की उस शक्ति को सम्बन्ध कहते हैं जिसके द्वारा वह किसी सज्ञा या सर्वनाम शब्द के कारक की व्यवस्था करता है। इस भाग मे जितने पाठ दिए जायँगे उनमे इसी शक्ति की व्याख्या की जायगी और उसके उदाहरण दिए जायँगे।

२७—किसी भी वाक्य मे सज्ञा तथा क्रिया के बीच जो सम्बन्ध होता है उसे कारक कहते है। जिन शब्दो का क्रिया के साथ कोई भी सीधा सम्बन्ध नही होता उनके बीच चाहे जो भी सम्बन्ध हो, कारक नही कहलायेगा।

सस्कृत मे छः कारक होते है—कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण। "सम्बन्ध" को कारक नही कहते, इसीलिये इस सूची मे 'सम्बन्ध' को स्थान नही दिया गया है। इन कारको का बोध

कराने वाली क्रमश प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी और सप्तमी विभक्तियाँ है। परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि सस्कृत मे 'कारक' और 'विभक्ति पर्यायवाची शब्द नही है, प्रत्युत 'कारक' और 'विभक्ति' मे बडा अन्तर है। साधारणतया लोग समझते है कि कर्ताकारक सर्वदा प्रथमाविभक्ति मे रक्खा जाता है और जो शब्द प्रथमाविभक्ति मे रक्खा दिखाई पडे वह अवश्य ही कर्ताकारक होगा। पर ऐसा समझना ठीक नही है। अनेक ऐसे प्रयोग आते है जिनमे कर्ताकारक प्रथमाविभक्ति मे नही रक्खा जाता, बल्कि तृतीयाविभक्ति मे रक्खा जाता है। इसी प्रकार, अनेक ऐसे प्रयोग आते है जिनमे कर्मकारक द्वितीयाविभक्ति मे नही रक्खा जाता, बल्कि प्रथमाविभक्ति मे रक्खा जाता है। इसलिये यह न समझना चाहिये कि जो शब्द प्रथमाविभक्ति मे हो वह अवश्य ही कर्ताकारक होगा। उदाहरणार्थ, रावण रामेण हतः। यहाँ हननक्रिया का वास्तविक करनेवाला 'राम' है, पर वह प्रथमाविभक्ति मे नही रक्खा गया है, बल्कि तृतीयाविभक्ति मे रक्खा गया है। इसी प्रकार, हननक्रिया का वास्तविक कर्म 'रावण' है पर वह द्वितीयाविभक्ति मे नही रक्खा गया है, बल्कि प्रथमा विभक्ति मे रक्खा गया है।

कर्ता' का अर्थ है करने वाला'। सस्कृत मे प्रथमाविभक्ति केवल नाम बताने के लिए प्रयोग मे लाई जाती है। पाणिनीय सूत्र २।३।४६ प्रातिपदिकार्थलिंग-परिमाणवचनमात्रे प्रथमा' के अनुसार प्रथमा का प्रयोग केवल किसी शब्द का मूलरूप, लिग, वजन, और वचन बतलाने के लिये होता है, जैसे, नीचैः, कृष्ण, श्री, ज्ञानम्, तट: तटी, तटम द्रोणो व्रीहि, एक, द्वौ, बहव इत्यादि।

**नोट**—सस्कृत मे अनेक अव्यय शब्द ऐसे है जिनके योग मे किसी-न किसी विभक्ति का प्रयोग होता है। ऐसी दशा मे उन विभक्तियो को **उपपदविभक्ति** अर्थात् अव्ययसम्बद्ध-विभक्ति कहते हैं। ये **उपपदविभक्तियाँ कारकविभक्तियो** से भिन्न है। **कारकविभक्ति** उसे कहते है

जो किसी संज्ञा या सर्वनाम का सीधा सम्बन्ध किसी क्रिया के साथ बतावे। उपपदविभक्ति के उदाहरण नमो नृभ्यः हाय, मामन्तरा, ग्रामादुत्तरम् इत्यादि हैं। जहाँ दोनो प्रकार की विभक्तियाँ प्रयुक्त हो सकती हैं वहाँ उपपदविभक्ति न आकर कारकविभक्ति ही प्रयोग मे आती है ( उपपद-विभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी )।

२८—जिस पुरुष या वस्तु के ऊपर किसी क्रिया का फल या प्रभाव पडता है वह उस क्रिया का कर्म कहलाता है। कर्मवाच्य को छोडकर शेष सभी स्थलो पर कर्म द्वितीयाविभक्ति मे रक्खा जाता है, जैसे, स हरिमपश्यत्—उसने हरि को देखा। ओदनं बुभुक्षुः विषं भुङ्क्ते—भात खाने की इच्छा करता हुआ जहर खाता है। यहाँ 'अपश्यत्' क्रिया का कर्म हरिम् तथा भुङ्क्ते क्रिया का कर्म विषम् है, परन्तु हरिः सेव्यते मे सेव्यते पदक्रिया और कर्म के उस सम्बन्ध को बता रहा है जो कि हरि और सेव् के बीच मे है। इसीलिए हरि को द्वितीयाविभक्ति मे रखने की आवश्यकता नही। परन्तु हरिं सेवते मे कर्मवाच्य का प्रत्यय नही है, इसलिए संज्ञाशब्द हरिं द्वितीयाविभक्ति मे रक्खा गया है।

२९—नाम धराना, चुनना, बनाना, नियुक्त करना, निर्वाचित करना, पुकारना, जानना, समझना इत्यादि अर्थों का बोध कराने वाली क्रियाएँ दो कर्म लेती हैं, जिनमे एक प्रत्यक्ष कर्म होता है और दूसरा अप्रत्यक्ष, जैसे, त्वामामनन्ति प्रकृतिम्—वे लोग तुम्हे प्रकृति समझते हैं। कामपि गणिकामवरोधमकरोत्—किसी वेश्या को अपनी स्त्री बना लिया (दशकुमार २।६)। जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषम् ( मेघदूत ६ )—मै तुम्हे प्रधान पुरुष समझता हूँ।

३०—गत्यर्थक धातुओ के योग मे द्वितीया होती है, जैसे, गतोऽहं-कामदेवायतनम् ( मालती० १ )—मै कामदेव के मन्दिर मे गया था। अहमपि महीमटन् ( दशकुमार०२।२ )—मै भी पृथ्वी पर भ्रमण करता

हुआ। यमुनाकच्छमवर्तीर्ण. ( पचतन्त्र )—यमुना के तट को गया। विचचार दावम् ( रघुवश २।८ )।

कभी कभी गमन या गति का भाव अनेक मुहावरों मे भी प्रकट किया जाता है। ऐसे स्थानो पर गमन की क्रिया वास्तविक नहीं होती, केवल काल्पनिक होती है, जैसे, पर विषादमगच्छत् ( पचतन्त्र १।१ )—महान् शोक को प्राप्त हुआ। अश्वत्थामा किं न यातः स्मृति ते ( वेणी सहार ३ )—क्या अश्वत्थामा तुम्हारे द्वारा स्मरण नही किया गया था। पश्चादुमाख्या सुमुखा जगाम ( कुमार सम्भव १।२६ )—सुन्दर मुखड़े वाली वह स्त्री पीछे से उमा नाम से विख्यात हुई। नरपतिहितकर्ता द्वेष्यता याति लोके (पचतन्त्र १।२), न तृप्तमाययौ (रघुवश ३।३)।

(क) प्राय उपसर्गपूर्वक अकर्मक धातुएँ अर्थतः सकर्मक हो जाती हैं। ऐसी धातुओं के योग मे द्वितीया आती है, जैसे, वृत्—होना। अनुवृत्—किसी के अनुसार कार्य करना अथवा अनुसरण करना, जैसे, प्रभुचित्तमेव हि जनोऽनुवर्तते (शिशुपालवध १५।४१)—प्रजा वस्तुतः अपने राजा के चित्त का अनुसरण करती हैं। अचलतुंगशिखरमारुरोह ( कादम्बरी )—पर्वत की ऊँची चोटी पर चढ़ गया। इसी प्रकार, यन्ता गजस्याभ्यपतद् गजस्थम् (रघुवश ७।३७), नोत्पतति वा दिवम् (कादम्बरी)। ऋषीणां पुनराद्याना वाचमर्थोऽनुधावति ( उत्तररामचरित १ )।

३१[1]—अधि उपसर्गपूर्वक शी धातु, स्थाधातु तथा आस् धातु के योग में आधारवाचक स्थान या वस्तु मे द्वितीया होती है, जैसे, चन्द्रापीडा मुक्ताशिलापट्टमधिशिश्ये (काद०)—चन्द्रापीड मोती की पटरी पर सो गया। अर्धासन गोत्रभिदोऽधितष्ठौ रघु० ६।७३)—इन्द्र के आधे आसन पर बैठता था। अध्यास्य पर्णशालाम् ( रघुवश १।९५ )—पत्तियों की बनी हुई झोपड़ी मे लेटकर।

१—अधिशीङ्स्थासा कर्म ( १।४।४६ )

(क)[१] अभि तथा नि पूर्वक विश् धातु का आधार कर्मकारक होता है, जैसे, अभिनिविशत सन्मार्गम्—वह अच्छे मार्ग का आश्रय लेता है। भयं तावत्सेव्यादभिनिविशते सेवकजनम् ( मुद्रा राक्षस ५ )।

३२[२]—उप, अनु, अधि, आ पूर्वक वस् धातु का आधार कर्मकारक होता है, जैसे, उपवसति वैकुण्ठं हरिः, अनुवसति वैकुण्ठ हरिः, आवसति वैकुण्ठ हरिः, अधिवसति वैकुण्ठ हरिः—हरि वैकुण्ठ में रहते हैं।

३३[३]—उभयतः, सर्वतः धिक्, उपर्युपरि, अधोधः, अध्यधि, इन शब्दों की जिससे सन्निकटता पाई जाती है उसमें द्वितीया होती है, जैसे, उभयतः कृष्णं गोपाः—कृष्ण के दोनों तरफ ग्वाले हैं। सर्वतः कृष्णम्—कृष्ण के सब तरफ। उपर्युपरि लोकं हरिः—हरि संसार के ठीक ऊपर हैं। अधोऽधो लोकम्—संसार के ठीक नीचे। धिग्जाल्मान्—बदमाशों को धिक्कार है। न मे सशीतिरस्या दिव्यतां प्रति—उस स्त्री के स्वर्गीय होने के विषय में मुझे बिल्कुल सन्देह नहीं है। इसी प्रकार, बुभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चित्।

जब सन्निकटता नहीं पाई जाती तब षष्ठी का प्रयोग किया जा सकता है, जैसे, उपर्युपरि सर्वेषामादित्य इव तेजसा—सूर्य के समान अपनी कान्ति के कारण सब से बढ़कर अथवा सब से ऊँचे।

( क ) कभी-कभी धिक् के योग में प्रथमा अथवा सम्बोधन का प्रयोग

---

१—अभिनिविशश्च (१।४।४७)

२—उपान्वध्याङ् वसः (१।४।४८)

३—उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु।

द्वितीयाम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते ॥ (वार्तिक)

होता है, जैसे, धिङ् मूढ—ऐ मूर्ख, धिक्कार है। धिगियं दरिद्रता—इस गरीबी को धिक्कार है।

३४—[1]अभितः परितः के अर्थ होते हैं 'चारों ओर'। समया, निकषा के अर्थ होते हैं 'निकट'। हा के अर्थात् होते हैं 'धिक्कार', या 'विपत्ति पडे'। प्रति का अर्थ 'तरफ या 'ओर' है। अभित., परित., समया, निकषा, हा और प्रति के योग मे द्वितीया होती है, जैसे, परिजनो राजानमभितः स्थितः ( मालविका० १ )—नौकर राजा के चारो ओर खड़े हो गए। रक्षांसि वेदी परितो निरास्थत् ( भट्टि० १।१२ )—वेदी के चारो ओर बैठे हुए राक्षसो को नष्ट कर दिया। ग्राम समया—गॉव के निकट। ग्रामम् निकषा—गॉव के निकट। निकषा सौमित्तिम् ( दशकुमार चरित ), पयोधिं विलङ्घ्य लङ्का निकषा हनिष्यति ( शिशुपाल० १।६८ )। हा कृष्णाभक्तम्—जो कृष्ण का भक्त नही है उसके ऊपर विपत्ति पडे।

कभी कभी 'हा' के योग मे सम्बोधन का प्रयोग होता है, जैसे, हा भगवत्यरुन्धति ( उत्तर राम० १ )—हाय भगवती अरुन्धती।

३५—[2]अन्तरेण का अर्थ होता है 'बिना 'छोड़कर', 'बारे मे'। इसके योग मे भी द्वितीया आती है, जैसे, कोऽयस्त्वामन्तरेण शक्तः प्रतिकर्तुम् ( वेणी स० ३ )—तुम्हे छोडकर दूसरा कौन बदला लेने मे समर्थ है। भवन्तमन्तरेण कीदृशोऽस्या दृष्टिरागः ( शकुन्तला २ )— आप के बारे मे इसके नेत्रो का प्रेम कैसा है।

( क ) इसी प्रकार अन्तरा ( बीच मे ) के योग मे भी द्वितीया होती है, जैसे, अन्तरा त्वा च मा च कमण्डलुः ( महाभारत )। पाचालास्तव पश्चिमेन त इमे वामा गिरा भाजनाः, त्वद् दृष्टेरतिथीभवतु यमुना त्रिस्रोतस चान्तरा ( बालरामायण १० )।

---

१—अभित परित समया निकषा हा प्रति योगेऽपि। (वार्तिक)

२—अन्तरान्तरेण युक्ते २।३।४।

३६–जितने समय तक अथवा जितनी दूर तक कोई क्रिया होती रहे या कोई वस्तु लगातार हो तो समयवाचक तथा मार्गवाचक शब्द मे द्वितीया होती है, जैसे, **न ववर्ष वर्षाणि द्वादश दशशताक्ष**: ( दशकुमार २।६ )–सहस्र नेत्रवाले इन्द्र बारह वर्ष तक नही बरसे। **क्रोश कुटिला नदी** ( सिद्धान्तकौमुदी )––नदी कोस भर टेढी है। **सभा वैश्रवणी राजन् शतयोजनमायता** ( महाभारत )—हे राजन्, विश्रवण की सभा १०० योजन लम्बी है।

३७—कभी कभी अनु ( पीछे, फलस्वरूप, किसी के द्वारा प्रकट की हुई, मिलती जुलती हुई ) के योग मे द्वितीया होती है, जैसे, **जपमनु प्रावर्षत्** ( सिद्धान्त कौमुदी )—जप के बाद वर्षा हुई। **सर्व मामनु ते** (विक्रमोर्वशीय ४ )––तेरी प्रत्येक वस्तु मुझसे मिती जुलती है।

टिप्पणी—पाणिनि ने अभि, उप अनु और अति को कर्मप्रवचनीय कहा है। कर्मप्रवचनीय का अर्थ है 'ऐसे उपसर्ग जो स्वत: अर्थात् किसी भी क्रिया के साथ मे आए बिना ही प्रयोग मे आते हैं और जिनके योग मे द्वितीया आती है।' अभि—पूर्व, पेश्तर, बिल्कुल समीप मे। उप—निकट, घट कर। अनु—बगल में, किनारे किनारे, घटिया। अति—बढ कर। जैसे, **भक्तो हरिमभि** ( भक्त हरि के बिल्कुल समीप है )। **उप हरिं सुराः** ( देवता लोग हरि से घट कर है अथवा हरि के समीप हैं )। **अति देवान् कृष्णः** ( कृष्ण देवताओ से बढकर हैं )। **नदीमन्ववसिता सेना** (सेना नदी के किनारे टिकी है)। **अनु हरिं सुराः** (देवता लोग हरि से छोटे हैं)—सिद्धान्त कौमुदी।

## अभ्यास

१—धारिणीभूतधारिण्योर्भव भर्ता शरच्छतम् (मालविका० १)।

२—बिन्दूत्क्षेपान् पिपासुः परिपतति शिखी भ्रान्तिमद्वारियन्त्रम् ( मालविका० २ )।

३—मन्दौत्सुक्योऽस्मि नगरगमनं प्रति ( शाकुन्तला १ ) ।

४—एषा मे मनोरथप्रियतमा सकुसुमास्तरणं शिलापट्टमधिशयाना सखीभ्यामन्वास्यते ( शाकुन्तला ३ ) ।

५—सागरं वर्जयित्वा कुत्र वा महानद्यवतरति । क इदानीं सहकारमन्तरेणातिमुक्तलता पल्लविता सहते (शाकुन्तला ३) ।

६—स राजर्षिरिमानि दिवसानि प्रजागरकृशो लक्ष्यते ( शाकुन्तला २ ) ।

७—धिङ् मामुपस्थितश्रेयोऽवमानिनम् (शाकुन्तला ६) ।

८—धिगिमां देहभृतामसारताम् (रघुवंश ८ । ५१) ।

९—इष्टान् देशान् विचर जलद प्रावृषा संभृतश्रीः ( मेघदूत ११८ ) ।

१०—कृतकार्यमिदं दुर्गं वनं व्यालनिषेवितम् ।
यदध्यास्ते महाराजो रामः शस्त्रभृतां वरः (रामायण २ । ६८) ।

११—धिक् प्रहसनम् । अयमृष्यशृङ्गाश्रमादरुन्धतीं पुरस्कृतान् महाराजदशरथस्य दारानधिष्ठाय भगवान् वसिष्ठः प्राप्तः । तत्किमेवं प्रलपसि (उत्तर रामचरित ४) ।

१२—तत्र च निखिलधरणितलपर्यटनखिन्नस्य निजबलस्य विश्रामहेतोः कतिपयान् दिवसानतिष्ठत् ( कादम्बरी ) ।

१३—अस्यां वेलायां किं नु खलु मामन्तरेण चिन्तयति वैशम्पायन इति चिन्तयन्नेव स निद्रां ययौ ( कादम्बरी ) ।

१४—अमी वेदीं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः समिद्वन्तः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः ।
अपघ्नन्तो दुरितं हव्यगन्धैर्वैतानास्त्वां वह्नयः पावयन्तु ( शाकुन्तला ४ ) ।

१५—शक्रस्य दिव्या सभा

विस्तीर्णा योजनशतं शतमभ्यर्धमायता
वैहायसी कामगमा पञ्चयोजनमुच्छ्रिता (महाभारत २ ।७। ३)।

१६—रम्या रघुप्रतिनिधिः स नवोपकार्याम्
बाल्यात्परामिव दशां मदनोऽध्युवास (रघुवंश ५ । ६३)।

१७ - तस्य पुत्रो महातेजाः सम्प्रत्येष पुरीमिमाम्
आवसत्परमप्रख्यः सुमतिर्नाम दुर्जयः । ( रामायण १ । ४७ । १७ ) ।

१८—क्रमेण सुप्तामनु संविवेश सुप्तोत्थितां प्रातरनूदतिष्ठत् । ( रघु० २ । २४ )

## अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—सकृत्कृतप्रणयोऽयं जनः । तदस्या देवीं वसुमतीमन्तरेण महदुपालम्भनं गतोऽस्मि ( शकुन्तला ५ )।

२—कथय कथमियन्तं कालमवस्थिता मया विना भवती ( विक्रमोर्वशी ४)।

३—भावप्रोषिता हि स्वगृहान्महाराजेन लङ्कासमरसुहृदो महात्मानः प्लवगराक्षसाः नानादिगन्तागता ब्रह्मर्षयो राजर्षयश्च येषामाराधनायैतनो दिवसानुत्सव आसीत् (उत्तररामचरित १) ।

४—विवक्षता दोषमपि च्युतात्मना त्वयैकमीशं प्रति साधु भाषितम् (कुमारसम्भव ५ । ८१ ) ।

५—धिग्विधातारमसदृशसंयोगकारिणम् ( काद० ) ।

६—आर्य, आर्य, प्रणिपत्य देवश्चन्द्रगुप्तो विज्ञापयति क्रियान्तरान्तरायमन्तरेणार्यं द्रष्टुमिच्छामीति ( मुद्राराक्षस ३ )।

७—मन्दोऽप्यमन्दतामेति संसर्गेण विपश्चितः ।
पङ्कच्छिदः फलस्येव निकषेणाविलं पयः ।। ( मालविका० २ ) ।

८—भर्तुर्मित्रं प्रियमविधवे विद्धि मामम्बुवाहम् ( मेघदूत १०२ ) ।

९—अथाधिशिश्ये प्रयतः प्रदोषे रथं रघुः कल्पितशस्त्रगर्भम् (रघुवंश ५ २८ ) ।

१०—मनुष्यवाह्यं चतुरस्रयानमध्यास्य कन्या परिवारशोभि
विवेश मञ्चान्तरराजमार्गं पतिंवरा क्लृप्तविवाहवेषा (रघु० ६ । १० ) ।

११—अभिन्यविक्षथास्त्व मे यथैवाव्याहतं मन ।
नवाप्यध्यावसन्त मा मा रौत्सीर्हृदय तथा ( भट्टिकाव्य ८ । ८० ) ।

१२ —अर्थानामर्जने दु खमर्जितानां च रक्षणे ।
आये दुख व्यये दु ख धिगर्था कष्टसश्रया• (पचतत्र १ । ४ ।।

१३ —हा हा धिक् परगृहवासदूषण यद्वैदेह्या प्रशमितमद्भुतैरुपायै एतत् तत्पुनरपि दैवदुर्विपाकादालर्कं विषमिव सर्वत प्रसृतम् (उत्तर राम १ ) ।

१४ —यत्र द्रुमा अपि मृगा अपि बन्धवो मे
यानि प्रियासहचरश्चिरमध्यवात्सम् ।
एतानि तानि बहुनिर्झरकन्दराणि
गोदावरीपरिसरस्य गिरेस्तटानि (उत्तर रामचरित ३) ।

१५—को वीरस्य मनस्विन स्वविषय को वा विदेशस्तथा
य देश श्रयते तदेव कुरुते बाहुप्रतापार्जितम् ।
यत् दंष्ट्रानखलाङ्गुलप्रहरण सिंहो वन गाहते
तस्मिन्नेव हतद्विपेन्द्ररुधिरैस्तृष्णा छिनत्त्यात्मन (हितोपदेश) ।

१६ —धिक् सानुज कुरुपति धिगजातशत्रुम्
धिग्भूपतीन् विफलशस्त्रभृतो धिगस्मान् ।
केशग्रह खलु तदा द्रुपदात्मजाया
द्रोणस्य चाद्य लिखितैरिव वीक्षितो यै ।।
( वेणीसहार ३ ) ।

१७—जलानि सा तीरनिखातयूपा वहत्ययाध्यामनु राजधानीम्
( रघुवश १३ । ६१ ) ।

१८—प्रमदामनु सस्थित शुचा नृपति सन्निति वाच्यदर्शनात् ।
न चकार शरीरमग्निसात् सह देव्या न तु जीविताशया ।।
( रघुवश ८ । ७२ ) ।

## सस्कृत में अनुवाद कीजिये :—

१—पत्नी को सदा पति की इच्छानुगामिनी होना चाहिए ।

२ – यह एक दूसरा पुरुष एक दूसरे कार्य के विषय मे हम लोगो की

सेवा करने के लिए आ रहा है।

३—जब उस कन्या से बहुत जोरो से अनुरोध किया गया तब उसने उस स्त्री से तुम्हारी अशिष्टता ( वैयात्य ) बता दी ।

४—पुष्पपुर शहर के चारो ओर एक सुन्दर उद्यान है।

५—हाय मेरा दुर्भाग्य! कहा जा रहा है कि मेरा इकलौता पुत्र भी मर गया।

६—उसने तीन वर्ष और पचहत्तर दिन न्याय पढा और अब उसमे निपुण हो गया।

७—अवन्ती के चारो ओर दो मील तक सुन्दर बगीचे दिखाई पडते हैं।

८—क्या वह अभी तक होश मे नही आई? मै समझता हूॅ कि उत्कृष्टतर उपचार के प्रयोग के बिना यह असम्भव है।

९—मेरे अतीत साहसपूर्ण वृत्तान्तो के बारे मे मणिपुर के निवासी क्या सोचेंगे?

१०—हम लोगो को उचित जान पड़ता है कि अब हम लोग अपने वादविवाद के विषय की ओर फिर आवे।

११—जो लोग स्वार्थ के बिना ही दूसरो को सताना चाहते हैं उन्हे धिक्कार है।

१२—जो लोग अनीति के मार्ग का अनुसरण करते हैं उनके ऊपर विपत्ति पडे।

१३—राम चित्रकूट पर्वत पर बहुत दिन रहे ( अधि + वस् )।

१४—भृत्य ने रानी से निवेदन किया कि महाराज क्रीडापर्वत पर बैठे हैं ( अधि + आस् ) और आप को शीघ्र ही बुला रहे हैं।

१५—जब वह फिर से होश मे आ गई तब उसने अपने मरे हुए भाई का शरीर जला दिया और सारी रात एक चटाई पर सोई रही।

१६—गाय अब पाताल मे रहती है ( अधि + स्था ) जिसके दरवाज़े बड़े बडे सॉपो द्वारा सुरक्षित है।

१७—आम्रमंजरियों के अस्तित्व के बिना बसंत ऋतु सुन्दर नहीं प्रतीत होता।

१८—उस युवा ऋषि के प्रस्थान के अनन्तर तुमने मुझसे जो कुछ कहा था वह मुझे स्मरण नहीं।

१९—क्या तुम लोग कहते हो कि तुम्हारे महाराज को छोड़कर कोई क्षत्रिय नहीं है। तुम सबों को धिक्कार है। देखो मैं तुम्हारा झंडा अपहरण कर रहा हूँ। यदि बचा सकते हो तो बचाओ।

# चतुर्थ पाठ

## द्विकर्मक धातुएँ

३८—सस्कृत मे कुछ धातुएँ ऐसी है जो साधारण कर्म के अतिरिक्त एक कर्म और लेती है जिसे **अकथित कर्म** कहते हैं। जैसा कि इसके नाम से ही प्रकट है, **अकथितकर्म** उसे कहते हैं जो अपादान, अधिकरण इत्यादि अन्य कारको का अर्थ रखता है और उन्ही के द्वारा प्रकट किया जाना चाहिए, पर जब वक्ता इन कारको का प्रयोग नही करना चाहता तो वह उसे द्वितीया विभक्ति द्वारा प्रकट करता है। इसी से यह कर्म वैकल्पिक होता है। जो सज्ञा अकथित कर्म मे रक्खी जाने योग्य होती है वह यदि किसी अन्य कारक मे विवक्षित नही होती है तो द्विकर्मक धातुओ के योग मे द्वितीया मे रक्खी जाता है, जैसे, **धेनु दोग्धि पयः**—गाय से दूध दुहता है।

**व्रजमवरुणद्धि गाम्**—गाय को बाडे मे घेरता है।

यहाँ पर 'धेनुम्' और व्रजम्' अकथित अथवा वैकल्पिक कर्म है। यदि वक्ता इस कर्म को न रखना चाहे, तो ये शब्द अपने स्वाभाविक अथवा साधारण कारक मे रक्खे जायँगे जैसे **धेनोः दोग्धि पयः** (धेनोः-पचमी)। **व्रजे अवरुणद्धि गाम्** ( व्रजे—सप्तमी )।

३९—निम्नलिखित कारिका मे प्राय सभी द्विकर्मक धातुएँ आ जाती है—

**दुह्याच् पच् दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमथ्मुषाम् ।**
**कर्मयुक्स्यादकथितं तथा स्यान्नी हृकृष्वहाम् ॥**

दुह् ( दुहना ), याच् ( माँगना ), पच् ( पकाना ), दण्ड् (दण्ड देना), रुध् ( रोकना, रूँधना ), प्रच्छ् (पूछना ), चि ( इकट्ठा करना ), ब्रू ( कहना, बोलना ), शास् ( शासन करना ), जि ( जीतना ), मन्थ् ( मथना ), मुष् ( चुराना ), नी ( लेजाना ), हृ ( हरना ), कृष् ( खींचना ), वह ( ढोना ), तथा इन धातुओं के समान अर्थ रखने वाली धातुएँ द्विकर्मक होती हैं, जैसे,

**गां दोग्धि पयः**— गाय से दूध दुहता है ।
**बलिं याचते वसुधाम्**—बलि से पृथ्वी माँगता है ।
**तण्डुलान् ओदनं पचति**—चावलों का भात पकाता है ।
**गर्गान् शतं दण्डयति**—गर्गों पर एक सौ रुपया दण्ड लगाता है ।
**व्रजमवरुणद्धि गाम्**—गाय को बाड़े में घेरता है ।
**माणवकं पन्थानं पृच्छति**—माणवक से रास्ता पूछता है ।
**वृक्षमवचिनोति फलानि**—वृक्ष के फलों को इकट्ठा करता है ।
**माणवकं धर्मं ब्रूते भाषते शास्ति वा**—माणवक से धर्म कहता है ।
**शतं जयति देवदत्तम्**—देवदत्त से एक सौ जीत लेता है ।
**सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति**—क्षीरसागर से अमृत मथता है ।
**देवदत्तं शतं मुष्णाति**—देवदत्त से एक सौ चुराता है ।
**ग्रामम् अजां नयति, हरति, कर्षति, वहति वा**—बकरी को गाँव में ले जाता है ।
**बलिं वसुधां भिक्षते**—बलि से पृथ्वी माँगता है ।
**तां त्वा संवरणस्यार्थे वरयामि विभावसो**

( महाभारत १। १७१।२१ )

ब्रू याच् के जो अर्थ होते हैं वही अर्थ भिक्ष् अथवा वृ के होते

है। उसी प्रकार जो अर्थ ब्रू के होते है वही अर्थ भाष् अथवा वच् के होते है।

**टिप्पणी**—चि, मुष्, पच्, मथ्, रुध्, जि, कृष, हृ और वह् धातुएँ संस्कृत साहित्य में द्विकर्मक के रूप में बहुत कम प्रयोग में आती है।

४०—ऊपर लिखी हुई धातुएँ तथा उनके समान अर्थ रखने वाली धातुएँ दो कर्म लेती हैं। उनमें से एक मुख्य कर्म कहलाता है और दूसरा गौण। पहिली बारह धातुओं (दुह् से लेकर मुष् तक) के योग में जो **पयः, वसुधाम फलानि, सुधाम्** इत्यादि आए है वे मुख्य कर्म है। **गाम्, बलिम्, वृक्षम्, क्षीरनिधिम्** इत्यादि गौण कर्म है क्योंकि वे वक्ता की इच्छा के अनुसार दूसरे कारकों में रक्खे जा सकते है।

अन्तिम चार धातुओं के योग में जो **अजाम्** और **ग्रामम्** आए है उनमें **अजाम्** मुख्य कर्म है और **ग्रामम्** गौण कर्म है। साराश यह कि जो शब्द क्रिया का अर्थ पूरा करने के लिए अनिवार्य रूप से द्वितीया में रक्खा जाता है वह मुख्य कर्म है और जो वक्ता की इच्छा के अनुसार द्वितीया में रक्खा जाता है वह गौण कर्म है।

४१[1]—ऊपर कही हुई द्विकर्मक धातुओं का कर्मवाच्य बनाने में दुह् से लेकर मुष् तक की प्रथम बारह धातुओं के गौण कर्म और अन्तिम चार धातुओं अर्थात् नी, हृ, कृष्, वह् के प्रधान कर्म प्रथमा में रक्खे जाते हैं, दुह् से लेकर मुष् तक के प्रधान कर्म और नी, हृ, कृष्, वह् के गौण कर्म द्वितीया में रक्खे जाते है जैसे—

| कर्तृवाच्य | कर्मवाच्य |
|---|---|
| स धेनु पयो दोग्धि | तेन धेनु पय दुह्यते |
| देवा समुद्र सुधा ममन्थु | देवै समुद्र सुधा ममन्थे |
| सोऽजा ग्राम नयति, हरति, कर्षति, वहति वा | तेन अजा ग्राम नीयते, ह्रियते, कृष्यते, उह्यते वा |

१—गौणे कर्मणि दुह्यादे प्रधाने नीहृकृष्वहाम्।
विभक्ति प्रथमा ज्ञेया द्वितीया च तदन्यत

## अभ्यास

१—आज्ञप्तास्मि देव्या धारिण्या अचिरप्रवृत्तोपदेश चलित नाम नाट्यमन्तरेण कीदृशी मालविकेति नाट्याचार्यमार्यगणदास प्रष्टुम्। ( मालविका० १ )।

२—ह्यस्तत्र भवतीरावती दर्वा सुख प्रष्टुमागता। ( मालविका०४ )।

३—महाश्वेता कादम्बरीमनामय पप्रच्छ। ( कादम्बरी )।

४—हिमालय सर्वशैला वत्स परिकल्प्य
भास्वन्ति रत्नानि महौपधीश्च
पृथूपदिष्टा दुदुहुर्धरित्रीम्। ( कुमारसम्भव १ । २ )

५—सोऽह तृष्णातुरैर्वृष्टि विद्युत्वानिव चातकैः।
अरिविप्रकृतै र्देव प्रसूति प्रातियाचितः॥ ( कुमारसम्भव ६ । २७ )।

६—किमत्र चित्र यदि कामसूर्भूर्वृत्ते स्थितस्याधिपते प्रजानाम्।
अचिन्तनीयस्तु तव प्रभावो मनीषित द्यौरपि येन दुग्धा॥
( रघुवंश ५ । ३३ )।

७—तमरण्यसमाश्रयोन्मुख शिरसा वेष्टनशोभिना सुत।
पितर प्रणिपत्य पादयोरपरित्यागमयाचतात्मनः॥
(रघुवश ८ । १२)।

८—अथ ज्येष्ठा सुरा सर्वे देवकार्यचिकीर्षया।
शैलेन्द्र वरयामासुर्गंगा त्रिपथगा नदीम्॥
(रामायण १ । ३५ । १६)।

### अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—तमातिथ्यक्रियाशान्त रथ क्षोभ परिश्रमम्।
पप्रच्छ कुशल राज्ये राज्याश्रममुनि मुनि॥
( रघुवश १ । ५८ )

२—त क्रमेण जन्मभूमि जाति विद्या कलत्रमपत्यानि विभव वय• प्रमाण प्रव्रज्या-
कारण च स्वयमेव पप्रच्छ चन्द्रापीड (कादम्बरी)।

३—कौशिकेन स किल क्षितीश्वरो राममध्वरविघातशान्तये।
काकपक्षधरमेत्य याचितस्तेजसा हि न वय समीक्ष्यते।। (रघुवश ११। २१)

४—त तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्।
विषीदन्तमिद वाक्यमुवाच मधुसूदन ।। (गीता २। १)

५—भर्तुस्तथा कलुषिता बहुवल्लभस्य
मार्गे कथचिदवतार्य तनूभवन्तीम्।
सर्वात्मना रतिकथाचतुरेव दूती
गङ्गा शरन्नयति सिन्धुपतिं प्रसन्नाम्। (मुद्राराक्षस ३)

६—तामायुष्मन्मम च वचनादात्मनश्चोपकर्तुम्
ब्रूया एव तव सहचरो रामगिर्याश्रमस्थ।
अव्यापन्न कुशलमबले पृच्छति त्वा वियुक्त•
पूर्वाभाष्य सुलभविपदा प्राणिनामेतदेव ।। (मेघदूत १०४)

७—सोऽपृच्छल्लक्ष्मण सीता याचमान शिव सुरान्।
राम यथास्थित सर्व भ्राता ब्रूते स्म विह्वल ।।
मन्दृश्य शरण शून्य भिक्षमाणो वन प्रियाम्।।
प्राणान्दुहन्निवात्मान शोक चित्तमवारुधत्।
गता स्यादवचिन्वाना कुसुमान्याश्रमद्रुमान्।
आ यत्र तापसान् धर्म सुतीक्ष्ण शास्ति तत्र सा।। (भट्टिकाव्य ६। ८। १०)

## संस्कृत में अनुवाद कीजिए

१—मैं ने उससे दस प्रश्न पूछे, परन्तु उसने उनमें से एक का भी उत्तर न दिया।

२—भिखमंगे ने एक धनी पुरुष से पचास रुपए माँगे जो बहुत उदार कहा जाता था।

३—राजा ने अपराधी पर तीन सौ साठ रुपए जुर्माना किया।

४—आचार्य इन शिष्यों को न्याय और व्याकरण के सिद्धान्त सिखाता है।

५—नौकर का अपराध क्षमा करने के लिए मंत्री द्वारा राजा से प्रार्थना की गई।

६—वह मुझसे कहता है (ब्रू) कि गोपाल ने अपनी गाएँ दुह ली है।

७—महाशय जी, मेरे द्वारा आप से आप का नाम और वंश पूछा गया था, न कि यह कि आप के पास कितना धन है।

८—क्षीरसागर से चौदह रत्न मथे गए थे।

९—गडरिया सब भेड़ों को बाजार ले गया और उन्हें बेच दिया।

१०—कल गाएँ मेरे कनिष्ठ भ्राता द्वारा दुही गई थी।

११—देवता लोग ब्रह्मा के पास गए और उनसे एक ऐसा पुरुष माँगा जो तारकासुर से उनकी रक्षा करे।

# पञ्चम पाठ

## प्रेरणार्थक ( णिजन्त )

४२—"किसी धातु का प्रेरणार्थक रूप यह द्योतित करता है कि कोई व्यक्ति या वस्तु किसी दूसरे व्यक्ति या वस्तु से वह कार्य कराता है जो कि उस धातु से सूचित होता है"—डाक्टर कीलहोर्न का व्याकरण सेक्शन ४१६ । उदाहरण—

| | | |
|---|---|---|
| गम्-जाना | गच्छति—जाता है | गमयति—जाने की प्रेरणा करता है |
| अश्-खाना | अश्नाति—खाता है | आशयति—खाने की प्रेरणा करता है |

४३—धातु की सादी दशा में जो कर्ता होता है, वह प्रेरणार्थक दशा में तृतीया में रक्खा जाता है, और कर्म में कोई परिवर्तन नहीं होता, जैसे—

| सादी दशा | प्रेरणार्थक दशा |
|---|---|
| देवदत्त ओदनं पचति<br>(देवदत्त भात पकाता है) | (स)देवदत्तेन ओदनं पाचयति<br>(वह देवदत्त से भात पकवाता है) |
| रामो भार्यां त्यजति<br>(राम अपनी पत्नी को छोड़ते हैं) | (स)रामेण भार्यां त्याजयति<br>( वह राम से अपनी स्त्री छुड़वाता है ) |

४८[1]—गत्यर्थक, बुद्ध्यर्थक तथा ज्ञानार्थक, भक्षणार्थक धातुओं में जिनका कर्म कोई शब्द' या 'साहित्यिक विषय हो, उन धातुओं में, और अकर्मक धातुओं में, जो सादी दशा में कर्ता रहता है वह प्रेरणार्थक अथवा णिजन्त दशा में कर्म हो जाता है, परन्तु कर्म में कोई परिवर्तन नहीं होता जैसे,

| सादारूप | प्रेरणार्थक रूप |
|---|---|
| शत्रवः स्वर्गमगच्छन् | शत्रून् स्वर्गमगमयत् |
| भवे वेदार्थम् अविदु | भवान् वेदार्थमवेदयत् |
| देवा अमृतमाश्नन् | देवानमृतमाशयत् |
| विधिर्वेदमध्यैत | विधिं वेदमध्यापयत् |
| पृथ्वी सलिले आस्त | पृथ्वी सलिले आसयत् |

परन्तु गमयति रामो गोविन्दम् में यदि कोई दूसरा व्यक्ति राम से ऐसा कराने की प्रेरणा करता है, तब वाक्य यों होगा—

विष्णुमित्रो रामेण गोविन्दं गमयति—विष्णुमित्र राम को प्रेरित करता है कि वह गोविन्द को जाने के लिए कहे। यहाँ राम द्वितीया में नहीं रक्खा गया क्योंकि वह प्रेरणार्थक क्रिया का कर्ता है, न कि सादी क्रिया का।

टिप्पणी—गति, बुद्धि प्रत्यवसानार्थ इत्यादि सूत्र में आए हुए शब्दकर्म का अर्थ करते हुए महाभाष्यकार पतञ्जलि ने यह व्याख्या लिखी है। 'शब्दकर्म' का अर्थ या तो यह हो सकता है कि 'शब्दो येषां क्रिया' या 'शब्दो येषां कर्म।'

१—गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणिकर्ता स णौ। शत्रूनगमयत्स्वर्गं वेदार्थं स्वानवेदयत्। आशयच्चामृतं देवान् वेदमध्यापयद्विधिम्। आसयत्सलिले पृथ्वीं यः स मे श्रीहरिर्गतिः

यदि पहला अर्थ लिया जाय तो ह्वयति ( ह्वे ), क्रन्दति ( क्रन्द् ) और शब्दायत ( शब्द से निष्पन्न नामधातु ) धातुएँ इस नियम में से निकल जायँगी, जैसे,

ह्वयति देवदत्त.—ह्वाययति देवदत्तेन।

क्रन्दति शब्दायत देवदत्तः—क्रन्दयति शब्दाययति देवदत्तेन।

साथ ही, श्रु धातु, वि पूर्वक ज्ञा धातु, उपपूर्वक लभ् धातु इस नियम में आ जायँगी, जैसे, शृणोति, विजानाति, उपलभते देवदत्तः—श्रावयति, विज्ञापयति, उपलम्भयति देवदत्तम्।

( ख )[1] अद् धातु और खाद् धातु के प्रेरणार्थक के योग में तृतीया होती है, जैसे,

| | |
|---|---|
| बटुरन्नमत्ति खादति वा ( लड़का अन्न खाता है ) | बटुनाऽन्नमादयति खादयति वा ( वह लड़के से अन्न खिलवाता है ) |

( ग )[2] जब भक्ष् धातु का अर्थ 'हिंसा करना' नहीं होता तो उसके योग में तृतीया होती है, जैसे,

| | |
|---|---|
| भक्षयति पिंडी देवदत्तः | भक्षयति पिंडी देवदत्तेन |
| परन्तु भक्षयति यवान् बलीवर्दाः | भक्षयति बलीवर्दान् यवान् |

( महाभाष्य )

( घ ) विशिष्ट प्रकार के ज्ञान का बोध कराने वाली स्मृ और घ्रा जैसी धातुओं का प्रयोग द्वितीया के साथ नहीं होता, जैसे, स्मरति-जिघ्रति देवदत्तः, स्मारयति-घ्रापयति देवदत्तेन।

परन्तु कभी कभी 'स्मृ' धातु के योग में द्वितीया का भी प्रयोग होता है, विशेषकर उस दशा में जब कि 'स्मृ' का अर्थ होता है "किसी के विषय में सोचना" या "पश्चात्तापपूर्वक किसी को याद करना", जैसे, अपि

---

१—अदिखाद्योर्न ( वार्तिक )

२—भक्षेरहिंसार्थस्य न ( वार्तिक )

चन्द्रगुप्तदोषा अतिक्रान्तपार्थिवगुणान् स्मारयन्ति प्रकृतीः ( मुद्रा० १ ), शिशुपाल ६ । ५६ भी देखिए ) ।

( ङ )[1] दृश् का प्रेरणार्थक रूप द्वितीया के साथ प्रयुक्त होता है: जैसे, भक्ता हरि पश्यन्ति, दर्शयति भक्तान् हरिम् ( सिद्धा० ) ।

टिप्पणी—सस्कृत साहित्य मे दृश् का प्रयोग चतुर्थी के साथ मिलता है, न कि द्वितीया के साथ, जैसे, प्रत्यभिज्ञानरत्न च रामायादर्शयत् कृती ( रघु० १२ । ६४ )

( च )[2] हृ, कृ धातुओं के साधारण रूपों का कर्ता, और अभिवद् तथा दृश के आत्मनेपद के रूपो का कर्ता, प्रेरणार्थक मे द्वितीया अथवा तृतीया मे रक्खा जाता है जैसे, भृत्य कट करोति हरति वा ( नौकर चटाई बनाता है या ले जाता है ) ।

भृत्य भृत्येन वा कट कारयति हारयति वा ( सिद्धा० )—वह नौकर से चटाई बनवाता है या ढोवाता है ।

इसी प्रकार, अभिवादयते—दर्शयते देव भक्त भक्तेन वा (सि०कौ०) — ( वह भक्त से देवता को प्रणाम करवाता है या भक्त को प्रेरित करता है कि देवता को प्रणाम करे )।

४६— धारा ४४ मे जिन अकर्मक धातुओं का उल्लेख किया गया है उनमे ऐसी धातुओं का अभिप्राय है जो स्वभावत कालवाची, स्थानवाची इत्यादि कर्मो के अतिरिक्त अन्य कोई कर्म ले ही नही सकती । धारा ४४ मे उल्लिखित अकर्मक धातुओं से ऐसी धातुएं अभिप्रेत नही हैं जो सकर्मक होते हुए भी कभी कभी वक्ता की इच्छा के अनुसार अकर्मक के तौर पर प्रयुक्त कर दी जाती हैं, अथवा वे धातुएँ जिनका अर्थ बिल्कुल स्पष्ट रहता है, जैसे किकर पचति । यहाँ 'पचति' सकर्मक होते हुए भी

---

1—दृशेश्च (वार्तिक) ।

2—हृक्रोरन्यतरस्याम् ( १ । ४ । ५३ ) अभिवादिदृशोरात्मनेपदे वेति वाच्यम् ।

बिना कर्म के प्रयुक्त हुई है क्योंकि यह बड़ी सरलता से समझी जा सकती है। अतएव "**किंकरेण पाचयति**" होगा, न कि '**किंकर पाचयति**' परन्तु '**मासमास्मयति देवदत्तम्**" होगा।

४७—[1]प्रेरणार्थक क्रियाओं का कर्मवाच्य बनाने में प्रेरणार्थक का प्रधान कर्म जो कि मौलिक (साधारण) दशा में क्रिया का कर्ता रहता है प्रथमा विभक्ति में रक्खा जाता है और दूसरा (गौण) कर्म ज्यों का त्यों रह जाता है, उदाहरणार्थ—

| साधारण दशा | प्रेरणार्थकदशा | प्रेरणार्थककर्मवाच्य |
|---|---|---|
| **रामो ग्राम गच्छति** (राम गाँव को जाता है) | **राम ग्राम गमयति** (वह राम को गाँव जाने की प्रेरणा करता है) | **रामो ग्राम गम्यते** (राम उसके द्वारा गाँव जानेको प्रेरित किया जाता है) |
| **भृत्यः कट करोति** (नौकर चटाई बनाता है) | **भृत्येन भृत्य वा कट कारयति** (वह नौकर से चटाई बनवाता है) | **भृत्यः कट कार्यते** नौकर उसके द्वारा चटाई बनाने के लिए प्रेरित किया जाता है |
| **गोविन्दोमासमास्ते** (गोविन्द महीने भर बैठता है) | **गोविन्द माम मासयति** (वह गोविन्द को महीने भर बैठाता है) | **गोविन्दोमासमास्यते** (गोविन्द उसके द्वारा महीने भर बैठाया जाता है) |

१—बुद्धिभक्षार्थयोः शब्दकर्मणा च निजेच्छया।
प्रयोज्यकर्मण्यन्येषा ण्यन्ताना लादयो मता ॥ (सिद्धा०)

(क) परन्तु बुद्ध्यर्थक, भक्षार्थक तथा शब्दकर्मा धातुओं का कर्मवाच्य बनाने में, प्रधान कर्म प्रथमा विभक्ति में रक्खा जाता है और गौण कर्म द्वितीया में अथवा प्रधान कर्म द्वितीया में और गौण कर्म प्रथमा में, जैसे, **माणवकं धर्मं बोधयति** (वह माणवक को उसका कर्तव्य समझाता है)। इसका कर्मवाच्य इस प्रकार होगा— **माणवको धर्मं बोध्यते** अथवा **माणवकं धर्मो बोध्यते** (माणवक को उसका कर्तव्य समझाया जाता है अथवा कर्तव्य माणवक को समझाया जाता है)। इसी प्रकार **बटुमोदनं भोजयति**। वह लड़के को भोजन कराता है—इसका कर्मवाच्य यों होगा—**बटुरोदनं भोज्यते** अथवा **बटुमोदनो भोज्यते** (सि० कौ०)।

४८—**चुरादिगण** की धातुओं के **प्रेरणार्थक** के रूप ठीक वैसे ही होते हैं जैसे साधारण रूप। इसलिए प्रकरण से अर्थ का निर्णय किया जाना चाहिए, जैसे, **रामः शिवं पूजयति** (राम शिव को पूजता है), **रामो गोविन्देन शिवं पूजयति** (राम गोविन्द से शिव को पुजवाता है)। यहाँ दूसरा वाक्य प्रेरणार्थक है।

४९—धारा ४३ तथा ४४ में उल्लिखित नियम **द्विकर्मक** धातुओं में भी लगते हैं, अर्थात् गत्यर्थक धातुओं के योग में मूल (साधारण) क्रिया का कर्ता **द्वितीया** में रक्खा जाता है और अन्य धातुओं के योग में, धारा ४५ में उल्लिखित नियम का पालन करते हुए मूल (साधारण) क्रिया का कर्ता **तृतीया** में भी रक्खा जाता है, जैसे, **वामनो बलिं वसुधां याचते**, इसका प्रेरणार्थक '(ईश्वरः) **वामनेन बलिं वसुधां याचयति**' होगा (ईश्वर वामन को बलि से पृथ्वी माँगने की प्रेरणा करते हैं)। '**गोपः अजां नगरं हरति**' का प्रेरणार्थक होगा "**स्वामी गोपं गोपेन वा अजां नगरं हारयति** (मालिक गोप द्वारा बकरी को शहर में पहुँचवाता है)।

## अभ्यास

१—अभिमन्युतनयं परीक्षितमुदराादुपरतमेव निर्गतमुत्तराप्रलापोपजनितकृपा भगवान् वासुदेवो दुर्लभानसून् प्रापितवान् ।
( काद० ) ।

२—अयं शिशुर्न शक्नोति शिरोधरां धारयितुम् । तदेहि गृहाणैममवतार्य सलिलसमीपमित्यभिधाय तेनर्षिकुमारेण मां सरस्तीरमनाययत् । उपसृत्य च जलसमीपं स्वयमादाय मुक्तप्रयत्नमुत्तानितमुखमङ्गुल्या कतिचित्सलिलबिन्दूनपाययत् ।
( काद० ) ।

३—कामं इदानीं सकामो भवतु येनासत्यसंधे जने सखी पदं कारिता ।
( शकु० ) ।

४—महेन्द्रभवनं गच्छतोपाध्यायेन त्वमासनं प्रतिग्राहितः ।
( विक्रमो० ) ।

५—तौ कुशलवौ भगवता वाल्मीकिना धात्रीकर्मवस्तुतः परिगृह्य पोषितौ परिरक्षितौ च । वृत्तचूडौ च त्रयीवर्जमितरा विद्याः सावधानेन परिपाठितौ । समनन्तरं च गर्भादेकादशे वर्षे क्षात्रेण कल्पेनापनीय गुरुणा त्रयीविद्यामध्यापितौ ।
( उत्तर०२ ) ।

६—नलिनिके पायय कमलमधुरसं कलहंसान् । पल्लविके भोजय मरिचाग्रपल्लवदलानि भवनहारीतान् । ( काद०९८४ ) ।

७—आर्यो दापयतु मे वैशंपायनानयनाय गमनाभ्यनुज्ञां तातेन । नान्यथा मे दोषशुद्धिर्भवति । ( काद० ) ।

८—तौ दंपती स्वां प्रति राजधानीं
प्रस्थापयामास वशी वसिष्ठः । ( रघु० २।७० ) ।

९—ततो द्रोणोऽर्जुने भूयो रणशिक्षामशिक्षयन् ।
( महाभारत१।१३०।२५ )

१०—तौ दंपती बहु विलप्य शिशोः प्रहर्त्रा
शल्यं निखातमुदहारयतामुरस्तः । ( रघु० ९।७८ ) ।

११—वाल्मीकिस्तौ कुशलवौ
साग च वेदमध्याप्य किंचिदुत्क्रांतशैशवौ ।
स्वकृति गापयामास कविप्रथमपद्धतिम् । ( रघु० १५।३३ ) ।

१२—स सेतुं बंधयामास प्लवगैर्लवणाम्भसि ।
तेनोत्तीर्य पथा लंका रोधयामास पिंगलैः ।
द्वितीय हेमप्राकारं कुर्वद्भिरिव वानरैः ॥ ( रघु० १२।७० ) ।

## अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—एव क्रियते युष्मदादेश । किंतु या यस्य युज्यते भूमिका ता तथैव भावेन सर्वे वर्गाः पाठिताः । ( मालती० १ ) ।

२—स कार्तांतिकस्ता विलोक्य स्निग्धदृष्टिराचष्ट । भद्रे अस्ति कौशल शालिप्रस्थेनानेन सपन्नमाहारमस्मानभ्यवहारयितुमिति । ( दशकुमार० २।६ ) ।

३—ततो मया पाटलिपुत्र गत्वा श्रावितोऽमात्यसदेश वैतालिक स्तनकलस ।
( मुद्रा० ४ ) ।

४—रजनीतिमिरावगुंठिते पुरमार्गे घनशब्दविक्लवाः ।
वसतिं प्रिय कामिना प्रियास्त्वदृते प्रापयितुं क ईश्वर ॥ ( कुमार० ४।२ ) ।

५—तामर्चिताभ्य कुलदेवताभ्य कुलप्रतिष्ठा प्रणमय्य माता ।
अकारयत् कारयितव्यदक्षा क्रमेण पादग्रहण सतीनाम् ॥ ( कुमार० ७ २७ ) ।

६—प्रियागुणसहस्राणामेकोन्मीलनपेशल ।
य एव दु स्मर कालस्तमेव स्मारिता वयम् ॥ ( उत्तर० ६ ) ।

७—शरैरुत्सवसंकेतान् स कृत्वा विरतोत्सवान् ।
जयोदाहरणं बाह्वोर्गापयामास किन्नरान् ॥ ( रघु० ४।७८ ) ।

८—अथानाथाः प्रकृतयो मातृबन्धुनिवासिनम् ।
मौलैरानाययामासुर्भरतं स्तम्भिताश्रुभिः ॥ ( रघु० १२।१२ ) ।

९—त्वं रक्षसा भीरु यतोऽपनीता तं मार्गमेताः कृपया लता मे ।
अदर्शयन् वक्तुमशक्नुवन्त्यः शाखाभिरावर्जितपल्लवाभिः । ( रघु० १३।२४ ) ।

१०—गुणानुरक्तामनुरक्तसाधनः
कुलाभिमानी कुलजां नराधिपः ।
परैस्त्वदन्यः क इवापहारयेत्—
मनोरमामात्मवधूमिव श्रियम् ( किरात० १ । ३१ )

११—यः पयो दोग्धि पाषाणं स रामाद् भूतिमाप्नुयात् ।
रावणं गमय प्रीतिं बोधयन्तं हिताहितम् ॥
प्रीतोऽहं भोजयिष्यामि भवतीं भुवनत्रयम् ।
किं विलापयसेऽत्यर्थं पार्श्वे शायय रावणम् ॥
आज्ञां कारय रक्षोभिर्मां प्रियाण्युपहारय ।
कः शक्रेण कृतं नेच्छेदधिमूर्धानमञ्जलिम् ॥ ( भट्टि० ८ । ८२-८४ )

१२—विद्यामथैनं विजयां जयां च रक्षोगणं क्षिप्तुमविक्षतात्मा ।
अध्यापयद्गाधिसुतो यथावन्निघातयिष्यन्युधि यातुधानान् ॥ ( भट्टि० ३ । २ । १ )

## संस्कृत में अनुवाद कीजिए :—

१—हम लोगों ने उसे उसका धर्म ( कर्तव्य ) समझाया ( विद् ) और घर भेज दिया ( प्र + स्था प्रेरणार्थक ) ।

२—जब स्वतन्त्रता की इच्छा मन्त्री के हृदय में घुस जाती है, तब वह राजा को भी प्राण छुड़वा देता है ( त्यज ) ।

३—युद्ध में अपने शत्रु को हराकर उसने अपने भाटों से अपने व रकृत्यों का यश गवाया ( गै ) ।

४—उसने अपने नौकरों से बाजार से इन्धन मंगवाया ( नी अथवा हृ ) ।

५—यह कोई आश्चर्य नहीं है कि कर देने वाले राजों से सम्राट् अपनी आज्ञा पालन करवाता है ।

६—इन पुरुषों से कह दिया गया था कि उन नौकरानियों से मालाएँ तैयार करा लें ।

७—जब छात्र को किसी विषय के सिद्धान्त समझा दिये जाते हैं तब उसका अभ्यास सिखाया जाता है ।

८—अपने शत्रुओं को पराजित करो और उनसे कर दिलाओ ( दा ) ।

९—उसने अपने पुत्र के विवाह के लिए अपने नौकरों से एक विशाल मण्डप बनवाया ( कृ ) ।

१०—उसने लड़के को उसकी इच्छा के प्रतिकूल खवाया ( अद् वा खाद् ) ।

११—मैंने अपने सम्भ्रान्त अतिथि को अपना पुस्तकालय दिखाया ( दृश् का प्रेरणार्थक ) ।

१२—वह राम से यात्रियों से काशी का मार्ग पुछवाता है ।

१३—भेड़ें स्वामी द्वारा नौकर से गाँव में पहुँचाई गईं ।

१४—भृत्य को चाहिए कि छन्दोऽनुवर्तन द्वारा वह अपने स्वामी को पारितोषिक देने के लिए प्रेरित करे ।

१५—मैंने उन लोगों को राजा के चारों ओर खड़ा कराया और उनसे उसको प्रणाम करवाया ( अभि + वद् प्रेरणार्थक ) ।

# षष्ठ पाठ

## तृतीया

५०—संस्कृत मे तृतीया विभक्ति दो प्रधान अर्थों मे प्रयुक्त की जाती है। तृतीया विभक्ति या तो किसी कार्य के कर्ता का बोध कराती है, या जिस साधन से कार्य का सम्पादन होता है उसका, जैसे, ततो देव्या किमभिहितम् ( तब रानी से क्या बात कही गई )—यहाँ 'देव्या' मे जो तृतीया हुई है वह "अभिहितम्' के कर्ता का बोध कराती है। **सञ्चूर्णयामि गदया न सुयोधनोरू** (वेणी० १)—क्या मै अपनी गदा से दुर्योधन की जाँघो को चूर चूर न कर डालूँ। यहाँ 'गदया' की तृतीया बतलाती है कि 'चूर-चूर कर डालने' की क्रिया मे 'गदा' से सहायता ली जायगी, अर्थात् 'गदा' साधन बनेगी। **तामेव दिव्ययोषित चक्षुषा पुनर्निरूपयामास** ( काद० )—फिर उस दिव्य स्त्री की तरफ अपनी आँख से देखा।

५१—तृतीया विभक्ति से जिस प्रकार के करणत्व ( साधनत्व ) का बोध होता है वह विविध सम्बन्धो द्वारा प्रकट किया जाता है —

( क ) एक तो किसी कार्य के करने का प्रकार या ढङ्ग। दूसरे जिस प्राकृतिक गुण से कोई संज्ञा युक्त हो, जैसे, **आत्मानुरूपा विधिनोपयेमे** ( कुमार० १।१८ )—उसने अपने योग्य भार्या को विधि से व्याहा। **प्रकृत्या दर्शनीय** ( महाभाष्य )—प्रकृति से ही सुन्दर। **माठरोऽस्मि**

**गोत्रेण**—गोत्र मे मे माठर हूँ। **त्रिषमेण धावति**—ऊपर नीचे दौड़ता है। इसी प्रकार, **द्विद्रोणेन धान्य क्रीणाति, साहस्रेण पशून् क्रीणाति, शतेन पाययति वत्सान्।**

( ख ) जिस मूल्य पर कोई वस्तु खरीदी जाती है, जैसे, **कियता मूल्येन क्रीत पुस्तकम्**—किस दाम पर पुस्तक खरीदी गई।

( ग ) गत्यर्थक धातुओं के योग मे वाहन या साधन ( करण ) होता है, जैसे, **आत्मन पद विमानेन विगाहमान** ( रघु० १३।१ )—अपने स्थान को विमान द्वारा विचरते हुए।

( घ ) वहनार्थक अथवा न्यासार्थक धातुओं के योग मे, जिस पर कोई वस्तु ढोई जाती है अथवा रक्खी जाती है वह तृतीया मे रक्खा जाता है जैसे, **स श्वान स्कन्धेनोवाह** ( हितो० )—वह कुत्ते को कन्धे पर ढोता था। **भर्तुराज्ञा मूर्ध्ना आदाय** ( कुमार० ३।२२ )—अपने स्वामी की आज्ञा को सिर पर धारण कर।

( ङ ) शपथ बोधक शब्दो के योग मे, जिसके नाम से शपथ ली जाती है वह साधन ( करण ) होता है, जैसे, **जीवितेनैव शपामि ते**—मै तुमसे अपने प्राणो की कसम खाकर कहता हूँ।

( च ) किसी स्थानविशेष तक जाने के लिए जिस मार्ग का अनुसरण किया जाता है उसकी दिशा साधन ( करण होती है, जैसे **कतमेन दिग्भागेन गत स जाल्म** ( वि० १ )—वह शठ किस दिशा मे गया।

५२—उत्कर्षार्थक तथा सादृश्यार्थक धातुओं के योग मे जिन गुणो की उत्कृष्टता होती है, अथवा जिन बातो मे सादृश्य पाया जाता है, उनमे तृतीया होती है जैसे, **पूर्वान महाभाग तयातिशेषे** ( रघु० ५।१४ )—ऐ महाभाग, तुम उस ( श्रद्धा ) के कारण अपने पूर्वजो से बढकर ( उत्कृष्टतर ) हो। **स्वरेण रामभद्रमनुहरति** ( उत्तर० ४ )—आवाज मे राम से मिलता-जुलता है।

टिप्पणी—कभी कभी इसी अर्थ में सप्तमी का प्रयोग होता है, जैसे, **धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापर** ( रामा० १।१६ )—दानशीलता में कुबेर के समान और सत्यवादिता मे दूसरे धर्म के समान।

( क ) पृथक्त्वबोधक शब्दों का प्रयोग साधारणत तृतीया के साथ होता है जैसे, **अयमेकपदे तया वियोग उपनत** ( विक्रमो० ४ )—यह उससे वियोग एकाएक आ पडा। इसी प्रकार **मा भूदेव क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोग** । मेघ० ११८ ) ।

( ख ) सादृश्यार्थ बोधक तथा समानता बोधक शब्द तृतीया विभक्ति के साथ प्रयुक्त होते है, जैसे **धनदेन समस्त्यागे**—दानशीलता मे कुबेर के समान। **अस्य मुख सीताया मुखचद्रेण सवदति** (उत्तर० ४)—इसका मुखडा सीताजी के चन्द्रतुल्यमुख मे मिलता-जुलता है। षष्ठी विभक्ति का भी प्रकरण देखिए।

५३[1]—अभीष्ट फल की प्राप्ति अथवा अभीष्ट कार्य की सिद्धि का बोध कराने मे कालवाची तथा मार्गवाची शब्दों मे तृतीया होती है, अर्थात् जितने "समय" मे या जितना "मार्ग" चलते-चलते कोई कार्य सिद्ध हो जाता है, उस "समय" और "मार्ग" मे तृतीया होती है, **द्वादशवर्षैर्व्याकरण श्रूयते** ( पचतन्त्र १ )—व्याकरण बारह वर्ष मे अध्ययन किया जाता है। **क्रोशेन पाठस्तेनाधीत** ( सि० कौ० )—उसके द्वारा कोस भर मे पाठ पढ़ लिया गया।

५४[2]—साधन अथवा करण से कारण या प्रयोजन भिन्न होता है। किसी वस्तु या किसी क्रिया के कारण या प्रयोजन का बोध कराने वाली सज्ञा तृतीया मे रक्खी जाती है, जैसे, **गुरौ भक्त्या प्रीतास्मि ते** ( रघु० २।६३ )—गुरु के प्रति तेरी भक्ति से मै तुझसे प्रसन्न हूँ। **अतिदर्वीयस्तया**

---

१—अपवर्गे तृतीया २। ३। ६। फलप्राप्ति अथवा कार्यसिद्धिको "अपवर्ग" कहते है।

२—हेतौ। २। ३। २३।

**च तस्य प्रदेशस्य न किंचिद्ददर्श** ( काद० )—उस स्थान के बहुत दूर होने के कारण वह कुछ भी न देख सका।

( क ) प्रयोजन भी तृतीया विभक्ति मे रक्खा जाता है, जैसे, **अध्ययनेन वसति** ( सि० कौ० )—अध्ययन करने के प्रयोजन से रहता है।

टिप्पणी—सन्तुष्ट, प्रसन्न, हर्षित, आश्चर्यचकित, लज्जित—इन अर्थो का बोध कराने वाली क्रियाओ के साथ प्रयुक्त होने वाली तृतीया इसी नियम के अन्तर्गत है, जैसे, **कापुरुष स्वल्पकेनापि तुष्यति** ( पञ्चतन्त्र—(नीच पुरुष थोडी सी वस्तु से भी प्रसन्न हो जाता है। **उभयोर्नतथालोक प्रावीण्येन विसिष्मिये** ( रघु०१५।६८ )—लोग उन दोनो की चतुरता ( कौशल ) से इतने आश्चर्यान्वित नही हुए। **अनेन प्रागल्भ्येन लज्जे** ( काद० )—मै इस धृष्टता से लज्जित हूँ।

५५[1]—शरीर के जिस अग मे विकार होता है उसमे तृतीया होती है जैसे, **अक्ष्णा काण** ( सि० कौ० )—एक आँख का काना। इसी प्रकार **पादेन खञ्ज**—पैर का लँगडा। **कर्णेन बधिर**—कान का बहिरा।

५६[2]—किसी दशा या अवस्था विशेष की सत्ता का बोध कराने वाला गुण तृतीया म रक्खा जाता है, जैसे, **जटाभिस्तापस.** ( सि० कौ० )—जटाओ के कारण वह तपस्वी है।

५७—"बस" या "पर्याप्त हो चुका" अर्थात् निषेध अर्थ का बोध कराने वाले **अलम्** तथा **कृतम्** के योग मे तृतीया होती है, जैसे, **अलमतिविस्तरेण** ( वे०१ )—बहुत विस्तार मत करो। **कृतमश्वेन** ( उत्तर० ४ )—घोडे से बाज आए, घोडे को हटाओ। **तस्मात् कृत चरणपातविडम्बनाभि** ( पञ्चतन्त्र )।

१—येनाङ्गविकार । २।३।२०।

२—इत्थभूतलक्षणे । २।३।२१।

( क ) इस अर्थ में **अलम्** शब्द प्रायः क्त्वाप्रत्ययान्त के साथ प्रयुक्त होता है जैसे, **अलमन्यथा गृहीत्वा** ( मालविका० १ )—उलटा पुलटा न समझ ले। ऐसे प्रसगो मे **अलम्** शब्द निषेधार्थवाचक होता है।

५८—[1]सह, साकं, सार्धं, समम्—इन शब्दो का अर्थ होता है "साथ"। इनके प्रयोग मे उस शब्द मे तृतीया होती है जो किसी वाक्य के प्रधान कर्ता का साथ देता है जैसे, **त्वया सह निवत्स्यामि वनेषु** ( उत्तर० २ )—मै आप के साथ जगलो मे रहूँगी। **अमरसिन्धु सार्धमस्मद्विधाभि** ( उत्तर०३ )—हम जैसे पुरुषो के साथ देव नदी। **आस्स्व साकं मया सौधे** ( भट्टि० ८।७९ )—मेरे साथ महल मे बैठो।

५९—कि, कार्य, अर्थ, प्रयोजन, गुण इत्यादि "लाभ" अथवा "आवश्यकता" वाचक शब्दो का, तथा इसी अर्थ का बोध कराने वाली "किम्"पूर्वक "कृ"धातु का जब प्रयोग होता है, तब, जिसमे लाभ होना अथवा आवश्यकता पाई जाती है उसमे तृतीया होती है और जिसको लाभ होने वाला होता है अथवा जिसे आवश्यकता पडती है वह षष्ठी मे रक्खा जाता है जैसे, **देवपादाना सेवकैर्न प्रयोजनम्** ( हितो०१ )—श्रीमान् को नौकरो की आवश्यकता नही है। **तृणेन कार्य भवतीश्वराणाम्** ( पचतन्त्र १।१ )—धनी लोगो का कोई कोई काम तिनके से भी सध जाता है। **कि तया क्रियते धेन्वा** (पचतन्त्र १)—उस गाय से क्या करना है। **कि तया दृष्टया** (शकु २)—उसे देखने से क्या लाभ? **अप्राज्ञेन सानुरागेण भृत्येन को गुण** ( मुद्रा० १ )—अनुरागयुक्त परन्तु मूर्ख नौकर से क्या लाभ?

टिप्पणी—पाणिनि के नीचे लिखे हुए दो सूत्र है — ( १ ) दिव कर्म च १।४।४३ अर्थात् "खेलना" अर्थवाचक दिव् धातु के योग मे द्वितीया अथवा तृतीया होती है, जैसे, अक्षै अक्षान् वा दीव्यति।

---

१—सहयुक्तेऽप्रधाने। २।३।१९

( २ ) सञ्ज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि २।३।२२, पित्रा पितरं वा संजानीते —वह अपने पिता के साथ मेल से रहता है।

## अभ्यास

१—अलमलं बहु विकत्थ्य। राज्ञः समक्षमेवावयोरधरोत्तर-व्यक्तिर्भविष्यति ( मालविका० १ )।

२—देवेन देव्या च परिगृहीतोऽहममुना हरदत्तेन प्रधान-पुरुषसमक्षमयं न मे पादरजसा तुल्य इत्यधिक्षिप्तः ( मालविका० १ )।

३—शापितासि मम लवंगिकावलोकितयोर्जीवितेन यदि वाचा न कथयसि ( मालती०८ )।

४—आगन्तुकतयाऽश्रुतपूर्व आवाभ्यामेष वृत्तान्तः ( शकुं० ६ )।

५—भगवति तमसे अयं ( करिकलभकः ) तावदीदृशः संपन्नः। तौ पुनर्न जाने कुशलवावेतावता कालेन कीदृशाविव भवतः ( उत्तर० ६ )।

६—चंद्रापीडस्य सहपांशुक्रीडिततया सहसंवृद्धतया च सर्वविश्रंभस्थानं द्वितीयमिव हृदयं वैशंपायनः परं मित्रमासीत् ( काद० )।

७—अलमतियन्त्रणया। कृतमतिप्रसादेन। भगवति प्रसीद विमुच्यतामयमत्यादर इति तामब्रवीत् ( काद० )।

८—उषसि चोत्थाय तस्य जरद्द्रविडधार्मिकस्येच्छया निसृष्टैर्धनविसरैः पूरयित्वा मनोरथमभिमतमभिरमणीयेषु प्रदेशेषु निवसन्नल्पैरेवाहोभिरुज्जयिनीमाजगाम ( काद० )।

९—अलमुपालभ्य। आर्य दैवेनेदमनुष्ठितं किमत्रार्यस्य ( मुद्रा० ३ )।

१०—अयि पाञ्चालतनये अलं विषादेन। किं बहुना। यत्करिष्ये तच्छ्रूयताम्। अचिरेणैव कालेन सुयोधनशोणितशोणपाणिस्तव कचान् भीम उत्तंसयिष्यति ( वेणी० १ )।

११—स्वहृदयेनापि विदितवृत्तान्तेनामुना जिह्रेमि ( काद० ) ।

१२—प्रवातशयने निषण्णा देवी परिजनहस्तगृहीतेन चरणेन परिव्राजिकया कथाभिर्विनोद्यमाना तिष्ठति ( मृच्छकटिक ४ ) ।

१३—मदनमपि गुणैर्विशेषयंती
रतिरिव मूर्तिमती विभाति सेयम् ( मृच्छकटिक ४ ) ।

१४—शुद्धान्तदुर्लभमिदं वपुराश्रमवासिनो यदि जनस्य ।
दूरीकृताः खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः ( शाकुं० १ ) ।

१५—शरीरसादादसमग्रभूषणा मुखेन सालक्ष्यत लोध्रपाण्डुना ।
तनुप्रकाशेन विचेयतारका प्रभातकल्पा शशिनेव शर्वरी
( रघु० ३।२ ) ।

१६—यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।
असमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ( भगवद्गीता १०।३ )॥

१७—किं तया क्रियते धेन्वा या न सूते न दुग्धदा ।
कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान् न भक्तिमान् ( पंचतन्त्र १ ) ।

## अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—अधुनान्या गतिर्नास्ति । अकथ्यमाने च महाननर्थोपनिपातो जायते प्राणपरित्यागेनापि रक्षणीयाः सुहृदसव इति कथयामि । ( काद० ) ।

२—तेषु तेषु रम्यतरेषु स्थानेषु तया सह तानि तान्यपरिसमाप्तान्यपुनरुक्तानि केवलं चन्द्रमाः कादम्बर्या सह कादम्बरी महाश्वेतया सह महाश्वेता तु पुंडरीकेण सह पुंडरीकोऽपि चंद्रमसा सह परस्परावियोगेन सर्व एव सर्वं कालसर्वं सुखान्यनुभवतः परां कोटिमानंदस्याध्यगच्छन् ( काद० ) ।

३—अवधूतप्रणिपाताः पश्चात्सन्तप्यमानमनसोऽपि ।
निभृतैर्व्यपत्रपंते दयितानुनयैर्मनस्विन्यः ॥ ( विक्रमो० ३ ) ।

४—कष्ट जन कुलधनैरनुरञ्जनं यस्तन्नो यदुक्तमशिव न हि तत्क्षम ते ।
नैसर्गिकी सुरभिण कुसुमस्य सिद्धा मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरवताडनानि ॥
(उत्तर० १)।

५—अथ दुर्लङ्घ्यशासनतया भगवतो मनोभुवो मदजननतया च मधुमासस्यातिरमणीयतया च तस्य प्रदेशस्याविनयबहुलतया चाभिनवयौवनस्य चचलप्रकृतितया चेन्द्रियाणा दुर्निवारतया च विषयाभिलाषाणा तथा भवितव्यतया च तस्य तस्य वस्तुन तमपि तरलतामनयदनग । (काद०)

६—विनाप्यर्थैर्वीर स्पृशति बहुमानोन्नतिपद
समायुक्तोऽप्यर्थे॰ परिभवपद याति कृपण ।
स्वभावादुद्भूता गुणसमुदयावाप्तिविषया
द्युति सैंही कि श्वा धृतकनकमालोऽपि लभते ॥ (हितोप० १)

७—अल महीपाल तव श्रमेण प्रयुक्तमप्यस्त्रमितो वृथा स्यात् ।
न पादपोन्मूलनशक्ति रह शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य (रघु० २ । ३४)।

८—कुलेन कान्त्या वयसा नवेन गुणैश्च तैस्तैर्विनयप्रधानै ।
त्वमात्मनस्तुल्यममु वृणीष्व रत्न समागच्छतु काचनेन (रघु० ६ । ७९)।

९—लोभश्चेदगुणेन कि पिशुनता यद्यस्ति कि पातकै
सत्य चेत्तपसा च कि शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम् ।
सौजन्य यदि कि गुणै स्वमहिमा यद्यस्ति कि मण्डनै ।
सद्विद्या यदि कि धनैरपयशो यद्यस्ति कि मृत्युना ॥ (भर्तृहरि २।५५)।

१०—अयमार्यचाणक्यस्तिष्ठति—

यो नन्दमौर्यनृपयो॰ परिभूय लोक-
मस्तोदयो प्रतिदिशन्नविभिन्नकालम् ।
पर्यायपातितहिमोष्णमसर्वगामि
धाम्नातिशाययति धाम सहस्रधाम्न॰ ॥ (मुद्रा० ३)।

११—भूषणाद्युपचारेण प्रभुर्भवति न प्रभुः ।
परैरपरिभूताज्ञस्त्वमिव प्रभुरुच्यते ॥ ( मुद्रा० ३ ) ।

१२—आज्ञा कीर्तिः पालनं ब्राह्मणानां दानं भोगो मित्रसंरक्षणं च ।
येषामेते षड्गुणा न प्रवृत्ताः कोऽर्थस्तेषां पार्थिवोपाश्रयेण ॥ ( भर्तृहरि० २।४८ ) ॥

१३—न तेन सज्जं क्वचिदुद्यतं धनुः कृतं न वा कोपविजिह्ममाननम् ।
गुणानुरागेण शिरोभिरुह्यते नराधिपैर्माल्यमिवास्य शासनम् ॥ ( किरात० १।२१ ) ॥

१४—समुद्र इव गाम्भीर्ये स्थैर्ये च हिमवानिव ।
विष्णुना सदृशो वीर्ये क्षमया पृथिवीसमः ॥ ( रामायण १।१।१७ ) ।

१५—स बाल आसीद्वपुषा चतुर्भुजो मुखेन पूर्णेन्दुनिभस्त्रिलोचनः ।
युवा कराक्रान्तमहीभृदुच्चकैरसंशयं सम्प्रति तेजसा रविः ॥ ( शिशु० १।७० ) ।

## संस्कृत में अनुवाद कीजिए :—

१—मनुद्वारा विहित नियमों के अनुसार राजा अपनी प्रजा का पालन करे ।

२—सदाचार कहता है कि अपने प्राण को संकट में डालकर भी मित्र की रक्षा करे ।

३—यह लोभ का अवतार है यह कितना भी धन-संचय करे, पर कभी तृप्त न होगा ।

४—क्या तुम अज्ञान से लजाते नहीं हो, और क्या अपने विद्याविहीन उच्चकुल का अभिमान करते हो ।

५—प्रजा को सन्तुष्ट रखने की कामना, तथा ज्ञान और पराक्रम में यह राजा अन्य सबों से बढ़कर है ।

६—अन्य राजाओं द्वारा आप की आज्ञा सिर पर धारण की जाती है—यह आपकी महिमा का बहुत बड़ा चिह्न है ।

७—वह मनुष्य अजशावक को कन्धे पर ले कर इस मार्ग से कसाईखाने गया।

८—मैं अपने इष्टदेव का शपथ खाकर कहता हूँ कि मैंने इसके पहिले आपकी अँगूठा कभी नहीं देखी।

९—मैं जानता हूँ कि मेरे नौकर पन्द्रह दिन में लौट आवेंगे क्योंकि उनके वहाँ अधिक ठहरने से क्या लाभ ?

१०—उत्कट श्रद्धा के साथ केवल एक बार भी ओंकार कहने से पापी भी अपने तमाम पापों से मुक्त हो जाता है।

११—इस आदमी के साथ टहलने से क्या लाभ ? वह दाहिने पाँव का लँगड़ा है और शीघ्रतापूर्वक नहीं चल सकता।

१२—इस विषय में शङ्का न कीजिए (अलम्),। मेरे बहनोई द्वारा यह मामला स्वीकार कर लिया गया है।

१३—तुझ मूर्ख को धिक्कार है। यदि तू पुस्तकों को नहीं पढ़ता तो तुझे उनके बोझ से क्या लाभ ?

१४—मेरी निन्दा न कीजिए (अलम्) यह मुझसे नहीं किया गया।

१५—बच्चे मत रोओ (अलम्) जब तेरी माता यहाँ आवेगी तो मैं उससे तुझे खिलवाऊँगा।

१६—अपने प्रेमी के विषय में सोचने रहने के कारण शकुन्तला ने दुर्वासा का आगमन नहीं देखा।

१७—ए अन्धे आदमी, तुझे इस दीपक से क्या लाभ ?

# सप्तम पाठ

## चतुर्थी

६०—जिसको कोई वस्तु दी जाती है उसे सम्प्रदान कहते हैं। सम्प्रदान में चतुर्थी होती है जैसे, **किं वस्तु विद्वन् गुरवे प्रदेयम्** ( रघु० ५। १८ )—ऐ विद्वान् पुरुष, गुरु जी को क्या देना है?

जिस पुरुष या वस्तु के लिए अथवा जिसके उद्देश्य से कोई कार्य किया जाता है, वह भी सम्प्रदान होता है जैसे, **युद्धाय सन्नह्यते** महाभाष्य)-युद्ध के लिए तैयारी करता है। **ता नन्दनाय प्रार्थयते** (मालती०)-वह उसे नन्दन के लिए माँग रहा है।

( क [1]यज् धातु ( यज्ञ करना के योग में, जिस व्यक्ति को यज्ञ अर्पण किया जाता है, वह द्वितीया में रक्खा जाता है, और जिस वस्तु या साधन द्वारा यज्ञ किया जाता है वह तृतीया में रक्खा जाता है जैसे, **पशुना रुद्रं यजते** ( सि० कौ० )—वह रुद्र को एक पशु चढ़ाता है।

६१[2]—रुच् धातु तथा रुच् के समान अर्थ रखने वाली धातुओं के योग में प्रसन्न होने वाला चतुर्थी में रक्खा जाता है, जैसे, **यत् प्रभविष्णवे**

---

१—यजेः कर्मणः करणसंज्ञा, सम्प्रदानस्य च कर्मसंज्ञा ( वार्तिक )

२—रुच्यर्थानां प्रीयमाणः १।४।३३।

रोचते (शकु० २)—जो श्रीमान् को भाव। **यज्ञदत्ताय स्वदते पूप** (काशिका)—यज्ञदत्त को अपूप अच्छा लगता है।

६१[1]—धारि धातु (उधार लेना, कर्ज लेना) के योग में महाजन (कर्ज देने वाला) चतुर्थी में रक्खा जाता है जैसे, **गोविन्दो रामाय लक्षं धारयति**—गोविन्द ने राम से एक लाख उधार लिया है।

[2]स्पृह् धातु (चाहना) के योग में चाही हुई वस्तु चतुर्थी में रक्खा जाता है जैसे, **परिक्षीणो यवानां प्रसृतये स्पृहयति**(भर्तृ० नीति० ४५)—गरीब आदमी मुट्ठी भर (पसर भर) जौ चाहता है।

टिप्पणी—स्पृह् धातु से प्रत्यय लगाकर बने हुए शब्दों के योग में कभी कभी चतुर्थ्यन्त पद का प्रयोग होता है, जैसे, **भोगेभ्य स्पृहयालवः** (भर्तृ० नीति ६८)—भोगों (आरामों) के इच्छुक। **कथमन्ये करिष्यन्ति पुत्रेभ्य. पुत्रिण स्पृहाम्** (वेणी० २)।

साधारणतया स्पृह् धातु से प्रत्ययनिष्पन्न शब्दों के योग में सप्तम्यन्तपद का प्रयोग होता है जैसे, **स्पृहावती वस्तुषु केषु मागधी** (रघु० ३। ५)

६२[3]—क्रुध् (गुस्सा होना), द्रुह् (द्रोह करना, वैर करना) ईर्ष्य (डाह या जलन करना), असूय् (डाह या जलन करना)—इन धातुओं तथा इनके समान अर्थ रखने वाली अन्य धातुओं के योग में, जिसके ऊपर क्रोध किया जाता है, या जिससे घृणा या डाह इत्यादि की जाती है वह चतुर्थी में रक्खा जाता है, जैसे, **हरये क्रुध्यति द्रुह्यति ईर्ष्यति असूयति** वा (सि० कौ०)—वह हरि से गुस्सा होता है, द्रोह करता है अथवा डाह करता है।

---

[1]—धारेरुत्तमर्ण। १। ४। ३५

[2]—स्पृहेरीप्सित। १। ४। ३६।

[3]—क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां य प्रति कोप। क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयो कर्म। १। ४। ३७-३८

परन्तु उपसर्गयुक्त क्रुध तथा द्रुह् धातुए द्वितीयान्त पद लेती हैं, जैसे, **मच्छरीरमभिद्रोग्धुं** (मुद्रा० १)—मेरे शरीर पर आघात पहुँचाने के लिए। **न खलु तामभिक्रुद्धो गुरु** (विक्रमो० ३—क्या गुरु जी उस पर गुस्सा नहीं हुए?

६४[1]—प्र-पूर्वक तथा आ-पूर्वक श्रु धातु का अर्थ होता है "प्रतिज्ञा करना।" तो जिस पुरुष से कोई प्रतिज्ञा कर दी जाती है वह चतुर्थी मे रक्खा जाता है जैसे, **प्रतिशुश्राव काकुत्स्थस्तेभ्यो विघ्नप्रतिक्रियाम्** (रघु० १५।४)—काकुत्स्थ ने उन लोगों से विघ्नों को हटाने की प्रतिज्ञा कर दी।

६५[2]—जिस प्रयोजन के लिए कोई कार्य किया जाता है या जिसको बनाने के लिए कोई दूसरी वस्तु कायम रहती है या प्रयुक्त होती है वह चतुर्थी मे रक्खा जाता है, जैसे, **काव्य यशसे** (काव्य प्रकाश)—काव्य यश के लिए होता है। **यूपाय दारु** (महाभाष्य)—खम्भा (बनाने) के लिए लकड़ा। **कुण्डलाय हिरण्यम्** (महाभाष्य)—सुवर्ण कुण्डल नामक आभूषण बनाने के काम आता है। **अवहननाय उलूखलम** (महाभाष्य,-कूटने के लिए अथवा काणने के लिए ओखली।

(क)[3] जब किसी वाक्य मे तुमुनन्त धातु का अर्थ या भाव छिपा या दबा-सा रहता है, तब तुमुनन्त का कर्म चतुर्थी मे रक्खा जाता है, जैसे, **फलेभ्यो याति = फलान्याहर्तु याति**—वह फलों के लिए जाता है अर्थात् फलों को लाने के लिए जाता है। **वनाय गा मुमोच = वन गन्तु गा मुमोच**—उसने गाय को जगल के लिए छोड दिया अर्थात् जगल को जाने के लिए छोड दिया। यहाँ "**आहर्तुम्**" का

---

१—प्रत्याङ्भ्या श्रुव पूर्वस्य कर्ता। १।४।४०।

२—तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या (वार्तिक)।

३—क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिन। २।३।१४।

कर्म **"फल"** और **"गन्तुम्"** का कर्म **'वन'** चतुर्थी में रक्खा गया है।

(ख)[1] किसी धातु में तुमुन् प्रत्यय जोड़ने से जो अर्थ निकलता है वही अर्थ पाने के लिए, उस धातु में बनी हुई भाववाचक संज्ञा में चतुर्थी होता है जैसे, **यागाय** याति—**यष्टु** याति—वह यज्ञ करने के लिए जाता है। **समिदाहरणाय प्रस्थिता वयम्** (शकु० १)। **यतिष्य व सखीप्रत्यानयनाय** (विक्रमो० १)

६६[2]—क्लृप (समर्थ होना या पैदा करना) के योग में तथा उसी प्रकार का अर्थ रखने वाली **संपद्, भू, जन** सरीखी अन्य धातुओं के योग में, जो परिणाम निकलता है वह चतुर्थी में रक्खा जाता है, जैसे, **कल्पसे रक्षणाय** (शकु० ५)—तुम प्रजाओं की रक्षा करने में समर्थ हो। **मूत्राय कल्पते-जायते सम्पद्यते यवागू** (महाभाष्य)—माण्ड पेशाब पैदा करता है।

इसी अर्थ में, भू अथवा अस् के न रहने पर भी प्राय चतुर्थी प्रयुक्त होती है जैसे, **यतस्तौ स्वल्पदुःखाय** (पंचतंत्र १)—चूंकि वे दोनों बहुत कम दुःख देते हैं

(क)[3] किसी अशुभसूचक घटना द्वारा जिस वस्तु का पूर्वरूप दिखाई देता है वह चतुर्थी में रक्खी जाती है, जैसे, **वाताय कपिला विद्युत्** (महाभाष्य)—चितकबरी बिजली तूफान की द्योतक है। **मांसौदनाय व्याहरति मृग** (महाभाष्य)—हिरन की आवाज मांस के भोजन की प्राप्ति सूचित करती है।

(ख) "हित" और "सुख" के साथ चतुर्थी प्रयुक्त होती है जैसे,

---

१—तुमर्थाच्च भाववचनात्। २।३।१५।

२—क्लृपि सम्पद्यमाने च (वार्तिक)।

३—उत्पातेन ज्ञापिते च (वार्तिक)।

**ब्राह्मणाय हितम् सुखम्** (सि० कौ०)--ब्राह्मण के लिए हितकर वा सुखकर। **हितमामयाविने** (महाभाष्य)--रुग्ण पुरुष के लिए हितकर अथवा सुखकर।

टिप्पणी—हित का प्रयोग सप्तमी तथा षष्ठी के साथ भी होता है।

६७[१]—**नम. स्वस्ति स्वाहा, स्वधा, अलम्** ( जोड, काफी ) और **वषट्** शब्दो के योग मे चतुर्थी होती है, जैसे, नमो **विश्वसृजे तुभ्यम्** ( रघु० १०।१६ )—विश्व के रचने वाले आप को नमस्कार है। **स्वस्ति भवते** (माल-विका०२)—आप का कल्याण हो। **अग्नये स्वाहा** (सि० कौ०)—अग्नि को यह बलि। इसी प्रकार **पितृभ्यःस्वधा, इन्द्राय वषट्, दैत्येभ्यो हरिरलम्** ( सि० कौ० )—हरि दैत्यो के जोड के हैं। **अलमेषा क्षुधितस्य** ( मे ) **तृप्त्यै** ( रघु० २। ३९ )—मुझ भूखे को सन्तुष्ट करने के लिए यह गाय पर्याप्त है।

( क ) अलम् ( पर्याप्त, करने के लिए समर्थ ) के अर्थवाचक 'प्रभु' और 'शक्त' शब्द तथा 'प्र' पूर्वक 'भू' धातु के योग मे चतुर्थी होती है, जैसे, **प्रभुर्मल्लो मल्लाय**, **शक्तो मल्लो मल्लाय**, **प्रभवति मल्लो मल्लाय** ( महाभाष्य )–पहलवान का जोड पहलवान होता है। **विधिरपि न येभ्यः प्रभवति** ( भर्तृ० नीति० ९४ )—जिनके ऊपर ब्रह्मा का भी जोर नहीं चलता।

( ख ) 'नमः' पूर्वक कृधातु के साथ साधारणतया द्वितीया आती है, परन्तु कभी कभी चतुर्थी भी, जैसे, **मुनित्रय नमस्कृत्य** ( सि० कौ० )—तीनो मुनियो को नमस्कार करके। परन्तु **नमस्कुर्मो नृसिंहाय** ( सि० कौ० )—हम लोग नृसिंह को नमस्कार करते हैं।

(ग) "प्रणाम करना"—इस अर्थ का बोध कराने वाली **प्रणिपत्**

---

१—नमः स्वस्ति स्वाहा स्वधाऽलंवषड् योगाच्च । २।३।१६।

और प्रणम् इत्यादि धातुओं के साथ द्वितीया अथवा चतुर्थी आती है; जैसे, **धातार प्रणिपत्य** (कुमार० २।३)—ब्रह्मा को प्रणाम कर। **तस्मै प्रणिपत्य नन्दी** ( कुमार३।६० )। **आर्य प्रणिपत्य** (मुद्रा० १)। **ता भक्ति-प्रवणेन चेतसा प्रणनाम** (काद०)। **ता कुलदेवताभ्य प्रणमय्य**(कुमार०-७। २७ )। **प्रणम्य त्रिलोचनाय** ( कादम्ब० ) ।

टिप्पणी—सस्कृत लेखक इन धातुओं से बने हुए सज्ञाशब्दो का भी प्रयोग समय समय पर चतुर्थी के साथ करते ह, जैसे, **मूर्ध्ना प्रणाम वृषभध्वजाय** ( कुमार० ३ । ६२ )। **अस्मै प्रणाममकरवम्** ( कादम्बरी )। **तस्मै दण्डप्रणाममकरवम्** ( दशकुमार०१।२ )

(घ) आशीर्वाद प्रकट करने तथा स्वागत करने मे **'स्वागतम्** **कुशलम्** आदि शब्दो के साथ चतुर्थी आती है जैसे, **देवदत्ताय कुशलम्'**

**कुशलम्', 'भद्रम्' 'सुखम'** इत्यादि शब्द षष्ठी के साथ भी आते हैं। दशम पाठ देखिए।

६८—'कहना'—इस अर्थ का बोध कराने वाली **कथ्, ख्या, शस्**, और **चक्** तथा **'नि'** पूर्वक **विद्** धातु का प्रेरणार्थक और इसी अर्थ का बोध कराने वाली अन्य धातुओं के योग मे वह व्यक्ति सम्प्रदान कहलाता है जिससे कुछ कहा जाता है, जैसे, **आर्ये कथयामि ते भूतार्थम्**(शकु १)—ऐ आर्य, मे तुमसे सत्य कहता हूँ। **स्वागत देव्यै** ( मालविका० १ )—रानी का स्वागत। **एहि इमा वनस्पतिसेवा काश्यपाय निवेदयाव** ( शकु० अक ४ पाँचवे श्लोक के बाद )—आओ, चलो वृक्षो की इस सेवा को हम लोग काश्यप को बतला दे। **यस्मै ब्रह्मपारायण जगौ** ( उत्तर०४ —जिससे उन्होने वेद गाया ( वेद का उद्घाटन किया )। **यस्मै बुनिर्ब्रह्म पर विवव्रे** महावीर०२)।

६९—भेजना'—इस अर्थ का बोध कराने वाली धातुओं के योग मे वह व्यक्ति सम्प्रदान होता है जिसे कोई वस्तु भेजी जाती है, पर जिस स्थान पर वह वस्तु भेजी जाती है वह कर्मसज्ञक होता है, जैसे **भोजेन**

**दूतो रघवे विसृष्ट** ( रघु० ५। ३६ )—रघु के पास भोजद्वारा एक दूत भेजा गया। **माधव पद्मावती प्रहिण्वता देवरातेन** ( मालती० १ )—पद्मावती के पास माधव को भेजने वाले देवरात द्वारा।

७०[1]—जब अनादर दिखाना होता है तो मन् (समझना दिवादि०) धातु का गौण कर्म, यदि वह प्राणी न हो, द्वितीया या चतुर्थी मे रक्खा जाता है जैसे, **न त्वा तृणाय तृण वा मन्ये** ( सि० कौ० )—मै तुम्हे तिनके के भी बराबर नही समझता।

जब निषेध या अनादर नही दिखाया जाता बल्कि केवल तुलना दिखाई जाती है, तब केवल द्वितीया आती है जैसे, **त्वा तृण मन्य** (महाभष्य)—मै तुझे तिनके के तुल्य समझता हूँ। परन्तु, **हरिमप्यमस्त तृणाय** (शिशु० १५। ६१ )।

७१[2]—जब गत्यर्थक धातुओं का कर्म मार्ग नही रहता और क्रिया के निष्पादन मे शरीर से व्यापार करना पडता है, तो उस कर्म मे द्वितीया या चतुर्थी होती है, जैसे, **ग्राम ग्रामाय वा गच्छति**। यहाँ पर 'ग्राम' मार्ग नही है, बल्कि स्थान है, और गाँव जाने मे हाथ, पैर, तथा शरीर के और अगो को हिलाना डुलाना पडता है अर्थात् शारीरिक व्यापार करना पडता है, अतएव 'ग्रामम्' 'गामाय' दोनो होता है।

परन्तु यदि गत्यर्थक धातु का कर्म "मार्ग" हो, तो कर्म मे केवल द्वितीया होगी, जैसे, **पन्थानं गच्छति**।

जहाँ शारीरिक व्यापार नही करना पडता वहाँ केवल द्वितीया होती है, जैसे, **मनसा हरिं भजति**। यहाँ हरि के पास जाने मे 'मन से' काम

---

१—मन्यकर्मण्यनादरे विभषाऽप्राणिषु। २। ३। १७।

२—गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि। २।३।१२। गत्यर्थक धातु उसे कहते है जिसका अर्थ हो 'जाना'—जैसे, गम्, चल्, इण्, या इत्यादि।

लेता है' न कि शरीर के अवयवो से, इसमें जाने वाले को हाथ, पैर अथवा शरीर का और कोई अग हिलाना डुलाना नही पड़ता। इसलिए "हरि" मे केवल द्वितीया हो सकती है, चतुर्थी कदापि नहीं। इसी प्रकार —

नरपतिहितकर्ता द्वेष्यता याति लोके।

तटानन मृत्सुरभि क्षितीश्वरो रहस्युपाघ्राय न तृप्तिमाययौ।

विद्या ददाति विनय, विनयाद् याति पात्रताम्।

अश्वत्थामा किं न यात स्मृति ते।

पश्चादुमाख्या सुमुखी जगाम।

टिप्पणी[1]— जिस पुरुष के विषय मे **कुशल**-विषयक अथवा सुख-सौभाग्यविषयक प्रश्न किए जाते हैं,वह राध् धातु(आराधना करना या खुश करना) तथा ईक्ष् धातु (कल्याण कामना करना) के योग मे चतुर्थी मे रक्खा जाता है, जैसे, कृष्णाय राध्यति ईक्षते वा गर्गः अर्थात् पृष्टो **गर्गः शुभाशुभ पर्यालोचयति**–पूछे जाने पर गर्ग जी श्रीकृष्ण के शुभाशुभ का विचार कर रहे हैं।

जिस[2] मूल्य या बँधी हुई मजदूरी पर कोई पुरुष नियुक्त किया जाता है वह मूल्य या मज़दूरी तृतीया अथवा चतुर्थी मे रक्खी जाती है, जैसे, **शतेन शताय वा परिक्रीतोऽयं दास**—यह नौकर सौ रुपए मे खरीद लिया गया है।

## अभ्यास

१—नैतन्न्याय्यम्। सर्वज्ञस्याप्येकाकिनो निर्णयाभ्युपगमो दोषाय। (मालविका)

---

१—राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्न। १।४।३९।

२—परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम्। १।४।४४।

२—चपलोयं बटुः कदाचिदस्मत्प्रार्थनामंतः पुरेभ्यः कथयेत् ।
[ शकु० २ ]

३—अहमपि वैतानिक शांत्युदकमस्यै गौतमीहस्ते विसर्जयिष्यामि। स्पृहयामि खलु दुर्ललितायास्मै । मृगतृष्णिकेव नाममात्रप्रस्तावो मे विषादाय कल्पते। [ शकु० ७]

४—मूर्ख, नैष तव दोषः । साधोःशिक्षा गुणाय सपद्यते नासाधोः ।
[ पचतत्र १।१८ ]

५—प्रसीद भगवति वसु धरे शरीरमसि ससारस्य । तत्किमसविदानेव जामात्रे कुप्यसि। [ उत्तर० ७ ]

६—मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भरा न प्रणमति देवताभ्यो, न मानयति मान्यानात्मप्रज्ञापरिभव इत्यसूयंति सचिवोपदेशाय, कुप्यति हितवादिने। [ काद० १०८ ]

७—प्रतिश्रुत तेन तस्मै स्वसुरवतिसु दर्या' प्रदानम्। [ दश कुमार ]

८—चद्रापाडः समुपसृत्य पूववदव ता महाश्वेताप्रणामपुरःसर दर्शितविनयः प्रणनाम। [ काद० २१९ ]

९—प्रणिपत्य सुरास्तस्मै शमयित्रे सुरद्विषाम्।
अथैन तुष्टुवुः स्तुत्यमवाङ्मनसगोचरम्॥ [रघु १०-११]

१०—रविमावसते सता क्रियावै सुधया तर्पयत सुरान् पितॄश्च ।
तमसा निशि मूर्च्छता निहत्रे हरचूडानिहितात्मने नमस्ते
[ विक्रमा० २ ]

११—उमा वधूर्भवान् दाता याचितार इमे वयम्।
वर शभुरल ह्येष त्वत्कुलोद्भूतये विधिः॥
[ कुमार सम्भव६।८२ ]

१२—चरतः किल दुश्चर तपस्तृणविदोः परिशकितः पुरा।
प्रजिघाय समाधिभेदिनी हरिरस्मै हरिणी सुरागनाम् [ रघु० ८। ७९ ]

१३—वाताय कपिला विद्युदातपायातिलोहिनी ।
पीता भवति सस्याय दुर्भिक्षाय सिता भवेत् ॥ [ महाभाष्य ]

१४—स्वस्त्यस्तु ते निर्गलिताम्बुगर्भम् ।
शरद्घनं नार्दति चातकोऽपि । [ रघु ५। ७७ ]

१५—ताभ्यां तथागतमुपेत्य तमेकपुत्र-
मज्ञानतः स्वचरितं नृपतिः शशंस । [ रघु० ९।७७ ]

१६—परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥ [ भगवद्गी० ४।८ ]

## अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—तदाकर्ण्य तामहं दण्डवत्प्रणम्य तस्यै मदुदन्तमखिलमाख्याय विस्मयविकसिताक्षं जनकमदर्शयम् । ( दशकुमार ) ।

२—सखि वासन्ति दुःखायेदानीं रामस्य दर्शनं सुहृदाम् । तत्कियच्चिरं त्वां रोदयिष्यामि । तदनुजानीहि मां गमनाय । ( उत्तर ३ ) ।

३—स्वयमेवोत्पद्यन्त एवंविधाः कुलपांशवो निःस्नेहाः पशवो येषां क्षुद्राणां प्रज्ञा पराभिसंधानाय न ज्ञानाय, पराक्रमः प्राणिनामुपघाताय, नोपकाराय, धनपरित्यागः कामाय, न धर्माय । किं बहुना सर्वमेव येषां दोषाय न गुणाय । ( काद० ) ।

४—श्रोत्रियायाभ्यागताय वत्सतरीं महोक्षं वा निर्वपन्ति गृहमेधिनः ( उत्तर ४ ) ।

५—दुदोह गां स यज्ञाय सस्याय मघवा दिवम् ।
सम्पद्विनिमयेनोभौ दधतुर्भुवनद्वयम् ॥ ( रघु० १ । २६ )

६—नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं प्राक्सृष्टेः केवलात्मने ।
गुणत्रयविभागाय पश्चाद्भेदमुपेयुषे ॥ ( कुमारसंभव २ । ४ )

७—स स्थाणुः स्थिरभक्तियोगसुलभो निःश्रेयसायास्तु वः । ( विक्रमो० १ )

८—सर्वः कल्ये वयसि यतते लब्धुमर्थान्कुटुम्बी
पश्चात्पुत्रैरपहृतभरः कल्पते विश्रमाय । ( विक्रमो० २ ) ।

९—यदेवोपनतं दुःखात्सुखं तद्रसवत्तरम् ।
निर्वाणाय तरुच्छाया तप्तस्य हि विशेषतः ( विक्रमो० ३ ) ।

१०—शुद्धान्तसंभोगनितान्ततुष्टे न नैषधे कार्यमिदं निगाद्यम् ।
अपां हि तृप्ताय न वारिधारा स्वादुः सुगन्धिः स्वदते तुषारा ॥ ( नैषधीय ३ । ९५ )

११—किमित्यपास्याभरणानि यौवने धृत त्वया वार्द्धकशोभि वल्कलम् ।
वद प्रदोषे स्फुट चन्द्रतारका विभावरीयद्यरुणाय कल्पते (कुमार सम्भव ५ । ४४)

१२—पुसामसमर्थानामुपद्रवायात्मनो भवेत्कोप ।
पिठरं क्वथदतिमात्र, निजपार्श्वानेव दहतितराम् ।। ( पचतन्त्र १ । १४ ) ।

१३—पयःपान भुजगाना केवल विषवर्द्धनम् ।।
उपदेशो हि मूर्खाणा प्रकोपाय न शान्तये ।। ( हितोप ३ ) ।

१४—प्रतिवाचमदत्त केशवः शपमानाय न चेदिभूभुजे ।
अनुहुंकुरुते घनध्वनिं न हि गोमायुरुतानि केसरी ।। ( शिशुपाल १६।२५ )।

१५—सतानकामाय तथेति काम राज्ञे प्रतिश्रुत्य पयस्विनी सा ।
दुग्ध्वा पय पत्रपुटे मदीय पुत्रोपभुङ्क्ष्वेति तमादिदेश ।। ( रघु० २ । ६५ ) ।

१६—तस्या प्रसन्नेन्दुमुख प्रसाद गुरुर्नृपाणा गुरवे निवेद्य ।
प्रहर्षचिह्नानुमित प्रियायै शशस वाचा पुनरुक्तयेव ।। ( रघु० २।६८ )

१७—ततो यथावद्विहिताध्वराय तस्मै स्मयावेशविवर्जिताय ।
वर्णाश्रमाणा गुरवे स वर्णी विचक्षण प्रस्तुतमाचचक्षे ।। ( रघु०५।१९ )

१८—वसन् स तस्या वसतौ रघूणा पुराणशोभामधिरोपितायाम् ।
न मैथिलेय स्पृहयाबभूव भर्त्रे दिवो नाप्यलकेश्वराय ।। ( रघु० १६ ४२ )

१९—तस्यै स्पृहयमाणोसौ बहुप्रियमभाषत ।
सानुनीतिश्च सीतायै नाक्रुध्यन्नाप्यसूयत ।।
सक्रुध्यसि मृषा किं त्व दिदृक्षु मा मृगेक्षणे ।
ईक्षितव्य परस्त्रीभ्य स्वधर्मो रक्षसामयम् ।।
रावणाय नमस्कुर्या स्यात् सीते स्वस्ति ते ध्रुवम् ।
अन्यथा प्रातराशाय कुर्याम त्वामल वयम् ।।( भट्टि० ८ । ७५।७६ । ९८ )

---

## संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—ऐ अभागे, क्या तुझे चाण्डाल के घर मे नौकरी पसन्द है।

२—ऐ आर्ये, मेरे विषय मे गलत भावना न लाइये, और व्यर्थ ही मुझ पर क्रोध न कीजिए।

३—मैं धन नही चाहता ( स्पृह् ), बल्कि अमर यश ।

४—"मैं तुम्हारे साथ चलूँगा"—ऐसी प्रतिज्ञा लक्ष्मण से करके अब

तुम उनसे यह क्यों कहते हो कि तुम ऐसा करने मे असमर्थ हो ?

५—वृत्तान्त सुनने पर अत्यन्न प्रसन्न होकर उन लोगो ने अपने रहस्य भी उससे बता दिए ( नि + विद् ) ।

६—इन पवित्र पुरुषों का दर्शनमात्र मेरी शुद्धि के लिए पर्याप्त होगा ( क्लृप् ), अत अपने अभीष्ट मनोरथ की सिद्धि के लिए मै उनकी सेवा करूँगा ।

७—मैने अपने भाई द्वारा उनसे कहला दिया ( आ + ख्या ) कि आपके दर्शन से मुझे कोई प्रयोजन नही ।

८—ऐ वृद्धे, ऐसे शोकप्रद विचारो से और भी अधिक दु.ख पैदा होगे. अतः, थोड़ी देर तक ढाढस रक्खो ।

९—इस ससार मे विषयो का उपभोग केवल खेद पैदा करता है ।

१०—मेरी प्रजा मुझसे घृणा करती है ( असूय् ) और मेरे प्राण लेने के लिए षड्यन्त्र रचती है ( द्रुह् ) ।

११—पहिले अपने गुरु को प्रणाम करो ( प्रणम् ), तब अपना पाठ आरम्भ करो ।

१२—अपने तीसरे नेत्र की आग से कामदेव को भस्मसात् कर देने वाले त्रिनेत्र भगवान् को नमस्कार है ।

१३—जब मनुष्य के पुत्र उत्पन्न होता है, तब वह अपने पूर्वजों (पितरो) के ऋण से उऋण ( अनृणा ) हो जाता है ।

१४—शत्रु की सम्पूर्ण सेना को हराने के लिए तुम अकेले ही समथ हो ( अलम् ) ।

१५—छोटा सा भी कारण दुर्भाग्यग्रस्त मनुष्य के नाश के लिए प्रर्याप्त हाता है ।

१६—विदेहराज के पास दूत भेजकर यह शुभ समाचार उनको बताऊँगा ।

# अष्टम पाठ

## पचमी

७२–पचमी विभक्ति का मुख्य अर्थ होता है 'अपादान'। जिस पुरुष, स्थान या वस्तु से मन कल्पित अथवा प्रत्यक्ष वियोग ( पृथक्त्व ) होता है, वह 'अपादान' होता है और पचमी मे रक्खा जाता है, जैसे, **ग्रामादायाति** वह गॉव से आता है। यहॉ पर "ग्राम" से वियोग या पृथक्त्व पाया जा रहा है क्योकि आने वाला पुरुष 'ग्राम' मे अलग हो रहा है।

७३–पचम्यन्त सज्ञा प्रायः किसी कार्य का कारण बताती है और "कारण से" इस अर्थ का बोध कराती है, जैसे—

**सौहृदादपृथगाश्रयाम्** (उत्तर० १)—स्नेह के कारण अलग न रहने वाली को।

जो सज्ञा स्त्रीलिग की न हो और किसी कार्य-का कारण बताती हो वह तृतीया या पचमी मे रक्खी जाती है, जैसे—**जाड्येन जाड्यात् वा बद्धः** ( सि० कौ०)—वह अपनी जड़ता ( मूर्खता ) के कारण बॉधा गया।

**बुद्ध्या मुक्तः** (सि० कौ०)—वह अपनी बुद्धि ( चतुरता ) के कारण छूट गया।

**भक्त्या गुरौ मय्यनुकम्पया च** ( रघु० २।६३ )—मेरे ऊपर तूने

---

१—विभाषा गुणेऽस्त्रियाम्। २। ३। २५।

जो कृपा तथा गुरु के प्रति जो श्रद्धा दिखाई उसके कारण मैं तुझ से प्रसन्न हूँ।

टिप्पणी—कभी कभी स्त्रीलिंग की सज्ञा भी इसी अर्थ मे पचमी मे प्रयुक्त होती है, जैसे, **नास्ति घटोऽनुपलब्धे** ( सि०कौ० )।

(क) वाद विवाद मे, युक्ति उपस्थापित करने अथवा उत्तर देने के लिए, पचमी विभक्ति प्राय सम्पूर्ण कार्य-कारण-सम्बन्ध के अर्थ का बोध कराती है, जैसे, **पर्वतो वह्निमान् धूमात्** (तर्क सग्रह)—पहाड में आग है, क्योकि उसमे धुआँ है।

**नेश्वरो जगतः कारणमुपपद्यते। कुत वैषम्यनैर्घृण्यप्रसंगात्** ( शाकर भाष्य )—कोई वादी कहता है, ईश्वर ससार का कारण नही हो सकता। क्यो ? क्योकि वह पक्षपात करने वाला तथा निर्दय है।

७४—तरप् और ईयसुन् प्रत्ययान्त शब्दो तथा तुलनार्थक शब्दों के योग मे, वह शब्द पचमी मे रक्खा जाता है जिससे तुलना की जाती है, जैसे **सत्यादप्यनृतं श्रेय** (वेणी०३)—असत्य सत्य से भी बढकर है।

**मोहादभूत्कष्टतरः प्रबोध** ( रघु०१४।५६ )—चेतनावस्था मूर्च्छा से भी अधिक कष्टदायक हुई।

**चैत्ररथादनूने वृन्दावने** ( रघु० ६। ५० )—जो वृन्दावन चैत्ररथ से किसी प्रकार भी घट कर नही है उस मे।

**अश्वमेधसहस्रेभ्य. सत्यमेवातिरिच्यते** (हितो०)—सत्य सहस्रों अश्वमेधयज्ञों से कही बढकर है।

**श्राद्धस्य पूर्वाह्णादपराह्णो विशिष्यते** ( मनुस्मृति ३। २७८ )—श्राद्ध के लिए पूर्व पहर की अपेक्षा दोपहर अधिक अच्छा है।

७५[1]—जब ल्यप् अथवा क्त्वाप्रत्ययान्त क्रिया वाक्य में प्रकट नहीं

१—ल्यब्लोपे कर्मण्युपसंख्यानम्। अधिकरणे च। प्रश्नाख्यानयोश्च ( वार्तिक )

की जाती, किन्तु छिपी रहती है, तो उस क्रिया के कर्म और आधार पञ्चमी में रक्खे जाते है, जैसे,

**प्रासादात् प्रेक्षते** ( सि० कौ० )—**प्रासादमारुह्य प्रेक्षते**—महल से देखती है अर्थात् महल पर चढकर देखती है।

**श्वशुराज्जिह्रेति** ( सि० कौ० )—श्वशुर वीक्ष्य जिह्रेति—ससुर से लजाती है। अर्थात् ससुर को देखकर लजाती है।

**आसनात् प्रेक्षते—आसने उपविश्य स्थित्वा वा प्रेक्षते**—आसन से देखता है अर्थात् आसन पर बैठकर देखता है।

प्रश्न और उत्तर मे भी पञ्चमी आती है, जैसे, **कुतो भवान्—पाटलिपुत्रात्** ( महाभाष्य )—आप कहाँ से आ रहे है—पाटलिपुत्र से ( आ रहा हूँ )।

७६[1]—जुगुप्सा ( घृणा ), विराम ( बन्द हो जाना, अलग हो जाना, छोड देना, हटना ), प्रमाद ( भूल )—इनका बोध कराने वाले तथा इनके समान अर्थ रखने वाले शब्दो के साथ पञ्चमी आती है। ( जिस से घृणा करे, जिससे हटे अर्थात् जिसे दूर कर दे, जिस काम मे भूल करे, उन सब मे पञ्चमी होती है )। जैसे,

**पापात् जुगुप्सते** ( **महाभाष्य** )—पाप से घृणा करता है।

**वत्सैतस्माद् विरम** ( **उत्तर०१** )—बेटा, इस से दूर हटो।

**स्वाधिकारात् प्रमत्तः** ( **मघ०१** )—अपने कर्तव्य मे भूल कर के। **प्राणाघातात् निवृत्तिः** ( **भर्तृहरि० नीति० २६** )—जीवहिंसा से अलग हटे रहना।

**धर्मात् मुह्यति ( महाभाष्य )**

**टिप्पणी**—"किसी के विषय मे असावधान रहना"—इस अर्थ मे

---

१—जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम् ( वार्तिक )

'प्रमद्' धातु सप्तमी के साथ आती है, जैसे, न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चित.( मनु० २ । २१३ )—बुद्धिमान् लोग अपनी स्त्रियो के विषय मे असावधानी नही करते ।

७७[१]— जिस गुरु या अध्यापक या मनुष्य से कोई चीज नियमपूर्वक पढी जाती है, अथवा मालूम की जाती है, वह गुरु या अध्यापक या अन्य मनुष्य अपादान होता है जैसे, **उपाध्यायादधीते** ( सि० कौ० )—गुरु से पढता है ।

**मया तीर्थादभिनयविद्या शिक्षिता** (मालविका०१)—मैने अभिनय करने की विद्या अध्यापक से सीखी ।

[२]जन् धातु के कर्ता का मूलकारण अपादान होता है, जैसे, **गोमयाद् वृश्चिको जायते** ( महाभाष्य )—गोबर से बिच्छू पैदा होता है ।

**कामात् क्रोधोऽभिजायते**—काम से क्रोध पैदा होता है ।

**प्राणाद् वायुरजायत** ( ऋग्वेद १०।९० )—श्वास से हवा पैदा हुई ।

भू धातु के कर्ता का **उद्गमस्थान** अथवा **प्रादुर्भावस्थान** अपादान होता है, जैसे,

**हिमवतो गगा प्रभवति** (महाभाष्य)—गगा हिमालय से निकलती है।
**लोभात् क्रोधः प्रभवति** (हितो०१)—लालच से क्रोध पैदा होता है ।

**टिप्पणी**—"पैदा होना" अर्थ का बोध कराने वाली धातुओ के "उद्भव, स्थान" मे सप्तमी होती है, जैसे,

**परदारेषु जायेते द्वौ सुतौ कुण्डगोलकौ** ( मनु० ३ । १७४ ) । **जातोऽपि दास्यां शूद्रेण** ( याज्ञवल्क्य-व्यवहाराध्याय श्लोक

१—आख्यातोपयोगे । १।४।२९ ।
२—जनिकर्तुः प्रकृतिः १।४।३० ।
३—भुवः प्रभवः । १।४।३१ ।

१३३ )। **शुकनासस्यापि मनोरमायां तनयो** जातः ( कादम्बरी )। सा **तस्यामुदपादि** ( कुमार० १। २२ )।

७८[१]—'भय'' और 'भय से रक्षा करना''अर्थों का बोध कराने वाली धातुओं के योग मे, भय का उद्भवस्थान तथा जिससे रक्षा करनी या करानी अभीष्ट हो, वह अपदान होता है जैसे—**न भीतो मरणादस्मि** ( मृच्छकटिकम् १० )—मै मृत्यु से भयभीत नही होता। **कपेरत्रासि** षुर्नादात् ( भट्टि० ६। ११)—बन्दर के नाद से ( वे लोग ) डर गए। तीक्ष्णादुद्विजते ( मुद्रा० ३ )—उग्रप्रकृतिपुरुष से डरता है। **भीमाद् दु शासन त्रातुम् ( वेणी०** ३ )—भीम से दु शासन को बचाने के लिए।

यहाँ 'मरण'', ''नाद'' तथा ''तीक्ष्ण'' भय के उद्भवस्थान हैं, अतः ये अपादान हैं। इसी प्रकार **लोकापवादाद् भयम्** ( भर्तृहरि नीति शतक, ६२ श्लोक )। **तृणबिन्दोः परिशंकितः** ( रघु० ८। ७६ )।

( क )[२]जिससे कोई पुरुष दूर किया जाता हैं अथवा मना किया जाता है वह अपादान होता है, जैसे, **पापान्निवारयति** ( भर्तृहरि, नीति शतक, ७२ श्लोक )।

७६—[३]''परा''पूर्वक ''जि' धातु के योग में जो वस्तु या मनुष्य असहनीय होता है, वह अपादान होता है, जैसे, **अध्ययनात् पराजयते** ( महाभाष्य )—अध्ययन से हार रहा है अर्थात् अध्ययन असहनीय हो रहा है।

८०[४]—जिस स्थान से या जिस समय से किसी दूसरे स्थान या समय

---

१—भीत्रार्थाना भयेहतु १। ४। २५।

२—वारणार्थानामीप्सित १। ४। ४७।

३—पराजेरसोढः १। ४। २६।

४—यतश्चाध्वकालनिर्माण तत्र पचमी। तद्युक्तादध्वनः प्रथमासप्तम्यौ। कालात् सप्तमी च वक्तव्या ( वार्तिक )

की दूरी दिखाई जाती है तो जिससे दूरी दिखाई जाती है वह स्थान या समय पञ्चमी मे रक्खा जाता है।

जितनी 'स्थानवाचक दूरी' दिखाई जाती है वह **प्रथमा विभक्ति या सप्तमी विभक्ति** मे रक्खी जाती है।

जितनी 'कालवाचक दूरी" दिखाई जाती है वह केवल सप्तमी मे रक्खी जाती है।

**प्रयागात् प्रतिष्ठानपुरं क्रोशोऽस्ति अथवा प्रयागात् प्रतिष्ठानपुरं क्रोशेऽस्ति**—प्रयाग से प्रतिष्ठानपुर ( भूसी ) एक कोस है।

यहाँ जिस स्थान से दूरी दिखाई गई है वह "प्रयाग" है, इसलिए 'प्रयाग' पञ्चमी विभक्ति मे रक्खा गया है, और जितनी दूरी दिखाई गई है वह "कोस" है, इसलिए 'कोस" प्रथमा मे अथवा सप्तमी मे रक्खा गया है। कोस स्थानवाचक दूरी दिखलाता है, इसलिए इसमे प्रथमा या सप्तमी दोनो हो सकते हैं। इसी प्रकार और भी उदाहरण हो सकते हैं।

**प्रतिष्ठानपुरात् काशी विंशतिक्रोशा विंशतिक्रोशेषु वा। गवीधुमतः सांकाश्यं चत्वारि योजनानि चतुर्षु योजनेषु वा** ( महाभाष्य )। **समुद्रात् पुरी क्रोशौ अथवा क्रोशयोः। कार्तिक्या आग्रहायणी मासे** (महाभाष्य)—कार्तिकी पूर्णिमा से आगहन की पूर्णिमा एक महीने पर होती है।

यहाँ "कार्तिकी पूर्णिमा" से दूरी दिखाई गई है, इसलिए उसमे पञ्चमी हुई और "एक महीने" की दूरी दिखाई गई, इसलिए "महीने" में सप्तमी हुई। "एक महीना" कालवाचक दूरी दिखलाता है, इसलिए इसमे केवल सप्तमी हो सकती है, प्रथमा नही हो सकती।

**८१**–[१]"**भिन्न**" अथवा "**अतिरिक्त**" अर्थ बोध कराने वाले '**अन्य**' '**पर**' '**इतर**' शब्द, '**समीप**' या '**दूर**' वाचक '**आरात्**' शब्द, '**बिना**'

---

१—अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते। २।३।२९

या 'छोड़कर' का अर्थ देने वाला 'ऋते' शब्द, कालवाचक तथा दिशा-वाचक शब्द, 'अच्' धातु से निष्पन्न 'प्रत्यक्' और 'प्राक्' जैसे दिशा-वाची शब्द, और 'आ' अथवा 'आहि' मे अन्त होने वाले शब्द—इन सबो के योग मे **पचमी विभक्ति** आती है, जैसे,

**कृष्णादन्यो भिन्न इतरो वा** ( सि० कौ०)—कृष्ण से भिन्न।

**आरात् वनात्** ( सि० कौ० )—वन के समीप अथवा वन से दूर।

**विविक्ताद् ऋतेऽन्यच्छरण नास्ति** ( विक्रमो० २ )—एकान्त स्थान को छोड कर दूसरा कोई आश्रय नही।

**ग्रामात् पूवम् उत्तरो वा**—गॉव के उत्तर अथवा पूर्व।

**चैत्रात् पूव फाल्गुन** ( सि० कौ० )—फागुन का महीना चैत से पहिले होता है।

**प्राक् प्रत्यक् वा ग्रामात्** (सि० कौ०)—गॉव के पूर्व अथवा पश्चिम।

**दक्षिणा दक्षिणाहि वा ग्रामात्** ( सि० कौ० )—गॉव के दक्खिन अथवा गॉव से दक्खिन दिशा मे।

**प्राङ् नाभिवधनात** ( मनु० २। २६ )—नाभि काटने के पहिले।

८२—'**प्रभृति**,' '**आरभ्य**,' '**बहि**', '**अनन्तरम्**', **परम्**', '**ऊर्ध्वम्**' के साथ पचमी आता है, जैसे—**शैशवात् प्रभृति पोषिताम्** (उत्तर० १)—बचपन से ही पाली पोसी हुई। **मालत्या प्रथमावलोकदिवसादारभ्य** ( मालती० ६ )—मालती के प्रथम दर्शन के दिन से ही।

**निवसन्नावसथे पुराद्बहिः**(रघु०८।१४ )—नगर के बाहर किसी निवास-स्थान मे रहते हुए।

**पाणिपीडनविधेरनन्तरम्** ( कुमार० ८।१ )—उसके पाणिग्रहण के बाद।

**अस्मात्परम्** ( शकु० ६ )—इस पुरुष के बाद।

**ऊर्ध्व म्रियं मुहूर्ताद्धि** ( भट्टि० १८।३६ )—एक क्षण भर के बाद मर जाऊँगा।

टिप्पणी—(क) 'प्रभृति' और 'आरभ्य' शब्द प्रायः इसी अर्थ में कालवाचक क्रियाविशेषण अव्ययों के साथ आते हैं, जैसे, यत प्रभृति—ततः प्रभृति (शकु०३)। अद्यप्रभृति तवास्मि दासः (कुमार० ५।८६)।

(ख) कभी कभी 'अनन्तरम्' और 'परम्' का अर्थ परोक्ष रहता है, जैसे, बहोर्दृष्ट कालात् (उत्तर० २)—बहुत समय के बाद देखा हुआ।

८३—[1]पृथक् (अलग, भिन्न), विना और नाना शब्दों के साथ द्वितीया, तृतीया तथा पञ्चमी विभक्तियों में से कोई एक आ सकती है, जैसे—

रामात्, रामेण, रामं वा विना जीवितुं नोत्सहे—राम के विना मैं नहीं जी सकता।

लक्ष्मण चतुर्दशवर्षाणि भार्यां, भार्यया, भार्यायाः वा पृथगुवास—लक्ष्मण जी चौदह वर्ष तक अपनी स्त्री से अलग रहे।

विभीषणो रावणं, रावणेन, रावणात् वा पृथगभवत्—विभीषण रावण से अलग हो गया।

कौमुदी चन्द्रं, चन्द्रेण, चन्द्रात् वा विना स्थातुं न शक्नोति—चन्द्रमा के विना चाँदनी नही ठहर सकती।

नाना नारीं निष्फला लोकयात्रा (वोपदेव)—स्त्री के बिना जीवन व्यर्थ है।

८४—तक' 'जहाँ तक' 'से' का अर्थ बताने वाला 'आ' पञ्चमी के साथ प्रयुक्त होता है, जैसे—

आपरितोषात् विदुषाम् (शकु० १)—विद्वानों का सन्तोष हो जाने तक।

आमूलाच्छ्रोतुमिच्छामि (शकु०१)—प्रारम्भ से सुनना चाहता हूँ। आकैलासात् (मेघदूत ११)—कैलास तक।

---

१—पृथग्विनानानाभिस्तृतीयान्यतरस्याम् २। ३। ३२.

अव्ययीभाव समास बनाने के लिये भी 'आ' संज्ञाओं के साथ जोड़ा जाता है, जैसे, आमेखलं सचरता घनानाम् (कुमार १।५)—मेखला (करधनी या मध्यभाग) तक घूमते फिरते हुए बादलों के।

८५[1]—जब 'छिपना' या 'छिपाना' अभीष्ट होता है, और कोई अपने को किसी से छिपाना चाहता है तो जिससे छिपाता या छिपता है वह अपादान होता है, जैसे, मातुर्निलीयते कृष्ण. (सि० कौ०)—कृष्ण माता से छिपता है।

८६[2]—"किसी के बदले मे" या 'प्रतिनिधि' का अर्थ बताने वाले 'प्रति' उपसर्ग के साथ जिसके बदले मे कोई चीज दी जाती है या जिसका प्रतिनिधित्व दिखाया जाता है, वह पंचमी मे रक्खा जाता है, जैसे, प्रद्युम्न कृष्णात् प्रति (सि० कौ०)—प्रद्युम्न कृष्ण के प्रतिनिधि हैं। तिलेभ्य प्रतियच्छति माषान् (सि० कौ०)—तिलो के बदले मे उर्द देता है।

## अभ्यास

१—अनुष्ठितनिदेशोऽपि सत्क्रियाविशेषादनुपयुक्तमिवात्मान समर्थये (शाकु ७)

२—अलमलमाक्रन्दितेन। सूर्योपस्थानात् प्रति निवृत्त पुरूरवस मामुपेत्य कथ्यतां कुतो भवत्यः परित्रातव्या इति (विक्रमो. १)

३—राम —एवमेतत्। एते हि हृदयमर्मभिदः ससारभावा येभ्यो बीभत्समाना सत्यज्य सर्वान् कामान् मनीषिणोऽरण्ये विश्राम्यति (उत्तर० १)

४—नास्ति जीवितादन्यदभिमततरमिह जगति सर्वजन्तूनाम् (काद०)

---

१—अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति। १। ४। २८।

२—प्रतिनिधि प्रतिदाने च यस्मात्। २। ३। ११।

५—नैव जानासि तं देवमैक्ष्वाकं यदेवं वदसि। तद् विरम्यतामति-प्रसङ्गात् ( उत्तर० ५ )।

६—कृतातिथ्यया महाश्वेतया परिपृष्टो दिग्विजयादारभ्य किन्नरमि-थुनानुसरणप्रसंगेनागमनमात्मन सर्वमाचचक्षे ( काद० )।

७—वत्से मालति, जन्मनः प्रभृति वल्लभा ते लवङ्गिका। तत् किमु-ज्जिहानजीवितां वराकीं नानुकम्पसे ( मालती० १० )।

८—चाणक्यः—वृषल वृषल अत्रमुत्तरोत्तरेण। यद्यस्मत्तो वरीयान् राक्षसोऽवगम्यते तदिद शस्त्र तस्मै दीयताम् (मुद्रा० ३)।

९—तासां चतुर्दश कुलानि। एकं भगवतः कमलयोनेर्मनस समुत्पन्नम्, अन्यद्वेदेभ्य सम्भूतम्। अन्यदग्नेरुद्भूतम्। अन्यत् पवनात्प्र-सूतम्। अन्यदमृतादुन्मथ्यमानादुत्थितम्। अन्यज्जलाज्जातम्। अन्यदर्ककिरणेभ्यो निर्गतम्। अन्यत्सौदामिनीतः प्रवृत्तम्।
(कादम्बरी)।

१०—मां तावदुद्धर शुचो दयिताप्रवृत्त्या
स्वार्थात्सता गुरुतरा प्रणयिक्रियैव। ( विक्रमो० ४ )।

११—निशम्य चैना तपसे कृतोद्यमा सुता गिरीशप्रतिसक्तमानसाम्।
उवाच मेना परिरभ्य वक्षसा निवारयंती महतो मुनिव्रतात्।
( कुमार० ५।३ )।

१२—प्रजा सरक्षति नृपः सा वर्द्धयति पार्थिवम्।
वर्द्धनाद्रक्षण श्रेयस्तदभावे सदप्यसत् ( हितोप० ३ )।

१३—त्वच स मेध्यां परिधाय रौरवी-
मशिक्षतास्त्रं पितुरेव मंत्रवत्।( रघुवश ३।३१ )।

१४—अनम्राणा समुद्धर्तुस्तस्मात्सिधुरयादिव।
आत्मा संरक्षितः सुह्मैर्वृत्तिमाश्रित्य वैतसीम्
॥ ( रघुवंश ४।३५

१५—ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते ।
संगात्संजायते काम. कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥
क्रोधाद्भवति समोहः समोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ (भगवद गीता २। ६३

१६—हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्य यत्प्राग्विनशनादपि ।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तित ॥ ( मनु० २।१२ )

## अभ्यासार्थं अतिरिक्त वाक्य

१—जन्मकर्मतो मलिनतरजन जनतो निस्त्रिशतरलोकहृदय लोकहृदयेभ्यो निघृण तरसवस व्यवहारमपुण्यकर्मैकापण पकणमपश्यम् । ( कादम्बरी ) ।

२—सा कुसुमघटितशिलीमुखमनोहरा मदनचापादिव प्रमदवनात्त्रस्यति जानकीव पीतरक्तेभ्यो रजनिचरेभ्य इव चपकाशोकेभ्यो बिभेति ( कादम्बरी ) ।

३—त नृप वसुरक्षितो नाम मन्त्रिवृद्धएकदाऽभाषत । तात अत्रभवति सर्वैवात्मसपदभिजनात्प्रभृत्यन्यूनैव लक्ष्यते । बुद्धिश्च निसर्गपट्वी तवेतरेभ्य. प्रतिविशिष्यते ।
( दशकुमार० २.८ ) ।

४—अहो दुराराध्या राजलक्ष्मीरात्मविद्भिरपि राजभिः—
तीक्ष्णादुद्विजते मृदौ परिभवत्रासान्न सतिष्ठते
मूर्खान्द्वेष्टि न गच्छति प्रणयितामत्यतविद्वत्स्वपि ।
शूरेभ्योऽप्यधिक बिभेत्युपहसत्येकातभीरूनहो
श्रीर्लब्धप्रसरेव वेशवनिता दु.खोपचर्या भृशम् । ( मुद्रा०३ ) ।

५—सर्वद्रव्येषु विद्यैव द्रव्यमाहुरनुत्तमम् ।
अहार्यत्वादनर्घ्यत्वादक्षयत्वाच्च सर्वदा ॥ ( हितो० ) ।

६—प्रजाना विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि ।
स पिता पितरस्तासा केवल जन्महेतव. ॥ ( रघु० १।२४)

७. न नवः प्रभुराफलोदयात्स्थिरकर्मा विरराम कर्मणः।
न च योगविधेर्नवेतरः स्थिरधीराषरमात्मदर्शनात् ॥ ( रघु० ८ । २२ )

८. रत्नैर्महार्हैस्तुतुषुर्न देवा न भेजिरे भीमविषेण भीतिम्।
सुधा विना न प्रययुर्विराम न निश्चितार्थाद्विरमति धीरा . ॥ (भर्तृहरि २। ८०)

९. श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधन श्रेयः परधर्मो भयावहः ( गीता ३। ३५ )

१०. लोभान्मोहाद्भयान्मैत्र्या त् कामात्क्रोधात्तथैव च।
अज्ञानाद्बालभावाच्च साक्ष्य वितथमुच्यते ।। ( मनु०८। ११८ )।

११. पूर्वस्मादन्यवद्भाति भावाद्दाशरथिं स्तुवन्।
ऋते क्रौर्यात्समायातो मा विश्वासयितु नु किम् ॥
इतरो रावणादेष राघवानुचरो यदि ।
सफलानि निमित्तानि प्राक् प्रभातात्ततो मम ॥ ( भट्टि ८ । १०५, १०६ )।

१२ वृक्षाद्वृक्ष परिक्रामन्रावणाद्बिभ्यतीं भृशम्।
शत्रोस्त्राणमपश्यन्तीमदृश्यो जनकात्मजाम् ॥
ता पराजयमाना स प्रीते रक्ष्या दशाननात्।
अन्तर्दधाना रक्षोभ्यो मलिना म्यामभूर्धजाम् ( अपश्यत्) (भट्टि०८। ७०–७१)।

१३. एतद्वोय भृगुः शास्त्र श्रावयिष्यत्यशेषत॰।
एतद्धि मत्तोधिजगे सर्वमेषोखिल मुनि ॥( मनु०१। ५९ )

१४. एकाक्षरं पर ब्रह्म प्राणायामा पर तपः ।
सावित्र्यास्तु पर नास्ति मौनात् सत्यं विशिष्यते॥ ( मनु० २। ८३ )

---

## ंस्कृत में अनुवाद कीजिए

१—गृहिणी के बिना गृह सूनसान मे जगल को मात कर देता है।
२—इस वृक्ष की उत्तर दिशा में जाओ, और मै अभी तुम्हारा अनुसरण करूँगा

३—जिस कार्य को करने की एक बार प्रतिज्ञा कर चुके हो, उसको बन्द न करो।

४—इन ऋषियों से वेद पढने के लिए मै वाल्मीकि के आश्रम से इस स्थान पर आया हूँ।

५—उस लडकी को सकट से बचाने के लिए उसने बहुत बडे क्लेश सहे।

६—जो अपने मित्र के मन को पाप से हटाकर, सत्कर्म मे प्रवृत्त करता है, वह सच्चा मित्र है।

७—क्या तुम नहीं जानते कि दुष्टो के पदचिह्नों पर चलने से नाना प्रकार के दु ख पैदा होते हैं।

८—तुम्हारी यह बीमारी तुम्हारे कल के कड़े परिश्रम के कारण पैदा हुई है। क्या इस समय तुम्हारी दशा में कुछ उत्तम परिवर्तन हुआ है।

९—हिमालय प्रदेश तक फैले हुए अपने राज्य को इस पराक्रमी राजा के अतिरिक्त और कौन बचा सकता है।

१०—अध्ययन प्रारम्भ करने के पहले वह व्याकरण और शब्दकोश अपने पास रख लेता है।

११—पाँच वर्ष हुए मैंने इसी रमणीय वन को देखा था, परन्तु इस समय इसमे बड़ा परिवर्तन हो गया है।

१२—जिस दिन मैंने उस स्त्री को देखा था, उसी दिन से मेरा मन उद्विग्न हो गया है, और उसके विषय में निरन्तर चिन्तन करते रहने के कारण मैं भोजन तक करने की नहीं सोचता।

१३—कल सभापति के उत्कृष्ट भाषण के अनन्तर ( ऊर्ध्वम्, अनन्तरम् वा ) तुमने जो व्याख्यान दिया उसे मै अनुमोदित नहीं करता।

१४—सीता जी राम को ( षष्ठी का प्रयोग कीजिए ) प्राणों से भी प्यारी थीं।

१५—ईमानदारी अन्य सभी गुणों से बढकर है। ईमानदारी के बिना मनुष्य किसी के भी हृदय में विश्वास नही पैदा कर सकता।

२६—भय के मारे अगों के सिकुड जाने के कारण छोटे सुग्गे को दुष्ट बहेलिए ने नही देख पाया।

१७—भगवन्, हम लोग आप से इस सुग्गे का बृत्तान्त आदि से सुनना चाहते थे।

१८—मुम्बयी पूना से १२० मील दूर है।

# नवम पाठ

## सप्तमी

८७—जिस स्थान पर कोई कार्य होता है उसे अधिकरण कहते हैं और वह सप्तमी में रक्खा जाता है, जैसे,

स्थाल्यामोदनं पचति—बटुली में भात पकाता है।

आसने उपविशति—आसन पर बैठता है।

(क) जिस समय कोई कार्य होता है वह सप्तमी में रक्खा जाता है; जैसे,

आषाढस्य प्रथमदिवसे (मेघ० २)—आषाढ महीने की परिवा को।

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम् (रघु० १।८)।

८८—'पर', 'प्रति' और 'विषय में' का अर्थ बोध कराने के लिए प्रायः सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है, जैसे,

मयि मा भूः अकरुणा (मालती० ६)—मुझ पर निर्दय न हो।

विषयेषु विनाशधर्मसु निःस्पृहोऽभवत् (रघु० ८।१०)—नश्वर पदार्थों के प्रति अनिच्छुक हो गया।

८९[१]—यदि किसी वस्तुविशेष या व्यक्ति-विशेष की, अपने समुदाय

---

१—यतश्च निर्धारणम् २। ३। ४१।

के अन्य अवयवों से, किसी विशेषण द्वारा, कोई विशिष्टता दिखाई जाती है तो समुदायवाचक शब्द सप्तमी अथवा षष्ठी में रक्खा जाता है, जैसे,

गवां कृष्णा बहुक्षीरा
या
गोषु कृष्णा बहुक्षीरा
(सि० कौ०)–गायों में काली गाय बहुत दूध देने वाली होती है

नृणां द्विजः श्रेष्ठः
या
नृषु द्विजः श्रेष्ठः
(सि० कौ०)–मनुष्यों मे ब्राह्मण श्रेष्ठ होते हैं।

९०[1]—समय अथवा मार्ग का अन्तर बोध कराने वाले शब्दो मे पचमी या सप्तमी होती है, जैसे, **अस्मिन् दिने भुक्त्वाऽयं त्र्यहात्त्र्यहे वा भोक्ता** (सि० कौ०,–आज भोजन करके वह फिर तीन दिन के अनन्तर भोजन करेगा।

**इहस्थोऽयं क्रोशे क्रोशाद्वा लक्ष्यं विध्येत्** (सि० कौ०)—यहाँ खड़ा खड़ा वह एक कोस के अन्तर पर स्थित लक्ष्य को भेद देगा।

९१—शब्दकोषों मे सप्तमी का प्रयोग "के अर्थ मे" द्योतित करने के लिए होता है, जैसे,

**बाणे बलिसुते शरे** ( अमर० )—"बाण' शब्द "बलि का पुत्र" तथा 'तीर' के अर्थ में आता है।

९२– जिस प्रयोजन या अभिप्राय से कोई कार्य किया जाता हैं उसका बोध कराने के लिए सप्तमी का प्रयोग होता है, जैसे,

**चर्मणि द्वीपिनं हन्ति दन्तयोर्हन्ति कुंजरम्।**

**केशेषु चमरीं हन्ति सीम्नि पुष्कलको हतः॥** ( महाभाष्य )।

अर्थात् बाघ को ( उसके ) चमड़े के लिए, हाथी को ( उसके )

---

१—सप्तमी पंचम्यौ कारकमध्ये २। ३। ७।

दाँतों के लिए, चमरी को ( उसके ) बाल के लिए, और कस्तूरी-मृग को कस्तूरी के लिये मारता है।

६३—"किसी के प्रति व्यवहार करना"—इस अर्थ के वाचक शब्द सप्तमी विभक्ति के साथ आते हैं, जैसे,

**आर्योऽस्मिन् विनयेन वर्तताम्** ( उत्तर० ६ )—श्रीमान् जी इस पुरुष के प्रति विनयपूर्वक व्यवहार करें।

**कथं कार्यविनिमयेन व्यवहरति मय्ययमात्मज्ञः** (मालविका० १)—ओह, क्या यह मूर्ख मेरे साथ कार्य की अदल-बदल के लिए व्यवहार करता है।

कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने ( शकु० ४ )—सवतों के प्रति प्रिय मित्र का सा बर्ताव करो।

६४—स्निह्, अभिलष्, अनुरज् जैसे 'स्नेह' 'आसक्ति' तथा 'सम्मान' वाचक शब्दों के साथ, जिसके लिए स्नेह, आसक्ति अथवा सम्मान प्रदर्शित किया जाता है वह सप्तमी में रक्खा जाता है, जैसे,

**किं नु खलु बालेऽस्मिन् स्निह्यति मे मनः** ( शकु० ७ )—मेरा मन इस लड़के को क्यों प्यार करता है।

न तापसकन्यकायां शकुन्तलायां ममाभिलाषः ( शकु० २ )—मुनिकन्या शकुन्तला से मेरा स्नेह नहीं है।

**स्वयोषिति रतिः** —( भर्तृ० २।६२ )—अपनी पत्नी में आसक्ति।

दण्डनीत्यां नात्यादृतोऽभूत् ( दशकुमार० २।८ )—राजनीति के प्रति ( उसके हृदय में ) कोई महान् सम्मान नहीं था।

**देवे चन्द्रगुप्ते दृढमनुरक्ताः प्रकृतयः** ( मुद्रा० १ )—श्रीचन्द्रगुप्त के प्रति प्रजावर्ग का बहुत बड़ा अनुराग है।

**अस्ति मे सोदरस्नेहोऽप्येतेषु** ( शकु० १ )—इनके प्रति ( मेरे हृदय में ) सगी-बहिन जैसा प्रेम है।

विशेष—'अनुरज' से प्रत्यय लगाकर बने हुए शब्द कभी कभी द्वितीया के साथ प्रयुक्त होते हैं, जैसे, एषा भवन्तमनुरक्ता ( शकु० ६ )—यह आप से अनुराग करती है अथवा आप मे अनुरक्त है।

**अपि वृषलमनुरक्ताः प्रकृतयः** ( मुद्रा० १ )—क्या प्रजा (उस) शूद्र ( से अनुराग करती है )।

ऐसे स्थलों पर 'अनु' को बिल्कुल अलग मानकर "कर्मप्रवचनीय" समझना चाहिए, 'कर्मप्रवचनीय' हो जाने पर उसके साथ द्वितीया आवेगी।

(नियम ३७ देखिए)।

९५—जब कारण-वाची शब्द का प्रयोग होता है, तब कार्य सप्तमी में रक्खा जाता है, जैसे, **दैवमेव हि नृणां वृद्धौ क्षये कारणम्** ( भर्तृहरि नीतिशतक, श्लोक ८४ )—भाग्य ही मनुष्य की उन्नति तथा अवनति का कारण है।

९६—'युज्' धातु के साथ तथा 'युज' से प्रत्ययद्वारा निष्पन्न शब्दों के साथ सप्तमी आती है, जैसे, **असाधुदर्शी तत्रभवान् काश्यपो य इमामाश्रमधर्मे नियुंक्त** ( शकु ० १ )—पूज्यपाद काश्यपजी महाराज बुद्धिमान् नहीं हैं जिन्होंने इसे आश्रम के कार्यों में नियुक्त कर रक्खा है।

( क ) 'योग्यता' अथवा 'उपयुक्तता' इत्यादि अर्थों का बोध कराने वाले शब्दों के योग मे, उस व्यक्ति का वाचक शब्द सप्तमी मे रक्खा जाता है जिसके विषय मे योग्यता अथवा उपयुक्तता प्रकट की जाती है। जैसे,

**युक्तरूपमिदं त्वयि** ( शकु ० २ )—यह तुम्हारे लिए योग्य है।

त्रैलोक्यस्यापि प्रभुत्वं तस्मिन् युज्यते ( हितोप० )—तीनों लोकों का भी राज्य उसके लिए उपयुक्त है।

**अथवोपपन्नमेतदृषिकल्पेऽस्मिन् राजनि** ( शकु० २ )—अथवा इस ऋषितुल्य राजा के लिए यह सर्वथा उचित है।

ते गुणा परस्मिन् ब्रह्मण्युपपद्यन्ते ( शांकरभाष्य १६० )—वे गुण परब्रह्म के लिए उपयुक्त हैं।

विशेष—प्राय. षष्ठी भी इसी अर्थ मे आती है, जैसे, **उपपन्नमिदं विशेषणं वायोः** (विक्रमो०)—यह विशेषण वायु के लिए उपयुक्त है।

६७—वस्तुत. सप्तमी विभक्ति स्थान का बोध कराती है। परन्तु अनेक स्थलों पर सप्तमी उस वस्तु या पात्र मे भी प्रयुक्त होती हैं जिसको कोई चीज़ सुपुर्द की जाती है या दी जाती है, जैसे, **शुकनासनाम्नि मन्त्रिणि राज्यभारमारोप्य यौवनसुखमनुबभूव** ( काद० )—राज्य का भार (अपने) मन्त्री शुकनास को सुपुर्द कर वह यौवन का सुख भोगने लगा।

**वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जडे** (उत्तर० २)—गुरु जिस प्रकार से चतुर पुरुष को विद्या प्रदान करता है उसी प्रकार मूढ़ को भी।

इसी प्रकार— **योग्यसचिवे न्यस्तः समस्तो भर.** रत्नावली १ )

टिप्पणी—वि + तृ का प्रयोग चतुर्थी के साथ भी होता है, जैसे, **मह्यं तं व्यतरन्** ( दशकुमार० ११ ,—उसको मुझे दे दिया। इसी प्रकार—**मारीचस्ते दर्शनं वितरति** (शकु० ७)

( क ) ग्रहणार्थक तथा प्रहारार्थक धातुओं के योग मे वह सप्तमी मे रक्खा जाता है जो पकड़ा जाता है या जिस पर प्रहार किया जाता है, जैसे, **आर्तत्राणाय व. शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि** (शकु० १)—आप का शस्त्र दु.खितो की रक्षा करने के लिए है, न कि निरपराधों पर प्रहार करने के लिए। इसी प्रकार— **केशेषु गृहीत्वा**—बाल पकड़ कर।

६८—'फेंकना या 'किसी पर झपटना'—इस अर्थ का बोध कराने वाली—'क्षिप्', 'मुच्' और 'अस्' धातुओं के योग में, जिस पर कोई चीज फेंकी जाती है या झपटती है, वह सप्तमी में रक्खा जाता है, जैसे,

**मृगेषु शरान् मुमुक्षोः** (रघु० ९।५८)—हिरनों पर बाण छोड़ने की इच्छा करने वाले का।

न बाण सन्निपत्योऽस्मिन् मृगशरीरे ( शकु० १ )—हिरन के इस शरीर पर बाण नहीं छोड़ा जाना चाहिए ।

( क ) 'विश्वास' अर्थबोधक शब्दों के साथ, प्राय. जिसका विश्वास किया जाता है वह सप्तमी में रक्खा जाता है , जैसे,पुंसि विश्वसिति कुत्र कुमारी—भला, कुमारी कन्या कब पुरुष का विश्वास करती है ।

विशेष— 'श्रद्धा' के साथ द्वितीया आती है , जैसे, क श्रद्धास्यति भूतार्थम् ( मृच्छकटिक ३ )—वास्तविक बातों का कौन विश्वास करेगा ।

९९[1]—'अधीतिन्' ( पढ चुकने वाला ) और 'गृहीतिन्' ( समझ चुकने वाला ) के योग मे इनका कर्म सप्तमी मे रक्खा जाता है, जैसे,

अधीती चतुर्ष्वाम्नायेषु ( दशकुमार० २।५ )—चारों वेदो को पढ़ चुकने वाला ।

गृहीती षट्स्वगेषु ( दशकुमार० २।५ )—छहो अगो को पूर्णरूप से पढ चुकने वाला, छहों अगों का प्रकाण्ड विद्वान् ।

'साधु'[2] और 'असाधु'शब्दों के योग मे,जिसके प्रति साधुता अथवा असाधुता दिखाई जाती है, वह सप्तमी मे रक्खा जाता है, जैसे,

मातरि साध्वसाधुर्वा ( सि० कौ० )—अपनी माता के प्रति सद्व्यवहार करता है अथवा दुर्व्यवहार ।

१००—'सलग्न' या 'तुला हुआ' या 'कटिबद्ध'—इस अर्थ के बोध कराने वाले 'व्यापृत' 'आसक्त' 'व्यग्र' 'तत्पर' इत्यादि शब्दों के साथ सप्तमी विभक्ति आती है, जैसे, गृह कर्मणि व्यापृता व्यग्रा वा ( पचतत्र २ )—अपने घर के कामों में सलग्न ।

---

१—क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसख्यानम् ( वार्तिक )

२—साध्वसाधुप्रयोगे च (वार्तिक)

'चतुर' या 'होशियार'—अर्थवाचक 'कुशल', 'निपुण' 'शौण्ड', 'पटु', 'प्रवीण', 'पण्डित' इत्यादि शब्दो के योग मे, और 'धूर्त' और 'कितव' ( ठग, बदमाश, छलिया ) शब्दों के योग मे सप्तमी विभक्ति आती है, जैसे रामोऽक्षद्यूते निपुण प्रवीणो वा ( सि० कौ० )—राम जुआ खेलने मे होशियार है।

( क )[1] 'प्रसित' ( अत्यन्त इच्छुक ) और 'उत्सुक' ( अत्यन्त इच्छुक ) शब्दो के साथ सप्तमी अथवा तृतीया विभक्ति आती है, जैसे, निद्रायां निद्रया वा उत्सुक ( सि० कौ० —निद्रा के लिए अत्यन्त इच्छुक। मनो नियोगक्रिययोत्सुक मे ( रघु० ५ । ११ )—मेरा मन आज्ञा पाने के लिए अत्यन्त उत्सुक है।

टिप्पणी—अप + राध् ( अपराध करना ) धातु के कर्म मे सप्तमी प्रयुक्त होती है, और कभी कभी षष्ठी, जैसे, कस्मिन्नपि पूजार्हेऽपराद्धा शकुन्तला ( शकु ४ )—शकुन्तला ने किसी सम्माननीय व्यक्ति का अपराध किया है।

अपराद्धोऽस्मि तत्रभवत कण्वस्य ( शकु० ७ )।

## अभ्यास

१—प्रथितयशसा भास-कवि-सौमिल्लक-विमिश्रादीना प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानकवे कालिदासस्य क्रियायां कथ परिषदो बहुमानः ( मालविका० १ )

२—यः पौरवेण राज्ञा धर्माधिकारे नियुक्त सोहमविघ्नक्रियोपलम्भाय धर्मारण्यमिदमायातः ( शकु० १ )

३—दृढं त्वयि बद्धभावोर्वशी। न सेतोगतमनुरागं शिथिलयति ( विक्रमो० २ )

१ प्रसितोत्सुकाभ्या तृतीया च। २। ३। ४४।

४—एष देवो रघुपतिस्तिष्ठति। स च स्निह्यत्यावयोरुत्कण्ठते च युष्मत्सन्निकर्षस्य ( उत्तर० ६ )।

५—दुर्जनत्वं च भवतो वाक्यादेव विज्ञात यदनयोर्भूपालयोर्विग्रहे भवद्वचनमेव निदानम् ( हितोप० ३ )।

६—एष धृष्टद्युम्नेन द्रोणः केशेष्वाकृष्यासिपत्रेण व्यापाद्यते ( वेणी० ३ )।

७—न जानामि केनापि कारणेनापहस्तितसकलसखीजनं त्वयि विश्वसिति मे हृदयम् ( काद० )।

८—उपकारिषु य साधुः साधुत्वे तस्य को गुणः।
अपकारिषु यः साधुः स साधुः सद्भिरुच्यते ॥ ( हितो० २ )।

९—न मातरि न दारेषु न सोदर्ये न चात्मनि।
विश्वासस्तादृश पुसा यावन्मित्रे स्वभावज ॥ ( हितो० १ )
क्षमा शत्रौ च मित्रे च यतीनामेव भूषणम्।
अपराधिषु सत्वेषु नृपाणा सैव दूषणम् ॥ ( हितोप०२ )।

११—वाञ्छा सज्जनसगमे गुणिगणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता
विद्यायां व्यसन स्वयोषिति रतिर्लोकापवादाद्भयम्।
भक्तिः शूलिनि शक्तिरात्मदमने ससर्गमुक्तिः खले-
ष्वेते येषु वसंति निर्मलगुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः ॥
(भर्तृहरिनीतिशतक, ६२ श्लोक )।

१२—सतानार्थाय विधये स्वभुजादवतारिता।
तेन धूर्जगतो गुर्वी सचिवेषु निचिक्षिपे ॥ ( रघु० १। ३४)।

१३—भूताना प्राणिनः श्रेष्ठा प्राणिना बुद्धिजीविन।
बुद्धिमत्सु नरा श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणा स्मृताः ॥ ( मनु० १९।६ )।

## अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१४—अवैमि ते सारमत. खलु त्वा कार्ये गुरुण्यात्मसम नियोक्ष्ये ।
व्यादिश्यते भूधरतामवेक्ष्य कृष्णेन देहोद्वहनाय शेषः ॥ (कुमार० ३।१३ ) ।

१५—अशुद्धप्रकृतौ राज्ञि जनता नानुरज्यते । ( पचतंत्र १।११ ) ।

१६—जनकाना रघूणा च यत्कृत्स्न गोत्रमगलम् ।
तस्मिन्नकरुणे पापे वृथा वः करुणा मयि ॥ ( उत्तर०६ ) ।

१७—निर्गुणेष्वपि सत्वेषु दया कुर्वंति साधवः ।
न हि सहरते ज्योत्स्ना चद्रश्चाडालवेश्मनि ॥ ( हितोप० १ ) ।

१८—इत्युक्तवंत जनकात्मजाया नितातरूक्षाभिनिवेशमीशम् ।
न कश्चन भ्रातृषु तेषु शक्तो निषेद्धुमासीदनुमोदित वा ॥ ( रघु० १४।४३ ) ।

१९—परकर्मापह सोऽभूदुद्यतः स्वेषु कर्मसु ।
आवृणोदात्मनो रन्ध्र रन्ध्रेषु प्रहरन् रिपून् ॥ (रघु० १७.६१) ।

२०—भगवति कमलालये भृशमगुणज्ञासि
आनदहेतुमपि देवमपास्य नद
रक्तासि किं कथय वैरिणि मौर्यपुत्रे ( मुद्रा०२ ) ।

२१—साक्षात्प्रियामुपगतामपहाय पूर्व
चित्रार्पिता मुहुरिमा बहु मन्यमानः ।
स्रोतोवहा पथि निकामजलामतीत्य
जात. सखे प्रणयवान्मृगतृष्णिकायाम् ॥ (शकु ०६।) ।

२२—पोतो दुस्तरवारिराशितरणे दीपोऽधकारागमे
निर्वाते व्यजन मदांधकरिणां दर्पोपशात्यै सृणिः ।
इत्थं तद्भुवि नास्ति यस्य विधिना नोपायचिंता कृता
मन्ये दुर्जनचित्तवृत्तिहरणे धातापि भग्नोद्यमः ॥ ( हितो०२ ) ।

२३—चिरेणानुगुण प्रोक्ता प्रतिपत्तिपराङ्मुखी ।
न मासे प्रतिपत्तासे मा चेन्मर्तासि मैथिलि ।। ( भट्टि० ८।९५ )

२४—एतस्मान्मा कुशलिनमभिज्ञानदानाद्विदित्वा
मा कौलीनादसितनयने मय्यविश्वासिनी भू. । ( मेघदूत ११५ )

२५—एवमाप्तवचनात्स पौरुष काकपक्षकधरेऽपि राघवे ।
श्रद्दधे त्रिदशगोपमात्रके दाहशक्तिमिव कृष्णवर्त्मनि ।। ( रघु० ११।४२ )

---

## संस्कृत में अनुवाद कीजिए:—

१—इस राजा की सारी प्रजा इसमे अनुरक्त है ( अनु + रज् ) ।

२—जो निस्सहाय पुरुषो के प्रति करुणा दिखलाता है और देवताओं के लिए यज्ञ करता है – वे दोनो पुण्य मे बराबर समझे जाते हैं ।

३—मेरे पतिदेव मुझसे स्नेह नही करते, जो कुछ मै उनसे कहती हूँ उसमें विश्वास नही करते और मुझे अयोग्य कार्यो में नियुक्त करते हैं। ऐ सखी, क्या तुम मुझे बताओगी कि ऐसी परिस्थिति मे मैं क्या करूँ ।

४—ऋषि लोग इस सासारिक जीवन के सुख तथा दु ख के प्रति नि स्पृह हो जाते हैं ।

५—इस लडके की शिक्षा के विषय मे जरा भी चिन्ता न कीजिए ।

६—कुटुम्ब का भार अपने ज्येष्ठ पुत्र को सौप कर और मित्रों तथा सम्बन्धियों से बिदा हो उसने अरण्यनिवास का आश्रय लिया ।

७—बाल पकडकर वह नीचे खीच लिया गया, तब सारे दर्शको ने उसके ऊपर पत्थर फेके ।

८—जो कुछ उस स्त्री के आस पास हो रहा था उस पर उसने अन्यमनस्का होने के कारण दृष्टि तक न डाली ।

९—यह वृत्तान्त सर्वत्र विदित हो गया है । क्या यह आप के कानों तक नहीं पहुँचा कि राजा का प्रेम सागरिका पर लगा हुआ है ।

१०—कैकेयी राम के चौदह वर्ष के बनवास का प्रधान कारण थी।

११—जो लोग द्यूतकला मे निपुण हैं उनके साथ जुआ खेलने मे वह सदा अपना समय बिताता है।

१२—इस बगीचे के सब वृक्षो से यह वृक्ष लम्बा है।

१३—मनुष्यों मे सब से प्रशसनीय वही है जो परोपकार मे तत्पर रहता है।

१४—भारतीय कवियों मे कालिदास और भवभूति सब से अधिक प्रसिद्ध हैं।

१५—राक्षस अपना कुटुम्ब ऐसे पुरुषो को नही सौंपेगा जो गौरव मे उसी के समकक्ष नही हैं।

---

# दशम पाठ

## षष्ठी

१०१—तृतीय पाठ मे कह आए हैं कि "सम्बन्ध" कोई कारक नही है। वस्तुत. षष्ठी विभक्ति एक सज्ञापद का दूसरे सज्ञापद के साथ, अथवा सज्ञापद का सर्वनामपद के साथ सम्बन्ध बतलाती है।

इस पाठ मे दिए हुए नियमों मे षष्ठी का एक ही मुख्य अर्थ है, और वह है "सम्बन्ध" का अर्थ। जहाँ षष्ठी के साथ क्रियापदका प्रयोग किया गया है, वहाँ भी यही समझना चाहिए कि षष्ठी 'सम्बन्ध" अर्थ मे आई है। परन्तु कई स्थलो पर सस्कृतलेखको ने षष्ठी का प्रयोग ऐसे सम्बन्धों का बोध कराने के लिए भी किया है जो अन्य कारकों द्वारा भी दिखाये जाते हैं, जैसे—

(१) तं च व्यसृजद्भरतस्य (उत्तर०४)—उसको भरत के पास भेजा। यहाँ 'भरताय' भी हो सकता था।

(२) जयसेनायास्तावत्सवेद्य गच्छ (मालविका०४)—यहाँ "जयसेनायै" भी हो सकता था।

(३) स्त्रीणां विश्वासो नैव कर्त्तव्य. (हितोप०)—यहाँ पर "स्त्रीषु" भी हो सकता था।

इन उदाहरणों मे साधारण नियमों का उल्लघन किया गया है, अतः कदापि इनका अनुकरण न करना चाहिए।

१०२—प्राय षष्ठी विभक्ति से यह सूचित होता है कि कोई सज्ञा अथवा सर्वनाम पद किसी अन्य सज्ञा अथवा विशेषण अथवा कभी कभी किसी क्रियापद के आश्रित है।

(क) हिन्दी के "का, की, के" का बोध कराने के लिए षष्ठी का प्रयोग होता है। परन्तु अनेक स्थलो पर षष्ठीविभक्ति के स्थान पर समास का प्रयोग होता है, जैसे, दशरथस्य पुत्र· अथवा दशरथपुत्र ।

विशेष—ध्यान रहे कि सस्कृत में षष्ठी उन सभी सम्बन्धो और अर्थो का बोध नहीं करा सकती जिन्हे दिखाने के लिए हिन्दी में 'का, की, के,' प्रयुक्त किए जाते हैं। उदाहरणार्थ विशेषण का अर्थ अथवा सामानाधिकरण्य का अर्थ दिखाने के लिए, जैसे—

(१) "सोने का बर्तन' का अनुवाद प्राय समस्तपद "हेमपात्रम्" अथवा प्रत्ययनिष्पन्न पद "हैम पात्रम्" होता है। परन्तु "हेम्नः पात्रम्" कभी नही होता।

(२) मिट्टी का बर्तन—मृद्भाण्डम् अथवा मृण्मय भाण्डम् न कि "मृद भाण्डम्"।

(३) बडे मूल्य की मुक्ता—महार्घ मुक्ताफलम्, न कि महार्घस्य मुक्ताफलम्। यहाँ "बडे मूल्य" और "मुक्ता' मे विशेषणविशेष्य-सम्बन्ध है।

(४) शक्ति का पुरुष—सबलो नर., न कि बलस्य नरः। यहाँ 'शक्ति' और 'पुरुष' मे विशेषण-विशेष्य-सम्बन्ध है।

(५ वैशाख के महीने में—वैशाखे मासे, न कि वैशाखस्य मासे। "वैशाख" और "मास" में सामानाधिकरण्य सबन्ध है।

(६) बम्बई का शहर—मुम्बापुरी अथवा मुम्बा नाम पुरी, न कि मुम्बायाः पुरी। "मुम्बा" और "पुरी" में सामानाधिकरण्य सम्बन्ध है।

१०३—षष्ठी विभक्ति से "रखने वाले" का अथवा "स्वामी" का बोध होता है। जो चीज रक्खी जाती है अथवा जिसपर स्वामित्व होता है वह प्रथमा मे रक्खी जाती है, जैसे,

(१) **यस्य नास्ति स्वय प्रज्ञा** (पचतन्त्र)—जिसके स्वय बुद्धि नहीं होती अथवा जो स्वय बुद्धि नहीं रखता।

(२) **इमे नो गृहा** (मृच्छकटिक १)—ये हमारे घर हैं।

(२) **स्खलन मनुष्याणा धर्म**—गलती करना मनुष्य का धर्म (स्वभाव, गुण) है, अर्थात् मनुष्यो से गलती होती ही है।

विशेष—यह अर्थ प्रायः प्रत्ययनिष्पन्न शब्दों द्वारा सूचित किया जाता है। जैसे, **पैतृकं रिक्थम्**—बापदादो की सम्पत्ति। इसी प्रकार, **अस्मदीय गृहम्**।

१०४—जिनके सम्पूर्ण या समष्टि का बोध कराने के लिए एक अ शमात्र का नाम ले लिया जाता है उन विशेष्यों के साथ षष्ठी आती है, और उसे **अशवाची षष्ठी** (Partitive genitive) कहते हैं, जैसे, **जलस्य बिन्दु**—जल की बूँद। **अयुतं शरदा ययौ** (रघु० १०।१)—एक लाख वर्ष बीत गए। इसी प्रकार **गवा शतसहस्राणि**—हजारो गाएँ।

(क) पूरणीसख्यावाचक सर्वनामो और विशेषणो के साथ तथा सख्यावाचकसर्वनामों और विशेषणो के साथ 'अ शवाची षष्ठी' (Partitive Genitive) आती है, जैसे,

(१) **त्वमेव कल्याणि तयोस्तृतीया** (रघु० ६ ३६)—ऐ कल्याणि, तुम्हीं उनकी तीसरी हो।

(२) **गृह्यतामनयोरन्यतरा** (मालविका० ५)—दो मे से एक स्वीकार कर ली जाय।

(३) **तासामन्यतमा** (मालती०)—उन लड़कियों में से एक।

(ख) इसी प्रकार, **तमप् प्रत्ययान्त और इष्ठन् प्रत्ययान्त**

विशेषणों के साथ, तथा **तमवन्त** और **इष्ठन्नन्त** शब्दों-जैसा अर्थ बोध कराने वाले शब्दों के साथ भी "अ शवाची षष्ठी" आती है, जैसे, **द्विजानां ब्राह्मण श्रेष्ठ । धौरेय साहसिकानामग्रणीर्विदग्धानाम्** ( कादम्बरी )—साहसी तथा बुद्धिमानो मे सब से आगे ।

विशेष—षष्ठी के इस प्रयोग की विवेचना सेक्शन ८६ मे पहिले हो चुकी है ।

( ग ) कभी कभी 'मे," या "मे से" के अर्थ मे षष्ठी के साथ "मध्ये" शब्द का प्रयोग होता है, जैसे, **एतेषां मध्ये केचिदरे कोष-दंडाभ्यामर्थिन** ( मुद्रा० ५ )—इनमे से कुछ लोग शत्रु के कोष और सेना के इच्छुक है ।

१०५—जब यह दिखाना होता है कि अमुक क्रिया के हो जाने के बाद, या होते होते, या करते करते, इतना समय व्यतीत हो गया, तब उस क्रियाका बोध कराने वाला शब्द षष्ठी मे रक्खा जाता है, जैसे,

**अद्य दशमो मासस्तातस्योपरतस्य** ( मुद्रा० ६ )—पिता जी को मरे हुये आज दस महीने हो गए ।

**कतिपये सवत्सरास्तस्य तपस्तप्यमानस्य** ( उत्तर० ४ )—
उन्हें तपस्या करते कई वर्ष बीत गए ।

१०६—"प्रिय—" अर्थ वाची शब्द के साथ षष्ठी विभक्ति आती है, जैसे—

**प्रकृत्यैव प्रिया सीता रामस्यासीत्** ( उत्तर० ६ )—सीता जी स्वभाव ही से श्रीरामचन्द्र जी को प्यारी थी ।

**काय कस्य न वल्लभ** ( पचतत्र १ )—शरीर किसे प्यारा नहीं होता ।

( क ) "**विशेष:**", "**अन्तरम्**"-जैसे अन्तर-बोधक शब्दों के साथ षष्ठी आती हैं, जैसे **एतावानेवायुष्मत शतक्रतोश्च विशेष** ( शकु ७ )—आयुष्मान् (आप ) तथा इन्द्र मे इतना ही अन्तर है ।

**अत्रभवतो मम च समुद्रपल्वलयोरिवान्तरम्** (मालविका० १) – श्रीमान् तथा मुझमे उतना ही अन्तर है जितना समुद्र और गड़ही में।

१०७[1]–**तव्यत्, तव्य, अनीयर, यत्, ण्यत्, क्यप् और केलिमर्**—ये कृत्यप्रत्यय हैं। जिन शब्दों के अन्त मे ये प्रत्यय लगे रहते हैं उनका प्रयोग होने पर, उनके कर्ता मे तृतीया अथवा षष्ठी होती हैं, जैसे,

**नास्ति असाध्यं नाम मनोभुव.** (कादम्बरी)–निश्चय ही, कामदेव के लिए कोई चीज असाध्य नही है।

**न वयमनुग्राह्या प्रायो देवतानाम्** (कादम्बरी)।

**न वञ्चनीया प्रभवोऽनुजीविभि** (किरात १।४)।

**रात्तसेन्द्रस्य सरद्यं मया लव्यमिद वनम्** (भट्टि०८।१२६)—राक्षसाधिपति रावण के द्वारा रक्षणीय यह जङ्गल मुझसे अवश्य काट डाला जाना चाहिए।

१०८[2]—जब 'हेतु' शब्द का प्रयोग होता है तो जो शब्द कारण या प्रयोजन रहता है वह और 'हेतु' शब्द—दोनो षष्ठी मे रक्खे जाते हैं, जैसे,

**अल्पस्य हेतो र्बहु हातुमिच्छन** (रघु० २।४७)--थोडे से के लिए बहुत को त्यागने की इच्छा करता हुआ।

विस्मृत कस्य हेतो (मुद्रा० १)—किस कारण यह भुला दिया गया।

विशेष—पतञ्जलि का मत है कि निमित्त', 'कारण', 'हेतु' इत्यादि कारण-वाचक शब्दों के योग मे किसी भी विभक्ति और वचन का सर्वनाम आ सकता है, पर जिस विभक्ति और वचन मे सर्वनाम रहेगा उसी विभक्ति और वचन में 'निमित्त' या, 'कारण' या 'हेतु' भी रहेगा परन्तु

---

१—कृत्यानां कर्तरि वा। २। ३। ७१।

२—षष्ठी हेतुप्रयोगे। २।३। ६२

संस्कृतकाल के कवियो और गद्यलेखकों के लेखों से इस कथन की पुष्टि नही होती । केन निमित्तेन—कारणेन—हेतुना तथा कस्मात् निमित्तात्—कारणात्—हेतोः—ऐसे प्रयोग 'कारण'—अर्थ में साधारणतया मिलते हैं। परन्तु इसी अर्थ मे 'को हेतुः वससि' या 'क हेतु वससि'—ये प्रयोग नही मिलते । "कस्मै हेतवे वससि" —यह प्रयोग भी 'कारण'-अर्थ मे नही आता, वरन् इसका अर्थ है—"किस प्रयोजन से रहते हो।" अलबत्ता 'किंनिमित्त—प्रयोजन—कारणम्—अर्थम्'—यह प्रयोग साधारणतया मिलता है। इसलिए पतञ्जलि का नियम केवल विरले स्थलों मे ही व्यवहृत किया जाना चाहिए।

१०९[1]—धातुओं मे 'कृत्' प्रत्यय लगाकर जो संज्ञाएँ बनाई जाती हैं उनका प्रयोग होने पर उनके कर्ता और कर्म मे षष्ठी आती है। क्तिन्, तृ, घञ्, ल्युट् इत्यादि कृत्प्रत्यय है।

क्रियाममा कालिदासस्य (विक्रमो० १)—कालिदास की यह क्रिया, अर्थात् कालिदास का यह ग्रन्थ। यहाँ कर्ता मे षष्ठी है। 'कालिदास' कर्ता है 'क्रिया' का।

भर्तुः प्रणाशात् (रघु० १४।१)—पति की मृत्यु के कारण। यहाँ 'भर्तुः' की षष्ठी कर्ता मे है। भर्ता 'प्रणाश' का कर्ता है।

शास्त्राणां परिचय (कादम्बरी)—शास्त्रों का ज्ञान। 'परिचय' क्रिया है, शास्त्र उस क्रिया का कर्म है। अतः कर्म मे षष्ठी हुई है।

आहर्ता क्रतूनाम् (कादम्बरी)—यज्ञो का करने वाला। 'आहरण करना' क्रिया है। इसका कर्म है 'क्रतु', अतः 'क्रतूनाम्' की षष्ठी कर्म में हुई है।

दुःखायेदानीं रामस्य सुहृदां दर्शनम् (उत्तर०३)—श्रीरामचन्द्र जी को मित्रों को देखने से, केवल दुःख ही पैदा होगा। यहाँ 'रामस्य' कर्ता है

---

१—कर्तृकर्मणोः कृति।२।३।६५॥

१११[1]—आशीर्वाद देने मे 'आयुष्यन्,' 'मद्रम्, 'भद्रम्', 'कुशलम्, 'सुखम्', 'अर्थ·' और 'हितम्' के योग मे चतुर्थी या षष्ठी होती है, जैसे, कृष्णस्य कृष्णाय वा कुशलं, हित, मद्र, भद्र, वा भूयात् (सि० कौ०)—कृष्ण को सुख होवे अथवा सौभाग्य प्राप्त होवे।

११२[2]—दिशावाची 'तस्'-प्रत्ययान्त शब्दों के योग मे तथा 'तस' प्रययान्त-शब्दो जैसे अर्थ रखने वाले 'उपरि' 'अध' 'पुर', 'पश्चात्' 'अग्रे', 'पुरस्तात्' इत्यादि के योग मे वह शब्द षष्ठी मे रक्खा जाता है जिसको लक्षित करके दिशा बताई जाती है, जैसे,

ग्रामस्य दक्षिणत उत्तरत वा (सि० कौ०)—गॉव के दक्खिन या

गतमुपरि घनानाम् (शकु०)—बादलो के ऊपर गया हुआ।

तरूणा मध (शकु०१)—पेडों के नीचे।

तिष्ठन् भाति पितु· पुरा भुवि यथा (नागानन्द)—जैसे कोई पिता के सामने जमीन पर खड़ा हुआ सुशोभित लगता है।

यः पुरस्ताद्यतीनाम् (मालविका०१)—जो सन्यासियों मे सर्वश्रेष्ठ है।

विशेष—'उपरि'—शब्द प्राय समास में जोड दिया जाता है, जैसे, प्रत्यारोपय रथोपरि राजपुत्रम् (उत्तर०५)। चाणक्योपरि प्रद्वेषपक्ष-पाता· (मुद्रा०३)।

(क)[3] 'दक्षिणेन', 'उत्तरेण' इत्यादि दिशावाची 'एनप्—' प्रत्ययान्त शब्दो के योग मे उस शब्द मे द्वितीया या षष्ठी होती है जिसका नाम लेकर दिशा बताई जाती है, जैसे,

दक्षिणेन तु श्वेतस्य निषधस्योत्तरेण तु (महाभारत ६।८।२) —श्वेत के दक्खिन और निषध के उत्तर।

---

[1]—चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्र कुशलसुखार्थहितै। २। ३। ७३।

[2]—षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन। २। ३। ३०॥ दक्षिणतः, उत्तरतः इत्यादि दिशावाची तस् प्रत्ययान्त शब्द हैं।

[3]—एनपा द्वितीया। २। ३। ३१॥

दक्षिणेन वृक्षवाटिकाम् ( शकु. १ )—बगीचे के दक्खिन।

धनपतिगृहानुत्तरेण ( मेघ० ७८ )—कुबेर के घर के उत्तर।

(ख)[१] 'दूर' और 'अन्तिक' (समीप) तथा इनके समान अर्थ रखने वाले शब्दों के योग मे षष्ठी अथवा पंचमी होती है, जैसे,

ग्रामात् ग्रामस्य का वनं दूरं-निकटं-समीपम् इत्यादि ( सि०-कौ० ) । जंगल गाँव के समीप अथवा गाँव से दूर है।

विशेष—अधिकतर षष्ठी का ही प्रयोग होता है, जैसे,

तस्याश्रमपदस्य नातिदूरे ( कादम्बरी ) ।

अत समीपे परिणेतुरिष्यते ( शकु ५ ) ।

प्रयामि तस्याः सकाशम् ( कादम्बरी ) ।

११३[२]—'ईश्' ( समर्थ होना ), 'प्र+भू' ( समर्थ होना ), दय् ( दया करना ), और 'अधि+इ' ( स्मरण करना ) 'स्मृ' ( स्मरण करना )—इन धातुओं तथा इनका-सा अर्थ रखने वाली धातुओं के कर्म में षष्ठी होती है, जैसे,

ननु प्रभवत्यार्यः शिष्यजनस्य ( मालविका० १ )—क्यों श्रीमान्, अपने शिष्यों के ऊपर प्रभाव रखते हैं अर्थात् शिष्यों के ऊपर पूरा पूरा जोर रखते हैं।

प्रभवति निजस्य कन्यकाजनस्य महाराजः ( मालती० ४ ) ।

यदि प्रभविष्यामि आत्मनः ( शकु १ ) ।

नायं गात्राणामीष्टे ( कादम्बरी )—वह अपने अंगों को वशमें नहीं रख सकता।

रामस्य दयमानोऽसावध्येति तव लक्ष्मणः ( भट्टि०८।११९ )—रामके ऊपर दया करते हुए लक्ष्मण तुम्हारी याद करते हैं।

---

१—दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम् । २। ३ ३४ ॥

२—अधीगर्थदयेशां कर्मणि । २। ३। ५२ ।

स्मर्तुं दिशति न दिवः सुरसुन्दरीभ्यः ( किरात० ५।२८ )—अप्सराओं को स्वर्ग की सुधि नहीं करने देते।

अस्मार्षीज्जलनिधिमथनस्य शौरिः ( शिशु० ८।६४ )—भगवान् कृष्ण ने समुद्रमथन को याद किया।

विशेष—(क) 'प्र'-पूर्वक 'भू'-धातु का जब 'योग्य होना' अर्थ होता है तब वह तुमुन्-प्रत्ययान्त शब्द के साथ प्रयुक्त होती है ( षोडश पाठ देखिए )। जब 'प्र'-पूर्वक 'भू'-धातु का "काफी" या "पर्याप्त" अर्थ होता है तब उसके योग मे चतुर्थी आती है ( सेक्शन ६७ क देखिए )।

(ख) साधारणतया 'याद करना' के अर्थ मे 'स्मृ' धातु के साथ द्वितीया आती है, जैसे,

स्मरसि तान्यहानि स्मरसि गोदावरीं वा (उत्तर० १ )।

ऊपर के प्रयोग मे कर्म का व्यक्त किया जाना अभीष्ट है ( यदा कर्म विवक्षितं भवति तदा षष्ठी न भवति-महाभाष्य )।

(ग) 'जानने वाला' या 'परिचित' या 'सावधान'—इन अर्थों का बोध कराने वाले विशेषणों तथा इनके उलटे अर्थों का बोध कराने वाले विशेषणों के योग मे कर्म मे षष्ठी होती है, जैसे,

अनभिज्ञो गुणानां यः स भृत्यैर्नानुगम्यते ( पञ्चतन्त्र १।१ )—जो पुरुष गुणों को नहीं समझता या पहिचानता उसका, भृत्य लोग, अनुसरण नहीं करते।

अनभ्यन्तरे आवां मदनगतस्य वृत्तान्तस्य ( शकु० ३ )।

कभी कभी सप्तमी का भी प्रयोग होता है, जैसे, यदि त्वमीदृशः कथायामभिज्ञः ( उत्तर० ४ )। तत्राप्यभिज्ञो जनः ( उत्तर० ५ )।

११४[1]—'बार' या 'मरतबा'-अर्थवाची क्रियाविशेषण अव्ययों के योग मे समयवाची शब्द षष्ठी में रक्खा जाता है, परन्तु सप्तमी का अर्थ देता है।

[1]—कृत्वोऽर्थप्रयोगे कालेऽधिकरणे। २। ३। ६४।

द्वि॰, त्रिः, अष्टकृत्वः, शतकृत्वः इत्यादि ऐसे ही शब्द हैं। द्वि॰ (दो बार), त्रि (तीन बार), अष्टकृत्वः (आठ बार और शतकृत्व (सौ बार)। उदाहरण—

द्विरह्नो भोजनम् (सि० कौ०)—दिन में दो बार भोजन।

शतकृत्वस्तवैकस्याः स्मरत्यह्नो रघूत्तमः (भट्टि० ८।१२२)—रघुश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्र जी दिन मे केवल तुम्हे सौ बार याद करते हैं।

११५[1]—जब क्त'-प्रत्ययान्त शब्द वर्तमानकाल के अर्थ मे प्रयुक्त होते हैं तो वे षष्ठ्यन्त पदों के साथ आते हैं, जैसे,

अहमेव मतो महीपतेः (रघु० ८।८)—राजा मुझे ही मानते हैं।

विदितं तप्यमानं च तेन मे भुवनत्रयम् (रघु० १०।३९)—मैं जानता हूँ कि वह तीनों लोकों को सता रहा है।

राज्ञां पूजित: (सि० कौ०)—राजाओ द्वारा पूजा जाता है।

(क) परन्तु जब भूतकाल विवक्षित होता है तब केवल तृतीया आती है, जैसे, न खलु विदितास्ते चाणक्यहतकेन (मुद्रा० २)—क्या दुष्ट चाणक्य ने उन लोगो का पता नही लगा लिया।

(ख) जब 'क्त' प्रत्ययान्त शब्द भाववाचक नपुंसकलिंग संज्ञापदों के तौर पर प्रयुक्त होते हैं तब उनके योग में षष्ठी होती है, जैसे,

मयूरस्य नृत्तम् (महाभाष्य)—मोर का नाचना।

कोकिलस्य व्याहृतम् (महाभाष्य)—कोयल का बोलना।

छात्रस्य हसितम् [महाभाष्य]—विद्यार्थी का हँसना।

११६—'कृते' और 'समक्षम्' के योग में षष्ठी होती है। 'कृते' का अर्थ है 'लिए' या 'वास्ते'। 'समक्षम्' का अर्थ है 'सामने'। उदाहरण, अमीषां प्राणानां कृते (भर्तृ० वैराग्यशतक ३६)—इस जीवन के लिये।

---

[1]—क्तस्य च वर्तमाने। २। ३। ६७।

राज्ञः समक्षमेव ( मालविका०१ )—राजा के सामने ही।

विशेष—'कृते' शब्द का प्राय. दूसरे शब्दों के साथ समास कर दिया जाता है, जैसे, काव्यम् अर्थकृते ( काव्यप्रकाश ) ।

११७[1]—'बराबर' या 'समान' अर्थवाची 'तुल्य', 'सदृश', 'सम', 'सकाश' इत्यादि शब्दों के योग मे वह शब्द तृतीया मे रक्खा जाता है जिससे किसी की तुलना की जाती है, जैसे, कृष्णस्य तुल्यः सदृशः ( सि० कौ० )।

धनदेन समस्त्यागे—उदारता मे कुबेर के समान। अस्य मुख सीताया मुखचन्द्रेण संवदति (उत्तर० ४)—इसका मुखड़ा सीता जी के चन्द्रतुल्य मुखडे से मिलता जुलता है ( सेक्शन ५२-ख देखिए )।

विशेष—पाणिनि का मत है कि 'तुला' और 'उपमा' शब्द तृतीया के साथ नही आ सकते। परन्तु यह बात अच्छी लेखनशैली मे नही पाई जाती, जैसे,

तुला यदारोहति दन्तवाससा ( कुमार० ५।३४ )—जब वह इद्र की समता को प्राप्त होता है।

नभसा तुला समारुरोह ( रघु०८। १५ ) आकाश की समता को प्राप्त हो गया।

स्फुटोपम भूतिसितेन शम्भुना ( शिशु० १।४ )—भस्म ( राख ) से सफेद शम्भु के समान स्पष्ट-उपमा वाला।

मल्लिनाथ ने इन उदाहरणों का पाणिनीय सूत्र के साथ सामञ्जस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया है, पर उनकी युक्ति ठीक नही जँचती।

(क) 'योग्य', 'उचित', 'उपयुक्त', 'अनुरूप' अर्थ-वाची विशेषणों के योग मे षष्ठी आती है, जैसे, सखे पुण्डरीक, नैतदनुरूप भवतः (कादम्बरी)—ऐ मित्र पुण्डरीक, यह तुम्हारे योग्य नहीं है।

---

१—तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयान्यतरस्याम्। २। ३। ७२।

**सदृशमेवैतत् स्नेहस्यानवलेपस्य** ( शकु ६ )—वस्तुतः, यह बात अभिमानहीन प्रेम के अनुरूप ही है। सेक्शन ९६ (क) भी देखिए।

११८—जब 'प्रकृति' या 'स्वभाव' दिखाना विवक्षित होता है तब 'तृ'-प्रत्ययान्त शब्द द्वितीया के साथ प्रयुक्त होते हैं, न कि षष्ठी के साथ, जैसे,

**पितरमाराधयिता भव** ( विक्रमो० ५ )—सर्वदा अपने पिता को प्रसन्न रक्खो।

**सम्भावयिता बुधान, न्यग्भावयिता शत्रून्** ( दशकुमार०२ ८ —जिसका साधारण स्वभाव विद्वानों का आदर करना और शत्रुओ को नीचा दिखाना है। परन्तु **'जगतः निर्माता'** और **'घटस्य कर्ता'** आदि अपवाद-स्वरूप प्रयोगो का ध्यान रहे।

(क) 'अनु' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु का अर्थ 'नकल करना या 'मिलना जुलना' होता है। इस धातु का प्रयोग होने पर प्राय इसके कर्म मे षष्ठी होती है, जैसे,

**ततोऽनुकुर्यात् तस्याः स्मितस्य** ( कुमार०१।४४ )—तब कदाचित् यह उसकी मुसकुराहट से मिल जुल जाय।

**श्यामतया भगवतो हरेरिवानुकुर्वतीम्** ( कादम्बरी )—कालिमामे भगवान् हरि से मिलती जुलती हुई सी।

**सर्वाभिरन्याभिः कलाभिरनुचकार तं वैशपायन** : ( कादम्बरी ) —वैशम्पायन अन्य सभी कलाओ मे उससे मिलता जुलता था।

**शैलाधिपस्यानुचकार लक्ष्मीम्** ( भट्टि०२।८ )—पर्वताधिपति हिमालय के ऐश्वर्य से मिलता जुलता था।

१९१—'सौदा का लेन देन करना' या 'जुआ में लगा देना'—इन अर्थों का बोध कराने वाली 'व्यवहृ' और 'पण्' धातुओं के योग मे इनके कर्म मे षष्ठी होती है, जैसे, शतस्य व्यवहरण-पणनम् ( सि० कौ० )—सैकड़ों का लेन देन करना । प्राणानामपणिष्टासौ ( भट्टि० ८। १२१ )—उसने प्राणों की बाजी लगा दी।

परन्तु द्वितीया का प्रयोग बहुत ज्यादा मिलता है, जैसे, पणस्व कृष्णा पाञ्चालीम् ( महाभारत २। ६५। ३२)।

(क) जब 'दिव्' धातु इसी अर्थ मे आती है, तो उसके योग मे भी कर्म मे षष्ठी होती है, जैसे, शतस्य दीव्यति ( सि० कौ० )।

परन्तु जब दिव्' धातु उपसर्गपूर्वक रहती है तब षष्ठी या द्वितीया कोई भी आ सकती है, जैसे, शतस्य शतं वा प्रतिदीव्यति ( सि० कौ० )

## अभ्यास

१—तस्या पंडितकौशिकया सहिताया समक्षमेव न्याय्यो व्यवहारः। ( मालविका १ )।

२—श्वापदानुसरणैर्मम गात्राणामनीशोऽस्मि संवृत्तः ( शकुं २ )।

३—कथं मामेकाकिनीं त्यक्त्वार्यपुत्रो गतः। भवतु कोपिष्यामि यदि तं प्रेक्षमाणात्मनः प्रभविष्यामि। ( उत्तर० १ )।

४—अयि भागीरथीप्रसादाद्वनदेवतानामप्यदृश्यासि संवृत्ता। (उत्तर३)

५—हा देवि स्मरसि वा तस्य प्रदेशस्य तत्समयविश्रंभातिशयप्रसंगसाक्षिणः। ( उत्तर० ६ )।

---

१—व्यवहृपणोः समर्थयोः। दिवस्तदर्थस्य। विभाषोपसर्गे। २। ३। ५७, ५८, ५९।

६—एवमवस्थिते यदत्रावसरप्राप्तमीदृशस्य चानुरागस्य सदृशमस्मदागमनस्य चानुरूपमात्मनि समुचित तत्र प्रभवति देवीत्यभिधाय मन्मुखासक्तदृष्टि कपिंजलस्तूष्णीमासीत्। ( कादम्बरी )।

७—धिङ् मा दुष्कृतकारिणी यस्या कृते तवेयमीदृशी दशा वर्तते (कादम्बरी)।

८—हा दयित माधव परलोकगतोपि स्मर्तव्यो युष्माभिरयं जन । न खलु स उपरतो यस्य वल्लभो जन स्मरति । (मालती० ५)।

९—कापि महती वेला वर्तते तवादृष्टस्य । तदनया सहैवागच्छ । (कादम्बरी)।

१०—अहं हि सम्मतो राज्ञो य एव मन्यते कुधी ।
बलीवर्द स विज्ञेयो विषाणपरिवर्जित ॥ (पचतंत्र१। १०)

११—शरीरस्य गुणाना च दूरमत्यन्तमंतरम्।
शरीरं क्षणविध्वसि कल्पांतस्थायिनो गुणाः ॥ (हितोप०१)

१२—अर्थानामीशिषे त्व वयमपि च गिरामीश्महे यावदर्थम्
( भर्तृ० वैराग्य० श्लोक ३० )

१३—समरशिरसि चञ्चत्पंचचूडश्चमना-
मुपरि शरतुषारं कोप्ययं वीरपोत (किरति)। (उत्तर०५)

## अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—स राजा मनसि धर्मेण कोपे यमेन प्रतापे वह्नि ना मुखे शशिना प्रज्ञाया सुरगुरुणा तेजसि सवित्रा च वसता सर्वदेवमयस्य प्रकटितविश्वरूपाकृतेरनुकरोति भगवतो नारायणस्य। ( कादम्बरी)

२—नियतमिह सर्वात्मना कृतावस्थितिना भगवता परिभूतकलिकालविलसितेन धर्मेण न स्मर्यते कृतयुगस्य। ( कादम्बरी )

३—उदेति पूर्वं कुसुम तत फलं घनोदयः प्राक् तदनतर पय.।
निमित्तनैमित्तिकयोरय क्रमस्तव प्रसादस्य पुरस्तु सपद ॥ ( शकु ७ )

४—शबूको नाम वृषल पृथिव्यां तप्यते तप
शीर्षच्छेद्य. स ते राम त हत्वा जीवय द्विजम् ॥ ( उत्तर०१ )

५—अपीप्सित क्षत्रकुलागनाना
न वीरसूशब्दमकामयेताम् । ( रघु०१४।४ )

-वाच्यस्त्वया मद्वचनात्स राजा वह्नौ विशुद्धामपि यत्समक्षम् ।
मा लोकवादश्रवणादहासी श्रुतस्य किं तत्सदृश कुलस्य ॥ ( रघु०१४।६१ )

७—देव्या शून्यस्य जगतो द्वादश परिवत्सर ।
प्रनष्टमिव नामापि न च रामो न जीवति ॥ ( उत्तर०३ )

८—अयं मैथिल्यभिज्ञान काकुत्स्थस्यागुलीयक ।
भवत्या स्मरतात्यर्थमर्पित सादर मम ॥ ( भट्टि०८।११८ )

९—पुर. प्रवेशमाश्चर्यं बुद्ध्वा शाखामृगेण सा ।
चूडामणिमभिज्ञान ददौ रामस्य समतम् ॥
रामस्य शयितं भुक्त जल्पित हसित स्थितम् ।
प्रक्रात च मुहुः पृष्ट्वा हनूमत व्यसर्जयत् ॥ ( भट्टि०८।१२४,१२७ )

१०—त दृष्ट्वाऽचिंतयत्सीता हेतो· कस्यैष रावण.।
अवरुह्य तरोरारादेति वानरविग्रहः ॥
उत्तराहि वसन् राम· समुद्राद्रक्षसां पुरम् ।
अवैल्लवणतोयस्य स्थिता दक्षिणत· कथम् । ( भट्टि०८।१०४,१०७ )

## संस्कृत में अनुवाद कीजिये—

१—नवयुवक को बडे गौर से देखती हुई स्त्रियाँ मुश्किल से अपने आपको अपने वश मे कर सकीं ( ईश् )।

२—यदि मनुष्य सभी कार्यों मे पशुओं की नकल करे ( अनु + कृ ) तो दोनों मे क्या अन्तर है ।

३—मित्र, निराश मत होओ, जिसके लिए ( कृते ) तुम इतने दुखी हो वह स्वय तुम्हारे पास जल्दी ही आवेगी ।

४—गृहस्थी का सारा काम पुत्रों को सौंप कर जगल मे निवास करने वालों को जो सुख होता है उसके बराबर दूसरा कोई सुख नहीं ।

५—क्या तुम्हारा यह कार्य उस उच्चकुल के उपयुक्त है जिसमे तुम पैदा हुए हो ?

६—मेरे गुरुजनों की आज्ञा केवल मेरे शरीर पर काबू कर पावेगी ( प्र+भू ), परन्तु मेरे मन तथा उसके कार्यो पर नहीं ।

७—बहुत दिनो तक माता से दूर हटाए जाने के कारण बच्चा बारबार उसे याद करता है ।

८—इस पर्वत के उत्तर ( उत्तरत· ) हरी घास से ढका हुआ एक विस्तृत प्रदेश है जो कि दर्शको के नेत्र को करीब करीब मोहित कर लेता है ।

९—समस्त राजमन्त्रियो के सामने ( समक्ष ) अनुचर ने राजा से जो कहानी कही उसने उस ( राजा ) के हृदय मे स्थान प्राप्त कर लिया ।

१०—इधर सामने ( पुर ) हड्डियो की एक बड़ी राशि, और उधर पेड़ो के तले मास के अनेक टुकडे । यह क्या हो सकता है ?

११—सुषेण के राज्य में प्रजा का हर एक आदमी समझता था कि मै राजा से पूजा तथा माना जाता हूँ ।

१२—प्रजाओं को अच्छे लगने वाले गुणो के कारण आप अपने पिता के अनुरूप होवें ।

१३—मालविका को देखने के लिए गई हुई देवी जी को बहुत समय हो गया ।

१४—यह राजा भृत्यों द्वारा सेव्य है, और 'नर पाल' की पदवी इन्हे पूर्णतः शोभा देती है ।

१५—सज्जनों के साथ मैत्री करने के समान ( सदृश ) ससार मे और कोई चीज नही ।

१६— बुद्धिमान् विद्यार्थियो को उत्तम पुस्तके सुन्दर सुन्दर वस्त्रो की अपेक्षा अधिक प्रिय लगती हैं ।

१७—धर्म-निष्ठ ब्राह्मण को दिन मे तीन बार सन्ध्योपासन करना चाहिए और सूर्यास्त के पूर्व एक ही बार भोजन करना चाहिए ।

१८—राम सीता को प्राणो से भी अधिक प्रिय थे ।

# एकादश पाठ

## भावे षष्ठी तथा सप्तमी

१२०—'जब शत्रन्त अथवा शानजन्त पद का लिग, वचन और कारक, क्रिया के कर्ता से भिन्न किसी अन्य कर्ता के अनुरूप होता है, तब वह वाक्याश ( Phiase ) 'भावे' कहलाता है'—बेन। जिस उपवाक्य मे स्वतत्र वाक्याश रहता है, उसकी साधारण रचना से उस(स्वतत्र)वाक्याश का कोई सम्बन्ध नही रहता, जैसे, वायु के अनुकूल होने के कारण जहाज ने प्रस्थान कर दिया।

'भावे वाली विभक्ति भिन्न भिन्न भाषाओ मे भिन्न भिन्न होती है। अँगरेजी मे भाव विभक्ति प्रथमा होती हैं, लेटिन भाषा मे **पञ्चमी** होती है; और सस्कृत मे **षष्ठी** तथा **सप्तमी**।

यदि आश्रित उपवाक्य का कर्ता प्रधान उपवाक्य मे सज्ञापद के रूप मे अथवा उस सज्ञा के स्थानापन्न सर्वनामपद के रूप मे न आता हो तो, स्वतत्र-वाक्याश ( भाव-वाला प्रयोग ) काम में लाया जा सकता है। इस वाक्य को लीजिए—लका को ले लेने पर राम अयोध्या को लौटे। यहाँ दोनो उपवाक्यो का कर्ता एक ही है, इसलिए यहाँ स्वतत्र वाक्याश ( भाव प्रयोग ) नही रक्खा जा सकता। इस वाक्य का अनुवाद इस प्रकार होगा

**लका गहीत्वा ( अथवा गृहीतलक ) रामोऽयोध्या निववृते।**

परन्तु यदि वाक्य इस प्रकार हो—बन्दरों के लंका ले लेने पर राम अयोध्या को लौटे—तो स्वतंत्र-वाक्यांश ( Absolute phrase ) का प्रयोग करके इसका अनुवाद इस प्रकार किया जा सकता है:—**कपिभिर्गृहीतायां लंकायां रामोऽयोध्यां निववृते अथवा कपिषु लंकां गृहीतवत्सु रामोऽयोध्यां निववृते।**

**टिप्पणी**—इन स्वतंत्र प्रयोगों को बनाने के लिए शत्रन्त तथा शानजन्त पदों के कर्ता को षष्ठी अथवा सप्तमी में रखना चाहिए और शत्रन्त तथा शानजन्त पद का लिंग, वचन और कारक वही होना चाहिए जो उनके कर्ता का हो।

१७१[1]—जिस कार्य विशेष के होते रहने पर या हो चुकने पर किसी दूसरे कार्य का होना पाया जाता है, वह सप्तमी में रक्खा जाता है। ऐसी दशा में पहिले कार्य का समय ज्ञात रहता है, परन्तु दूसरे कार्य का समय ज्ञात नहीं रहता, इस दूसरे कार्य का समय पहिले के आधार पर निर्धारित किया जाता है, जैसे,

**कः पौरवे वसुमतीं शासति अविनयमाचरति** (शकुं ६)—पौरव के शासन करते हुए कौन धृष्टतापूर्ण आचरण कर रहा है।

**वचस्यवसिते तस्मिन् ससर्ज गिरमात्मभूः** ( कुमार० २।५३ )—उस वचन के समाप्त हो जाने पर आत्मभू (ब्रह्मा) ने वाणी उच्चारण की।

**क एष मयि स्थिते चन्द्रगुप्तमभिभवितुमिच्छति** ( मुद्रा० १ )—मेरे जीते जी चन्द्रगुप्त को कौन दबाना चाहता है।

१७२[2]—जिसका अनादर या तिरस्कार करके कोई कार्य किया जाता है उसमें षष्ठी होती है, जैसे,

**नन्दाः पशव इव हताः पश्यतो राक्षसस्य** ( मुद्रा० ३ )—राक्षस के देखते देखते नन्दवंशवाले पशु के समान मार डाले गए।

---

१—यस्य च भावेन भावलक्षणम्। २। ३। ३७।

२—षष्ठी चानादरे। २। ३। ३८।

पश्यतोऽपि मे श्येनेनापहृतः शिशु ( पचतत्र १।२१ )—

१२३—'जब' के अर्थ मे सप्तमी अथवा षष्ठी कोई भी आ सकती है, परन्तु साधारणतया षष्ठी का जो अर्थ हुआ करता है उस अर्थ मे नही, जैसे, एव तयो परस्पर वदतो' स राजा शयनमासाद्य प्रसुप्तः ( पचतत्र )—जब वे दोनो इस प्रकार बाते कर रहे थे, तब राजा अपने शयन पर आकर सो गया।

**विशेष**—जब किसी स्वतत्र-वाक्याश में 'रहते' आता है, तो सस्कृत में उसका अनुवाद नही किया जाता, वह छोड दिया जाता है और उसकी जगह दो विशेष्य ( Substantive ), अथवा एक विशेष्य और एक विशेषण साथ साथ स्वतत्र रूप से 'भावे'-विभक्ति (absolute case) में रक्खे जाते हैं, जैसे, नाथे कुतस्त्वय्यशुभं प्रजानाम् (रघु० ५।१३)—तुम्हारे राजा रहते हुए, प्रजाओ का कोई भी अनिष्ट कैसे हो हकता है।

१२४—सेक्शन १२२ मे बताया गया है कि'अनादर'मे षष्ठी का प्रयोग किया जाता है। परन्तु कभी कभी षष्ठी अथवा सप्तमी—दोनों मे से कोई भी आ सकती है, जैसे, रुदति पुत्रे रुदतो वा पुत्रस्य पिता प्राव्राजीत् ( सि० कौ० )—पुत्र के रोते रहने पर भी पिता सन्यासी हो गया।

( क ) 'ज्योही' 'ऐसा हुआ नही था कि', 'मुश्किल से ऐसा हुआ था कि इतने ही मे' 'जिसी क्षण'—इन अर्थो का बोध कराने के लिए सप्तमी आती है और सप्तमी के बाद मे 'एव' जोड़ दिया जाता है, अथवा शत्रन्त, शानजन्त पद का 'मात्र' के साथ समास करके, पूरे समस्त पद को सप्तमी में रखते हैं और उसके साथ कभी 'एव' को जोड देते हैं, और कभी कभी नही भी जोडते, जैसे,

अनवसितवचन एव मयि महानाशीविष उदैरयत् शिर. ( दश० २।४ )—जिसी क्षण मेरी बात समाप्त हुई, एक बडे साँप ने अपना सिर उठाया।

**अप्रभातायामेव रजन्याम्** ( मुद्रा० १ )—मुश्किल से अभी प्रातः-काल हो पाया था कि।

**प्रविष्टमात्र एव तत्रभवति निरुपप्लवानि नः कर्माणि संवृत्तानि** ( शकु ३ )—ज्योंही श्रीमान् ने प्रवेश किया, त्योंही हम लोगो के सारे कार्य विघ्नरहित हो गए।

**टिप्पणी**—अन्य विभक्ति के साथ भी जुड कर 'मात्र शब्द एव-रहित या एव-सहित उपर्युक्त अर्थ का बोधक होता है, जैसे, **जातमात्र न य. शत्रु व्याधि च प्रशम नयेत्** ( पचतत्र ३।१ )—शत्रु और बीमारी को पैदा होते ही जो पुरुष दबा नहीं देता ।

( ख ) कभी कभी शत्रन्त अथवा शानजन्त शब्दो का अव्ययो के साथ सयोग हो जाता है, जैसे, **एव गत** ( शकु ४ ) –ऐसी परिस्थिति मे, ऐसी परिस्थिति होने पर। **तथानुष्ठिते** ( हितोप० ३ ,—ऐस. कर लिए जाने पर। एवम्, इत्थम्, तथा, इति—इत्यादि ऐसे अव्यय है जो शत्रन्त और शानजन्त शब्दो के साथ प्राय जुडे हुए मिलते हैं।

१२५[1]— स्वतत्र वाक्यांशो (absolute phrases) मे कर्ता या कर्म कोई भी प्रधान उपवाक्य मे, षष्ठी के अतिरिक्त और किसी विभक्ति मे न तो

---

१—इस विषय मे वैयाकरणो ने कुछ भी सम्मति नही प्रकट की है। तथापि मै समझता हूँ कि इस प्रकार का प्रयोग निश्चित रूप से प्रामाणिक समझा जा सकता है। इसके पक्ष मे तीन बाते है—

( १ ) स्वतत्र वाक्यरचना ( absolute construction ) के जो लक्षण बताए जाते है उनसे यह बात प्रमाणित हो जाती है।

( २ ) दूसरे अनेक लब्धप्रतिष्ठ सस्कृत लेखको के प्रयोगो से भी यह बात प्रमाणित हो जाती है।

सज्ञारूप मे न सर्वनामरूप में दुबारा आ सकता है। जब कर्ता या कर्म या उनके स्थानापन्न सर्वनाम को प्रधान वाक्य मे दुहराना अभीष्ट हो तब स्वतत्र वाक्याश नही बनाना चाहिए, प्रत्युत सारे वाक्य को एक मान कर उसका अनुवाद शत्रन्त अथवा शानजन्त शब्दो द्वारा करना चाहिए, जैसे, गोषु 'दुह्यमानासु ता जलमपाययतन कह कर दुह्यमाना गा जलमपाययत्' कहना चाहिए।

'आगतेषु विप्रेषु तेभ्यो दक्षिणां देहि' इतना मुहावरेदार प्रयोग नही है जितना 'आगतेभ्यो विप्रेभ्यो दक्षिणां देहि'। 'आपणात् पात्रे समानीते तस्मिन्नन्न पचामि—यह इतना अच्छा प्रयोग नही है जितना आपणात् समानीते पात्रे अन्न पचामि'।

---

( ३ ) तीसरे, लेटिन-जैसी अन्य क्लैसिकल भाषाओ मे भी इसी प्रकार के प्रयोग पाए जाते ह।

लक्षण मे स्पष्टतया कहा गया है कि स्वतत्र वाक्याश ( absolute phrase) का कर्ता प्रधान वाक्य मे किसी भी हालत मे नही आना चाहिए।

दूसर, सस्कृत-लेखको के लेखो मे स्वतत्र वाक्याश ( absolute construction ), क जो अनेक उदाहरण मिलत ह उनमे ऐसे प्रयोग बहुत कम ह जिनमे कर्ता या कम प्रधान वाक्य मे, षष्ठी के अतिरिक्त अन्य किसा विभक्ति म दुबारा आया हा।

जिस प्रकार 'महाबली' कहना अनुचित हे, और 'महाबल.' कहना ठीक हे, उसी प्रकार ' दुह्यमाना गा जलमपाययत् 'गोषु दुह्यमानासु ता जलमपाययत्' की अपेक्षा अधिक सक्षिप्त और शुद्ध है और इसीलिए अधिक मुहावरेदार है।

तीसरे, लैटिन मे भी भावविभक्ति (absolute case) इसी ढग की होती है।

इसी प्रकार 'सारगे एव विचारयति स सारग.) व्याधेन हत'— यह प्रयोग उतना मुहावरेदार नही है जितना एव विचारयन् सारगो व्याधेन हत.।

इसी प्रकार 'ताडयतोऽपि स्वामिनस्तस्मै भृत्या न कुप्यन्ति' बुरा प्रयोग है, और ताडयतेऽपि स्वामिने भृत्या न कुप्यन्ति अच्छा प्रयोग है ।

परन्तु 'मदने हरेण दग्धे तस्य पत्नी विवशा बभूव, अथवा 'मृतेऽस्मिन् राज्ञि तस्य पुत्रो राज्यमधिगमिष्यति' सर्वथा सुन्दर प्रयोग है।

## अभ्यास

१—अलमलमुपालम्भेन । पत्तने विद्यमानेऽपि ग्रामे रत्नपरीक्षा (मालविका० १)।

२—इदमवस्थातर गते तादृशेऽनुरागे किं वा स्मारितेन (शकु० ५)

---

यद्यपि सस्कृत-वैयाकरणो ने इस विषय मे कोई भी सम्मति प्रकट नही की है, तथापि उपर्युक्त तीनो बातो से यही निष्कर्ष निकलता है कि जो अधिक सक्षिप्त और मुहावरेदार होता है वह उसकी अपेक्षा अधिक शुद्ध है जिस पर वैयाकरणो ने कोई भी सम्मति नही प्रकट की है, न कोई आक्षेप अथवा आपत्ति प्रकट की है। दक्षिण-प्रान्त-निवासी मेरे एक मित्र ने "नारायणीयम्" नामक ग्रन्थ की ओर मेरा ध्यान आकृष्ट किया है। यह ग्रन्थ श्रीभागवतपुराण का सक्षिप्त सस्करण है। इस ग्रन्थ के प्रणेता ने ऊपर उल्लिखित नियम की सर्वथा अवहेलना की है। मेरे मित्र ने अपने कथन की पुष्टि के लिए दो तीन उदाहरण भी दिए हैं। मेरे विचार मे, ऐसे प्रयोग अशुद्ध और गैरमुहावरेदार हैं। इस प्रकार के अपर्याप्त प्रमाणों के आधार पर मैं इस नियम मे सशोधन अथवा परिवर्तन करने के लिए तैयार नहीं हूँ।

३—मा तावदनात्मज्ञे देवेन प्रतिषिद्धे वसंतोत्सवे त्वमाम्रकलिकाभंगं किमारभसे ( शकुं० ६ ) ।

४—अभिव्यक्तायां चन्द्रिकायां किं दीपिकापौनरुक्त्येन । ( विक्रमो० ३ ) ।

५—आर्ये आत्रेयि, अथ तस्मादरण्यात् परित्यज्य गते लक्ष्मणे सीतादेव्या किं वृत्तमित्यस्ति काचित् प्रवृत्तिः (उत्तर० २) ।

६—हा कष्टमरुन्धती-वसिष्ठाधिष्ठितेषु रघुकुटुम्बकेषु जीवतीषु च प्रवृद्धासु राज्ञीषु कथमिदमापतितम् । (उत्तर० २) ।

७—अत्रान्तरे शक्तिखण्डमर्षितेन गांडीविनैव भणितम् । अरे दुर्योधन-प्रमुखा कुरुबलसेनाप्रभवः अरे अविनयनदीकर्णधार कर्ण युष्माभिर्मम परोक्षे एकाकी पुत्रकोऽभिमन्युर्व्यापादितः । अहं पुनर्युष्माकं प्रेक्षमाणानामेनं कुमारवृषसेनं स्मर्तव्यशेषं नयामि । ( वेणी०४ )

८—कुतो धर्मक्रियाविघ्नः सतां रक्षितरि त्वयि ।
तमस्तपति गर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति ।। (शकुं०)

९—मनोरथस्य यद्बीजं तद्दैवेनादितो हतम् ।
लतायां पूर्वलूनायां प्रसूनस्यागमः कुतः ।। (उत्तर०५) ।

१०—सा सीतामंकमारोप्य भर्तृप्रणिहितेक्षणाम् ।
मामेति व्याहरत्येव तस्मिन्पातालमभ्यगात् ।।(रघु०१५।८४)

## अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—राजा देवीमुखेन दुहितरमुवाच । पुत्रि, त्वयि दुहितरि स्थितायां किमेवं युज्यते यत्सर्वे पार्थिवाः मया सह विग्रहं कुर्वन्ति । ( पंचतन्त्र १।५)

२—अथ कदाचिदवसन्नायां रात्रावस्ताचलचूडावलंबिनि भगवति कुमुदिनीनायके चंद्रमसि लघुपतनको नाम वायसो व्याधमपश्यत् (हितोप०१) ।

३—विकारहेतौ सति विक्रियते

येषा न चेतासि त एव धीरा । (कुमार०१।५९)

४—अनपायिनि संश्रयद्रुमे गजभग्ने पतनाय वल्लरी । (कुमार०४।३१)

५—यस्मिञ्जीवति जीवति बहव सोऽत्र जीवति ।
वयासि किं न कुर्वंति चञ्चा स्वोदरपूरणम् ।। (पचतत्र १।१)

६—दर्शितभयेऽपि धातरि धैर्यध्वमो भवेन्न धीराणाम् ।
शोषितसरसि निदाघे नितरामेवोद्धत सिधु ।। (पचतन्त्र १।२)

७—गुणवत्तरपात्रेण छाद्यते गुणिना गुणा ।
रात्रौ दीपशिखाकांतिर्न भानावुदिते सति ।। (पचतत्र १।१६)

८—सतानवाहीन्यपि मानुषाणां दु खानि सद्बधुवियोगजानि ।
दृष्टे जने प्रेयसि दु सहानि स्रोत सहस्रैरिव सप्लवते ।। (उत्तर०४)

९—पचभिर्निर्मिते देहे पचत्व च पुनर्गते ।
स्वा स्वा योनिमनुप्राप्त तत्र का परिदेवना ।। (हितोप०४)

१०—सर्वत्र नो वार्तमवेहि राजन्नाथे कुतस्त्वय्यशुभ प्रजानाम् ।
सूर्ये तपत्यावरणाय दृष्टे कल्पेन लोकस्य कथ तमिस्रा (रघु०५।१३)

११—तस्मिन् ह्रद सहितमात्र एव क्षोभात्समाविद्धतरगहस्त ।
रोधासि निघ्नन्नवपातमग्न करीव वन्या परुष ररास ।। (रघु०१६ ७८)

१२—जीवत्सु तातपादेषु नवे दारपरिग्रहे ।
मातृभिश्चित्यमानाना ते हि नो दिवसा गता ।। (उत्तर०१)

१३—त्वय्युत्कृष्टबलेऽभियोक्तरि नृपे नदानुरक्ते पुरे
चाणक्ये चलिताधिकारविमुखे मौर्ये नवे राजनि ।
स्वाधीने मयि मार्गमात्रकथनव्यापारयोगोद्यमे
त्वद्वाछातरितानि सप्रति विभो तिष्ठति साध्यानि व ।। (मुद्रा०४)

१४—अस्त्रज्वालावलीढप्रतिबलजलधेरतरौर्वायमाणे
सेनानाथे स्थितेऽस्मिन्मम पितरि गुरौ सर्वधन्वीश्वराणाम् ।
कर्णाल सभ्रमेण व्रज कृप समर मु च हार्दिक्य शका
ताते चापद्वितीये वहति रणधुर को भयस्यावकाश ।। (वेणी०३)

**संस्कृत में अनुवाद कीजिए—**

[ ध्यान रहे कि "भावे सप्तमी" या "भावे षष्ठी" के द्वारा ही अनुवाद होना चाहिए। ]

१—देवताओं के देखते रहने पर भी लोग दुष्कर्म करते हैं।

२—दारिद्रता रूपी हाथी के द्वारा आत्म सम्मान रूपी वृक्ष के काट दिए जाने पर गुणरूपी सारे पक्षी उड जाते हैं।

३—जब विपत्तियाँ बिल्कुल समीप आ जाती हैं तो मित्र भी शत्रु हो जाते हैं!

४—ज्योंही चित्रकार चित्र को समाप्त कर ले, त्योंही मुझे बुलाने के लिए आ जाना।

५—ज्योंही ऋषि ने इन शब्दो का उच्चारण किया, त्योंही क्षणभर में वह सुन्दर अप्सरा पत्थर मे परिणत हो गई।

६—जब सकट का कारण इतना दूर है तो तुम रोग का व्याज करके क्यो कहते हो कि मै आप लोगो के साथ नही चल सकूँगा।

७—जब यह दु खद समाचार उन लोगो के कान तक पहुँचा तो उन्हे महान् दुःख हुआ।

८—मै नही जानता कि माता द्वारा निर्दयतापूर्वक त्याग दिए जाने के बाद उस बालक की क्या दशा हुई।

९—इन्ही तथा इन्ही-जैसे व्यथाकर विचारो से मन के व्याप्त रहने के कारण उसने निद्राहीन रात्रि व्यतीत की।

१०—ज्योंही उस चीज पर बाण छोडा गया त्योंही उसने उस दिशा मे एक करुण क्रन्दन की आवाज सुनी।

११—द्युतिमान् दिक्पालों के रहते हुये भी दमयन्ती नल को ही पतिरूप मे चाहती है।

१२—ऐ, बलकी डींग मारने वाले अधमो, तुम्हे धिक्कार है। हम सौ भाइयों के जीते जी कौन हमारे भाई की परछाईं भी लाँघ सकता है।

१३—उदय होते हुए चन्द्रमा के द्वारा तमोराशि (तमः पुञ्ज) हटा दिए जाने पर पूर्व दिशा मेरे नेत्रों को आकृष्ट कर रही है।

१४—कैदी (बन्दी) के प्राणों की रक्षा के लिये मेरे प्रार्थना करने पर भी राजा ने उसके वध की आज्ञा दी।

१५—जब मृत्यु निश्चित है तो भाग कर (भगदड का आश्रय लेकर) क्यो अपनी कीर्ति को मलिन करते हो।



# तृतीय भाग

## व्याकरण में आने वाले शब्दों और रूपों का अर्थ

# द्वादश पाठ

## सर्वनाम

### पुरुषवाचक सर्वनाम

१२६—पुरुषवाचक सर्वनामो के प्रयोग के विषय मे कोई विशेष बात नहीं होती। क्रियाओं और परसर्गो के योग मे पुरुषवाचक सर्वनामो में वेही नियम लागू होते हैं जो सज्ञाओं में, जैसे, अहं त्वां प्रार्थये ( मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ )। त्वया विना सोऽपि समुत्सुको भवेत् ( विक्रमो० १ )।

१२७—'अस्मद्' और 'युष्मद' के वैकल्पिक रूपो की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। ये रूप ये हैं—मा, मे, नौ, नः, त्वा, ते, वां, वः। इनका प्रयोग निम्नलिखित दशाओ मे निषिद्ध है—

(अ) वाक्य के प्रारम्भ मे।

(आ) च, वा, एव, हा, अह, ह—इनके ठीक पूर्व मे।

(इ) श्लोक के चरण के प्रारभ मे।

'मे मित्रम्', 'नः पाहि' 'वा सख्यम्'—ये प्रयोग अशुद्ध हैं। तस्य च मम च (न कि 'मे च') वैरमस्ति—उसकी और मेरी शत्रुता है। **तस्य मम वा गृहम्** ('न कि मे वा')। **इदं पुस्तकं ममैव** (न कि 'मे एव')। **हा मम मन्दभाग्यम्** (नकि 'मे मन्द भाग्यम्')। **वेदैरशेषैः संवेद्योऽस्मान्कृष्णः सर्वदाऽवतु** (सि० कौ०)—समस्त वेदों के द्वारा ज्ञातव्य श्रीकृष्ण भगवान् हम लोगो की सर्वदा रक्षा करे।

(क) जब ये वैकल्पिक रूप 'च' 'वा' 'एव' इत्यादि से जुडे हुये नहीं होते तो उनका प्रयोग इन अव्ययो के साथ हो सकता है, जैसे, **हरो हरिश्च मे स्वामी** (सि० कौ०)—हर और हरि मेरे स्वामी हैं **किवा मे पुत्री करोतु**—मेरी पुत्री क्या करे।

(ख) सम्बोधन के ठीक अनन्तर ये वैकल्पिक रूप नहीं आ सकते, जैसे, **वयस्य, मम गृहमेतत्** (सि० कौ०) (न कि 'मे गृहमेतत्')। "देवास्मान् पाहि सर्वदा" ठीक प्रयोग है, "देव नः पाहि सर्वदा" अशुद्ध प्रयोग है। इसका अर्थ है—"हे भगवन्, सर्वदा हम लोगों की रक्षा कीजिये।' वास्तव मे, सम्बोधन एक सक्षिप्त वाक्य है।

(ग) यदि सम्बोधनपद के परे उसका विशेषण लगा रहे तो ये वैकल्पिक रूप प्रयोग मे आ सकते हैं, जैसे **हरे दयालो, नः पाहि** (सि० कौ०)—ऐ दयालु हरि, मेरी रक्षा करो।

१२८—जिसको सम्बोधित करके बातचीत की जाती है उसके प्रति, शिष्टाचार दर्शाने के लिये 'भवत्' शब्द प्रयोग मे लाया जाता है। ऐसे प्रयोग मे यह आवश्यक नही है कि सबोधित व्यक्ति के प्रति आदर दिखाया जा रहा है। इस दशा मे 'भवत्' शब्द प्रथमपुरुष (अन्य पुरुष) होता है और उसके साथ प्रथमपुरुष की क्रिया आती है जैसे, **अथवा कथं भवान् मन्यते** (मालविका० १)—या आप क्या समझते हैं। **वयमपि भवत्यौ किमपि पृच्छामः**—मै भी आप लोगों से कुछ पूछता (पूछती) हूँ।

१२९—जब आदर सूचित करना होता है तो 'भवत्' और 'भवती' के पहिले अत्र', 'तत्र', 'स ' रख देते हैं। आसन्नवर्ती व्यक्ति का बोध कराने के लिए अत्रभवान्' और 'अत्रभवती' का प्रयोग होता है और 'दूरवर्ती अथवा अनुपस्थित व्यक्ति का बोध कराने के लिए 'तत्रभवान्' और 'तत्रभवती' का, जैसे क्व तत्रभवती कामंदकी—पूज्य कामन्दकी देवी कहाँ हैं. आदिष्टोऽस्मि तत्रभवता काश्यपेन ( शकु० ४ )—पूज्य काश्यपजी ने मुझे आदेश दिया है। अपेहि रे अत्रभवान् प्रकृतिमापन्न ( शकु० ७ )—अरे हटो, यह सम्माननीय सज्जन होश मे आ गए है। मां सभवान् नियुङ्क्ते ( मालती०१ )—मुझको वह श्रीमान् जी नियुक्त कर रहे हैं।

टिप्पणी—['स' का यह प्रयोग अशुद्ध मालूम पडता है। जैसे अत्र' और 'तत्र' भवत्' के पूर्व प्रयुक्त हुए हैं उस प्रकार से 'स' का प्रयोग नही मालूम पड़ता। 'सभवता—जैसा प्रयोग कही नही मिलता। ऊपर मालतीमाधव मे जो उदाहरण दिया गया है उसमे 'स' को 'भवान्' से अलग समझना और पढना चाहिए।

## संकेतवाचक सर्वनाम

१३०—संकेतवाचक सर्वनाम तीन होते हैं, इदम् या एतद् जिसका अर्थ होता है—यह तद्—वह, अदस्—यह या वह। ये जिन संज्ञाओं से सम्बद्ध होते है उनके साथ भी प्रयुक्त होते हैं और अकेले भी, जैसे, एष नृपः, स पुरुषः, तद् गृहम्, स आह, एष मे किंकरः, इदं नो गृहम्, असौ विद्याधरः।

१३१—"यह देखिए मै आता हूँ", "वह देखिए, लडका आता है"—इस प्रकार के वाक्यो मे इदम् और एतद् के रूप "यह देखिये" और "वह देखिए" के अर्थ मे प्राय. उत्तम पुरुष और अन्य पुरुष के साथ प्रयुक्त होते हैं और जैसे सामान्य विशेषणों के लिंग, वचन, कारक

विशेष्य के अनुरूप होते हे उसी प्रकार इनका लिंग, वचन और कारक वाक्य के कर्ता के अनुरूप होता है , जैसे, **आर्यपुत्र इयमस्मि** ( शकु १ ), **इयमहमारोहामि** ( उत्तर० १ ), **अयमागच्छामि** ( शकु ३ ), **इय सा जातिः परित्यक्ता** ( वेणी० ३ )

१३२—तद् के रूपो का प्रयोग प्राय "प्रसिद्ध", "सुविख्यात" के अर्थ मे होता है , जैसे, **सा रम्या नगरी** ( भट्टि० ३।२७ )—वह प्रसिद्ध रमणीक नगरी । **सामन्तचक्रं च तत्** ( भट्टि० )—सामन्तो ( करद राजाओ ) का वह सुप्रसिद्ध मंडल ।

(क) तद् का प्रयोग प्राय 'एव' के साथ "वही" या "उसी" के अर्थ मे होता है , 'एव' साधारणतया प्रत्यक्षरूप मे और कही कहीं पर अप्रत्यक्षरूप मे रहता है, जैसे, **तानिन्द्रियाणि सकलानि** ( भर्तृहरि० २।४० )—सारे शरीर के अवयव वेही रहते हैं । **तदेव नाम** (भर्तृहरि०) —नाम भी वही रहता है। **एते त एव गिरयः** ( उत्तर० ३ )—ये वेही पर्वत हैं । **तदेव पंचवटीवनम्** ( उत्तर० ३ )—पञ्चवटी का वन वही है ।

(ख) जब तद् के रूप दुहरा कर प्रयुक्त होते हैं तो उसका अर्थ होता है "कई" अथवा "भिन्न भिन्न" जैसे, **तेषु तेषु स्थानेषु** ( काद० )—भिन्न भिन्न स्थानो मे ।

## सम्बन्धवाचक सर्वनाम

१३३—जब यद् शब्द का रूप दुहराया रहता है तो उसका अर्थ होता है—सब, सम्पूर्ण, जो कुछ , और यद् का सबन्धी सर्वनाम भी दुहराया जाता है , जैसे —**क्रियतां यद्येषा कथयति** ( उत्तर० १ )—जो कुछ भी यह कहती है, वह सब मै करूँगा । **यो यः शस्त्रं बिभर्ति...क्रोधान्ध स्तस्य तस्य स्वयमिह जगतामन्तकस्यान्तकोऽहम्** ( वेणी०३ )—जो कोई भी शस्त्र धारण करते हैं, उन सबो का, मै संहारकर्ता हूँ चाहे वह ससार के नष्ट करने वाले यमराज ही क्यो न हो ।

य य प पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीन वच. ( भर्तृ हरि० २।५१ ) ।

(क) अपि, चित्, चन के सहित अथवा इनसे रहित किम् के रूपो के साथ यद् के रूपो को जोडकर 'जो कोई भी'' वा ''जिस किसी भी'' का अर्थ प्रकट करते हैं, जैसे, एतादृशी रूपवती कन्या यस्मै कस्मैचित् न दातव्या—ऐसी सुन्दर लडकी जिस किसी को भी नही दे देना चाहिए। यावाको वा भवाम्यहम् ( वेणी०३ )—मै चाहे जो कोई भी होऊँ। यत्रकुत्रापि स्वपिति—जहाँ कही भी सो जाता है।

## प्रश्नवाचक, अनिश्चयवाचक और निजवाचक सर्वनाम

१२४—प्रश्नवाचक सर्वनाम और उसमे प्रत्यय लगाकर बने हुये शब्द प्रश्न पूछने मे प्रयुक्त होते ह , जैसे, कः पुनरसौ जामाता ( उत्तर०१ ) —लेकिन यह दामाद महाशय कौन है। कतमेन दिग्भागेन गतः स जाल्मः ( विक्रमो० १ )—वह दुष्ट किस दिशा मे चला गया। कि करोमि क गच्छामि ( उत्तर० १ )—क्या करूँ और कहाँ जाऊँ।

१२५—कभी कभी प्रश्नवाचक सर्वनामो और प्रश्नवाचक क्रिया-विशेषणो मे चित् चन, अपि अथवा स्विद् जोड़कर अनिश्चयवाचक सर्वनामों का अर्थ प्रकट करते हैं, कश्चिद्यक्षो वसति चक्रे मेघदूत १ )—किसी यक्ष ने अपना निवासस्थान बना लिया। कदाचित्, कदाचन कदापि—कभी, किसी समय। कास्विदवगुण्ठनवती नारी ( शकु. ५ )—घूँघट डाले हुई कोई स्त्री

(क) 'अपि' का कभी कभी ''अवर्णनीय, अनिर्वाच्य'' अर्थ होता है, जैसे, कोऽपि हेतु · ( उत्तर० ६ )—कोई अनिर्वचनीय कारण। तत्तस्य किमपि द्रव्य या हि यस्य प्रियो जन ( उत्तर० २ )।

(ख) 'क्वचित्-क्वचित्' का अर्थ होता है 'कहीं—कहीं' अर्थात् 'एक जगह—दूसरी जगह', और 'कदाचित्—कदाचित्' का अर्थ होता है 'कभी—कभी' अर्थात् 'एक समय—दूसरे समय', जैसे, क्वचिद्वीणा-वाद्यं, क्वचिदपि च हाहेति रुदितम् ( भर्तृहरि० वैराग्यशतक श्लोक १२ )—कहीं ( एक जगह ) तो वीणा बज रही है, कहीं ( दूसरी जगह ) हाय, हाय का विलाप हो रहा है। कदाचित् काननं जगाहे, कदाचित् कमलवनेषु रेमे ( काद० )—कभी ( एक समय ) तो वह किसी जङ्गल में घुस जाता था और कभी ( दूसरे समय ) वह कमल वनों में रमण करता था।

(ग) किसी किसी विरले स्थल पर 'क्वचित्-क्वचित्' का अर्थ "कभी-कभी" भी होता है, जैसे, क्वचिद् घनानां पतता क्वचिच्च ( रघु० १३। १९ )—किसी समय बादलों का, किसी समय चिड़ियों का।

१३६—'अन्य-अन्य' और 'पर-पर' 'एक—दूसरा' के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, जैसे, अन्यः करोति, अन्यो भुङ्क्ते—एक करता है, दूसरा भोगता है, यानी अपराध तो कोई दूसरा करता है, पर फल किसी दूसरे ही को भुगतना पड़ता है। मनस्यन्यद् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम् ( पञ्चतन्त्र १ )—दुष्टों के मन में कुछ दूसरी बात होती है, वाणी में कुछ दूसरी और कर्म ( काम ) में कुछ दूसरी।

१३७—पूर्वकथित या वर्णित किन्हीं दो चीजों या व्यक्तियों के संबंध में, अधिकतर 'एक—अपर' या 'एक—अन्य' का प्रयोग होता है, जैसे, एको ययौ चैत्ररथप्रदेशान् सौराज्यरम्यानपरो विदर्भान् ( रघु० ५। ६० )—एक चैत्ररथ प्रदेश चला गया, दूसरा विदर्भ देश को, जो कि अच्छे राजा होने के कारण प्रसन्न था।

१३८—जब 'एक—अपर' या 'एक अन्य' बहुवचन में आता है तो उसका अर्थ होता है 'कुछ—कुछ', जैसे, विधवानां पुनरुद्वाहः शास्त्रप्रति-

पिद्ध इत्येके मन्यन्ते, शास्त्रविहित इत्यपरे (अथवा अन्ये)—कुछ लोगों का मत है कि विधवाओं का पुनर्विवाह शास्त्र द्वारा निषिद्ध है, और कुछ लोगों का मत है कि वह शास्त्रविहित है।

(क) इसी अर्थ में कभी कभी "एके" की जगह पर 'केचित्' का प्रयोग होता है, जैसे, मदुक्त केचिदन्वमन्यन्त। अपरे पुनर्निनिन्दुः (दशकुमार २।४)—कुछ लोगों ने मेरी बात का अनुमोदन किया, पर कुछ लोगों ने निन्दा की।

१३९—'स्व', 'स्वकीय,' 'आत्मीय, और 'निज'—ये निजवाचक के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, जैसे, स्वनाम कथय—अपना नाम बताओ। निजं धैर्यमदर्शयत्—उसने अपना धैर्य दिखलाया।

(क) 'स्वयम् निजवाचक क्रियाविशेषण अव्यय है, जैसे, सा स्वयमेव तत्र जगाम—वह स्वय ही वहाँ गई।

१४०—निजवाचक सर्वनाम के तौर पर अधिकतर 'आत्मन्' शब्द का प्रयोग होता है। 'आत्मन्' से बोध होने वाली सज्ञा चाहे जिस वचन और जिस लिंग की हो, पर 'आत्मन्' शब्द सदा पुलिंग और एकवचन मे ही आता है जैसे, का स्त्री अनेने प्रार्थ्यमानमात्मान विकत्थने (विक्रमो० २)—इसके द्वारा चाही जाती हुई कौन सी स्त्री अपने आप को गौरवान्वित समझती है अथवा अपने आप पर गर्व करती है।

आत्मान बहु मन्यामहे वयम् (कुमारसम्भव ६।२०)—हम लोग अपने आप को बहुत कुछ समझते हैं।

गुप्तं ददृशुरात्मान सर्वाः स्वप्नेषु वामनैः (रघु० १०।६०)।

## अभ्यास

१—तस्य च मम च पोरधूर्तैर्वैरमुदपाद्यत (दश कुमार० २।२)।

२—न न कुतूहलमस्ति सर्पदर्शने (मुद्रा०२)।

३—श्रीशस्त्वाऽवतु मापीह दत्तात्ते मेऽपि शर्म सः।
सुख वा नौ ददात्वीश पतिर्वामपि नौ हरिः॥
सोऽव्याद् वो नः शिव वो नो दद्यात्सेव्योऽत्र वः स नः॥
(सि० कौ०)।

४—एवमत्रभवन्तो विदांकुर्वन्तु। अस्ति तत्रभवान् काश्यप श्रीकण्ठपदलाञ्छनो भवभूतिर्नाम जातुकर्णीपुत्र (उत्तर०१)।

५—एषोऽस्मि कार्यवशादायोध्यिकस्तदानीतनश्च संवृत्तः (उत्तर०१)।

६—तदेव पचवटीवनम्। सैव प्रियसखी वासती। त एव जातनिर्विशेषाः पादपाः। मम पुनर्मन्दभाग्यायाः सर्वमेवैतद् दृश्यमानमपि नास्ति (उत्तर०३)

७—आयुष्मन्नेष वाग्विषयीभूत स वीरः। (उत्तर०५)

८—राजा—आर्य बहु प्रष्टव्यमत्र। चा०—वृषल विश्रब्ध ब्रूहि। ममापि बह्वाख्येयमत्र। रा०—एष पृच्छामि। चा०—अहमप्येष कथयामि। (मुद्रा०३)

९—अमुना व्यतिकरेण कृतापराधमिव त्वय्यात्मानमवगच्छति कादबरी। (कादम्बरी)

१०—केचित् सपद्भिः प्रलोभ्यमाना रागावेशेन बाध्यमाना विह्वलतामुपयाति। अपरे तु धूर्तैः प्रतार्यमाणा सर्वजनस्योपहास्यतामुपयाति। (काद)

११—साहसकारिण्यस्ता कुमार्यो याः स्वय सदिशन्ति समुपसर्पंति वा।

१२—अनयत्प्रभुशक्तिसपदा वशमेको नृपतीननतरान।
अपरः प्रणिधानयोग्यया मरुतः पचशरीरगोचरान॥
(रघु०८।७८)

१३—कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञाना. प्रपद्य तेऽन्यदेवताः ।
त त नियममास्थाय प्रकृत्या नियता स्वयः । (भगवद्गीता७ २०)

## अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—अयममौ मम ज्यायानार्य कुशो नाम भरनाश्रमात् प्रतिनिवृत्त (उत्तर० ६)।

२—तदम्योन्मादिता व्यसनशतशरव्यतामुपगता वल्मीकतृणाग्रावस्थिता जलबिन्दव इव पतितमप्यात्मान नावगच्छन्ति (कादम्बरी)।

३—तस्य तरुषण्डस्य मध्ये मणिदर्पणमिव त्रैलोक्यलक्ष्म्या क्वचित् त्र्यम्बकवृषभ विषाणकोटिखण्डितटशिलाखण्डं क्वचिदैरावतदशनमुसलखण्डितकुमुदटमच्छोद नाम सरो दृष्टवान् (कादम्बरी)।

४—इति नरपतिरस्त्र यद्यदाविश्चकार ।
क्रमविदथ मुरारि प्रत्यहन्नत्तदाशु ॥ (शिशुपाल० २० । ७६)।

[ क्रमवित् अर्थात् परिपाटीवेत्ता ]

५—तीनीन्द्रियाणि सकलानि तदेव नाम,
सा बुद्धिरप्रतिहता वचन तदेव ।
अर्थोष्मणा विरहित पुरुष स एव
त्वन्य क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ॥ (भर्तृहरिनीति०४)।

६—एते त एव गिरयो विरुवन्मयूरा
स्तान्येव मत्तहरिणानि वनस्थलानि ।
आमञ्जु-मञ्जुल लतानि च तान्यमूनि
नीरन्ध्रनीलनिचुलानि सरित्तटानि ॥( उत्तर० २ )।

७—योऽस्ति यस्य यदा मामभुभयोः पश्यतान्तरम् ।
एकस्य क्षणिका प्रीतिरन्य प्राणैर्विमुच्यते ॥

८—वज्र च राजतेजश्च द्वयमेवातिभीषणम् ।
एकमेकत्र पतति पतत्यन्यत् समतत. ॥ (हितोप०१)।

९—विश्वम्भरात्मजा देवी राज्ञा त्यक्ता महावने ।
प्राप्तप्रसवमात्मानं गंगा देव्या विमुञ्चति ॥ (उत्तर०७) ।

१०—काप्यभिख्या तयोरासीद् व्रजतोः शुद्धवेषयोः ।
हिमनिर्मुक्तयोर्योगे चित्राचन्द्रमसोरिव ॥ (रघु०१ । ४६) ।

११—कोऽप्येष एव पिशुनोग्रमनुष्यधर्मः ।
कर्णे परं स्पृशति हन्ति परं समूलम् ॥ (पंचतंत्र १ । ११)

१२—रूपं तदोजस्वि तदेव वीर्यम्
तदेव नैसर्गिकमुन्नतत्वम् ।
न कारणात् स्वाद् बिभिदे कुमारः
प्रवर्तितो दीप इव प्रदीपात् ॥ (रघु०५ । ३७) ।

## संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—पूज्य गौतम जी ने मुझे यह कार्य करने की आज्ञा दी है।

२—इस शुभ अवसर पर श्रीमान् जी क्या बोलने का संकल्प करते हैं।

३—प्यारे गोपाल, मत रोओ। जिन दोनों भाइयों को तुम मरा हुआ समझते थे, वे यह आ रहे हैं।

४—यह, हाथों में फल लिये हुए इस बच्चे की माता आ रही है।

५—बुद्धिमान् लोगों की सङ्गत में एक अवर्णनीय आनन्द होता है।

६—उस विपत्तिकाल में उन लोगों ने बड़ी कठिनता से अपने को बचाया।

७—ये दोनों लड़के मेरे द्वारा अपने ही बच्चों की तरह पाले पोसे गए, एक तो बहुत बुद्धिमान् था, पर दूसरा अत्यन्त मन्दबुद्धि।

८—उस समाचार को सुनने पर उस स्त्री ने अपने आपको सबसे अधिक भाग्यहीन समझा।

९—कहा जाता है कि भद्रकाली के मन्दिर में एक बुढ्ढी औरत रहती है। कभी तो वह बड़बड़ाने लगती है और कभी ठिकाने से बोलने लगती है।

१०—कुछ दर्शनशास्त्रवेत्ता लोगो का विश्वास है कि ईश्वर ने सारा विश्व बनाया,कुछ लोग यह मानते हैं कि विश्व स्वय ही पैदा हुआ।

११—कुछ लोग अपना ही हित साधते है, कुछ लोग दूसरो का ही हित साधते हैं और कुछ लोग दोनो साधते हे।

१२—यज्ञदत्त के पुत्र भिन्न भिन्न कलाओ और शास्त्रो मे निपुण हो गए हैं।

१३—जिस आदमी को मेने सडक पर फटे चीथडे पहिने हुए देखा था यह वही आदमी है।

१४—वह कही भी अध्ययन कर लेता है, किसी के भी साथ बाहर चला जाता है किसी के भी घर मे खा लेता ह और कही भी सो जाता है,।

१५—जो दृढचित होता है वह अपने प्रति किए हुये अपमान का बदला लेने का प्रयत्न करता है।

१६—जो लोग तुम्हारे घर पर आवे उनसे कोमलतापूर्वक बोलो।



# त्रयोदश पाठ

## शतृ, शानच्, क्त, क्तवतु

## स्यतृ, स्यमान, क्वसु, कानच

## तव्य, अनीयर्, ण्यत्

## क्त्वा, ल्यप्

१४६—शतृ, शानच्, क्त, क्तवतु, स्यतृ, स्यमान, क्वसु, कानच्, तव्य अनीयर, ण्यत् प्रत्ययों को लगाकर जितने शब्द बनते हैं वे सब विशेषण होते है, और उनके लिग, वचन और कारक उनके विशेष्य के लिग वचन और कारक के अनुसार होते हैं। जिन धातुओं मे ये जोडे जाते है उन धातुओं के योग में जो विभक्ति आती है वही विभक्ति इन प्रत्ययों से निष्पन्न शब्दों के योग मे भी आती है।

इस पाठ मे शतृ, शानच्, स्यतृ स्यमान और क्वसु, कानच् का निरूपण किया जायगा।

### शतृ, शानच्

१४७ - शतृ शानच से निष्पन्न शब्द अग्रेजी के उन शब्दों के समकक्ष होते है जो क्रिया ( verb ) मे ing लगा कर बनाए जाते हैं। जब किसी कार्य की समानाधिकरणता या समकालीनता पाई जाती है तब शतृ शानच से निष्पन्न शब्दों का प्रयोग होता है, जैसे, इति

विचारयन्नेव तुरगादवततार (काद०)—ऐसा सोचता हुआ ही वह घोड़े से उतर गया।

विवाहकौतुकं बिभ्रत एव तस्य वसुधा हस्तगामिनीमकरोत् (रघु० ८।१)—जब कि वह वैवाहिक सूत्र पहिने ही हुए थे तभी उसको उन्होंने पृथ्वी दे दी।

व्रजश्च समर्थयामास (काद०)—और जाते हुए वह सोचता जाता था।

शत्रन्त और शानजन्त शब्दों में "जब कि" का अर्थ विद्यमान रहता है और जिस भाव या विचार को प्रकट करने के लिए समूचे वाक्य की आवश्यकता पड़ती है, उसको प्रकट करने के काम में इन शब्दों का प्रयोग होता है।

विशेष—(क) जब कार्य की समानाधिकरणता या समकालीनता न पाई जाती हो तो इन शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए, जैसे वे लोग पर्वत पर चढ़ कर कुछ काल के लिये विश्राम करने लगे—इसका संस्कृत अनुवाद होगा "पर्वतमारुह्य ते कञ्चित् कालं व्यश्राम्यन्"। "पर्वतमारोहत ते कञ्चित् काल व्यश्राम्यन्—" ऐसा प्रयोग नहीं होगा। अलबत्ता यदि वाक्य का अर्थ यह है कि दोनों कार्य एक साथ ही किये जाते हैं तब तो अवश्य "पर्वतमारोहन्तः ते" इत्यादि प्रयोग ठीक होगा।

(ख शत्रन्त और शानजन्त शब्द विधेय के स्थान पर विशेषण बनकर कर्ताकारक में कदापि नहीं आ सकते। उदाहरणार्थ 'स कुर्वन्नस्ति—' सर्वथा अशुद्ध प्रयोग है। परन्तु 'कार्यं कुर्वन् स क्रीडति" सर्वथा शुद्ध प्रयोग है।

१४३[1]—प्रायः शानजन्त शब्दों का प्रयोग 'स्वभाव' या 'मनोवृत्ति'

१—लक्षणहेत्वोः क्रियायाः ३।२।१२६।

या 'अवस्था का कोई मापदण्ड,' अथवा 'योग्यता' या 'किसी कार्य के करने की क्षमता,' इत्यादि अर्थों का बोध कराने के लिए होता है, जैसे, **भोग भुंजान** (सि० कौ०)—भोगने का अभ्यस्त।

**कवच बिभ्राण** (सि० कौ०)—कवच पहिने हुए यानी जिस उम्र में कवच पहिना जाता है उस उम्र का। **शत्रु निघ्नान** (सि० कौ०)—शत्रु को मारने मे समर्थ।

उपर्युक्त द्वितीय उदाहरण के साथ निम्नलिखित उदाहरण की तुलना कीजिए। **सम्यग् विनीतमथ वर्महर** कुमारम् ( रघु० ८। ९४ )। यहाँ **वर्महर =कवचधारणार्हवयस्कः**।

१४५—किसी विद्यमान परिस्थिति या सम्बद्ध परिस्थिति अथवा विशेषता का बोध कराने और किसी कार्य का कारण बतलाने के लिए शत्रन्त और शानजन्त शब्दो का प्रयोग होता है, जैसे, **शयाना भुंजते यवनाः** ( सि० कौ० )—यवन लोग लेटे लेटे भोजन करते हैं।

तिष्ठन् मूत्रयति ( महाभाष्य )—गच्छन् भक्षयति ( महाभाष्य )। **हरिं पश्यन् मुच्यते** ( सि० कौ० )—हरिका दर्शन करने के कारण वह मुक्त हो जाता है। शयाना भुंजते यवना" उत्तर है 'कथं भुंजते" का और **हरिं पश्यन् मुच्यते**' उत्तर है '**केन मुच्यते**' का।

(क) शत्रन्त और शानजन्त शब्द किसी क्रिया के कर्ता की विशेषता भी बताते है, जैसे, **योऽधीयान आस्ते सदेवदत्त.** ( महाभाष्य )—जो पढ़ रहा है वह देवदत्त है।

विशेष—जिस प्रकार अंग्रेजी के पार्टिसिप्ल् से सीमित या नियन्त्रित कर देने का बोध होता है ठीक उसी प्रकार शत्रन्त और शानजन्त शब्दो से भी सीमित या नियन्त्रित कर देने का बोध होता है, जैसे, Students pepairing their lessons will be rewarded का अनुवाद होगा **पाठानधीयाना. शिष्याः पारितोषिकाणि लप्स्यन्ते**।

(ख) किसी सामान्य सत्य का बोध कराने के लिये भी शत्रन्त और **शानजन्त शब्दों** का प्रयोग होता है, जैसे, शयाना वर्धते **दूर्वा** ( महाभाष्य )—दूब लेटी हुई या पड़ी हुई दशा मे ऊगती है। आसीन वर्धते **बिसम्** ( महाभाष्य )—बिस माने कमलदण्ड, कमलनाल सीधा खड़े **रहने** की दशा मे बढ़ता है।

१४५—आस् ( बैठना ), स्था ( खड़ा होना ) भू ( होना ) और अस् ( होना )—इन धातुओं से बोध होने वाले कार्य का नैरन्तर्य प्रकट करने के लिए इन धातुओं मे यथायोग्य शतृ और शानच् प्रत्यय जोड़े जाते हैं, जैसे **वल्मीकाग्राणि विदारयन् प्रगर्जश्चास्ते** ( पचतन्त्र १।१ ) — दीमकों के घर के शिखरो को ढहाता तथा बड़ी जोर से गर्जता रहा। **गीतसमाप्त्यवसर प्रतीक्षमाणस्तस्थौ**—( काद० )– गीत की समाप्ति के अवसर की प्रतीक्षा करता रहा।

१४६—हिन्दी के "से" का बोध कराने के लिये प्राय. लज्ज्, ह्री और त्रप् धातुओं मे शतृ और शानच् जोड दिए जाते है, जैसे **एव निर्घृण** प्रहरन् न लज्जसे ( काद० )—क्या इस प्रकार निर्दयतापूर्वक प्रहार करने से तुम लजाते नही हो। **स्वय साहस** समादिशन्ती **बाला** जिह्रेमि ( काद० )—मै नौजवान लडकी ऐसी साहसपूर्ण बात स्वय कहने से शरमाती हूँ।

१४७—'धिक्कार' अर्थ का बोध कराने के लिए कभी कभी शत्रन्त और शानजन्त शब्दो का प्रयोग 'मा' के साथ होता है, जैसे, **मा जीवन् यः परावज्ञादुःखदग्धोऽपि जीवति** ( शिशुपाल० २।४५ )—जो दूसरो के तिरस्कार के दु:ख से आहत होने पर भी जीता है उसे धिक्कार है यानी उसे जीवित नही रहना चाहिए बल्कि मर जाना चाहिये।

## स्यतृ, स्यमान

१४८—स्यतृ और स्यमान से बने हुए शब्द यह बतलाते हैं कि कोई

व्यक्ति अमुक कार्य करने जा रहा है या करने वाला है, जैसे, करिष्यन्—करने जा रहा है या करने वाला है। मोक्ष्यन्—छूटने जा रहा है। करिष्यमाणः—इसके ऊपर किया जाने वाला है।

(क) सामान्यभविष्य काल का बोध कराने के अतिरिक्त ये शब्द अभिप्राय या इच्छा भी प्रकट करते हैं, जैसे, वन्यान् विनेष्यन्निव दुष्टसत्त्वान् स दाव विचचार (रघु० २।८)—उसने जंगल में इसलिए भ्रमण किया मानो जंगली जानवरों को शिक्षा देना चाहता है, मानो उसका अभिप्राय यह है कि मैं जङ्गली पशुओं को शिक्षाद्वारा वश में कर लूँ। करिष्यमाणः सशरं शरासनम् (रघु० ३।५२)—अपने धनुष पर बाण चढ़ाने की इच्छा करता हुआ।

टिप्पणी—'प्रयाण करने के पहिले उसने थोड़ा सा जल पिया'—ऐसे वाक्यों का अनुवाद करने के लिए स्यतृ और स्यमान द्वारा निष्पन्न शब्दों को कर्ता का विशेषण बना देना चाहिए, जैसे, प्रयाणं करिष्यन् स किंचिज्जलं पपौ।

## क्वसु और कानच्

१४९—क्वसु और कानच् का प्रयोग बहुत कम होता है। इनका अर्थ होता है "जो कर चुका है या किया जा चुका है", जैसे, श्रेयांसि सर्वाण्यधिजग्मुषस्ते (रघु० ५।३४)—जो पुरुष सारी अच्छी अच्छी वस्तुएं प्राप्त कर चुका है उसका। निषेदुषीमासनबन्धधीरः (रघु० २।६)—जब वह बैठ जाया करती थी तब जम कर वह (भी) बैठ जाते थे।

### अभ्यास

१—सा टिट्टिभी स्वाडभगाभभूता प्रलापान् कुर्वाणा न कथंचिदतिष्ठत् (पञ्चतन्त्र १।१५)।

२—अथ द्वावपि तौ पुष्पितपलाशप्रतिमौ परस्परवधकाङ्क्षिणौ

दृष्ट्वा करटको दमनकमाह । भो मूढमते अनयोर्विरोध वितन्वता त्वया न साधु कृतम् । ( पचतत्र )

३—राजा विस्फारितेन स्निग्धेन चक्षुपा पिबन्निवालपन्निव स्पृशन्निव मनोरथसहस्रप्राप्तदर्शन सस्पृहमीक्षमाणस्तनयानन मुमुदे कृतकृत्यं चात्मान मेने । ( काद )

४—साहित्यसगीतकलाविहीन साक्षात्पशु पुच्छविषाणहीन ।
तृण न खादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेयं परम पशूनाम् ॥
( भर्तृहरि नीतिशतक १२ )

५—सज्जीभूतं साधनम् । प्रयाणाभिमुखः सकलः स्कधावारस्त्वा प्रतिपालयन्नास्ते । तत्किमद्यापि विलम्बितेन । ( काद. )

६—राजाधिराजनन्दन नगरभ्रमणस्य त गति ज्ञास्यन्नहं च गतः कदाचित्कलिगान । ( दशकुमार २।१ )

७—अनुयास्यन्मुनितनयां सहसा विनयेन वारितप्रसरः ।
स्थानादनुच्चलन्नपि गत्वेव पुन प्रतिनिवृत्त ॥ ( शाकुं १ )

८—वामनाश्रमपद तत पर पावन श्रुतमृषेरुपेयिवान् ।
उन्मना प्रथमजन्मचेष्टितान्यस्मरन्नपि बभूव राघव ॥
( रघु० ११। २२ )

## अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—आसीच्च मे मनसि । शान्तात्मनि अन्यस्मिन् जने मा निक्षिपता किमिदमनार्येण सदृशमारब्ध मनसिजेन । ( काद० ) ।

२—अग्रजन्माऽब्रवीत । महाभाग सुतानेतान् मातृहीनाननेकैरुपायैं रक्षन्निदानीमस्मिन् कुदेशे भैक्ष्य सम्पाद्य ददत्तेभ्यो वसामि शिवालयेऽस्मिन्निति ।

(दशकुमार०) ।

३—विवादे दर्शयिष्यत क्रियासक्रान्तिमात्मन
यदि मा नानुजानासि परित्यक्तोऽस्म्यह त्वया ॥ ( मालविका० ) ।

४—अविदित्वाऽत्मन शक्ति परस्य च समुत्सुकः ।
गच्छन्नभिमुखे वह्नौ नाश याति पतगवत् ॥ ( पचतत्र १।८ ) ।

५—अनलीनस्य दु.खाग्नेरद्योद्दामं ज्वलिष्यत ।
उत्पीड इव धूमस्य मोहः प्रागावृणोति माम् ॥ ( उत्तर० ३ )

६—आदिदेशाथ शत्रुघ्न तेषा क्षेमाय राघव. ।
करिष्यन्निव नामास्य यथार्थमरिनिग्रहात् ॥ ( रघु० १५।६ ) ।

७—कदा वाराणस्याममरतटिनी–रोधसि वसन्
वसान. कौपीन शिरसि निदधानोंजलिपुटम् ।
अये गौरीनाथ त्रिपुरहर शम्भो त्रिनयन
प्रसीदेत्याक्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ॥ ( भर्तृहरिवैराग्यशतक १० ) ।

८—त तस्थिवास नगरोपकण्ठे
तदागमारूढगुरुप्रहर्ष ।
प्रत्युज्जगाम क्रथकैशिकेन्द्र
श्चन्द्र प्रवृद्धोर्मिरिवोर्मिमाली ॥( रघु० ५।६१ ) ।

## सस्कृत में अनुवाद कीजिए—

निम्नलिखित वाक्यो का अनुवाद शतृ, शानच्, स्यतृ, स्यमान, क्वसु, कानच् इत्यादि द्वारा कीजिये ।

१—एक दूसरे से वार्तालाप करते हुये, धीरे धीरे चलते हुये और अपने सिर पर अन्न का बोझ ढोते हुए बहुत से आदमियो को मैंने सड़क पर देखा ।

२—जहाज मे इङ्गलैण्ड जाता हुआ मनुष्य बहुत से सुन्दर दृश्य देख सकता है।

३—इस चित्र मे क्या ही सौन्दर्य है । भिन्न भिन्न अशो को इतना नेत्राकर्षक बनाकर चित्रकार ने अपनी पूर्ण कला दिखलाई है ।

४—तुम्हारे द्वारा मेरे पास इस प्रकार का सन्देश भेजकर क्या वह ज़रा भी नहीं शरमाता ।

५—अपने पति के शव को देखती हुई तथा उसके अनेक सद्‌गुणों को स्मरण करती हुई रति चिरकाल तक रोती रही।

६—जब चन्द्रापीड का यौवराज्याभिषेक होने जा रहा था तो बहुत सी महत्वपूर्ण बातो की ओर उसका ध्यान आकृष्ट करते हुए शुकनास ने उसको मत्रणा दी।

७—न्यायशास्त्र मे निपुण होने की इच्छा करता हुआ वह वाराणसी गया और वहाँ बहुत दिनों तक पढता रहा।

८—जो पुरस्कार देने के लिये मैने गोपाल को वचन दिया था उसे देने के पहिले मैने उससे पूछा कि क्या आप इसे अपने उद्योगो के अनुपयुक्त समझते हैं।

९—बलशाली शत्रु के सामने झुक जाने वाले वेत के पौधे बच जाते हैं, पर गर्वसहित खडे हुये विशालकाय बलूत के वृक्ष जल के प्रवाह से बह जाते हैं।

१०—सिह जङ्गल के पशुओं को उनकी पारी पर मारता रहा।

११—चारों शास्त्रो मे पारगत हुए, छहो अगो में पूर्णरूप से निष्णात, और चारों वेदो को पढ चुके हुए इस ब्राह्मण से तुम्हे द्रोह न करना चाहिये।

१२—जनक जी ने अपनी कन्या सीता शिव के धनुष को तोड देने वाले तथा अपने असाधारण पराक्रम और चातुर्य से दर्शकों के मन को आकृष्ट कर लेने वाले राम को दे दी।

# चतुर्दश पाठ

## क्त, क्तवतु

१५०—भूतकालवाची क्रियार्थक विशेषण दो प्रकार के होते हैं। एक कर्मवाच्य मे होता है और "क्त" लगाकर बनाया जाता है। दूसरा कर्तृवाच्य मे होता है और "क्तवतु" लगाकर बनाया जाता है, जैसे, तेनेदमुक्तम्—यह बात उससे कही गई। इदमुक्तवान—उसने यह बात कही।

ये दोनो प्रत्यय भूतकाल के अर्थ मे प्रयोग मे लाए जाते हैं। प्रचीन काल की सस्कृत मे क्रियार्थक विशेषणों का प्रयोग क्रियाओ के प्रयोग की अपेक्षा अधिक चलनसार हो गया। "मया तत् कृतम्" अथवा "अह तत् कृतवान्"—अधिकतर मिलते हैं। इस क्रियार्थक विशेषण के द्वारा विधेय के बहुत से काम चलते हैं।

१५१—बहुत सी अकर्मक क्रियाओं मे भूतकालिक कर्मवाच्यार्थक विशेषण होते हैं। इनका प्रयोग तृतीया के साथ होता है और किसी भी कर्ता या कर्म से कोई भी सम्बन्ध नहीं रखता। अकर्मक के तौर पर प्रयुक्त सकर्मक धातुओं के क्रियार्थक विशेषणो का भी प्रयोग इसी प्रकार होता है, जैसे, प्रतिबुद्धमिदानी मकरन्दपूर्णचन्द्रेण (मालती० मा० ४)—पूर्णचन्द्रतुल्य मकरन्द ने अब चेतनाशक्ति प्राप्त कर ली। जितम् अपत्य-स्नेहेन (उत्तर० ७)—अपत्यस्नेह ने जीत लिया।

विशेष—केवल भूतकालिक क्रियार्थक विशेषण ही नही इस प्रकार प्रयोग में लाए जाते । लकारों के रूप भी इस प्रकार कर्मवाच्य मे आते हैं, जैसे, मध्याह्नेऽपि वनराजिषु आहिण्ड्यते ( शकु० २ )—दोपहर मे भी वनपंक्तियो मे होकर मै भ्रमण करता हूँ ।

आपदां कथितः पन्था इन्द्रियाणामसंयमः ।
तज्जयः सम्पदां मार्गो येनेष्टं तेन गम्यताम् । (चाणक्य) ॥

अर्थात् इन्द्रियों का अनियन्त्रण विपत्तियों का मार्ग है । इन्द्रियों पर विजय ऐश्वर्य का मार्ग है । जिस रास्ते से इच्छा हो उससे जाओ ।

१५२[1]—गत्यर्थक धातुओं, अकर्मक धातुओं, श्लिष् ( आलिंगन करना ), शी ( लेटना, सोना ), स्था ( ठहरना ), आस् ( बैठना ), वस् ( रहना ), जन्, रुह् और जॄ ( बुड्ढा होना या पुराना होना )—मे क्त प्रत्यय कर्तृवाच्य मे होता है, जैसे,

गतोऽहं कलिंगान् ( दशकुमार २ )—मै कलिंग चला गया ।

जलं पातुं यमुनाकच्छमवतीर्णः ( पञ्चतन्त्र १।१ )—वह पानी पीने के लिए यमुना जी के तीर पर चला गया ।

लक्ष्मीमाश्लिष्टो हरिः ( —सि० कौ० )—हरि ने लक्ष्मी को आलिंगन किया ।

शेषमधिशयितः—शेषनाग के ऊपर शयन किया ।

शिवमुपासितः—शिव जी की शुश्रूषा या उपासना की ।

विश्वमनुजीर्णः—ससार के पीछे बुड्ढा हो गया ।

उपरते भर्तरि ( काद )—पति के मर जाने पर ।

वैकुण्ठमधिष्ठितः, हरिदिनमुपोषितः, वृक्षमारूढः, सुतो जातः इत्यादि ।

---

१—गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च । ३।४।७२ ॥

विशेष—कालिदास ने 'स्मृ' धातु में क्त प्रत्यय का प्रयोग कर्तृ वाच्य में किया है, जैसे, मधुकर, विस्मृतास्यना कथ (शकु ५), अन्यसगात् पूर्ववृत्त विस्मृता भवान् (शकु ), अहो विस्मृत मे हृदयम् (विक्रमो० २)।

१५३[1]—कभी कभी 'क्त' प्रत्यय नपुंसकलिंग की भाववाचक सज्ञा बनाने के लिए प्रयुक्त होता है, जैसे, जल्पितम् (बोलना), शयितम् (सोना), हसितम् (हँसना), गतम्, स्थितम् (अर्थात् स्थानम्), कस्येदमालिखितम्—यह किसका चित्र है।

विशेष—ऐसे प्रयोगों में क्तान्त शब्द अपना कर्मवाच्यत्व खो बैठते हैं और तृतीया के साथ नहीं आते, जैसे, उसकी चाल विलासयुक्त है—तस्या (न कि तया) गत सविलासम्, नृत्तादस्याः स्थित-मतितरा कान्तम् (मालविका० २)—उसका चाचल्यहीन चलना फिरना (हिलना डुलना) नृत्य की अपेक्षा कहीं अधिक चित्ताकर्षक है।

१५४[2]—मन्, बुध्, पूज् धातुओं में, तथा इन्हीं के समान अर्थ रखने वाली धातुओं में क्त प्रत्यय वर्तमान काल के अर्थ में प्रयुक्त होता है और षष्ठी के साथ आता है। (सेक्शन ११५ भी देखिए।)।

विशेष—और भी दूसरे शब्द हैं जो कि इसी प्रकार प्रयुक्त होते हैं। वे निम्नलिखित श्लोकों में दिए हुए हैं—

शीलितो रक्षितः क्षान्त आक्रुष्टो जुष्ट इत्यपि।
रुष्टश्च रुषितश्चाभिव्याहृत इत्यपि।
हृष्टतुष्टौ तथा कान्तस्तथोभौ सयतोद्यतौ।
कष्ट भविष्यतीत्याहुरमृता पूर्ववत् स्मृताः॥ (महाभाष्य)

---

१—नपुंसके भावे क्त। ३। ३।११४।

२—मति बुद्धिपूजार्थेभ्य

# कृत्य प्रत्यय

## ( तव्य, अनीय, यत, एयत् )

१५५—कृत्य प्रत्यय चार होते हैं—तव्य, अनीय, यत् , और एयत् । (इनके बनाने का नियम जानने के लिए डाक्टर कीलहोर्नकृत व्याकरण का सेक्शन ५१६—५२० देखिए ), जैसे, कर्तव्य करणीय, कार्य । सस्कृतभाषा मे लाघव लाने मे ये कृत्यप्रत्यय बहुत काम देते हैं, और अंग्रेजी मे जिन विचारो को प्रकट करने के लिये कई शब्दो की अपेक्षा होती है उन्हें कृत्य प्रत्यय द्वारा एक ही शब्द मे प्रकट कर सकते हैं, जैसे, वह मार डाला जाना चाहिए—हन्तव्यः । कृत्यप्रत्यय यह बतलाते हैं कि धातुद्वारा बोधित कार्य अथवा दशा अवश्य की जानी चाहिए, जैसे वक्तव्यम् , वाच्यम्, वचनीयम्—जो कि कहा जाना चाहिए। इस प्रकार कृत्यप्रत्यय से 'योग्यता, धर्म अथवा आवश्यकता का बोध होता है, जैसे, मुझे वहाँ जाना है—मया तत्र गन्तव्यम् । इसे करना मेरा धर्म है—मया तत् कर्तव्यम् ।

१५६—जिस प्रकार मे धातुओ के कर्मवाच्य का प्रयोग होता है ठीक उसी प्रकार इन प्रत्ययो का भी वाक्यो में प्रयोग होता है जैसे,

मद्वचनात् स राजा त्वयेदं वाच्य ( रघ० १४।६१ )—मेरे कहने से राजा जी से यह बात तुम्हारे द्वारा कह दी जानी चाहिए।

अजा ग्राम नेतव्याः—भेड़े गॉव पहुँचाई जानी चाहिये ।

असौ दुहितु पत्या परिग्रहप्रियमस्माभि श्रावयितव्य (शकु० ७) —पति द्वारा (उनकी) कन्या के स्वीकार किए जाने का प्रिय समाचार उन्हें सुना दिया जाना चाहिए। इन प्रत्ययों के योग में धातुओं द्वारा सूचित कार्य का कर्ता षष्ठी अथवा तृतीया मे आता है। १०७ सेक्शन देखिए।

**१५७**—ये प्रत्यय क्रिया के स्थान में नपुंसकलिंग एकवचन में स्वतंत्र रूप से ( impersonally ) भी प्रयोग मे आते हैं, अर्थात् इस प्रकार प्रयोग मे आते हैं कि किसी भी संज्ञा या सर्वनाम से किसी भी प्रकार सम्बद्ध नही होते, जैसे, **अभिज्ञानशाकुंतलाख्येन नाटकेनोपस्थातव्यमस्माभि** ( शकु० १) । **तत्रभवता तपोवनं गन्तव्यम्** ( विक्रमो० ५ )—उन पूज्य पुरुष को तपोवन चला जाना चाहिए।

(२) भवितव्यम् और भाव्यम् का स्वतंत्र अथवा अकर्तृक ( impersonal ) प्रयोग विशेष ध्यान देने योग्य है । 'होना' 'अवश्य होना चाहिए' 'जहाँ तक सम्भावना है'—इन्ही अर्थों मे इनका प्रयोग होता है और ये अनिश्चितता का बोध कराते हैं । 'होना' के पूर्व आने वाला संज्ञापद, सर्वनामपद, अथवा विशेषणपद, ठीक उसी प्रकार कर्ता का समानाधिकरण होना चाहिए जैसे कि साधारण विशेषण, जैसे, **स्वेषु स्वेषु पाठेष्वसमूढै भवितव्यम् (युष्माभि )** (विक्रमो० १)–तुम लोगों को अपने अपने पाठ (अभिनय) मे सावधान रहना (होना) चाहिए। यहाँ "होना" के पूर्व "सावधान" यानी "असमूढै" पद आया है, और यह "युष्माभि" का समानाधिकरण है जो कि कर्तापद है अर्थात् लिंग, वचन तथा विभक्ति मे 'युष्माभि' का अनुगामी है।

**तयाऽस्मिंल्लतामण्डपे संनिहितया भवितव्यम्** (शकु० ३)—उसे इस लतामण्डप मे अवश्य उपस्थित रहना ( होना ) चाहिए । यहाँ 'होना' के पूर्व 'संनिहितया' आया है और यह 'तया' का समानाधिकरण है जो कि कर्तापद है।

**अस्य शब्दानुरूपेण पराक्रमेण भाव्यम्** (पंचतंत्र १ । १ )—जहाँ तक सम्भावना मालूम होती है, इसकी शक्ति इसकी गरज के अनुरूप अवश्य होगी।

(ख) कभी कभी ये प्रत्यय भविष्यकाल मे निश्चयात्मक अर्थ बोध कराने के लिए प्रयुक्त होते हैं । जैसे, **लुब्धकेन मृगमांसार्थिना गन्तव्यम्** (हितोप० १)—मृग के मास का इच्छुक बहेलिया अवश्य ही जायगा । **ततस्तेनापि शब्द. कर्तव्यः** (हितोप० ४)—तब वह भी अवश्य ही शोर करेगा ।

(ग) कभी कभी ये प्रत्यय केवल भविष्यकाल का बोध कराते हैं, जैसे **युवयो पक्षबलेन मयापि सुखेन गन्तव्यम्** (हितोप० ४)—तुम्हारे डैनों के बल से मैं भी सुखपूवक (सरलता से) चला जाऊँगा ।

## अभ्यास

१—अत्रभवता परस्परेण ज्ञानसंघर्षो जातः । तत्रभवत्या प्राश्निकपदमध्यासितव्यम् ( मालविका० १ ) ।

२—तथार्वद्धयोः किंनामधेयोऽयं मोक्ष किं देव्या परिजनमतिक्रम्य भवान् संदिष्ट इत्येवमनया प्रष्टव्यम् ( मालविका० ४ ) ।

३—विश्रान्तेन भवता ममाप्येकस्मिन्नायासे कर्मणि सहायेन भवितव्यम् ( शाकु० २ ) ।

४—नास्मि भवत्योरीश्वरनियोगप्रत्यर्थी । स्मर्तव्यस्त्वयं जनः ।
[ विक्रमो०२ ]

५—तत्किं मन्यसे राजपुत्रि मृषोद्य तदिति । न हीदं सुक्षत्रियेऽन्यथा मतव्यम् । भवितव्यमेव तेन । [ उत्तर० ४ ]

६—सर्वथा निष्प्रतीकारेयमापदुपस्थिता । किमिदानीं कर्तव्यं कां दिशं गंतव्यामित्येतं चान्ये च विषण्णहृदयस्य मे सङ्कल्पाः प्रादुरासन् ।
[ काद० ]

—सततमनिगर्हितेनाकृत्येनापि परिरक्षणीयान्मन्यंते सुहृदसून्साधवः । तदतिह पणमकर्तव्यमप्येतदस्माकमवश्यकर्तव्यतामापतितम्

८—चाणक्यः—भद्र प्रथमं तावद्वध्यस्थानं गत्वा घातकः सरोषं

दक्षिणाक्षिसङ्कोचसञ्ज्ञा ग्राहयितव्य:। तेषु गृहीतसञ्ज्ञेषु भयापदेशादितस्ततः प्रद्रुतेषु शकटदासो वध्यस्थानादपनीय राक्षसं प्रापयितव्यः। [ मुद्रा०१ ]।

९—आः क्षुद्राः समरभीरवः कथमेवं प्रलपतां वः सहस्रधा न दीर्णमनया जिह्वया। [ वेणी० ३ ]।

१०—आपदि येनोपकृतं येन च हसितं दशासु विषमासु।
उपकृदपकृदपि च तयोर्यस्तं पुरुषं परं मन्ये॥ [पञ्चतंत्र१।१५ ]।

११—आपन्नस्य विषयवासिनो जनस्यार्तिहरेण राज्ञा भवितव्यमित्येष वो धर्मः ( शकु० ३ )।

१२—अन्तरिते तस्मिन् शबरसेनापतौ स जीर्णशबरस्तं वनस्पतिमामूलादपश्यत्। उत्क्रान्तमिव तस्मिन् क्षणे तदालोकभीतानां शुककुलानामसुभिः ( काद० )।

१३—अहं तच्छ्रुत्वा चेतस्यकरवम्। मयाधुना म्लेच्छजातिभिरपि दूरतः परिहृतप्रवेशं पक्कणं द्रष्टव्यम्। चण्डालैः सहैकत्र स्थातव्यम्। चण्डालबालकजनस्य चक्रीडनीयेन भवितव्यमिति।
( काद० )।

१४—कार्यव्यग्रत्वात् मनसः प्रभूतत्वाच्च प्रणिधीनां कोऽयमिति विस्मृतम्। इदानीं स्मृतिरुपलब्धा व्यक्तमाहितुण्डिकच्छद्मना कुसुमपुरादागतेन विराधगुप्तेन भवितव्यम्। ( मुद्रा० २ )।

१५—आः दुरात्मन्, कुरुकुलपांसुल, एवमतिक्रान्तमर्यादे त्वयि निमित्तमात्रेण पाण्डवक्रोधेन भवितव्यम्। (वेणी० १)।

१६—वत्से, साम्प्रतिकमेवैतत्। कर्तव्यानि दुःखितैर्दुःखनिर्वापणानि।

१७—पूरोत्पीडे तडागस्य परीवाहः प्रतिक्रिया।
शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते। ( उत्तर० ३ )।

१८—तेनाधीत श्रुत तेन तेन सर्वमनुष्ठितम् ।
येनाशा पृष्ठतः कृत्वा नैराश्यमवलम्बितम् ॥ ( हितो० १ )

१६—आरूढ मद्रीनुदधीन वितीर्णम्
भुजंगमानां वसति प्रविष्टम् ।
ऊर्ध्वंगत यस्य न चानुबन्धि,
यशः परिच्छेत्तुमियत्तयाऽलम् । (रघु० ६।७७)

२०—अवसितं हसित प्रसितं मुदा
विलसितं ह्रसितं स्मरभासितम् ।
न समदाः प्रमदा हतसमदाः
पुरहित विहित न समीहितम् ॥ (भट्टि० १०।६)।

२१—शाङ्गरव,त्वया मद्वचनात् स राजा शकुन्तलां पुरस्कृत्य वक्तव्यः।
अस्मान् साधु विचिन्त्य संयमधना-
नुच्चैः कुल चात्मनः ।
त्वय्यस्या　　　कथमप्यबान्धवकृतां
स्नेहप्रवृत्ति च ताम् ।
सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमिय
दारेषु दृश्या त्वया ।
भाग्यायत्तामतः पर न खलु तद्
वाच्य वधूबन्धुभि ॥　　( शकु० ४ )।

२२—त्वमर्हतां प्राग्रसर स्मृतोऽसि न
शकुन्तला मूर्तिमती च सत्क्रिया ।
समानयंस्तुल्यगुण वधूवरं
चिरस्य वाच्यं न गतः प्रजापतिः ॥　　( शकु० ५ )।

## संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

[ क्त, क्तवतु, तव्य, अनीय, यत्, ण्यत् का प्रयोग कीजिए ]

१—शक्तिशाली सेनाओं से रक्षित होने पर भी तारक को कार्तिकेय ने हरा दिया।

२—ऐ वत्स, ऐसा करके तुमने जामदग्न्य का अपराध ही किया है, न कि उनका कोई उपकार किया है।

३—शत्रु द्वारा उसकी सेना के पराजित हो जाने पर, उसके कुछ सैनिक पहाड़ों पर चढ़ गये ( अधि + रुह् ), कुछ समुद्र तीर पर उतर गए ( अव + तृ ) और कुछ शून्य गुफाओं मे घुस गए।

४—यदि तुम अपने घनिष्ठ मित्रो का तिरस्कार करोगे तो तुम अवश्य घृणा के पात्र बन जाओगे।

५—यह कौन हो सकता है जो कि मेरा नाम लेकर मुझे पुकार रहा है। हाँ, हाँ, यह अवश्य ही मेरे पुराने मित्र मित्रवर्मा हैं।

६—थोड़ी देर तक मेरे लिए प्रतीक्षा करो। मुझे भी सभा मे उपस्थित होना आवश्यक है।

७—ज्योंही वह जागता है, त्योंही, अध्ययन प्रारम्भ करने के स्थान पर खेलने के लिए निकल जाता है।

८—शोक को स्थान न दो, तुम्हारा बच्चा अब तक अवश्य सीधे घर आ गया होगा।

९—अनेक कष्टों को सहन करता हुआ मैं बहुत से देशों में घूम आया हूँ, परन्तु मैंने अपना अभिलषित मनोरथ नही पाया।

१०—वह तुम्हें नष्ट करने पर तुला हुआ मालूम पडता है, परतु मैं तुमसे बतलाता हूँ कि उसके प्रयत्न अवश्य निष्फल जायँगे।

११—यदि तुम सहायता न करोगे तो वह उस देश में कैसे जीवन धारण करेगा।

१२—ये वस्तुएँ तुम्हारे द्वारा उस विशाल महल के मालिक के पास पहुँचा दी जानी चाहिएँ ।

१३—अभी भी मुझे बहुत सी पुस्तके पढनी हैं। अत मैं तुम्हारे साथ नही चल सकूँगा ।

१४—इस महान पुरस्कार से सूचित होता है कि अँगूठी राजा द्वारा बहुत ही पसद की गई होगी ( मन् धातु ) ।

१५—बुद्धिमान पुरुषो के लिए कुछ भी दुस्साध्य नही है ।

१६—चूँकि उसके पास बहुत धन था, इसलिए उसके बहुत सी पत्नियाँ रही होंगी ।

१७—हम लोग अपनी सेनाओं के साथ कितनी देर तक युद्ध के लिए तैयार खडे रहे ।

# पञ्चदश पाठ

## प्रथम भाग

### अव्ययार्थक प्रत्यय—क्त्वा, ल्यप्

१५८—जब कोई क्रिया पहिले हो चुकी रहती है और उसके बाद दूसरी क्रिया होती है तब पहिले हो चुकी हुई क्रिया का बोध कराने के लिए धातुओं में क्त्वा और ल्यप् प्रत्यय जोड दिए जाते हैं। जैसे, **प्रतीहारी समुपसृत्य सविनयमब्रवीत्** (काद०)—समीप में आकर प्रतीहारी नम्रतापूर्वक (ड्योढी पर चौकसी रखने वाली स्त्री) बोली। **वैशम्पायनो मुहूर्तमिव ध्यात्वा सादरमब्रवीत्** (काद०)—मानों कुछ देर तक ध्यान कर वैशम्पायन ने आदरपूर्वक कहा।

परन्तु "गाँव जाता हुआ वह रास्ते में तृण छूता जाता है" का अनुवाद "**ग्राम गच्छन् पथि तृण स्पृशति**' होगा, न कि "**ग्राम गत्वा पथि तृण स्पृशति**" क्योंकि जाने की क्रिया तथा स्पर्श करने की क्रिया दोनों साथ ही साथ हो रही हैं। ऐसा नहीं है कि जाने की क्रिया पहले हो चुकी है और स्पर्श करने की क्रिया बाद में हुई।

१५९—क्त्वा प्रत्यय सभी धातुओं में जोड़ा जा सकता है। परन्तु ल्यप् प्रत्यय उन्हीं धातुओं में जुड़ता है जिनके पहिले उपसर्ग लगा रहता

है। इनके बनाने के नियमों को समझने के लिए डाक्टर कीलहोर्नकृतव्याकरण के सेक्शन ५०५ से ५१६ तक देखिए।

यह तो पहिले ही बताया जा चुका है कि क्त्वा प्रत्ययान्त और ल्यप् प्रत्ययान्त शब्द किसी पूर्ववर्ती अथवा भूतकार्य के द्योतक होते हैं। इस लिए क्त्वा प्रत्ययान्त और ल्यप् प्रत्ययान्त शब्दों का कर्ता वही होना चाहिए जो कि प्रधान क्रिया का हो। यदि क्त्वा और ल्यप् से बोध होने वाले कार्य का कर्ता प्रधान क्रिया के कर्ता से भिन्न होगा तो उस दशा मे क्त्वा अथवा ल्यप् प्रयोग मे नही लाया जा सकता, जैसे, **तुरासाह पुरोधाय धाम स्वायभुव ययु** (कुमार० २।१)—इन्द्र को आगे रख कर वे लोग ब्रह्मा के स्थान पर गए। यहाँ 'रखकर' क्रिया और 'गए' क्रिया का कर्ता एक ही है, भिन्न भिन्न नहीं है, अत ल्यप् का प्रयोग हुआ है।

परन्तु स त हत्वाऽहमागच्छम् सर्वथा अशुद्ध प्रयोग है। ऐसे स्थलो पर क्त्वा और ल्यप् नही आ सकते प्रत्युत '**भावे सप्तमी**' का प्रयोग होता हैं, जैसे, **तस्मिन् तेन हतेऽहमगच्छम्** । **सर्वै: पशुभि र्मिलित्वा सिंहो विज्ञप्त** (हितोप० २)—सब पशुओ ने मिलकर सिंह से प्रार्थना की। **स एन दोष प्रख्याप्य नगरान्निर्वास्यताम्** (मुद्रा० १)—इस अपराध की घोषणा करके (आप के द्वारा), वह नगर से निकाल दिया जाय।

१६०—घटनाओं के वर्णन करते समय क्रिया के रूपों और समुच्चय बोधक अव्ययों के प्रयोग में लाघव लाने के लिए क्त्वा और ल्यप् प्रत्यय बहुत काम देते हैं। 'ऐसा करने या किए जाने के बाद' 'जब' और 'बाद' से प्रारम्भ होने वाले प्रयोगों के अनुवाद मे 'जब' अथवा 'बाद' इत्यादि शब्दों का अनुवाद करने की कोई आवश्यकता नही, प्रत्युत क्त्वा अथवा 'ल्यप्' से काम चल जाता है, जैसे, **रावण हत्वा**। जब वह वहाँ गया तो उसने कुछ भी नही पाया—**स तत्र गत्वा न किमपि लेभे**।

यदि किसी अग्रेजी वाक्य मे 'having' से प्रारम्भ होने वाले कई

उपवाक्य जुडे हुए हों तो वह वाक्य बड़ा भद्दा लगेगा। परन्तु संस्कृत में कई क्तान्त अथवा ल्यबन्त शब्द बडी सुन्दरता से लाए जा सकते हैं, जैसे, **रुधिरेण लिप्य वृक्षस्याध प्रक्षिप्य गम्यता पर्वतमृष्यमूक प्रति** (पचतंत्र ३)—मुझे खून से पोतकर और वृक्ष के नीचे फेंक कर, ऋष्यमूक पर्वत पर चले जाओ।

इसी प्रकार **अथ स ब्राह्मणस्त पशु राक्षस मत्वा भयाद्भूमौ प्रक्षिप्य दैव निर्भर्त्स्य गृहमुद्दिश्य प्रस्थितः** (हितो० ४)—तब उस पशु को राक्षस समझ कर ब्राह्मण ने डर के मारे उसे जमीन पर फेंक दिया और भाग्य को कोस कर घर को रवाना हो गया।

विशेष—क्त्वान्त और ल्यबन्त शब्दों के प्रयोग मे प्राकृतिक क्रम की ओर अवश्य ध्यान रखना चाहिए, जैसे, **पक्त्वा भुक्त्वा स्वपिति**—वह भोजन पका कर और खाकर सोता है। पर भुक्त्वा पक्त्वा स्वपिति कहना सर्वथा अशुद्ध होगा।

१६१—संस्कृत मे कुछ क्त्वान्त और ल्यबन्त शब्द कर्मप्रवचनीय के तौर पर प्रयोग में आते हैं, जैसे, **मुक्त्वा**—छोड़कर अलावा, अतिरिक्त। **उद्दिश्य**—तरफ़। **अधिकृत्य**—बारे मे।

# भाग २

'अम्' में अन्त होने वाले कृदन्त

१६२—धातुओ तथा प्रत्ययान्त धातुओ मे 'अम्' लगाकर भी "क्त्वा" के अर्थ का बोध कराया जाता है। जब यह प्रत्यय जोडा जाता है तो वे ही परिवर्तन होते हैं जो कर्मवाच्य के सामान्यभूत की 'इ' के पूर्व होते हैं। डाक्टर कीलहोर्नकृत व्याकरण का सेक्शन ५२६ देखिये। उदाहरण क्षेपम्—फेंककर ( क्षिप् से )। वादम्—बोलकर ( वद् से )। **भोजम्**—खाकर ( भुज से )।

१६३—जब यह रूप दो बार आता हैं तो धातु द्वारा बोधित दशा अथवा क्रिया का पौनः-पुन्य द्योतित होता है। **"पौनः पुन्य"** का अर्थ है "फिर फिर होना"। जैसे, **स्मार स्मारं नमति शिवम्** (सि० कौ०)—वह बारम्बार शिव जी को स्मरण करके उन्हें नमस्कार करता है।

**कलिङ्गनाथो मयिबद्ध वैर इतिश्रावं श्रावं चण्डवर्मा युद्धायोद्यतो बभूव** ( दशकुमार २। ३ )—'कलिंगनाथ मुझसे बैर मानता हैं, इस बात को बार बार सुनकर चण्डवर्मा युद्ध के लिए तैयार हो गया।

**पायं पायम्**—बार बार पीकर। **दर्शं दर्शम्**—बार बार देखकर।

१६४[1]—अग्रे, प्रथमम् और पूर्वम् के साथ यह रूप अथवा क्तान्त रूप प्रयोग में आता है, जैसे,

अग्रे भोज व्रजति
अग्रे भुक्त्वा व्रजति
प्रथम भाज व्रजति
प्रथम भुक्त्वा व्रजति
पूर्वं भोज व्रजति
पूर्वं भुक्त्वा व्रजति

—पहिले खाकर वह चलता है

(क)[2] अन्यथा, एवम्, कथम, और इत्थम् के बाद, कृ मे णमुल् लगा कर जोड़ देते हैं, परन्तु कृ + णमुल के जुड जाने पर भी अर्थ वही रहता है जो अन्यथा, एवम्, कथम् और इत्थम्, का अर्थ होता है, जैसे, अन्यथाकार भुक्ते—दूसरे प्रकार से खाता है।

एवकार भुक्ते (सि० सि०)—इस प्रकार खाता है।

कथकार भुक्ते—किस प्रकार खाता है। परन्तु

शिरोऽन्यथा कृत्वा भुक्ते।

(ख)[3] जब क्रोधपूर्ण उत्तर दिया जाता है तब यथा और तथा के अनन्तर कृ + णमुल् जोड़ देते है, जैसे, तथाकार भाद्ये कि तवानेन (सि० कौ०)—मै इसी प्रकार खाऊगा। तुम्हे इसमे क्या मतलब।

१६५[4]—मीठा या स्वादिष्ठ अर्थ का बोध कराने वाले शब्दों के अनन्तर कृ + णमुल्=कारम् जोड़ दिया जाता है जेसे, स्वादु कार

---

१—विभाषाग्रेप्रथमपूर्वेषु। ३।४।२४।

२—अन्यथैव कथमित्थसु सिद्धाप्रयागश्चेत्। ३।४ २७।

३—यथातथयोरसूयाप्रतिवचने। ३।४।२९।

४—स्वादुमि णमुल्। ३।४।२६।

भुंक्ते—वह अपने भोजन को मीठा (स्वादिष्ठ) बनाकर खाता है लवणंकारं भुंक्ते—वह अपने भोजन को नमकीन बनाकर खाता है।

१६६[1]–दृश् धातु और विद् धातु के कर्म के अनन्तर दृश् + णमुल् = "दर्शम्" और विद् + णमुल् 'वेदम्' जोड दिया जाता है जब कि उस कर्म की सारी जाति का बोध कराना अभीष्ट होता है, जैसे, कन्यादर्शं वरयति (सि० कौ०)—जितनी कन्याओं को देखता है उन सब को वरण कर लेता है। ब्राह्मणवेदं भोजयति—जितने ब्राह्मणों को जानता है उन सबों को खिलाता है।

(क[2]) विद् (पाना) + णमुल् = 'वेदम्' और जीव् (जीना) + णमुल् = 'जीवम्' यावत् के अनन्तर उपर्युक्त अर्थ (साकल्य) का बोध कराने के लिए जोड़ दिये जाते हैं, जैसे, यावद्वेदं भुंक्ते—वह जितना पाता है उतना खाता है। यावज्जीवमधीते—वह जब तक जीता है तब तक अध्ययन करता है।

(ख[3]) चर्म और उदर के अनन्तर पूर् + णमुल् = 'पूरम्' जोड़ दिया जाता है, जैसे, उदरपूरं भुंक्ते—पेट भर खाता है। चर्मपूरं स्तृणाति—चमड़े को ढक लेने भर को फैलाता है।

१६७[4]—शुष्क, चूर्ण और रूक्ष शब्दों के अनन्तर पिष् (पीसना) + णमुल् = 'पेषम्' जोड़ दिया जाता है और साथ ही साथ पिष् धातु भी किसी न किसी लकार में प्रयोग में आती है, जैसे, चूर्णपेषं पिनष्टि—वह यहाँ तक पीसता है कि बिल्कुल चूर-चूर हो जाता है। इसी प्रकार, शुष्कपेषं पिनष्टि रूक्षपेषं पिनष्टि।

---

१—कर्मणि दृशिविदोः साकल्ये।३।४।२९।

२—यावति विन्दजीवोः।३।४।३०।

३—चर्मोदरयोः पूरेः।३।४।३१।

४—शुष्कचूर्णरूक्षेषु पिषः।३।४।३५।

( क[१] ) समूल, अकृत और जीव के अनन्तर हन् + णमुल् = 'घातम्', कृ + णमुल् = 'कारम्' और ग्रह् + णमुल् = 'ग्राहम्' जोड़ दिए जाते हैं और साथ ही साथ हन् धातु, तथा कृ धातु तथा ग्रह् धातु भी किसी न किसी लकार में प्रयुक्त होती है, जैसे, समूलघात हन्ति—वह बिल्कुल जड़ से नाश कर देता है। अकृतकार करोति—वह कभी भी न हुई चीज़ को कर डालता है। त जीवग्राह गृह्णाति—वह उसको जीता जागता पकड़ लाता है।

( ख ) इसी प्रकार हन् + णमुल् = 'घातम्' और पिष् + णमुल् = 'पेषम्' संज्ञा के अनन्तर जोड़े जाते हैं और यह सूचित करते हैं कि वह संज्ञा हन् और पिष् क्रिया के सम्पादन में करणभूत या साधनभूत है, जैसे, पादघात हन्ति = पादेन हन्ति—वह पाँव से मारता है। उदपेष पिनष्टि = उदकेन पिनष्टि—वह पानी से पीसता है। त हस्तग्राह गृह्णाति—वह उसे हाथ से पकड़ता है।

पाणिग्राहम्, करग्राहम् भी इसी प्रकार प्रयोग में आते हैं।

हस्तावर्त वर्तयति = हस्तेन वर्तयति जीवनाश नश्यति—इस प्रकार नष्ट हो जाता है कि उसका जीवन ही नष्ट हो जाता है अर्थात् मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

ऊर्ध्वशोष शुष्यति वृक्ष—पेड ऊपर खडा खड़ा ही सूख जाता है।

इसी प्रकार ऊर्ध्वपूर पूर्यते।

१६८[२]—कभी कभी तुल्यता या सादृश्य का बोध कराने के लिए णमुलन्त प्रयोग उस संज्ञा के अनन्तर होता है जिससे सादृश्य दिखलाना होता है, जैसे, अजनाश नष्ट—वह बकरे के समान नष्ट हो गया। पार्थसचार चरति—वह पार्थ के समान चलता है। घृतनिधाय निहित जलम्—घी के समान जल रक्खा गया था।

---

२—समूलाकृतजीवेषु हन्कृञ्ग्रहः ।३।४।३६।

१—उपमाने कर्मणि च ।३।४।४५।

१६९[1]—हन् तड् इत्यादि हिंसार्थक धातुओं का णमुलन्त रूप संज्ञाओं के अनन्तर प्रयोग मे आता है यदि णमुलन्त का तथा प्रधान क्रिया का कर्म समान हो और क्त्वान्त रूप प्रयोग करने की दशा में वह संज्ञा तृतीया मे प्रयुक्त होती हो, जैसे, दण्डोपघातं गाः कालयति—गायों को डण्डे से मारकर वह उन्हें एकत्र करता है। इसका साधारण रूप यों होगा—दण्डेन गाः हत्वा ताः कालयति। यहाँ कालयति तथा हत्वा दोनों ही का कर्म "गाः" है और चूँकि दण्डसंज्ञा के अनन्तर उपघात प्रयुक्त हुआ है, इसलिए दण्ड साधारण वाक्य में तृतीयान्त हो जाता है।

(क) इसी प्रकार व्रजोपरोधं गाः स्थापयति—वह गायों को इस प्रकार रखता है कि सब की सब बाड़े मे आ जाती हैं। पार्श्वोपपीडं शेते=पार्श्वाभ्यामुपपीडयन् शेते।

(ख) तात्कालिक सन्निकर्ष(Immediate Contiguity)सूचित करने के लिए हस्त, केश, इत्यादि शब्दों के अनन्तर ग्रह्+णमुल्='ग्राहम्' का प्रयोग होता है, जैसे, केशग्राहं युध्यन्ते–वे लोग एक दूसरे का बाल खूब जोरों से पकड़कर युद्ध करते हैं। हस्तग्राहम्=हस्तेन गृहीत्वा। यष्टिग्राहम्=यष्टिं गृहीत्वा—लाठी या छड़ी लेकर।

१७०[2]—शरीरावयवबोधक शब्दों के अनन्तर अवयव की चंचलता प्रकट करने के लिए णमुलन्त प्रयोग होता है, जैसे, भ्रूविक्षेपं कथयति (वृत्तान्तम्)—वह अपनी भौं हर दिशा में चलाता हुआ वृत्तान्त कहता। है

---

१—हिंसार्थानां च समानकर्मकाणाम्।३।४।४८।

२—स्वाङ्गेऽध्रुवे।३।४।५४।

( क[1] ) इसी प्रकार जब किसी कार्य के करने में शरीर का कोई अवयव आहत हो जाता है या पीडित होता है, तो उस अवयव के अनन्तर णमुलन्त शब्द का प्रयोग कर्मकारक के अर्थ में होता है, जैसे, उर प्रतिपेष युध्यते—वे लोग इस प्रकार युद्ध करते हैं कि उनका सारा वक्ष.स्थल पीड़ित हो उठता है ( कृत्स्नमुर· पीडयन्त )। स्तनसम्बाधमुरो जघान च ( कुमार० ४।२६ —स्तनों को चोट पहुँचाती हुई वह अपने वक्ष स्थल को पीटती थी।

१७१[2]—आ + दिश् के साथ तथा ग्रह् के साथ णमुल् प्रत्यय 'नामन्' के बाद कर्मकारक के अर्थ में आता है, जैसे, नामदे॰ माचष्टे—वह अपना नाम बताकर कहता है। नामग्राह् मामाह्वय त—वह मे ा नाम लेकर मुझे पुकारता है।

विशेष—समस्त पद बनाने के लिए णमुलन्त रूप संज्ञाओं के अनन्तर भी प्रयुक्त होते हैं, जैसे, ब्राह्मणवेदम् ( न कि ब्राह्मणान् वेदम् )। जीवग्राहम् ( न कि जीव ग्राहम् )।

## अभ्यास

१—स दुष्टाशयो बकः क्रमेण तान् पृष्ठमारोप्य जलाशयस्य नातिदूरे शिला समासाद्य तस्यामाक्षिप्य स्वेच्छया भक्षयित्वा भूयोऽपि जलाशय समासाद्य जलचराणा मिथ्यावार्तासन्देशैर्मनांसि रञ्जयन्नाहारवृत्तिमकरोत् (पचतत्र १।७)।

२—ततो भ्रातृशरीरमग्निसात् कृत्वा पुनर्नवकृतवैधव्यदुःखया मया त्वदीय देशमवतार्येमे काषाये गृहीते (मालविका०५)

---

१—परिक्लिश्यमाने च। ३। ४।५५।

२—नाम्न्यादिशिग्रहोः।३।४।५८।

३—प्रवृत्ते प्रदोपसमये चन्द्रापीडश्चरणाभ्यामेव राजकुलं गत्वा पितुः समीपे मुहूर्तं स्थित्वा दृष्ट्वा च विलासवतीमागत्य स्वभवनं शयनतलमधिशिश्ये ( काद० ) ।

४—ते हिमालयमामन्त्र्य पुनः प्राप्य च शूलिनम् ।
सिद्धं चास्मै निवेद्यार्थं तद्विसृष्टाः खमुद्ययुः ॥ ( कुमार० ६।९४ )

५—अहं येनेष्टिपशुमारं मारितः सोऽनेन स्वागतेनाभिनंद्यते ।
( शाकु० ६ )

६—सा कुबेरभवनान्निवर्तमाना समर्पयत्तिदृष्टेन केशिना दानवेन चित्रलेखाद्वितीया वंदीग्राहं गृहीता ( विक्रमो० १ )

७—मगधराजः प्रक्षीणसकलसैन्यमंडलं मालवराजं जीवग्राहमभिगृह्य दयालुतया पुनरपि स्वराज्ये प्रतिष्ठापयामास ।
( दशकुमार० १।१ )

८—मत्तकालो नाम लाटेश्वरो वीरकेतोस्तनया वामलोचनां नाम तरुणीरत्नमसामान्यलावण्यं श्रावं श्रावमयूनदुहितृप्रार्थनस्य तस्य पाटलीं नाम्ना नगरीमरौत्सीत् । ( दशकुमार० १।३ )

९—अनंतरं सूत्रधारो दारुवर्मा वैरोधकपुरःसरैः पदातिलोकैर्लोष्ठ-घातं हतः । ( मुद्रा० २ )

१०—सम्प्राप्य राक्षससभां चक्रंद क्रोधविह्वला ।
नामग्राहमरोदीत्सा भ्रातरौ रावणान्तिके ॥ ( भट्टि० ५।५ ) ।

———

## अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—लतानुपातं कुसुमान्यगृह्णात्
स नद्यवस्कन्दमुपास्पृशच्च।
कुतूहलाच्चारुशिलोपवेशं
काकुत्स्थ ईषत् स्मयमान आस्त । ( भट्टि० २।११ ) ।

२—स्नेहात् सभाजयितुमेत्य दिनान्यमूनि
नीत्वोत्सवेन जनकोऽद्य गतो विदेहान् ।
देव्यास्ततो विमनसः परिसान्त्वनाय
धर्मासनाद् विशति वासगृहं नरेन्द्रः ॥ ( उत्तर० १ ) ।

३—विश्वासप्रतिपन्नानां वञ्चने का विदग्धता ।
अङ्कमारुह्य सुप्तं हि हत्वा किन्नाम पौरुषम् ॥ ( हितो० ४ ) ।

४—तामिन्दुसुन्दरमुखीं सुचिरं विभाव्य
चेतः कथं कथमपि व्यपवर्तते मे ।
लज्जां विजित्य विनयं विनिवार्य धैर्य-
मुन्मथ्यमथरविवेकमकाण्ड एव ॥ ( मालती० १ ) ।

५—श्रुत्वा वार्तां जलदकथितां तां धनेशोऽपि सद्यः
शापस्यान्तं सदयहृदयः संविधायास्तकोपः ।
संयोज्यैतौ विगलितशुचौ दम्पती हृष्टचित्तौ
भोगानिष्टानविरतसुखान् प्रापयामास शश्वत् ॥ ( मेघ० ११९ ) ।

६—निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥ ( भगवद्गी० १ ३१ )

७—राजवाहनो रसालतरुषु कोकिलादीनां पक्षिणामालापान् श्रावं श्रावं विकसितानि सरांसि दर्शं दर्शम् अमन्दलीलया ललनासमीपमवाप ( दशकुमार० १।५ )

८—तेनैव दीपदर्शितेन विलपथेन गत्वा स्थितेऽर्धरात्रे वासगृहं प्रविष्टो विश्रब्धप्रसुप्तं सिंहघोषं जीवग्राहमग्रहीषम् ( दशकुमार०२।४ )।

९—न विप्रदर्शं कृतवानयत्न्ना यातवने रात्रिचरी डुढौके।
जिघांसुवेदं धृतभासुरास्त्रस्ता ताडकाख्यां निजघान रामः ( भट्टि०२।२३ )।

१०—विद्युत्प्रणाशं स वर प्रणष्टो
यद्वोर्व्यशोष तृणवद् विशुष्कः ।
अर्थे दुरापे किमुत प्रवासे
न शासनेऽवास्थित यो गुरूणाम् ।। (भट्टि०३।१४ )

१०—यो नष्टानपि जीवनाशमधुना शुश्रूषतेस्वामिनस्
तेषांवैरिभिरक्षतः कथमसौ सवास्यते राक्षसः ।
इत्थं वस्तुविवेकमूढमतिना म्लेच्छेन नालोचितम्
दैवेनोपहतस्य बुद्धिरथवा पूर्वं विपर्यस्यति ।। ( मुद्रा०६ )।

—०—

## संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

( णमुलन्त, क्त्वान्त तथा ल्यबन्त शब्दों का प्रयोग कीजिये )

१—अपनी तरफ बहेलिए को आता हुआ देखकर सारे पशु भयभीत होकर भिन्न भिन्न दिशाओं मे भाग गए।

२—वङ्गाधिपति से यह समाचार निवेदन करके तुम कब लौट आए।

३—एकचित्त होकर और प्रारब्ध कार्य को बन्द न करने का दृढ़ संकल्प करके अपना कार्य आरम्भ करो।

४—किसी नगर के अड़ोस पड़ोस मे भ्रमण करता हुआ सियार अकस्मात् नील के वर्तन में गिर पड़ा और उठने में असमर्थ होकर अपने को मरा हुआ प्रदर्शित कर वहीं ठहर रहा।

५—शठ की बातें सुनकर ब्राह्मण ने बकरे को जमीन पर रख दिया,

उसे बारबार देखा, फिर अपने कन्धे पर रख लिया और शठ की बातों को सोचता हुआ घर की ओर चल दिया।

६—उसे दरबार में बुलाकर, उपयुक्त उपहारों से उसका सम्मान कर और उसे राजा का सन्देश निवेदन कर मत्री द्वारा वह आदरपूर्वक बर्खास्त कर दिया गया।

७—जितनी कन्याओं को उसने अपने योग्य देखा उन सबों को वरण कर लिया ( कन्यादर्शम् प्रयोग कीजिए )।

८—उसने दवाई को चूर चूर पीसकर उसे आग पर रक्खा और उबाल कर पी लिया ( चूर्ण-पेष पिष्ट्वा )।

९—उनके स्वामी का वध कर डालने के कारण राजा के अनुयायियों द्वारा वह पत्थरों से मार डाला गया ( पाषाणघातम् )।

१०—मैंने शत्रु के ऊपर एकाएक आक्रमण कर दिया और उसके सारे अनुयायियों को भगाकर उसे जीता जागता पकड़ लिया ( जीवग्राहम् )।

११—पाटलिपुत्राधिपति ने वसुदुर्ग नगर ले लिया और वहाँ के निवासियों को बन्दी बना कर पकड़ लिया ( बन्दिग्राहम् )।

१२—मेरा नाम लेकर मुझे कौन पुकारता है।

---

# षोडश पाठ

## तुमुन् प्रत्यय (The Infinitive Mood)

१७२—जिस कार्यके लिए कोई दूसरा कार्य किया जाता है उसका बोध कराने के लिए, संस्कृत मे, धातु मे तुमुन् प्रत्यय जोड़ा जाता है। जिस प्रकार से अनद्यतनभविष्य के प्रथम पुरुष के एकवचन का रूप बनाया जाता है उसी प्रकार तुमुनन्त रूप भी बनाया जाता है। तुमुन् प्रत्यय "के लिए" का अर्थ सूचित करता है और अंग्रेजी के जेरण्डियल् इनफिनीटिव् ( Gerundial Infintive ) का सा काम करता है। इस प्रकार तुमुन् प्रत्यय सम्प्रदान के अर्थ का बोधक है और आवश्यकता पड़ने पर उसका प्रयोग न कर धातु में कृदन्त प्रत्यय जोड़कर संज्ञा बना कर और उसे चतुर्थी मे रखकर काम चला सकते हैं, जैसे, **पारसीकांस्ततो जेतु प्रतस्थे** ( रघु० ४।६० )—तब वह फारस देशनिवासियों को जीतने के लिए रवाना हो गया। यहाँ पर जेतुम् के स्थान पर **जयाय** करके वाक्य को इस प्रकार बना सकते हैं—**पारसीकानां जयाय प्रतस्थे**।

इसी प्रकार, **स्वेदसलिलस्नातापि पुनः स्नातुमवातरम्** ( कादम्बरी )। यहाँ पर स्नातुम्=स्नानाय।

१७३—तुमुनन्त शब्द कर्ता या कर्म के तौर पर प्रयोग में नहीं आ सकता। वाक्य के किसी भी शब्द से इसका कोई सम्बन्ध नहीं रहता। जहाँ अंग्रेजी में नाउन् इनफिनीटिव् कर्ता या कर्म के तौर पर आता है,

वहाँ संस्कृत में भाववाचक संज्ञा लानी पड़ेगी, जैसे, To get up early in the morning is wholesome का अनुवाद होगा—प्रातरेव उत्थानमारोग्यवहम् (न कि उत्थातुम्)। I learn to sing का अनुवाद होगा अहं गानमधीये ( न कि गातुम् )।

(क) Seeing ( देखना ), hearing ( सुनना ) इत्यादि के बाद आने वाले इनफिनीटिव् का अनुवाद शत्रन्त और शानजन्त द्वारा होगा, जैसे, I heard him speak का अनुवाद होगा भाषमाणं तमश्रौषम्। He saw him study—अधीयानं ददर्श तम्।

१७४—संस्कृत इनफिनीटिव् का वास्तविक अर्थ है किसी क्रिया का अभिप्राय दिखलाना अर्थात् यह दिखलाना कि अमुक अभिप्राय से अमुक दूसरी क्रिया की गई या हुई। परन्तु कुछ स्थल ऐसे आते हैं जहाँ पर इनफिनीटिव् संज्ञा और विशेषण के साथ आता है जैसे कि अंग्रेजी में; जैसे, Fit to do, able to do, time to read, का अर्थ है—करने के योग्य। Able to do का अर्थ है—करने में क्षम। Time to read—का अर्थ है—पढ़ने का समय। ऐसे प्रयोगों का बोध कराने के लिए संस्कृत में कतिपय मुहावरों का प्रयोग होता है, जिनमें कुछ मुख्य मुख्य नीचे दिखाए जाते हैं।

१७५[1]—जब तुमुनन्त शब्द का तथा प्रधानक्रिया का कर्ता एक ही होगा तभी तुमुन् प्रत्यय का प्रयोग हो सकता है। यदि तुमुनन्त क्रिया का कर्ता कोई दूसरा हो और प्रधान क्रिया का कर्ता कोई दूसरा हो तो तुमुन् प्रत्यय कदापि नहीं आ सकता, जैसे, पिनाकपाणिं पतिमाप्तुमिच्छति (कुमार० ५।५३)—पिनाकपाणि महादेव जी को अपना पति चाहती है। अत्तुं वाञ्छति शाम्भवो गणपतेराखुं क्षुधार्तः फणी। परन्तु त्वां गन्तुम् अहमिच्छामि—ऐसा प्रयोग कदापि नहीं हो सकता क्योंकि

१—समानकर्तृकेषु तुमुन्। ३। ३। १५८।

"गन्तुम्" का कर्ता त्वम् है और 'इच्छामि' का कर्ता अहम् है। तो तुमुनन्त क्रिया का तथा प्रधानक्रिया का कर्ता भिन्न भिन्न हो गया। अतः त्वा गन्तुम् अहमिच्छामि प्रयोग अशुद्ध है।

१७६—[1]शक् (सकना), धृष् (धृष्ट होना,हिम्मत करना),ज्ञा (जानना) ग्ला (थक जाना, मुरझा जाना), वट् (प्रयत्न करना), रम् (आरम्भ करना), लभ् (पाना), क्रम् (आरम्भ करना, सह (सहना), अर्ह, अस् होना)—इन धातुओं का प्रयोग होने पर तुमुन् प्रत्यय आता है, जैसे,न शक्नोमि हृदयमवस्थापयितुम् (उत्तर०४)—मैं अपने हृदय को थाँभ नहीं सकता। वक्तुं मिथ. प्राक्रमतैवमेनम् (कुमार ३। २)—इस प्रकार उससे एकान्त मे बोलने चला। जानासि देवी विनोदयितु (उत्तर० १)—रानी का मनोरंजन करना जानते हो।

अस्ति–भवति–विद्यते–वा भोक्तुमन्नम् (सि० कौ०)—खाने को भोजन है। न विषहे विपत्तिमवलोकयितुम् (वेणी० ३)—मैं विपत्ति नहीं सहन कर सकता।

१७७[2]—पर्याप्त, समर्थ योग्य इत्यादि अर्थ रखने वाले शब्दों के साथ तथा योग्यता, शक्ति अथवा नैपुण्य या प्रावीण्य अर्थ बोध कराने वाले विशेष्यों के साथ भी तुमुन् का प्रयोग होता है, जैसे, लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः (हितोप० १)—ललाट (मस्तक) पर लिखे हुए को मिटाने के लिए कौन समर्थ है। लोकानलं दग्धुं हि तत्तपः (कुमार० २। ५६)—उसकी तपस्या लोकों को जला देने के लिए पर्याप्त है। अस्ति मे विभव. सर्वं परिज्ञातुम् (विक्रमो०२)—मुझमें सब कुछ जानने की शक्ति है। कोन्यो हुतवहाद्दग्धुं प्रभविष्यति (शकु० ४)—अग्नि के अलावा और कौन जलाने में समर्थ होगा। भोक्तुं प्रवीणः कुशलः पटुर्वा (सि० कौ०)—खाने में निपुण (या खाने के लिए निपुण)।

१—शकधृषज्ञाग्लाघटरभलभक्रमसहार्हास्त्यर्थेषु तुमुन्। ३। ४। ६५।

२—पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु। ३। ४। ६६।

१७८[1]-समय, काल, वेला, अवसर इत्यादि कालवाची शब्दों के साथ समान कर्ता न होने पर भी तुमुनन्त शब्द प्रयोग में आता है; जैसे अवसरोऽयमात्मानं प्रकाशयितुम् ( शकुं० १ )—अपने आपको प्रकट कर देने का अब यह अवसर है। समयः खलु स्नानभोजने सेवितुम् ( विक्रमो० २ )—यह नहाने और खाने का समय है।

नोट—जैसे लैटिन भाषा में है वैसे ही संस्कृत भाषा में भी कुछ क्रियाएँ ऐसी हैं जो स्वरूपतः तो कर्मवाच्य में हैं परन्तु अर्थतः कर्तृवाच्य में हैं, जैसे, शक्, युज्, अर्ह् तथा इनमें प्रत्यय लगाकर बने हुए शब्द, जैसे, न शक्यास्ते दोषाः समाधातुम् ( हितोप० ३ )—वे दोष ठीक नहीं किए जा सकते। न युक्तम् अशोकं वामपादेन ताडयितुम् ( मालविका० ३)—अशोक को बाएँ पाँव से मारना उचित नहीं।

१७९—संस्कृत में तुमुन् के लिए कर्मवाच्य के कोई अलग रूप नहीं होते। एक ही रूप कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य दोनों में प्रयुक्त होता है तुमुनन्त वाले वाक्यों का कर्मवाच्य बनाने में तुमुनन्त के कर्म या उससे सम्बन्ध रखने वाला शब्द ज्यों का त्यों बना रहता है, जैसे,

| कर्तृवाच्य | कर्मवाच्य |
| --- | --- |
| स मित्राय द्रोग्धुमिच्छति | तेन मित्राय द्रोग्धुमिष्यते |
| रामो ग्राम गन्तुमारेभे | रामेण ग्राम गन्तुमारेभे |

जहाँ पर तुमुनन्त का तथा प्रधानक्रियाका कर्म एक ही होता है वहाँ कर्मवाच्य बनाते समय कर्मपद प्रथमा में रख दिया जाता है और यह समझ लिया जाता है कि उसका सम्बन्ध तुमुनन्त के साथ होता है,जैसे, स ग्रन्थं पठितुमिच्छति—तेन ग्रन्थः पठितुमिष्यते—इस स्थल पर ग्रन्थं पठितुमिष्यते कहना ठीक न होगा क्योंकि यह प्रयोग भाव में हो जायगा, और भावप्रयोग यहाँ हो ही नहीं सकता क्योंकि इष् धातु अकर्मक नहीं है।

---

१—काल समय वेलासु तुमुन् ३।३।१६७।

सेक्शन १७८ की नोट में उल्लिखित धातुओं के योग मे दोनों प्रयोग शुद्ध होंगे, पवनमालिंगितु शक्यते अथवा पवन आलिंगितु शक्यते। पर ध्यान रहे कि बादवाला प्रयोग अधिक समीचीन समझा जाता है।

१८०—अर्ह् धातु का प्रयोग विशेष ध्यान देने योग्य है। प्रायः यह तुमुनन्त के साथ प्रार्थना' वा 'अभ्यर्थना' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अथवा यह उन वाक्यों में प्रयुक्त होता है जहा अंग्रेज़ी में Be pleased ( कृपया ), अथवा I pray ( मैं प्रार्थना करता हूँ ) आते हैं। इस अर्थ मे तुमुनन्त मध्यम पुरुष तथा प्रथम पुरुष के साथ आता है, जैसे न मा पर सप्रतिपत्तुमर्हसि ( कुमार० ५।३६)—मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि मुझे अजनबी ( पराया ) न समझिए।

अवहितस्तावच्छ्रोतुमर्हति कुमारः ( मुद्रा० ४ )—ऐ राजकुमार कृपया इसे ध्यानपूर्वक सुनिए।

प्रिये जानकि न मामेवविध परित्यक्तुमर्हसि ( उत्तर० ३ )—ऐ प्यारी जानकी, कृपया इस प्रकार विपत्ति में पड़े हुए मुझको मत छोड़ो।

१८१—तुमुनन्त शब्द हलन्त मकार से विहीन काम और मन शब्दों के साथ, 'इच्छुक' के अर्थ मे, प्रयोग मे आता है, और यह प्रकट करता है कि कर्ता धातुद्वारा सूचित कार्य करने का इच्छुक है जैसे, पुनरपि वक्तुकाम इवार्यो लक्ष्यत ( शकु० १ )—श्रीमान् जी फिर बोलने के इच्छुक जान पड़ते हैं।

## अभ्यास

१—मध्यस्था भवती नौ गुणदोषत परिच्छेत्तुमर्हति(मालविका० १)।
२—न युक्त ते तथा पुराश्रमपदे स्वभावोत्तानहृदयमिमं जन समयपूर्वं

---

१—तुङ्काममनसोरपि

प्रतार्येद्दशैरखरै प्रत्याचष्टम्। (शकु० ५)

३—नार्हति तातो गजपुंगवधारितायां धुरि दम्य नियोजयितुम्।
(विक्रमो० ५)

४—न शक्यं दैवमन्यथा कर्तुमभियुक्तेनापि। यावत्तु मानुष्यके शक्यमुपपादयितुं तावत्सर्वमुपपाद्यताम्। (काद०)

५—का गणना सचेतनेषु। अपगतचेतनान्यपि संघट्टयितुमलमयं मदनः। (काद०)

६—अचिराधिष्ठितराज्यः शत्रु प्रकृतिष्वरूढमूलत्वात्।
नवसंरोहणशिथिलस्तरुरिव सुकरः समुद्धर्तुम्॥(मालविका०१)

७—पातयितुमेव नीचः परकार्यं वेत्ति न प्रसाधयितुम्।
पातयितुमेव शक्तिर्नाखोरुद्धर्तुमन्नपिटम्॥ (पंचतंत्र १।१५)

८—शब्दादीन्विषयान् भोक्तुं चरितुं दुश्चरं तपः।
पर्याप्तोसि प्रजाः पातुमौदासीन्येन वर्तितुम्॥ (रघु०१०।२५)

९—वृत्तं रामस्य वाल्मीकेः कृतिस्तौ किन्नरस्वनौ।
किं तद्येन मनो हर्तुमलं स्यातां न शृण्वताम्। (रघु०१५।६४)

१०—व्यपदेशमाविलयितुं किमीहसे जनमिमं च पातयितुम्
(शकु०५)

११—व्यालं बालमृणालतंतुभिरसौ रोद्धुं समुज्जृम्भते
छेत्तुं वज्रमणीञ्छिरीषकुसुमप्रान्तेन सन्नह्यते।
माधुर्यं मधुबिन्दुना रचयितुं क्षाराम्बुधेरीहते
नेतुं वांछति यः खलान्पथि सतां सूक्तैः सुधास्यन्दिभिः।
( भर्तृहरिनीति६ )

१२—अलमनया कथया। सह्यतामियम्। अहमसमर्थः श्रोतुम्। अतिक्रान्तान्यपि सकीर्त्यमानान्यनुभवसमां वेदनामुपजनयति सुहृज्जनस्य दुःखानि। तन्नार्हसि कथंकथमपि

विधृतानिमानसुलभानसून् पुनः पुनः स्मरणशोकानलेन्धनता-
मुपनेतुम् (काद०)।

१२—अमात्यकुमारो विज्ञापयति। यद्यपि स्वामिगुणा न शक्यन्ते विस्मर्तुं तथापि मद्विज्ञापना मानयितुमर्हत्यार्य.। (मुद्रा० २)।

१३—न खलु न खल्वमंगलानि चिंतयितुमर्हन्ति भवंतः कौरवाणाम्। सन्धेयास्ते भ्रातरो युष्माकम्। (वेणी० १)।

१४—शमयति गजानन्यान् गन्धद्विपः कलभोऽपि सन्
भवति सुतरां वेगोदग्रं भुजंगशिशोर्विषम्।
भुवमधिपतिर्बालावस्थोऽप्यलं परिरक्षितुं
न खलु वयसा जात्यैवायं स्वकार्यसहो भरः॥

(विक्रमो० ५)।

१५—अतोऽत्र किंचिद् भवतीं बहुक्षमां
द्विजातिभावादुपपन्नचापलः।
अयं जनः प्रष्टुमनास्तपोधने
न चेद्रहस्यं प्रतिवक्तुमर्हसि॥ (कुमार० ५।४०)।

१६—समर्थमिव भारत्या सुतया योक्तुमर्हसि।
अशोच्या हि पितुः कन्या सद्भर्तृप्रतिपादिता॥

(कुमार० ६।७९)।

१७—न पृथग्जनवच्छुचो वशं वशिनामुत्तम गन्तुमर्हसि।
द्रुमसानुमतां किमन्तरं यदि वायौ द्वितयेऽपि ते चलाः।

(रघु० ८।९०)

१८—अयि सुतपराक्रमानभिज्ञे
धर्मात्मजं प्रति यमौ च कथैव नास्ति।
मध्येवृकोदरकिरीटभृतोर्बलेन।
एकोऽपि विस्फुरितमण्डलचापचक्रं
कः सिन्धुराजमभिषेणयितुं समर्थः॥ (वेणी२०)।

## संस्कृत में अनुवाद कीजिये—

१—उसने यथाशक्ति अपने देशवासियों का उपकार करने का प्रयत्न किया।

२—तुम क्यो अपने भाई की जायदाद ले लेना चाहते हो।

३—मैं ने उससे कार्य करने को कहा, पर उसने बड़ी अनिच्छापूर्वक किया।

४—बदला लेना पहिले तो मनुष्य को अच्छा लगता है, पर अन्त में उससे उसी का नाश होता है।

५—मैं गरीब आदमी का भी अपमान होता हुआ नहीं सहन कर सकता।

६—हे कृष्ण, कृपया इस संशय को दूर कर दीजिए।

७—अब तुम्हारे पाठ आरम्भ करने का समय है।

८—क्षुद्र शत्रु भी तिरस्कार किए जाने का पात्र नहीं है (अर्हति)।

९—मैं चाहता था कि वे लोग बम्बई जायँ पर उन लोगों ने वैसा करना पसन्द नहीं किया।

१०—तुम्हें यहाँ अकेला छोड़ कर दूसरे देश में चला जाना कैसे सम्भव है ( शक्य )।

११—गरीबों की तो बात ही क्या है, दुर्भिक्ष में सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत करना धनियों के लिए भी मुश्किल हो जाता है।

१२—इसके अपराधों के कारण इस दुष्ट को दण्ड देना उचित है (युज्यते)।

१३—इस शुभ अवसर पर सब कैदी छोड़ दिए जाँय।

१४—विपत्तियों से आहत होकर घर मे आलसी बनकर बैठे रहने की अपेक्षा अपने आपको संकट में डालना कभी कभी अच्छा होता है।

१५—अलका में, वे विशाल प्रासाद उन भिन्न भिन्न विशेषों में तुम्हारी तुल्यता करने के लिए समर्थ हैं ( अलम् )।

१६—यह दूसरों का उपकार करने का इच्छुक था, पर अपने मनोरथ को साधने में ज़रा भी समर्थ नहीं हुआ है।

१७—मैं श्रीमान् से इस प्रार्थना को स्वीकार करने की विनती करता हूँ। इसे सर्वदा कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करना मेरा परम धर्म होगा।

———

# सप्तदश पाठ

## काल और वृत्तियाँ

१८२[1]—संस्कृत में काल और वृत्तियाँ सब मिलाकर १० होते हैं—

| | | |
|---|---|---|
| १—वर्तमानकाल | लट् | Present tense |
| २—आज्ञा | लोट् | Imperative Mood |
| ३—विधि | विधिलिङ् | Potential Mood |
| ४—अनद्यतनभूत | लङ् | Imperfect Tense |
| ५—परोक्षभूत | लिट् | Perfect Tense |
| ६—सामान्यभूत | लुङ् | Aorist |
| ७—अनद्यतनभविष्य | लुट् | First future |
| ८—सामान्य भविष्य | लृट् | Simple future |
| ९—आशीः | आशीर्लिङ् | Benedictive |
| १०—क्रियातिपत्ति | लृङ् | Conditional Mood |

१—लट् वर्तमाने लेट् वेदे भूते लुङ् लङ् लिटस्तथा ।

विध्याशिषोस्तु लिङ् लोटौ लुट् लृट् लृङ् च भविष्यति ॥

लेट् लकार केवल वेदों में मिलता है और क्रियातिपत्ति का अर्थ देता है। बहुधा इसे वैदिक क्रियातिपत्ति कहते हैं।

लिङ् लकार दो प्रकार के होते हैं। एक तो विधिलिङ् दूसरा आशीर्लिङ्।

१८३—सस्कृत मे प्रत्येक धातु के रूप—चाहे वह मूलरूप मे हो, चाहे प्रेरणार्थक हो, चाहे सन्नन्त (इच्छार्थक) हो, चाहे भृशार्थक या यङन्त (पौन पुन्यबोधक)—दसों लकारों मे चलते हैं। सन्नन्त और यङन्त धातुएँ वर्तमानकाल के अतिरिक्त अन्य कालों में बहुत कम प्रयोग में आती हैं। प्राय उनका अर्थ दूसरे प्रकार दिखला दिया जाता है, जैसे, जिगमिषति = गन्तुमिच्छति, अटाट्यते = भृशम् अटति।

१ ४—कुछ काल और वृत्तियाँ (Tenses and moods) अन्य भाषाओं के काल और वृत्तियो के साथ ठीक ठीक मिलती जुलती हैं, परन्तु कुछ केवल सस्कृत मे ही होती हैं। इस पाठ में तथा अगले तीन पाठों म उनके प्रयोग और अर्थ बतलाए गए हैं। इस पाठ मे वर्तमान, आज्ञा और आशीर्लिङ् का निरूपण किया गया है।

## वर्तमान काल

१८५—वर्तमानकाल का प्रयोग, वर्तमान समय मे होने वाले कार्य, अथवा वर्तमान समय मे अस्तित्व रखने वाली किसी वस्तुस्थिति का बोध कराने के लिए किया जाता है, जैसे, जगत. पितरौ वन्दे रघु० १।१)—मैं विश्व के मातापिता की वन्दना करता हूँ।

विशेष—वस्तुत., सस्कृत का वर्तमानकाल प्रगतिशील वर्तमान अर्थात् उत्तरोत्तर होते चलने वाले वर्तमान या अपूर्ण वर्तमानरूप का बोधक होता है जो किसी प्रारम्भ किए हुए कार्य का जारी होना सूचित करता है। पतञ्जलि ने लिखा है प्रवृत्तस्याविरामे शासितव्या भवती–जिसका अर्थ यह है कि वर्तमानकालिक क्रिया द्वारा सूचित काय अभी चल रहा है

और अभी बन्द नहीं हुआ है, जैसे, वहति जलमियं; पिनष्टि गन्धानियं (मुद्रा० १)—यह स्त्री जल लाती है (ला रही है), यह सुगन्धित द्रव्यों (पदार्थों) को पीसती है (पीस रही है)।

एतास्तपस्विकन्यका इत एवाभिवर्तन्ते (शकु० १)—ये तापस-कन्याएँ इसी तरफ आती हैं (आ रही हैं)।

इस जारी रहने वाले कार्य का बोध कराने के लिए संस्कृत में कोई अलग से रूप नहीं है।

परन्तु ध्यान रहे कि किसी विशेष क्रियाविशेषण द्वारा या सन्दर्भ द्वारा ही वर्तमान काल का प्रयोग केवल वर्तमान कार्य का बोध कराने के लिए सीमित किया जा सकता है जैसे, देवदत्तो गच्छति (अर्थात् अधुना), अथवा सम्प्रत्यधं यावहे।

वर्तमानकाल के प्रयोग का मुख्य अभिप्राय किसी शाश्वत सत्य का बोध कराना है। सर्वकाल के ही अर्थ में यह वर्तमानकाल का बोध कराता है। प्रकृति की नित्य व्यवस्थाएँ और नियम, प्राणियों की विशेषताएँ और प्रवृत्तियाँ तथा जो वस्तु शाश्वत, नैयमिक (नियमानुसारी), और एक समान अथवा एकरूप है—वह सभी वर्तमानकालद्वारा बताई जाती है, जैसे

सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्—(भर्तृहरि, नीतिशतक श्लोक २३)—बताइए, सत्संगति क्या नहीं कर देती।

अस्त्युत्तरस्यां दिशि हिमालयो नाम नगाधिराजः (कुमार० १।१)—उत्तर दिशा में पर्वताधिपति हिमालय है।

नास्ति जीवितादन्यदभिमततरमिह सर्वजन्तूनाम् (काद०)। ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति (उत्तर १)। न खलु बाहुरूपाधिन् प्रीतयः संश्रयन्ते (मालती० १)।

१८६—साधारण अर्थों के अतिरिक्त संस्कृत का वर्तमानकाल, निम्नलिखित अर्थों का बोध कराने में प्रयुक्त होता है—

(क) कभी कभी यह तात्कालिक भविष्य (Immediate Future) के अर्थ का बोध कराता है, जैसे, अयमहमागच्छामि ( शकुं० ३ )— यह, मैं आता हूँ ( आऊँगा ) । कदा गमिष्यसि, एष गच्छामि ( सि० कौ० ) । नन्वय न भवसि ( मालती० ५ ) ।

(ख) जब कोई कार्य अभी ही हो चुका रहता है, तो हाल के ( आसन्न ) भूत कार्य का बोध कराने के लिए वर्तमानकाल का प्रयोग होता है, जैसे, कदा त्वं नगरादागतोऽसि—अयमागच्छामि ( सि० कौ० ) तुम गाँव से कब आए, यह मैं आता हूँ ( अर्थात् मैं अभी आया हूँ ) ।

(ग) कथाओं में और भूतकालिक घटनाओं का वर्णन करने में वर्तमान-काल का प्रयोग होता है मानों वक्ता ने उन घटनाओं को साक्षात् अपनी आँखों के सामने होती हुई देखा हो । हस्ती ब्रूते—कस्त्वम् (हितो० २)—हाथी पूछता है ( पूछा )—कि तुम कौन हो ।

(घ) तक, पूर्व, जब इत्यादि शब्दों के साथ यह भविष्यकाल का बोध कराता है, जैसे, तद् यावन्न परापतति तावदपसर्पतानेन तरुगहनेन ( उत्तर० ४ )—इसलिए उसके लौटने के पूर्व ही इस वृक्षसमूह के बीच से चले जाओ ।

(ङ) कभी कभी वर्तमानकाल स्वाभाविक कार्य का बोध कराने के लिए प्रयोग में आता है, जैसे, पातु न प्रथमं व्यवस्यति जलम् ( शकु ४ )— पहिले पानी पीने की बात भी न सोचती थी । हिरण्यको भोजनं कृत्वा बिले स्वपिति ( हितोप० १ ) ।

१८७—हेतुसूचक या दशासूचक (Conditional) वाक्यों में भविष्य का बोध कराने के लिए कभी कभी वर्तमानकाल का प्रयोग होता है, जैसे, योऽन्नं ददाति ( दाता दास्यति वा ) स स्वर्गं याति ( याता

धास्यति वा )—(सि० कौ०)—जो अन्न देता है ( देगा ) वह स्वर्ग जाता है ( जायगा )।

१८८—वर्तमान के साथ जब स्म जोड़ दिया जाता है तब वह भूतकाल का अर्थ देता है जैसे कस्मिश्चिद् वने भासुरको नाम सिंहः प्रतिवसति स्म ( पंचतंत्र १।८ )—जंगल में भासुरक नामक एक सिंह रहता था। क्रीणंति स्म प्राणमूल्यैर्यशांसि ( शिशुपाल० १७।१५ )—अपने प्राण देकर उन लोगों ने यश खरीदा।

१८९—प्रश्नवाचक शब्दों के साथ वर्तमानकाल प्रायः भविष्य का अर्थ सूचित करता है, जैसे, किं करोमि क्व गच्छामि ( उत्तर० १ )—क्या करूँ और कहाँ जाऊँ। क्व भोजयसि ( सि० कौ० ), किं गच्छामि तपोवनम् ( मुद्रा० ६ )।

(क) जब किसी प्रश्न का उत्तर देना होता है, तब वर्तमानकाल ननु के साथ भूतकाल के अर्थ में प्रयुक्त होता है, कटमकार्षीः किम्—ननु करोमि भो ( सि० कौ० )।

१९०[1]—क्रियाविशेषण पुरा और यावत् के साथ वर्तमानकाल निश्चयात्मक भविष्य का अर्थ देता है, जैसे, आलोके ते निपतति पुरा ( मेघ० ८८ )—अवश्य ही ( निश्चय ही ) तुम्हारी आँखों के विषय में पड़ेगा। यावदस्य दुरात्मनः समुन्मूलनाय शत्रुघ्नं प्रेषयामि ( उत्तर० १)—इस शठ का नाश करने के लिए मैं अवश्य ही ( निश्चय ) शत्रुघ्न को भेजूँगा।

विशेष—निश्चयात्मकता का बोध अनिवार्य नहीं है।

## आज्ञा ( लोट् )

१९१—यह लकार मध्यम पुरुष में आज्ञा, प्रार्थना अथवा मृदु उपदेश या भर्त्सना के अर्थ में प्रयुक्त होता है, जैसे, शृणुत रे पौराः

१—यावत् पुरानिपातयोर्लट् ।३।३।४।

( मृच्छकटिक १० )—ऐ पुरवासियो, सुनते जाओ। परित्रायध्वम् परित्रायध्वम्—बचाओ बचाओ। हा प्रियसखि, क्वासि, देहि मे प्रतिवचनम् ( उत्तर० १ )–हाय मेरी प्यारी, कहाँ हो। उत्तर दो। तृष्णा छिन्द्धि, भज क्षमा, जहि मदम् ( भर्तृहरि नीतिशतक )—लालच छोडो, क्षमा धारण करो, घमण्ड त्यागो।

(क) जब बडी विनम्रतापूर्वक कोई बात कहनी होती है तो आज्ञा के कर्मवाच्य का रूप प्रयोग मे आता है, जैसे, एतदासनमास्यताम् ( विक्रमो० २ )—यह आसन है, कृपया बैठ जाइए।

१९२—आज्ञा के प्रथम पुरुष ( अन्य पुरुष ) और मध्यम पुरुष का रूप आशीर्वाद का बोध कराने के काम में आता है, जैसे, प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः ( शकु० १ )—इन आठ प्रत्यक्ष रूपों से युक्त शिव भगवान् तुम्हारी रक्षा करे।

पर्जन्यः कालवर्षी भवतु जनमनोनन्दिनो वान्तु वाता ( मृच्छकटिक १० )—भगवान् करे समय पर मेघ बरसे, लोगों के मन को अच्छी लगने वाली हवाएँ बहें।

पुत्रमेवंगुणोपेतं चक्रवर्तिनमाप्नुहि ( शकु० १ )—भगवान् करे, तुम इन गुणों से युक्त चक्रवर्ती पुत्र पाओ।

पुत्र लभस्वात्मगुणानुरूपम् ( रघु० ५।३४ )—भगवान् करे, तुम अपने ही अनुरूप पुत्र पाओ। तात मे चिरञ्जीव ( उत्तर० ४ )।

१९३—भविष्यकालिक तथा वर्तमानकालिक आज्ञाओं ( Commands) तथा प्रोत्साहनों ( exhortations ) का बोध कराने के लिए भी आज्ञा के रूपों का प्रयोग होता है। प्राय, व्यवस्थाओं तथा नियमो में और उपदेशों का विधान करने मे आज्ञा के रूप ठीक उसी प्रकार प्रयोग में आते हैं जैसे कि विधि के। अष्टादश पाठ देखिये।

१९४—मध्यम पुरुष की आज्ञा का एक प्रयोग कुछ विशेष ध्यान

देने योग्य है। जब 'भृशार्थ' अथवा "कार्यों का पौनःपुन्य" सूचित करना होता है, तो आज्ञा के मध्यम पुरुष का रूप दोहराया जाता है, चाहे प्रधानक्रिया का कर्ता भिन्न ही हो, और क्रिया किसी भी काल में क्यों न हो, जैसे, याहि याहीति याति ( सि० कौ० )—वह बार बार जाता है।यात यातेति याथ। अधीष्व अधीष्वेति अधीते।

(क) इसी प्रकार जब एक ही व्यक्ति द्वारा कई कार्य किए जाते हुए दरशाए जाते हैं तब आज्ञा का प्रयोग होता है ( दोहरा प्रयोग नहीं ); जैसे,सक्तून् पिब, धाना. खादेत्यभ्यवहरति (सि० कौ०)—भूना हुआ दा । चबाता हुआ, जौ खाता हुआ वह भोजन करता है।

## आशीर्लिङ्

१६५—आशीर्लिङ् (भूयात्—भविषीष्ट) हमेशा आशीर्वाद देने में आता है और उत्तम पुरुष में वक्ता की इच्छा प्रकट करता है, जैसे, तत्किमन्यदाशास्महे, केवल वीरप्रसवा भूयाः (उत्तर० १)— तो हम लोग और क्या आशा करें? ईश्वर करे तुम वीर पुत्र पैदा करो। विधेयासु र्देवाः परम रमणीया परिणतिं ( मालती१।१ )—देवता लोग अन्त को रमणीक बनावें। कृतार्था भूयासम् (मालती०)— ईश्वर से इच्छा करता हूँ कि सफल होऊँ।

## अभ्यास

१—क नु खलु संस्थिते कर्मणि सदस्यैरनुज्ञातः श्रमक्लान्तमात्मानं विनोदयामि ( शाकुं. ३ )।

२—किमधुना करोमि। क गच्छामि। कथं मे शान्तिर्भविष्यति। अथवा पिंगलकं गच्छामि कदाचिच्छरणागतं मां रक्षति न प्राणैर्वियोजयति ( पंचतंत्र १। १६ )।

३—ततो दिनेषु गच्छत्सु पक्षिशावकानाक्रम्य कोटरमानीय प्रत्यहं खादति स मार्जारः (हितोप० १)।

४—तारापीडो देवीमवदत्। अफलमिवाखिलं पश्यामि जीवितं राज्यं च। अप्रतिविधेये धातरि किं करोमि। तन्मुच्यतां देवि शोकानुबन्धः। आधीयतां धैर्ये च धर्मे च धीः (काद०)।

५—शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः॥ (शाकु० ४)

-पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्॥ (शाकु० ४)

-अये उदितभूयिष्ठ एष भगवानशेषभुवनद्वीपदीपस्तपनः। तमुपतिष्ठे। (मालती० १)

८—अनन्यभाजं पतिमाप्नुहीति
सा तथ्यमेवाभिहिता हरेण।
न हीश्वरव्याहृतयः कदाचित्
पुष्णन्ति लोके विपरीतमर्थम्। (कुमार० ३।६३)।

६—पुरीमवस्कन्द लुनीहि नन्दनं
मुषाण रत्नानि हरामराङ्गनाः।
विगृह्य चक्रे नमुचिद्विषा बली
य इत्थमस्वास्थ्यमहर्दिवं दिवः॥ (शिशु० १।५१)।

१०—संतः सन्तु निरन्तर सुकृतिनो विध्वस्तपापोदया
राजानः परिपालयंतु वसुधा धर्मे स्थिता सर्वदा।
काले सततवर्षिणो जलमुच सन्तु स्थिरा पुण्यतो
मोदना धनवद्धबाधवसुहृद्गोष्ठीप्रमोदाः प्रजा ॥
(मालती० १०)।

११—तृष्णा छिन्धि भज क्षमा
जहि मद पापे रति मा कृथाः
सत्य ब्रूह्यनुयाहि साधुपदवी
मेवस्व विद्वज्जनम्
मान्यान मानय विद्विषोऽप्यनुनय
प्रच्छादय स्वान गुणान्
कीर्ति पालय दुःखितेकुरु दयाम्
एतत्सता चेष्टतम् (भर्तृहरिर्नीति० ७७)।

१२—कस्यैकांतं सुखमुपगतो
दु खमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा
चक्रनेमिक्रमेण। (मेघ० ११२)।

१३—जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यम्
मानोन्नति दिशति पापमपाकरोति।
चेत. प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिम्
सत्सगतिः कथय कि न करोति पु सास्॥ (भर्तृ नीति. २३)

———

## संस्कृत में अनुवाद कीजिए :—

१—वृक्षपर चढकर साँप कौओ के बच्चों को खा जाता था ।

२—अपना धनुष चढा कर अर्जुन कर्ण से कहते हैं 'क्या अब तुम मुझसे लड़ने को तैयार हो ।''

३—दो पक्षियों द्वारा कन्धों पर एक कच्छप ढोया जा रहा है ।

४—तुम मुझे यहाँ क्यों छोडते हो ? मैं क्या करूँगी ? मैं किसकी शरण में जाऊँगी ?

५—इस वृक्ष की छाया के नीचे बैठा हुआ मै उस स्त्री की प्रतीक्षा करूँगा ( यावत् का प्रयोग कीजिए ) ।

६—मैं अभी एक लम्बी यात्रा से लौटा हूँ, क्या तुम मुझे इतनी जल्दी काम करने के लिए कहते हो ।

७—भगवान् करे, तुम दोनों अपने सद्गुणों के अनुरूप पुत्र पाओ ।

८—माता पिता की आज्ञा मानो विद्वानों का आदर करो, दूसरों की निन्दा में एक शब्द भी न बोलो, और अपनी स्थिति से सन्तुष्ट रहो ।

९—ईश्वर करे गाएँ खूब दूध दे, समय पर जल बरसाने वाले बादलों के कारण पृथ्वी सब प्रकार के धान्य से पूर्ण होवे ।

१०—उसके राज्य की वास्तविक दशा का पता लगाने के लिए यतिवेषधारी गुप्तचर उसके राज्य भर में भेजे जायँ ।

११—घरों को तहस-नहस करता हुआ, निवासियों को निकालता हुआ और उनकी सम्पत्ति को जलाता हुआ वह सारे देश को विध्वस करने लगा ।

———

# अष्टादश पाठ

## विधिलिङ्

१६६—नीचैराख्यं गिरिमधिवसे (मेघदूत २६)। कृत्यं घटेत सुहृदो यदि तत्कृतं स्यात् (मालती ०१)—ये विधिलिङ् के प्रयोग हैं। अब आगे निरूपण किया जायगा कि विधिलिङ् किन किन अर्थों में काम आता है।

१६७—विधिलिङ् निम्नलिखित अर्थों में प्रयुक्त होता है—

(क) सम्भावना, इच्छा, प्रार्थना, आशा और योग्यता।

(ख) जिन आश्रित उपवाक्यों में उपर्युक्त अर्थ दिखलाया जाता है उनमें भी विधिलिङ् प्रयुक्त होता है।

(ग) जिन हेतुहेतुमद्भूतात्मक वाक्यों में एक कार्य किसी दूसरे कारणभूत कार्य पर आश्रित रहता है उनमें भी विधिलिङ् प्रयुक्त होता है।

१६८—सम्भावना, इच्छा, इत्यादि के उदाहरण ये हैं—लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन् (भर्तृहरि नीतिशतक श्लोक ५)—परिश्रमपूर्वक पेरता हुआ पुरुष, सम्भव है, बालू में से भी तेल पा जाय।

**मौर्ये भूषणविक्रयं नरपतौ को नाम सम्भावयेत् (मुद्रा०५)—**

कौन इस बात की सम्भावना कर सकता था कि मौर्यराज गहने बेंच डालेगा।

जेतारं कार्तिकेयस्य विजयेय ( महावीर चरित ३ )—मैं कार्तिकेय के जीतने वाले को जीत लूँ।

मनसिजतरुः कुर्यान्मां फलस्य रसज्ञम् ( मालविका०४ )—कामदेव वृक्ष मुझे अपने फल का स्वाद चखावे।

कुर्यां हरस्यापि पिनाकपाणेर्धैर्यच्युतिम् ( कुमार ३।१० )—मैं पिनाकपाणि महादेव जी का भी धैर्य छुड़ा दूँ।

भो भोजनं लभेय ( सि०कौ० )—प्रार्थना करता हूँ ( चाहता हूँ ) कि भोजन पा जाऊँ।

( क ) विधिलिङ् अधिकतर इन बातों का बोध कराने के लिए प्रयुक्त होता है—आज्ञा देने में, उपदेश अथवा पथप्रदर्शनार्थक नियमों के विधान में, धर्म अथवा कर्तव्य का भार दिखलाने में, जैसे, ऊनद्विवर्षं निखनेत् ( याज्ञवल्क्य ३।१ )—दो वर्ष से कम उम्र वाले बच्चे को गाड़ देना चाहिए। आपदर्थे धनं रक्षेत् ( चाणक्य०२९ )—विपत्ति के लिए धन की रक्षा करनी चाहिए। सहसा विदधीत न क्रियाम् ( किरात० २।३० )—एकाएक ( बिना सोचे विचारे ) कार्य नहीं कर बैठना चाहिए।

विशेष—विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसंप्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्। ३।३।१६१।—अर्थात् विधिलिङ् तथा लोट् दोनों ही विधान करने में, निमन्त्रण देने में, किसी कार्य को करने की स्वीकृति देने में किसी अवैतनिक कर्तव्य अथवा पद के बतलाने में, प्रश्न पूछने में, और प्रार्थना करने में प्रयुक्त होते हैं।

प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु कृत्याश्च। ३।३।१६३। अर्थात् विधान, स्वीकृति या अनुमति, उपयुक्त समय का बोध कराने में विधिलिङ्

लोट् और कृत्यप्रत्यय ( तव्य अनीय, यत्, ण्यत् )—सभी समानरूप से प्रयोग में लाए जा सकते हैं, जैसे, इह भुञ्जीत अथवा भुङ्क्ताम् भवान्, इहासीत भवान् अथवा इहास्यताम् आसितव्य भवता—आप यहाँ बैठ सकते हैं। **नीचैराख्यं गिरिमधिवसेः** ( मेघ०२६ )। पुत्रमध्यापयद् भवान्—आप पुत्र को अवैतनिक कर्तव्य के तौर पर पढ़ा दें। किं भो वेदमधीयीय उत तर्कम्—श्रीमन्, क्या पढ़ूँ, वेद या तर्कशास्त्र। भोजनं लभेय अथवा लभै ( सि० कौ० )।

अस्तु, उपर्युक्त अर्थों में जितना विधिलिङ् का प्रयोग प्रचलित है उतना लोट् अथवा कृत्यप्रत्ययों का नहीं।

१६६—जब योग्यता दिखाना अभीष्ट होता है तब कृत्यप्रत्यय ( तव्य, अनीय, यत्, ण्यत् ) अथवा विधिलिङ् प्रयुक्त होता है और कभी कभी तृकारान्त संज्ञा, जैसे, त्वं कन्या वहेः, त्वं कन्याया वोढा अथवा त्वया कन्या वोढव्या ( सि० कौ० )—तुम कन्या को ब्याहने योग्य हो।

( क ) जब क्षमता दिखलानी होती है तब विधिलिङ् अथवा कृत्य प्रत्यय ( तव्य, अनीय, यत्, ण्यत् ) प्रयुक्त हो सकते हैं, जैसे, भारं त्वं वहेः अथवा भारस्त्वया वोढव्यः ( सि० कौ० )—तुम बोझा ढोने में समर्थ हो।

२००[1]— कम्, कतर इत्यादि प्रश्नवाचक शब्दों के साथ विधिलिङ् अथवा सामान्यभविष्य निन्दा दिखलाने में प्रयुक्त होता है। जैसे, कः कतरो वा हरिं निन्देत् निन्दिष्यति वा—कौन हरि की निन्दा करेगा।

( क[2] ) जब आश्चर्य दिखलाना होता है और "यदि" शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता, तब विधिलिङ् की अपेक्षा सामान्यभविष्य

---

१—किंवृत्ते ( गर्हायां ) लिङ्लृटौ।३।३।१४४।

२—चित्रीकरणे शेषे लृडयदौ।३।३।१५२।

प्रयुक्त होता है, जैसे, **आश्चर्यमन्धा नाम कृष्णं द्रक्ष्यति** (सि० कौ०)—आश्चर्य है कि अन्धा आदमी कृष्ण को देख ले। परन्तु जब यदि" शब्द का प्रयोग होगा तब तो विधिलिङ् ही आवेगा, जैसे, **आश्चर्यं यदि साऽधीयीत**—यदि वह पढ ले तो आश्चर्य है।

(ख) सेक्शन १९७ में उल्लिखित आशा प्रार्थना इत्यादि अर्थों का बोध कराने वाले आश्रित वाक्यों में भी विधिलिङ् आता है, जैसे, **आशासेऽधीयीय** (सि० कौ०)—आशा करता हूँ कि मैं पढ़ूँगा। **आशसा न हि नः प्रेत जीवेम दशमूर्धनि** (भट्टि० १९।५)—हम लोगों को आशा न थी कि हम लोग दशकन्धर रावण के मर जाने पर जियेंगे।

(क) इनफिनीटिव् मूड के अर्थ में जब कि प्रधानक्रिया तथा इनफिनीटिव् क्रिया का कर्ता समान हो तो इच्छार्थक शब्दों के साथ, विधिलिङ् का प्रयोग होता है, **भुञ्जीयात इच्छति** (सि० कौ०) = भोक्तुमिच्छति, चाहता है कि खाऊँ अर्थात् खाना चाहता है।

२०२—आश्रित वाक्यों में प्राय: परिणाम अथवा अभिप्राय का बोध कराने के लिए विधिलिङ् का प्रयोग होता है, जैसे, **दोषं तु मे कञ्चित् कथय येन स प्रतिविधीयेत** (उत्तर० १)—मेरा कोई दोष बतलाओ ताकि वह सुधारा जाय।

२०३[1]—जहाँ आशा प्रकट की जाती है, पर कच्चित् शब्द द्वारा नहीं वहाँ विधिलिङ् का प्रयोग होता है, जैसे, **कामो मे भुञ्जीत भवान्**—यह मेरी आशा है कि आप खायँगे। परन्तु जब कच्चित् का प्रयोग होगा तब वाक्य इस प्रकार होगा—**कच्चिज्जीवति**—आशा करता हूँ कि वह जिन्दा है। **कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति** (मेघ०८८)—ऐ रसिके, आशा करता हूँ कि तुम अपने स्वामी को याद करती हो क्योंकि तुम उनकी बड़ी प्यारी हो।

१—कामप्रवदनेऽकच्चिति। ३।३।१५३।

(क[1]) यद् शब्द का प्रयोग किए बिना यदि सम्भावय्, अपि, अथवा अपिनाम शब्दों द्वारा आशा का बोध कराना होता है तो विधिलिङ् अथवा सामान्यभविष्य का प्रयोग होता है, जैसे, सम्भावयामि भुंजीत भोक्ष्यते वा भवान् (सि० कौ०)—आशा करता हूँ आप भोजन करेंगे। अपि नाम भगवतीनीतिर्विजेष्यते (मालती०७)—चाहता हूँ कि श्रीमती जी की नीति सफल होवे। अपि जीवेत् स ब्राह्मण-शिशुः (उत्तर०२)—क्या आशा करूँ कि वह ब्राह्मणबालक जीवित हो जायगा। परन्तु जब यद् शब्द का प्रयोग होता है तब इस प्रकार का वाक्य बनता है—सम्भावयामि यद्भु जीथास्त्वम्।

(ख[2]) इष्, कम्, प्रार्थ् इत्यादि इच्छार्थक शब्दों का प्रयोग होने पर विधिलिङ् अथवा आज्ञा के रूप आते हैं, जैसे, इच्छामि सोम पिबेत् पिबतु वा भवान् (सि० कौ०)—चाहता हूँ कि श्रीमान् जी सोम पिएँ।

२०४[3]—वाक्य में यद् शब्द का प्रयोग होने पर, काल, समय वेला शब्दों के साथ विधिलिङ् का प्रयोग होता है, जैसे, काल–समयो–वेला वा यद् भवान् भुंजीत—आप के भोजन करने का समय है।

(ग)

२०५—जिसमें एक कार्य का होना दूसरे कार्य पर आश्रित दरशाया जाता है उसे हेतुबोधक या समययुक्त या सोपाधिक (Conditional) वाक्य कहते हैं। ऐसे सोपाधिक वाक्यों में पूर्वगामी उपवाक्य (antecedent) तथा अनुवर्ती या आनुषंगिक उपवाक्य (Consequent) दोनों में विधिलिङ् का प्रयोग होता है। पूर्वगामी

---

१—विभाषा धातौ सम्भावनवचनेऽयदि ।३।३।१५५।

२—इच्छार्थेषुलिङ् लोटौ ।३।३।१५७।

३—(काल समय वेलासु) लिङ्यदि ।३।३।१६८।

उपवाक्य ( Conditional ) मे हेतु का उल्लेख रहता है और अनुवर्ती उपवाक्य ( Consequent ) मे फल का निर्देश रहता है। "अगर" के स्थान पर "यदि" या "चेत्" का प्रयोग किया जाता है; जैसे, यद्यत्र तात सन्निहिता भवेत् तत किं भवेत् ( शकु० १ )—यदि आज पिता जी यहाँ होते तो क्या होता। दैवात् पश्येर्जगति विचरन्निच्छया मत्प्रिया चेद् आश्वास्यादौ तदनु कथय माधवीयामवस्थाम् ( मालती०९ )—संसार भर मे स्वेच्छानुसार घूमते घामते यदि तुम मेरी प्यारी को देखना तो पहिले आश्वासन देना, तब फिर माधव की अवस्था का वर्णन करना। कृत्यं घटेत सुहृदा यदि तत्कृतं स्यात्।

विशेष—ध्यान दीजिएगा कि चेत् कभी भी वाक्य के आरम्भ मे नहीं प्रयुक्त होता।

२०८—समययुक्त या सोपाधिक (Conditional) वाक्यों मे प्राय विधिलिङ् के स्थान पर वर्तमान काल अथवा सामान्यभविष्य का प्रयोग होता है, जैसे, यदि स्थित्वा द्रक्ष्यति, कुप्यति प्रभु—यदि स्वामी जी उठकर तुम्हे देख लेगे तो क्रोध करेंगे। न चेद् अवीोप प्रश्नान् अश्नामि त्वाम् (दशकुमार० २। ६)—यदि मेरे प्रश्नो का उत्तर न दोगे तो तुम्हे खा जाऊँगा। कृष्णं नमेत चेत्, सुखं यास्यति (सि० कौ०)—यदि कृष्ण को प्रणाम करेगा तो सुख प्राप्त होगा।

विशेष—कभी कभी पूर्वगामी उपवाक्य (Antecedent) मे वर्तमानकाल का और अनुवर्ती उपवाक्य (Consequent) मे विधिलिङ् का प्रयोग आता है, जैसे, यदि तस्य प्राणविपत्तिरुपजायते तदपि महदेनो भवेत् (काद०)—यदि उसकी मृत्यु हो जाय तो वह भी एक बड़ा पाप होगा। क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन् यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ (भवेत्,)—रघु० ८। ८७।

(ख) जब आदरपूर्वक या विनम्रतापूर्वक बोलना होता है तो अनुवर्ती वाक्य ( Consequent ) में विधिलिङ् के स्थान पर आज्ञा का प्रयोग

होता है, जैसे, न चेदन्यकार्यातिपातो गृह्यतामातिथेयसत्कारः (शकु० १)—यदि ऐसा करने से किसी दूसरे कार्य में क्षति न पहुँचे, तो कृपया अतिथिसत्कार स्वीकृत कर लीजिए।

(ग) जब समययुक्त अथवा सोपाधिक (Conditional) उपवाक्य बिल्कुल स्वीकारसूचक (Affirmative) तथा निश्चयात्मक होते हैं अथवा जब पूर्वगामी उपवाक्य तथा अनुवर्ती उपवाक्य दोनों ही में किन्हीं वास्तविक वस्तुस्थितियों का उल्लेख रहता है तो विधिलिङ् का प्रयोग न होकर वर्तमानकाल का ही प्रयोग होता है, जैसे, यदि बरसेगा तो हम लोग बाहर नहीं जा सकते—यदि देवो वर्षति तर्हि वयं बहिर्गन्तुं न शक्नुमः। यहाँ पर देवो वर्षेत् नहीं होगा।

## अभ्यास

१—वयस्य किं परमार्थत एव देव्या व्रतनिमित्तोऽयमारम्भः स्यात् [विक्रमो० ३]।

२—यदि त्वामीदृशमैक्ष्वाको राजा रामभद्रः पश्येत्तदाऽस्य हृदयं स्नेहेनाभिष्यन्देत् [उत्तर० ५]

३—देव यदि चन्द्रमस्युष्मा, दहने वा शीतलत्वमंशुमालिनि वा तमः सम्भाव्यते, ततो युवराजेऽपि दोषः [काद०]।

४—यदि मे सहसा दर्शनपथान्नापयाति नारोहति वा कैलासशिखरं नोत्पतति वा गगनतलमवमेतदेनामुपसृत्य पृच्छामि [काद]।

५—लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियम् श्रिया दुरापः कथमीप्सितो भवेत् [शकुं० ३]।

६—परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम्॥ [चाणक्य० १८]

७—अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धं रक्षेदवक्षयात्।
रक्षितं वर्द्धयेत्सम्यग् वृद्धं तीर्थेषु निक्षिपेत् [हितोप० २]

८—उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
सकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजा ॥
[भगवद्गीता ३।२४]

९—भवेदभीष्ममद्रोण धृतराष्ट्रबल कथम्।
यदि तत्तुल्यकर्मात्र भवान् धुर्यो न युज्यते [ वेणी० ३]

१०—तन्नो देवा विधेयासुर्येन रावणवद्धयम्।
सपत्नाश्चाधिजीयास्म सग्रामे च मृषीमहि ॥ [भट्टि. १९।२]

११—आदधीध्व महार्हाणि तत्र वासांसि सत्वराः।
उद्धुनीयात् सनकेतून् निर्हरेताग्र्यचदनम् ॥ ["]

१२—नावकल्प्यमिद ग्लायेद्यत्कृच्छ्रेषु भवानपि ।
न पृथग्जनवज्जातु प्रमुह्येत् पडितो जन ॥ ["]

## अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—अपि नामोर्वशी—

गूढा नूपुर शब्दमात्रमपि मे कान्त श्रुतौ पातयेत्

पश्चादेत्य शनै कराम्बुजवृते कुर्वीत वा लोचने।

हर्म्येऽस्मिन्नवतीर्य साध्वस-वशात् मन्दायमाना बलात्

आनीयेत पदात्पद चतुरया सख्या ममोपान्तिकम् ॥ ( विक्रमा०३ )।

२—इति ध्रुवेच्छामनुशासती सुता

शशाक मेना न नियन्तुमुद्यमात्।

क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चय मनः

पयश्च निम्नाभिमुख प्रतीपयेत् ॥ ( कुमार०५।५)

३—फलार्थी नृपतिर्लोकान् पालयेद्यत्नमास्थित ।

दानमानादितोयेन मालाकारोंऽकुरानिव ॥ ( पचतत्र १।८ )

४—कौर्म सकोचमास्थाय प्रहारानपि मर्षयेत्।

प्राप्तकाल तु नीतिज्ञ उत्तिष्ठेत् कृष्णसर्पवत्। हितोप०३)

५—किं वा तवात्यन्तवियोगमोघे
कुर्यामुपेक्षां हतजीवितेऽस्मिन् ।
स्याद्रक्षणीयं यदि मे न तेजस्
त्वदीयमन्तर्गतमन्तरायः ॥ ( रघु० १४।६५ ) ।

६—प्रसह्य मणिमुद्धरेत् मकरवक्त्रदंष्ट्रान्तरात्
समुद्रमपि संतरेत् प्रचलदूर्मिमालाकुलम् ।
भुजङ्गमपि कोपितं शिरसि पुष्पवद् धारयेत्
न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ॥ ( भर्तृहरि० नीति० ४ )

७—अप्राज्ञेन च कातरेण च गुणः स्याद्भक्तियुक्तेन कः
प्रज्ञाविक्रमशालिनोऽपि हि भवेत् किं भक्तिहीनात् फलम् ।
प्रज्ञाविक्रमभक्तयः समुदिता येषां गुणा भूतये
ते भृत्या नृपतेः कलत्रमितरे सम्पत्सु चापत्सु च ॥ ( मुद्रा० १ ) ।

८—त्वमिव यदि जीविताऽपहा
हृदये किं निहिता न हन्ति माम् ।
विषमप्यमृतं क्वचिद् भवेद्
अमृतं वा विषमीश्वरेच्छया ॥ ( रघु० ८।४६ ) ।

## संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—अपना अभीष्ट मनोरथ किस प्रकार सिद्ध करूँ-यह सोचते ही सोचते सारी रात बीत गई ।

२—इस महान् शोकसागर में निमग्न वह सम्भवतः किस प्रकार स्वस्थ होंगे ।

३—सम्भव है उसकी मानसिक व्यथा कामदेव के प्रभाव से उत्पन्न हुई हो ।

४—तुम्हें अपने गुरुओं की तथा माता-पिता की आज्ञा माननी चाहिए,

सत्य बोलना चाहिए, सज्जनों का साथ करना चाहिए, और सदा परमात्मा की महत्ता का चिन्तन करना चाहिए ।

५—यदि तुम इस घोरान्धकार में जाकर बाग मे मेरे लिए फूल लाओं तो मैं तुम्हे निर्भीक समझूँ ।

६—चाहे उसका हृदय पाषाण का भी बना हो, तो भी इस स्त्री की हृदयविदारिणी दशा देखकर वह करुणा से द्रवीभूत हो जायगा ।

७—उस अद्भुत वृत्तान्त को सुनकर मै किंकर्तव्यविमूढ तथा किंवक्तव्यविमूढ हो गया ।

८—लोभी आदमी को द्रव्य देकर तथा मूर्ख को उसकी मर्जी के अनुसार आचरण करके वश से करना चाहिए ।

९—सूर्य के अतिरिक्त और कौन आकाश के नैशान्धकारमालिन्य को दूर कर सकता है।

१०—यदि गरुड भी मुझसे पहिले रवाना हुए हो तो रथ के इस वेग से मै उन्हे भी पकड लूँ (पकड़ सकता हूँ) ।

११—चाहता हूँ कि दुष्ट चाणक्य नन्दवश के पक्ष मे चला आवे ।

१२—आशा करता हूँ (कच्चित्) आप की तपस्या निर्विघ्न चल रही है ।

———

# ऊनविंश पाठ

## लङ्, लिट् तथा लुङ्

## अनद्यतनभूत, परोक्षभूत तथा सामान्यभूत

२०७—संस्कृत में अतीत समय का बोध कराने के लिए तीन लकार होते हैं—(१)अनद्यतनभूत (लङ्) (२) परोक्षभूत (लिट्) (३) सामान्यभूत (लुङ्)। प्रारम्भ में प्रत्येक का पृथक् अर्थ था। प्राचीन ग्रन्थों में, अथवा जब संस्कृत बोलचाल की भाषा थी उस जमाने में लिखे हुए ग्रन्थों में ये तीनों लकार अपने ठीक ठीक अर्थ में प्रयुक्त होते थे। परन्तु आगे चलकर, जब संस्कृत बोलचाल की भाषा न रह गई, तब ग्रन्थकार इन तीनों कालों का मनमाना प्रयोग करने लगे। जिन अर्थों में ये तीनों लकार मौलिकतया प्रयुक्त होते थे वे ये हैं—

पाणिनि का मत है—अनद्यतने लङ् अर्थात् आज से पूर्व हुए कार्य का बोध कराने के लिए लङ्लकार का प्रयोग होता है।

परोक्षे लिट्—अर्थात् लिट् लकार आज से पहले हुए या किए हुए ऐसे कार्य का बोध कराता है जिसे वक्ता ने न देखा हो।

भूतार्थे लुङ्—अर्थात् लुङ् लकार साधारणतया सभी प्रकार के भूत कालों का बोध कराता है। इसका सम्बन्ध किसी विशेष समय से नहीं होता। यह सभी प्रकार की भूत घटनाओं को प्रकट करने के लिए प्रयुक्त होता है।

आज से पूर्व किया हुआ कार्य परचभूत अथवा अनद्यतनभूत द्वारा बताया जाता है। तो सामान्यभूत के लिए रह जाता है ऐसा कार्य जो अभी बहुत ही हाल मे (जैसे आज ही) हुआ हो अथवा जो किसी वर्तमान कार्य से सम्बन्ध रखता हो। अत सामान्यभूत से साधारणतया किसी कार्य का किसी भी अतीत काल मे, अथवा बहुत ही हाल मे (जैसे वर्तमा नही दिन के किसी समय मे)होना पाया जाता है। अनद्यतनभूत तथा परोक्षभूत प्राय. सुदूरवर्ती भूतकाल की घटनाओ का वर्णन करने मे प्रयुक्त होते हैं। सामान्यभूत आसन्न (हाल के) भूतकालिक कार्यों में आये हुए सलापों में प्रयुक्त होता है, परन्तु निश्चयपूर्वक उल्लिखित भूतकाल का बोध कराने के लिए अथवा घटनाओं का वर्णन करने के लिए यह कदापि प्रयुक्त नहीं होता। इस प्रकार, सारे पुरुषसूक्त (ऋग्वेद १०।९० ) मे केवल अनद्यतनभूत तथा परोक्षभूत का ही प्रयोग हुआ है और उल्लिखित घटनाएँ अतीत काल से सम्बन्ध रखती हैं। ऐतरेय ब्राह्मण म आसन्न ( हाल के ) कार्य सामान्यभूत द्वारा दिखलाए गए हैं, जैसे, स भूमि विश्वतो वृत्वा अत्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम्, गावो ह जज्ञिरे तस्मात् इत्यादि। अजनि त वै पुत्रो यजस्व मामनेनेति।

परन्तु बाद के संस्कृत-लेखकों ने अनद्यतनभूत, परोक्षभूत तथा सामान्यभूत के इस अन्तर की ओर बिल्कुल ध्यान नही दिया और किसी भी अतीत कार्य का बोध कराने के लिए तीनों का मनमाना प्रयोग किया, चाहे वह अतीतार्थ हाल का हो, चाहे सुदूर का हो चाहे वक्ता द्वारा देखा गया हो या न देखा गया हो, जैसे, **तदाऽहं किमकरवं कलागमं किं व्यजल्पम् इति सर्वमेव नाज्ञासिषम्** ( कादम्बरी )।

१०८—कभी कभी जब हाल से सम्बन्ध रखने वाला प्रश्न करना होता है तो **अनद्यतनभूत** का प्रयोग करते हैं, जैसे, **अगच्छत् किं स ग्रामम्**—क्या वह गाँव चला गया। परन्त जब सुदूरवर्ती भूतकाल

दिखाना हो तो केवल परोक्षभूत ही का प्रयोग करना चाहिए, जैसे, कंस जघान किम् ( सि० कौ० )—क्या उसने कंस को मार डाला।

२०९—परोक्षभूत—उत्तम पुरुष में परोक्षभूत कर्ता के मस्तिष्क की अचेतनावस्था अथवा उन्माद का बोध कराता है। अतः इस अर्थ के अतिरिक्त अन्य किसी भी अर्थ में परोक्षभूत का प्रयोग उत्तम पुरुष में नहीं करना चाहिए जैसे, बहु जगाद पुरस्तात्तस्य मत्ता किलाहम् (शिशु० ११।३९ )—उन्मत्त होने के कारण उसके सामने बहुत बड़बड़ाया।

(क) किसी के विरुद्ध जो कहा जाता हो या कहा गया हो उसके विपरीत उससे कहकर जब उस व्यक्ति से सच्ची वस्तुस्थिति छिपानी होती है तब परोक्षभूत उत्तम पुरुष का प्रयोग होता है, जैसे, नाहं कलिंगान् जगाम (सि० कौ०)—मैं कलिंग देश नहीं गया था। कलिंगेष्ववात्सी किम्—क्या तुम कलिंग देश में रहे थे।

२१०—सामान्यभूत—हाल के अतीत काल अथवा अनिश्चित अतीतकाल का बोध कराने के अतिरिक्त सामान्यभूत नैरन्तर्य (Continuousness) का भी बोध कराता है। इस अर्थ में अनद्यतनभूत कदापि नहीं आ सकता, जैसे, ब्राह्मणेभ्यो यावज्जीवमन्नमदात् (न किं अददात् )—उसने जिन्दगी भर ब्राह्मणों को भोजन दिया अर्थात् भोजन देना जिन्दगी भर जारी रक्खा।

(क) 'स्म' से अ-संयुक्त पुरा के योग में अनद्यतन भूत, परोक्षभूत, अथवा वर्तमान कोई भी प्रयोग में आ सकता है, जैसे, वसन्तीह पुरा छात्रा अवात्सुः, अवसन्, ऊषु वा—यहाँ पहिले विद्यार्थी रहते थे। परन्तु पुरास्म के साथ केवल वर्तमान आता है, जैसे, यजतिस्म पुरा—वह प्रचीन काल में यज्ञ करता था।

२११—मा या मास्म के अनन्तर सामान्यभूत का अ लुप्त हो जाता

---

१—क्रियाप्रबन्ध सामीप्ययोः। ३। ३। १३५।

है। जब सामान्यभूत मध्यम पुरुष अपने अ को लोप कर स्म के साथ आता है तो आज्ञा का अर्थ देता है, जैसे, वयस्य मा कातरो भूः (मालविका० ४)—मित्र, डरो मत। भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मास्म प्रतीपं गमः (शकु० ४)—अपमानित होने पर भी क्रोध के कारण पति के विपरीत आचरण मत करना।

मा भूमुहत् खलु भवतमनन्यजन्मा
मा ते मलीमसविकारघना मतिर्भूत्।
इत्यादि नान्वह निरर्थकमेव (मालती० १)

कामदेव तुझे मोहित न कर देवे, तेरा मस्तिष्क गन्दे विचारों से न भर जाय—इस विषय में यह कहना अथवा ऐसा ही कुछ और कहना व्यर्थ है।

## अभ्यास

१—तपोवनवासिनामुपरोधो मा भूत् (शकु० १)।
२—नरपतिराहारं निर्वर्त्य आस्थानमण्डपमयासीत्।
तत्र चावनिपतिभिरमात्यैर्मित्रैश्च सह तास्ता कथा कुर्वन् मुहूर्तमिवासा चक्रे। (काद०)।
३—शुकनासोऽपि महान्तं कालं तं राज्यभारमनायासेनै प्रज्ञाबलेन बभार। यथैव राजा सर्वं कार्याण्यकार्षी-त्तद्वदसावपि द्विगुणितप्रजानुरागञ्चकार। (काद०)।
४—आविर्भूतज्योतिषां ब्राह्मणानां
ये व्याहारास्तेषु मा संशयो भूत्। (उत्तर० ४)।
५—जुगोपात्मानमत्रस्तो भेजे धर्ममनातुरः।
अगृध्नुरादद सोऽर्थमसक्तः सुखमन्वभूत्॥ (रघु० १) २१।
६—अधिगतपरमार्थान् पण्डितान् मावमंस्थास्तृणमिव लघुलक्ष्मी

नैव तान् सरुणद्धि। (भर्तृहरि० नीति ०१७)।

७ - चडवर्मा प्राणैरेन न व्ययूयुजन्। अपि त्वनीनयदपनीताशेष-शल्यमकल्पमवो बन्धनगृहमजीगणच्च गणकसंघैरद्यैव क्षपावसाने विवाहनीया राजदुहितेति। (दशकुमार० २।१)।

८—दिश प्रसेदुर्मरुतो ववु सुखा
प्रदक्षिणार्चिर्हविरग्निराददे।
बभूव सर्वं शुभशंसि तत्क्षणम्
भवो हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम्॥ (रघु० ३।१४)।

९ - मा भूदाश्रमपीडेति परिमेयपुरःसरौ।
अनुभावविशेषात्तु सेनापरिवृताविव॥ (रघु० १।३७)।

१०—भूयस्तपोव्ययो मा भूद्वाल्मीकेरिति सोऽत्यगात्।
मैथिली तनयोद्गीत निस्पन्द मृगमाश्रमम्॥ (रघु० १५।३७)।

११—क्लैब्यं मास्मगमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप॥ (भगवद्गीता १।३)।

## संस्कृत में अनुवाद कीजिये—

१—जब मैंने जाना कि नींद में बड़बड़ाते हुए मुझे मेरे मित्रों ने सुन लिया है तो मैं लज्जित हो गया।

२—इस विषय में चिन्तित न होओ, तुम्हारी अनुपस्थिति में मेरे पिता जी तुम्हारे पुत्र की देख रेख रक्खेंगे।

३—कभी धर्मशास्त्रविषयक बातें करते हुए, कभी चित्र खींचने में संलग्न होकर उसने सारा दिन अपने मित्रों की मण्डली में बिता दिया।

४—तुमने मेरी पुस्तक क्यों बरबाद करदी? नहीं, महाशय जी, मैंने उसे देखा तक नहीं।

५— जब मै उनसे मिलने गया तो मैने उन्हें घर पर नहीं पाया ।

६—मेरे पिता जी ने पूर्वजों की सारी सम्पत्ति बाँट दी है ताकि हम लोग बाद मे एक दूसरे से झगडा न करे ।

७—सभी आश्रमो के चारों ओर राजा ने अपने रक्षको को स्थापित कर दिया है ताकि ऋषि लोगों की तपस्या मे कोई बाधा न पडे ।

८—मै यह देखकर प्रसन्न हूँ कि गरीबों की दशा सुधारने मे तुम्हारे सारे प्रयत्न सफलीभूत हुए ।

९—वादी के सारे गवाह आ गए हैं, अत अब मुकदमे की सुनवाई आरम्भ होनी चाहिए ।

१०—कई वर्षो तक आखेट करने मे अपना जीवन बिताकर अन्त मे वह अकस्मात् एक विकराल व्याघ्र के मुख मे जा गिरा ।



# विंशतितम पाठ

## दोनों भविष्य काल तथा क्रियातिपत्ति

२१२—सस्कृत मे भविष्यकालिक क्रिया का बोध कराने के लिए दो भिन्न भिन्न लकार हैं—(१) अनद्यतन भविष्य (लुट्) और (२) सामान्य भविष्य (लृट)। दोनो मे अन्तर वही है जो अनद्यतनभूत और सामान्यभूत मे, सिवा इसके कि अनद्यतनभूत और सामान्यभूत भूतकाल से सम्बन्ध रखते हैं और अनद्यतनभविष्य और सामान्यभविष्य भविष्य काल से सम्बन्ध रखते हैं, अर्थात लुट् लकार (अनद्यतन भविष्य) ऐसी क्रिया का बोध कराता है जो आज न होगी, और लृट् लकार (सामान्य भविष्य) साधारणतया सभी प्रकार की भविष्य क्रियाओ का—हाल मे भी होने वाली भविष्य क्रियाओ का—बोध कराता है।

इस प्रकार, यह निष्कर्ष निकला कि अनद्यतनभविष्य आज न होने वाली किसी दूरवर्ती भविष्यकालिक क्रिया का बोध कराता है।

सामान्यभविष्य अनिश्चित भविष्य काल—आज का भविष्य काल, हाल का भविष्य काल और निरन्तर भविष्य काल—का बोध कराने मे प्रयुक्त होता है, जैसे, पचषैरहाभिर्वयमेव तत्र गन्तारः (मुद्रा० ५)—हम लोग स्वय ही पॉच-छः दिनो में वहॉ जायॅगे। एते... उन्मूलितारः कपिकेतनेन (किरात० ३। २२)—वे लोग कपिध्वज अर्जुन के द्वारा नष्ट

कर दिए जायेंगे। यास्यत्यद्य शकुन्तला (शकु०४)—शकुन्तला आज बिदा हो जायगी। सेविष्यन्ते नयनसुभग खे भवन्त बलाका (मेघ०६)—आकाश मे, नेत्रो को सुन्दर लगने वाले तुम्क (मेघ) को बकुले सेऍगे।

ग्रन्थकारों ने इन दोनो लकारों के प्रयोग मे इतनी मनमानी नही की है जितनी अनद्यतनभूत, परोक्षभूत और सामान्यभूत के प्रयोग मे। अनद्यतनभविष्य बहुत कम प्रयोग मे आता है। इसका प्रयोग सुदूरवर्ती भविष्य (आज का भविष्य नही) का बोध कराने मे और सामान्यभविष्य का प्रयोग किसी भी अनिश्चित भविष्य काल का बोध कराने मे होता है।

२१३—जब किसी भविष्य क्रिया की अत्यत घनिष्ठ समीपता दिखानी होती है, तो वर्तमान अथवा भविष्य कोई भी प्रयोग मे लाया जा सकता है, जैसे, कदा गमिष्यसि—एष गच्छामि गमिष्यामि वा (सि० कौ०)—कब जाओगे? अभी जाऊँगा।

२१४[१]—जब समययुक्त (conditional) वाक्य मे आशा प्रकट की जाती है, तब भविष्य काल का बोध कराने के लिए सामान्यभूत, वर्तमानकाल, या सामान्यभविष्य कोई भी प्रयोग मे लाया जा सकता है, जैसे, देवश्चेदवर्षीद्, वर्षति, वर्षिष्यति वा धान्यमवाप्स्म वपामो वप्स्यामो वा (सि०कौ०)—यदि वर्षा होगी तो नाज बोवेंगे।

२१५—कभी कभी जब किसी से कोई कार्य करने के लिए विनम्रता-पूर्वक कहा जाता है तब लोट् के अर्थ मे सामान्यभविष्य प्रयोग मे आता है, जैसे, तदा मम पाशाश्छेत्स्यसि (हितोप०)—बाद मे मेरा जाल काट देना। पश्चात् सरः प्रति गमिष्यति मानस तत् (विक्रमो०)।

---

१—आशसायाँ भूतवच्च।३।३।१३२।

२१६—जहाँ क्रिया का न होना या न किया जाना दरशाना होता है वहाँ क्रियातिपत्ति (लृङ्) का प्रयोग होता है। या जहाँ पर पूर्वगामी उपवाक्य की असत्यता दरशाई जाती है वहाँ भी क्रियातिपत्ति का प्रयोग होता है। पूर्वगामी उपवाक्य ( Antecedent ) और अनुगामी उपवाक्य (Consequent) दोनों मे क्रियातिपत्ति के रूप लाए जाने चाहिएँ, जैसे, यदि सुरभिमवाप्स्यस्तन्मुखोच्छ्वासगन्धम्, तव रतिरभविष्यत् पुण्डरीके किमस्मिन् (विक्रमो० ४)—यदि तुमने उसके साँस की सुगन्धि पाई होती तो क्या तुम्हारे मन मे इस कमल के प्रति ज़रा भी रुचि हुई होती।

भट्टि ने क्रियातिपत्ति का प्रयोग बड़े व्यापकरूप मे किया है, पर संस्कृत-ग्रन्थकारों की परम्परा में उसको कहीं भी समर्थन नहीं मिलता।

संस्कृत मे क्रियातिपत्ति का प्रयोग ऐसे स्थलों पर नहीं किया जाना चाहिए जहाँ केवल यह दरशाना हो कि अमुक कल्पित दशा मे इस-इस प्रकार का परिणाम पैदा होगा, जैसे, यदि वह यहाँ होता तो वीरतापूर्वक अपने देश की रक्षा करता—यदि सोऽत्र सन्निहितो भवेत्तर्हि स्वदेशं वीरवद् रक्षेत्।

## कालों तथा वृत्तियों के प्रयोग पर कुछ और विचार

२१७—वर्तमान, भूत तथा भविष्य के भिन्न भिन्न रूपों के विवरण तथा उनकी जटिलताएँ संस्कृत मे नहीं मिलतीं। एक प्रधान काल होता है और भिन्न-भिन्न रूप उसी काल द्वारा प्रकट किए जाते हैं। इसी लिए संस्कृत के विद्यार्थियों को इन कालों के भिन्न भिन्न रूपों का ठीक उन्हीं के समकक्ष संस्कृत लकारों द्वारा अनुवाद करने में बड़ी अड़चन पड़ती है। निम्नलिखित सेक्शनों में इस विषय पर कुछ नियम दिए जाते हैं और पूर्वगामी तीन पाठों में जो कुछ लिखा गया है, इनमें उसी का अधिक विस्तार के साथ निरूपण किया गया है।

## वर्तमान, भूत तथा भविष्य

२१८—जैसा कि पहिले ही कहा जा चुका है, संस्कृत का वर्तमान काल बहुत से उन्हीं अर्थों का बोध कराता है जिनका अंग्रेजी का वर्तमान काल (सेक्शन १८६)। अतीत कालिक क्रिया से सम्बन्ध रखने वाले तीनों भूतकालों मे से किसी भूतकाल के द्वारा भूतकालिक क्रिया प्रकट की जा सकती है। भविष्यकालिक क्रिया साधारणतया दोनों भविष्य कालिका रूपों द्वारा प्रकट की जाती है, हाँ, कभी कभी विधिलिङ् द्वारा भी प्रकट की जाती है (सेक्शन १६८)।

२१९—सातत्यबोधक अथवा नैरन्तर्य-बोधक (Continuous) रूपों का अनुवाद संस्कृत में केवल सामान्यरूपों द्वारा किया जा सकता है। सातत्य-बोधक वर्तमान काल (Present Continuous), सातत्यबोधक भूतकाल (Past Continuous), और सातत्य बोधक भविष्यकाल (Future Continuous)—इतने सातत्यबोधक काल होते हैं। 'वह अपना पाठ पढ रहा है'' का अनुवाद ''स पाठमधीते'' होगा, न कि 'सोऽधीयानोऽस्ति'। सातत्यबोधक वर्तमान (Continuous form) वस्तुतः अथवा सच्चे अर्थों मे वर्तमानकाल है (बेनकृत व्याकरण पृष्ठ १८३)। ''इस समय लड़के खेल रहे हैं'' का अनुवाद ' बालकाः अधुना क्रीडन्ति'' होगा। ''सूर्य चमक रहा था'' का अनुवाद ''रविरतपत्'' होगा (न कि तपन्नासीत्)। ''वह पाठ तैयार करता रहेगा'' का अनुवाद ''स पाठं सज्जयिष्यति'' होगा।

विशेष—सेक्शन १४५ में जैसा नियमित सातत्य (regular Continuity) बताया गया है, वैसा नियमित क्रियासातत्य जहाँ प्रकट करना अभीष्ट होता है वहाँ आस् धातु मे शानच् जोड़ कर काम चलाते हैं। जब ये सातत्यबोधक रूप (Continuous forms) आश्रित वाक्यों में आते हैं तब शत्रन्त तथा शानजन्त की भावसप्तमी का रूप

बडे मजे मे प्रयोग मे लाया जा सकता है। 'जब मन्त्री बोल रहा था, उस समय सभा मे एक दूत ने प्रवेश किया" का अनुवाद 'भाषमाणेऽमात्ये कश्चिद् दूत सभा प्राविशत्" होगा।

२२०—बलबोधक रूपों (Emphatic forms) का अनुवाद एव, नूनम ,खलु अथवा ऐसे ही किसी निश्चयबोधक शब्द को साधारण रूपों के साथ जोड़कर कर सकते हैं, जैसे, "मै तुझे अपराधी समझता तो हूँ"का अनुवाद अह त्वामपराधिन मन्ये खलु- अथवा नूनमह त्वामपराधिनम्मन्ये। "उसने असत्य भाषण तो किया" का अनुवाद "सोऽसत्यमभापत ए--खलु।"

## पूर्ण तथा उसके सातत्य बोधक रूप

### Perfect and its Continuous Forms

२२१—पूर्ण वर्तमान (Present Perfect) की क्रिया लुङ् लकार (सामान्यभूत) अथवा क्तवतु द्वारा प्रकट की जाती है, जैसे, 'जो कुछ पाप मने दिन में किया है' का अनुवाद 'यदह्ना पापम ार्षम्' होगा। " मैने अपना काम कर डाला है' का अनुवाद 'अह स्वकार्यं सम्पादितवान्' होगा। कभी-कभी अनद्यतनभूत द्वारा और कभी-कभी परोक्षभूत द्वारा भी इसका अनुवाद किया जाता है, जैसे, "उसने अपना भाषण समाप्त कर दिया है" का अनुवाद 'स भाषणमवसितवान्' अथवा भाषणाद् व्यरसीत् अथवा व्यरमत् अथवा विरराम।

२२२—आश्रित वाक्यों मे आने वाले पूर्णभूत भावसप्तमी द्वारा प्रकट किए जाते हैं,जैसे,"जब वह बिदा हो गया तब मै लौटा"का अनुवाद तस्मिन्नपक्रान्ते ऽह प्रत्यागच्छम्' होगा। 'जब मै अपना पाठ पढ चुका तब पाठशाला गया" का अनुवाद 'पाठानधीत्य शालामगच्छम्' होगा। कभी-कभी केवल क्त और क्तवतु द्वारा अनुवाद होता है, जैसे, ऐसा कह चुकने वाले से मैने कहा-अब जाओ—इत्युक्तवन्तं व्रज

माधयेत्यइमब्रवम । जो क्षत हो चुका था उसको उसने अच्छा कर दिया —स तमचिकित्सत ।

२२३—धातु मे क्त और क्तवतु लगाकर भू धातु के विधिलिङ् के रूप द्वारा अथवा कर्म वाच्य या भाव वाच्य द्वारा पूर्ण भविष्य प्रकट किया जा सकता है । वह वहाँ अब तक चला गया होगा—अनन समगन स तत्र गता भवेत् अथवा तेन तत्र गन्तव्यम् ।

२२४—पूर्ण सातत्यबोधक रूपो (Perfect Continuous forms) के उदाहरण ये हैं—मै करता रहा हूँगा, मै करता रहा था, मै करता रहा हू । इनका अनुवाद तीन प्रकार से किया जा सकता है (१) काल वाचक शब्दो के साथ साधारण लकारों का रूप रख कर, जैसे, त चि ान्निव नत (हर्ष चरित) (१) आस्, वस्, अथवा स्था (सेक्शन १४५) के सदृश (Corresponding) लकारों के रूपों के साथ शत्रन्त और शानजन्त शब्द रखकर, जैसे, ग त ।मा-यच ार प्रताक्ष-मणमनस्थौ (काद)' अथवा (३) शत्रन्त और शानजन्त की षष्ठी का रूप चलाकर और कर्ता को भी षष्ठा मे रखकर, जैसे, मै इसे तीन दिन से करता रहा हूँ—इद कुर्वतो मम दिनत्रय जातम् । वह वहाँ कितने समय तक ठहरता रहा था—तत्र स्थितस्य तस्य कियान् कालो व्यतीत. ।

२२५—वह करने जा रहा है या वह करने वाला है, वह करने वाला था, वह करने वाला होगा—ऐसे वाक्यो का अनुवाद तुमुनन्त के साथ काम या मनः जोडकर किया जाता है (सेक्शन १८९), जैसे, कर्तुकामोऽस्ति-बभूव-भविष्यति वा । आश्रित वाक्यो मे इनका अनुवाद स्यत् स्यमान द्वारा भी किया जा सकता है, जैसे, जब वह जाने वाला था तो मैने उससे इस प्रकार 'कहा—गमिष्यत अथवा गन्तुकाम तमहमवाचम् ।

# Will and Shall

## गा, गी, गे,

२२६—साधारण भविष्यकाल का बोध कराने वाला उत्तम पुरुष के साथ Shall (गा) तथा मध्यम और प्रथम पुरुष के साथ Will सामान्य भविष्य अथवा विधिलिङ् द्वारा अनूदित किया जा सकता है, जैसे, मै इसे करूँगा—अहं तत् कुर्याम् अथवा करिष्यामि। वह वहाँ जायगा—स तत्र गच्छेत् अथवा गमिष्यति।

२२७—दृढ़ सकल्प अथवा इच्छा का बोध कराने वाला Will उत्तम पुरुष के साथ आने पर इच्छार्थक धातुओं के वर्तमान काल द्वारा अथवा एव या इसी प्रकार के निश्चय-बोधक शब्दों को सामान्यभविष्य के रूपों के साथ लगा कर अनूदित किया जा सकता है, जैसे, I will do it—अहं तत् कर्तुमिच्छामि अथवा अहं तत्करिष्याम्येव। Even if death be the result, I will do it—यद्यपि तत् मृत्युपर्यवसायि भवेत् तथाप्यहं तत्करिष्याम्येव।

२२८—मध्यम पुरुष तथा प्रथम पुरुष के साथ आने वाले Shall से वक्ता की आज्ञा, धमकी अथवा अटल-निश्चय प्रकट होता है। ऐसे वाक्यों का अनुवाद विधिलिङ् द्वारा अथवा आज्ञापय्-सरीखे किसी आज्ञार्थक शब्द द्वारा, अथवा धातु के प्रेरणार्थक रूप के भविष्य काल के साथ, वक्ता को प्रेरणार्थक का कर्ता बना कर किया जाता है, जैसे, The son shall obey his father—पुत्रः पितुराज्ञामनुरुध्येत। Thou shalt go to the castle—का अर्थ है I command thee to go to the castle—दुर्गं गन्तुं त्वामाज्ञापयामि*। He shall do it अहं तं तत् कारयिष्यामि अहं तं गमयिष्यामि।

---

*अनुवादक की राय में यह प्रयोग अशुद्ध है—समानकर्तृकेषु तुमुन् सूत्र का उल्लंघन होता है।

कभी-कभी ऐसे वाक्यों का अनुवाद किया जाता है, तव्य, अनीयर् यत् ण्यत् प्रत्ययों के साथ एव, अवश्यम् आदि लगा कर, जैसे, Thou shalt not kill him—त्वया स नैव हन्तव्य, Thou shalt not move even a step from this place —त्वयास्मात्स्थानात् पदात् पदमपि न दातव्यम्।

(२) जब Shall से प्रतिज्ञा का बोध होता है तब किसी निश्चय-बोधक शब्द के साथ विधिलिङ् अथवा सामान्यभविष्य का रूप रखकर अनुवाद किया जा सकता है, जैसे, He shall be my prime minister—स मम प्रधानसचिवो भवेत् (भविष्यति) इत्यह निश्चयेन कथयामि अथवा त प्रधानसचिव करिष्याम्येव।

२२६—अप्रत्यक्ष कथन (Indirect Speech) मे आया हुआ Shall सभी पुरुषों के साथ साधारण भविष्य काल का बोध कराता है और सामान्य भविष्य अथवा विधिलिङ् द्वारा अनूदित किया जा सकता है, जैसे, You say you shall do it—वय तत् करिष्यामः कुर्याम वाइति यूय भणथ।

कर्ता का दृढ संकल्प प्रकट करने वाला तथा सभी पुरुषों के साथ प्रयुक्त होने वाला Will सेक्शन २२७ में बताई हुई विधि द्वारा अनूदित किया जा सकता है, He says he will write—अहमवश्य लेखिष्यामीति वदति।

२३०—प्रश्नवाचक वाक्यों मे, उत्तमपुरुष को छोड़ कर सभी पुरुषो के साथ आने वाले तथा प्रष्टव्य पुरुष की इच्छा प्रकट करने वाले Will और Shall का अनुवाद लोट् अथवा विधिलिङ् द्वारा किया जा सकता है। जब वाक्य के कर्ता की इच्छा दिखलाना अभीष्ट हो तब इच्छार्थक धातुओं के द्वारा अनुवाद किया जाता है। Shall I or he go?—गच्छयम् किम् अथवा गच्छानि किम्, गच्छेत् किम्, गच्छतु किम्। Shall you go? गच्छेत किम् अथवा गन्तु शक्नुथ

किम्। Will you or he go?—गन्तुमिच्छथ किम् अथवा गन्तुमिच्छति किम्।

परन्तु जब will प्रश्नवाचक वाक्यों में आता है और साधारण भविष्य काल का बोध कराता है तब वह सामान्यभविष्य द्वारा अनूदित होता है, जैसे Will he go there? तत्र गमिष्यति किम्। Will you come to my house? मम गृहमागमिष्यथ किम्।

## Should and Would

२३१—अतर्कितोपपन्न अथवा आपातिक (Contingent) भविष्य काल, कर्तव्यता अथवा धर्म का बोध कराने वाले Should का अनुवाद विधिलिङ् (सेक्शन १६३) अथवा कृत्यप्रत्ययों से होता है। परन्तु जब चाहिए Should से कोई सन्देह अथवा अविश्वास सूचित होता हो तो 'इति मे वितर्कः' अथवा 'इति' मे मतिः कह कर अनुवाद किया जाता है। उदाहरणार्थ I Should think so से अविश्वास प्रकट होता है।

२३२—दैवयोग या यदृच्छा (Contingency) अथवा इच्छा बोध कराने वाले Would का अनुवाद विधिलिङ् द्वारा होता है (सेक्शन १६८)। जब Would से किसी स्वाभाविक या आभ्यासिक कार्य (habitual action) का बोध होता है तो केवल वर्तमान काल का प्रयोग होता है, जैसे, कालं नयति—अपना समय व्यतीत किया करता था। पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलम् (शकु० ४)—वह पहिले जल नहीं पीती थी। यदि वह यहाँ उपस्थित हुए होते तो क्या ही अच्छा हुआ होता—यदि सोऽत्र सन्निहितः स्यात् तर्हि अहो शोभनं भवेत्।

(क) प्रश्नवाचक वाक्यों मे आने वाले Would और Should का वैसा ही अनुवाद किया जाता है जैसे Will और Shall का, जैसे, Should I or he go out? बहिर्गच्छेयम्—गच्छानि किम्

(गच्छेत् अथवा गच्छतु किम्)। Would you do this? यूयमेतत् करिष्यथ किम् अथवा कर्तुमिच्छथ किम्।

# May (might) and Can (could)

२३३—सम्भावना, स्वीकृति, अभिप्राय का बोध कराने वाला may विधिलिङ् से अनूदित होता है, जैसे, अक्षैर्दीव्येयमिति प्रत्यहमत्रायामि—यहाँ मै प्रतिदिन इस लिए आता हूँ कि जुआ खेलूँ (अभिप्राय सूचित करता है)। परन्तु जब may से इच्छा का बोध होता है तब वह विधिलिङ् अथवा आज्ञा अथवा आशीर्लिङ् से अनूदित होता है।

२३४—Can (could) सकना—शक्ति का बोध कराता है, न कि स्वीकृति का। प्रधान क्रिया मे तुमुन् जोड़कर तथा सकना-अर्थ वाली किसी क्रिया का प्रयोग कर के इसका अनुवाद किया जाता है, जैसे, मै इसे कर सकता हूँ— तत् कर्तुं शक्नोमि—पारयामि—समर्थ वा।

२३५—Might का अनुवाद साधारणतया विधिलिङ् से होता है, जैसे It might be so—ऐसा हो सकता है—एवं स्यात्। कभी कभी कृत्य प्रत्यय द्वारा अनुवाद करते हैं, जैसे He might be my friend—सम्भव है वह मेरा मित्र हो—कदाचिदनेन मम मित्रेण भवितव्यम्।

(क) यदि पूर्णकाल (Perfect tense) के साथ आया हुआ might सम्भावना सूचित करता हो तो वह विधिलिङ् अथवा क्त प्रत्यय द्वारा अनूदित होता है, जैसे, He might have done it—सम्भव है उसने यह कार्य किया हो—तेनैतत् कृतं स्यात्-कर्तव्यम्। इसी प्रकार I could have done it—मैं इसे कर सका होता—मयैतत् कर्तुं शक्यमासीत् (किन्तु न कृतम्)।

# Must and Ought

२३६—आवश्यकता, बाह्य शक्ति, निश्चय अथवा अवश्यम्भावी परि-

याम का बोध कराने वाला must सर्वदा कृत्यप्रत्यय द्वारा अनूदित होता है, जैसे, You must go त्वया गन्तव्यम्। He must obey me—अहं तेनानुरोद्धव्य.।

२३७—Ought भी उसी प्रकार अनूदित होता है, जैसे, You ought to learn it—त्वयेद (अवश्यम्) अध्येतव्यम्। कभी कभी तुमुनन्त के साथ अर्ह् धातु के रूप जोड़देते हैं, जैसे, इदमध्येतुमर्हसि।

पूर्णकाल (Perfect tense) के साथ आए हुए must और ought का अनुवाद क्त प्रत्ययान्त के साथ विधिलिङ् का रूप जोड़कर अथवा कृत्य प्रत्यय से किया जाता है, जैसे He must have come home—स गृहमागतो भवेत् अथवा तेन गृहमागन्तव्यम्। एव-मनया प्रष्टव्यम् (मालविका० ४)—उसको तुमसे ऐसा पूछना चाहिये था। इदं त्वया मह्यं कथयितव्यम्—तुम्हे मुझसे यह बात कह देनी चाहिये थी।

२३८—मैं आज्ञा देता हूँ कि उसे फाँसी दे दी जाय, मैं आशा करता हूँ कि मैं इस काय में कृतकार्य होऊँ, उसे बचाओ, कहीं ऐसा न हो कि उसका विकार बढ़ जाय— इन वाक्यों मे दे द ज.य, होऊँ, और बढ़ जाय क्रियाएँ ध्यान देने योग्य हैं। ऐसे वाक्यों का अनुवाद विधिलिङ् अथवा लोट् से किया जाता है। उपर्युक्त वाक्यों का अनुवाद क्रमशः इस प्रकार होगा— स शूलमारोप्येत अथवा स शूलमारो-प्यताम् इत्यहमाज्ञापयामि। अस्मिन् कार्ये विजयी भवेयमित्याशासे अथवा अपि नाम विजयी भवेयम् (सेक्शन २०३) परित्रायतामेना भवान्। मा अस्या विकारो वर्धताम्।

२३९—सोपाधिक वाक्यों (Conditional sentences) मे जिनमे दोनों ही उपवाक्यों में वर्तमान काल प्रयुक्त रहता है, हेतुहेतुमद्भूत (Subjunctive) का अनुवाद सेक्शन २०६ के अनुसार किया जा सकता है, जैसे, यदि तुम जाते हो, तो मैं जाता हूँ—यदि यूय गच्छथ

(गमिष्यथ अथवा गच्छेत), तर्हि अहं गच्छामि (गमिष्यामि अथवा गच्छेयम्)। यदि वृष्टि होती है तो हमलोग बाहर नहीं जा सकेंगे—यदि देवो वर्षेत् (वर्षति वर्षिष्यति वा) तर्हि वयं बहिर्गन्तुं न शक्नुयाम (शक्ष्याम)।

२४०—यदि हेतु-हेतुमद्भूत (Subjunctive Mood) भूतकाल के साथ आवे तो दोनों उपवाक्यों मे विधिलिङ् का प्रयोग किया जाता है, जैसे If he were here he would accompany me—यद्यः स भवेत् तन्मया सहागच्छेत्।

परन्तु जब भूतकालिक हेतु हेतु मद्भूत से प्रत्याख्यान अथवा पूर्वगामी उपवाक्य का मिथ्यात्व सूचित होता है तो विधिलिङ् कदापि नही आवेगा, बल्कि क्रियातिपत्ति आवेगी(सेक्शन २१६),जैसे,If the book were in the library (as it is not), it should be given to you—यदि तत्पुस्तकं ग्रन्थालयेऽभविष्यत्तर्हि तद् युष्मभ्यम् अदास्यत।

ऊपर लिखे हुए पूरे विवरण को पढने से यह निष्कर्ष निकलता है कि हेतु-हेतु मद्भूत (Subjunctive Mood) का प्रयोग तीन प्रकार से होता है—

(१) If the book is (as I know it is) in the library, you may take it
(२) If it be (I am uncertain) there, you may take it.
(३) If it were (as I know it is not) there, you might take it

प्रथम दो का अनुवाद वर्तमानकाल अथवा विधिलिङ् द्वारा किया जायगा। तीसरे का अनुवाद क्रियातिपत्ति द्वारा होगा।

२४१—Pluperfect Conditionl को सर्वदा क्रियातिपत्ति से सूचित करते हैं (सेक्शन २१६)।

अभ्यास

१—तदाकर्ण्य दमनकश्चिन्तयामास । युद्धाय कृतनिश्चयोऽय दृश्यते दुरात्मा । तद् यदि कदाचित्तीक्ष्णशृङ्गाभ्यां स्वामिन प्रहरिष्यति तर्हि महाननर्थ सम्पत्स्यते । ( पचतत्र १ ) ।

२—युवराज, कि न जित देवेन तारापीडेन यद् जेष्यसि । कानि द्वीपान्तराणि नात्मीकृतानि यान्यात्मीकरिष्यसि । कानि रत्नानि नोपार्जितानि यान्युपार्जयिष्यसि । ( कादम्बरी ) ।

३—तौ चेद्राजपुत्रौ निरुपद्रवाववर्धिष्येतामियता कालेन तवेमा वयोवस्थामस्प्रक्ष्येताम् । ( दशकुमार० २।३ ) ।

४—तया देवतयास्मै स्वप्ने समादिष्टम् । उत्पत्स्यते तवैक पुत्रो जनिष्यते चैका दुहिता । स तु तस्या पाणिग्राहकमनुजीविष्यति । ( दशकुमार २।६ ) ।

५—गामधास्यत् कथ नागो मृणालमृदुभि फणै. ।
आरसातलमूलात्त्वमवालंबिष्यथा न चेत् ॥

( कुमार० ६।६८)

६—राजन्प्रजासु ते कश्चिदपचार प्रवर्तते ।
तमन्विष्य प्रशमये भवितासि तत कृती ॥ (रघु० १५।४७)।

७—अकरिष्यदसौ पापमतिनिष्करुणैव सा ।
नाभविष्यमह तत्र यदि तत् परिपथिनी ॥ ( मालती० ६ )।

८—सिध्यंति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्या,
सम्भावनागुणमवेहि तमीश्वराणाम् ।
कि वाऽभविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता
तं चेत् सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत् ॥
( शकु० ७ ) ।

९—भागुरायण.—कुमार, न कदाचिदपि शकटदासोऽमात्यराक्ष-

## संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—समस्त प्रजा को सूचित कर दिया जाय कि आज से चन्द्रगुप्त स्वयं ही राज्य के सारे कार्यों की देख भाल करेंगे।

२—यदि तुम केवल प्रयत्न करो तो तुम अपना अभीष्ट मनोरथ प्राप्त कर लोगे।

३—ऋषि ने कहा-यह सब आने वाले कलियुग में होगा और लोग नाना प्रकार के पाप करेंगे।

४—यदि बाल्यकाल से ही सावधानी के साथ वह लड़का पाला पोसा गया होता तो, मुझे पूर्ण विश्वास है, अब तक वह इस लड़के के समान बड़ा हो गया होता।

५—ऐश्वर्य के दिनों में मनुष्य के सैकड़ों मित्र हो जाते हैं परन्तु विपत्ति में वे त्याग देते हैं।

६—यदि अपराधियों को दण्ड देने में राजा शीघ्रता न करता तो बलवान् लोग निर्बलों को सता डालते।

७—यदि तुम और गोपाल यहाँ होते तो तुम उस भयंकर दृश्य का देखना सहन न कर सकते।

८—एक बारहसिंगे ने एकबार अपने मन में कहा—यदि मेरी टाँगें मेरी सींगों के समान होतीं तो इस पृथ्वी पर कोई भी पशु सौन्दर्य में मेरी तुलना न कर सकता।

९—यदि राम ठीक उस समय पर न गए होते तो सारा घर जल गया होता।

१०—यदि मैं उस समय बिल्कुल तटस्थ न रहा होता तो मैं महाराज के क्रोध का भाजन हो गया होता।

११—यह असम्भव है कि अब वह लौटकर आवेगा और हम लोगों के साथ आनन्दपूर्वक समय बितावेगा।

१२—जिस उत्साह से मै ने राजा की सेवा की यदि उसके आधे उत्साह से भी परमात्मा की सेवा की होती तो उसने मुझे नग्न कर मेरे शत्रुओं के हाथों में न सौंप दिया होता।

——

# एकविंश पाठ

## अग, अथ, अधिकृत्य, अपि, अयि, अये, अहह, अहो

२४२—पाणिनिकी अष्टाध्यायी, अमरकोश तथा वर्धमानकृत गण-रत्न महोदधि मे अव्यय के अन्तर्गत बहुत से शब्द गिनाए गए हैं। उनमे से बहुतेरे संयोजक का काम देते हैं। उनके अर्थों को ठीक ठीक समझ लेना आवश्यक है। जो अव्यय प्राय. काम मे आते हैं उनपर इस पाठ में तथा आगामी सात पाठों मे विचार किया जायगा।

२४३[1]—अग शब्द सम्बोधन करने के काम मे आता है, जैसे, तन्मन्ये क्वचिदग भृगतरुणेनास्वादिता मालती (गणरत्न महोदधि)—श्रीमन्, इसीलिए मै समझता हूँ कि मालती पुष्प कहीं पर किसी तरुण भ्रमर द्वारा आस्वादित कर लिया गया है। व्रजजनौकसां व्यक्तिरग ते, वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमंगलम् (श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध पूर्वार्ध- इकतीसवाँ अध्याय श्लोक १८)। अग कच्चित् कुशली तात (काद०)। प्रभुरपि जनकानामग भो याचकस्ते (महावीर चरित ३)।

कभी-कभी अग शब्द आदर या श्रद्धा दिखलाने के लिए आता है, जैसे, अग विद्वन्माणवक मध्यापय (गणरत्न महोदधि)—ऐ विद्वान् महापुरुष, माणवक को पढाइए।

---

१—अग पूजा सम्बोधनयो. (ग० म०)।

(क) कभी कभी अग 'किम्' के साथ आता है और प्राय. उसी अर्थ में प्रयुक्त होता है जिसमे किमुत अथवा किम्पुन, जैसे, तृणेन कार्यं भवतीश्वराणां किमग वाग्घस्तवता नरेण (पचतत्र १।१)—धनी लोगों का तृण से (भी) काम पड़ जाया करता है, फिर वाणी तथा हाथों से युक्त मनुष्य की तो क्या कहना है।

२४४—अथ इन अर्थों मे प्रयुक्त किया जाता है—(१) मगल का चिह्न, अथातो ब्रह्मजिज्ञासा (शकरभाष्य)—अब इसके आगे ब्रह्म के बारे मे विवेचन। (२) किसी वक्तव्य या कथन के प्रारम्भ मे, अथेदमारभ्यते द्वितीय तन्त्रम् (पचतन्त्र)—अब दूसरा तन्त्र आरम्भ होता है। (३) इसके बाद या तब के अर्थ में, अथ प्रजानामधिप प्रभाते वनाय धेनुं मुमोच (रघु० २।१)--इसके बाद नराधिप ने प्रात काल गाय को वन जाने के लिए खोल दिया या छोड़ दिया। प्राय. इसी अर्थ मे यदि अथवा यद् का इतरेतरसम्बन्धी (correlative) बनकर आता है, न चेन्मुनिकुमारोऽयमथ कोऽस्य व्यपदेश (शकु० ७)। (४) प्रश्न पूछने मे, अथ शक्तोऽसि भोक्तुम् (गणरत्नमहोदधि)।

प्रायः प्रश्नवाची शब्द के साथ ही अथ आता है, अथ सा किमाख्यस्य राजर्षे पत्नी (शकु ८७)। (५) 'और' तथा 'भी' के अर्थ मे, भीमोऽथार्जुन (गणरत्नमहोदधि)—भीम और अर्जुन। गणितमथ कला कौशिकीम् (मृच्छकटिक १)—गणित और कौशिकी कला भी। (६) 'यदि' के अर्थ में, अथ कौतुकमावेदयामि (काद)—यदि तुम्हे कौतुक है तो कहूँगा। अथ मरणमवश्यमेव जन्तोः (वेणी० ३)—यदि मनुष्य की मौत होना निश्चित (अवश्यम्भावी) है। (७)साकल्य, पूर्णता;

१—मगलानन्तरारम्भप्रश्नकार्त्स्न्येष्वथो अथ। (अ) अथोप स्यात् समुच्चये।
मगले सशयारम्भाधिकारानन्तरेषु च।
अन्वादेशे प्रतीताथा प्रश्नसाकल्ययोरपि॥ (है)

अथ धर्मं व्याख्यास्यामः (गणरत्न महोदधि)—हम पूरा-पूरा धर्म वर्णन करेंगे। (८) संशय या अनिश्चय, शब्दो नित्योऽथानित्यः (गणरत्नमहोदधि)।

विशेष—कोशों मे अधिकार' अर्थ मे भी अथ का प्रयोग बताया गया है, जैसे, अथ समाप्तः। परन्तु ऊपर लिखा हुआ (१) और (२) और अधिकार एक ही वस्तु है, क्योंकि वे सभी वाक्यारम्भ मे आते हैं। इसी प्रकार अन्वादेश और प्रतिज्ञा (affirmation, proposition)। अन्वादेश का अर्थ है—एक ही वाक्य में किसी शब्द का एक बार प्रयोग करके दोबारा प्रयोग करना।

२४५—'अथकिम्' का अर्थ है—'और क्या','हाँ', 'ठीक ऐसी ही बात है', जैसे, शकार—चेट प्रवहणमागतम्। चेट—अथकिम् (मृच्छकटिक ८)—शकार—क्या गाड़ी आ गई। भृत्य—हाँ।

(क) 'अथवा' विभाजक के तौर पर प्रयुक्त होता है। परन्तु प्रायः किसी पूर्व कथन मे परिवर्तन करने के लिए या उसमें संशोधन करने के लिए 'अथवा' आता है, जैसे, दीर्यें किं न सहस्रधाहमथवा रामेण किं दुष्करम् (उत्तर०६)—मै हजारों टुकड़ों मे क्यों नहीं फट जाती, अथवा राम के द्वारा किस काम का किया जाना मुश्किल है।

२४६—'अधिकृत्य' का अर्थ है "बारे मे"। इसके योग में द्वितीया आती है, जैसे, अथ कतमं पुनर्ऋतुमधिकृत्य गास्यामि (शकं० १)—किस ऋतु के बारे में गाऊँ।

'उद्दिश्य' का अर्थ है "बारे मे", 'तरफ' स्वपुरमुद्दिश्य प्रतस्थे (हितो०४)—वह अपने नगर की तरफ रवाना हो गया। किमुद्दिश्यामी ऋषयो मत्सकाशं प्रेषिताः स्युः (शक०५)—किस उद्देश्य से ये ऋषि लोग मेरे पास भेजे गए होंगे।

२४७[1]—अपि के ये अर्थ होते हैं—(१) यद्यपि, चाहे—पातितोऽपि कराघातै (भर्तृहरिनीति श्लोक ८५)—यद्यपि हाथ के प्रहारों से गिरा दिया जाता है तब भी। (२) भी—इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी (शकु०१)—यह पतले शरीर वाली कन्या वल्कल पहिनने पर भी बहुत सुन्दर लगती है। (३) और भी, राजा प मुनिवाक्यमंगीकृत्यातिष्ठत् (दशकुमार १।१)—और राजा भी ऋषि की बात मान कर ठहर गए। विष्णुशर्मणापि राजपुत्राः पाठिताः (पंचतंत्र१ —और विष्णुशर्मा ने भी राजपुत्रों को पढाया। अपि सिंच अपि स्तुहि (सि० कौ०)—सींचो और स्तुति करो। अस्ति मे सोदरस्नेहोऽप्येतेषु (शकु०१)—मेरे हृदय में इन के प्रति सगों-जैसा स्नेह भी है। ४)प्रश्न पूछने मे भी अपि आता है, पर इस दशा मे वह वाक्य के आरम्भ मे आता है, जैसे, अपि तपो वर्धते (शकु०१)—क्या तुम्हारी तपस्या वृद्धि कर रही है। अप्येतत्तपोवनम् (उत्तर०२)—क्या यह तपोवन है। (५) संशय—अपि चोरो भवेत् (गणरत्नमहोदधि)—क्या यह चोर तो नही है (अर्थात् मुझे इस विषय मे निश्चयात्मक ज्ञान नही है)। (६) आशा, सम्भावना अर्थ मे—अपि जीवेत् स ब्राह्मणशिशुः (उत्तर०२)—आशा करता हूँ कि वह ब्राह्मणशिशु जी जाय।

विशेष—आशा या सम्भावना अर्थ मे अपि के साथ प्रायः नाम जुड़ा रहता है, जैसे, तदपि नाम रामचन्द्रः पुनरपीदं वनमलंकुर्यात् (उत्तर०२)—तो मै आशा करता हूँ कि श्री रामचन्द्र जी फिर इस वन को (अपनी उपस्थिति द्वारा) सुशोभित करेंगे।

टिप्पणी—'अपि के' और भी बहुत से अर्थ बताए गए हैं, जैसे

---

१—गर्हा समुच्चयप्रश्नशङ्कासम्भावनास्वपि (अ)
अपि सम्भावनाप्रश्नशङ्कागर्हासमुच्चये।
तथायुक्तपदार्थेषु कामचारक्रियासु च ॥ (वि०)

गर्हा (निन्दा), धिग्देवदत्तमपि स्तुयाद् वृपलम् (सि० कौ०)—देवदत्त को धिक्कार है जो शूद्र की भी प्रशंसा करता है।

'पदार्थ' अर्थ में भी अपि का प्रयोग होता है। पदार्थ का अर्थ है—किसी अप्रत्यक्ष यानी परोक्ष शब्द का अर्थ। सर्पिषोऽपि स्यात् (सि० कौ०)—घी का एक बूँद भी।

कामचारक्रिया अथवा अन्वव ग (किसी का इच्छानुसार स्वीकृति दे देना), अपि स्तुहि—यदि चाहो तो स्तुति कर सकते हो। अपि तुद अपि सेधाम्मास्तव रमक्त नराशन (भट्टि०८।९२)

(क) संख्यावाची शब्दों के बाद अपि का 'सम्पूर्णता' अर्थ होता है, जैसे, सर्वैरपि राज्ञां प्रयोजनम् (पंचतंत्र। १)—राजाओं को सभी से मतलब रहता है। इसी प्रकार चतुर्णामपि वर्णानाम्—चारों वर्णों का।

(ख) प्रश्नवाचक सर्वनामों और प्रश्नवाचक सर्वनाम-निष्पन्न शब्दों के अनन्तर जुड़ने पर अपि का अर्थ 'कोई' होता है और कभी-कभी अवर्णनीय अर्थ होता है। सेक्शन १३५ देखिए।

(ग) यद्यपि—तथापि ये जोड़ी के शब्द हैं और साथ-साथ आते हैं।

२४८—अयि 'ऐ मित्र' के अर्थ में (नम्रतापूर्वक अथवा मृदुलतापूर्वक सम्बोधन करने में प्रयुक्त होता है जैसे, अयि विवेकविश्रान्तमभिहितम् (मालविका०१)—ऐ मित्र, तुमने विवेकहीन बात कही है। अयि मातर्देवयजनसम्भवे देवि सीते (उत्तर०४)—देवताओं के पूजन से पैदा हुई ऐ प्रिय सीते। अयि जीवितनाथ जीवसि (कुमार ४०३)—ऐ प्राणनाथ क्या तुम जीवित हो।

२४९—अये प्रधानतया आश्चर्य का बोध कराता है, अये

१—अयि प्रश्नानुनययोस्तथा सम्बोधनेपिच (मे)।

भगवत्यरुन्धती—(उत्तर०५)—ओ हो, यह तो पूज्य अरुन्धती जी हैं। अये मय्येव भ्रुकुटीधर: स वृत्तः (उत्तर०५)।

'अये' शोक खेद अथवा भय का भी बोध कराता है, अये देवपादपद्म पजीविनोऽवस्थेयम् (मुद्रा०७)—खेद है, महाराज के चरणकमलों के नौकर की यह दशा है।

२५०—[1]अहह—(१) हर्ष, आश्चर्य अथवा विस्मय और (२)शोक अथवा बलवती वेदना का बोध कराता है। अहह महतां निःसीमानः चरित्रविभूतयः (भर्तृहरि नीति० श्लोक ३५) ओहो, महापुरुषों के चरित्र की विभूति असीमित होती है। अहह दारुणो वज्रनिर्घातः (उत्तर०२)—हा कष्ट, यह तो महा भयंकर वज्रप्रहार है। अहह कष्टमपण्डितता विधेः (भर्तृहरि वैराग्य०१) – हाय रे ब्रह्मा की मूर्खता।

२५१–अहो[2] सम्बोधन का शब्द है,जैसे,अहो राजानः–ऐ राजाओ। हर्ष अथवा विषादसूचक 'आहा' या 'क्या ही' के अर्थ में यह शब्द विशेषणों तथा संज्ञाओं के साथ भी आता है। अहो मधुरमासां कन्यकानां दर्शनम्—(शकु० १) आहा, इन कन्याओं का दर्शन क्या ही सुखकर है। अहो सर्वास्ववस्थास्वनवद्यता रूपस्य। (मालविका २०)—आहा, हर दशा में सौन्दर्य की अनिन्द्यता। अहो विपाक (उत्तर०४)—आ हो अवस्था का यह परिवर्तन। अहो उन्मीलन्ति वेदनाः (उत्तर० ४)।

(३) किसी वस्तु या व्यक्ति से अकस्मात् भेंट हो जाने पर जो आश्चर्य पैदा होता है उसका भी बोध कराने के लिए कभी-कभी अहो का प्रयोग होता है, जैसे, अहो बकुलावलिका (मालविका० ४)–अरे, यह बकुलावलिका है।

१—अहहेत्यद्भुते खेदे परिक्लेशप्रकर्षयो:। (मे०)

२—अहो धिगर्थे शोके च करुणार्थविषादयो:। सम्बोधने प्रशंसायां विस्मये पादपूरणे॥ (मे०)

## अभ्यास

१—अहो सर्वास्ववस्थासु चारुता शोभा पुष्यति। (मालविका० २)।

२—सर्व कान्तमात्मीयं पश्यति। अहं तु तामेवाश्रमललामभूतां शकुन्तलामधिकृत्य ब्रवीमि। (शाकु० २)।

३—अहो दीप्तिमतोऽपि विश्वसनीयतास्य वपुषः। अथवोपपन्नमेतदस्मिन् ऋषिकल्पे राजनि। (शाकु० २)।

४—अपि ज्ञायते कतमेन दिग्भागेन गतः स जाल्म इति। (विक्रमो० १)।

५—अयि जात कथयितव्यं कथय। (उत्तर० ४)।

६—कथमीदृशेन सह वत्सस्य चन्द्रकेतोर्द्वन्द्वसम्प्रहारमनुजानीयाम्। अथ वा इक्ष्वाकुगृहवृद्धा वयम्। प्रत्युपस्थिते च का गतिः। (उत्तर० ५)।

७—अतिप्रबलपिपासावसन्नानि गन्तुमल्पमपि मे नालमङ्गकानि। अलमप्रभुरस्म्यात्मनः। सीदति मे हृदयम्। अन्धकारतामुपयाति चक्षुः। अपि नाम खलो विधिरनिच्छतोऽपि मे मरणमद्यैवोपपादयेत्। (कादम्बरी)

८—अहो प्रभावो महात्मनाम्। अत्र शाश्वत विरोधमपहायोपशान्तात्मानस्तिर्यञ्चोऽपि तपोवनवसतिसुखमनुभवन्ति। (काद०)।

९—अपि नाम तयोः कल्याणिनोर्भूरिवसुदेवरातापत्ययोर्मालतीमाधवयोरभिमतः पाणिग्रहः स्यात् (मालती० १)।

१०—अहो मे मूर्खतायाः प्रकारः। अहो यत्किंचनकारितायामादरः। अहो निरर्थकव्यापारेष्वभिनिवेशः। अहो बालिशचरितेष्वासक्तिः। (काद०)।

११—चा०—भद्र उपवर्णयेदानीं कुसुमपुरवृत्तांतम्। अपि नृपतावनुरक्ताः प्रकृतयः। चर—अथ किम्। आर्येण तेषु तेषु

विरागकारणेषु परिहृतेषु देवे चन्द्रगुप्ते दृढमनुरक्ताः प्रकृतयः।

१२—अये अश्वमेध इति विश्वविजयिना क्षत्रियाणामूर्जस्वलः सर्वक्षत्रियपरिभावी महानुत्कर्षनिकष । (उत्तर० ४)।

१३—ता स्वचारित्र्यमुद्दिश्य प्रत्याययतु मैथिली ।
तत पुत्रवतीमेना प्रतिपत्स्ये त्वदाज्ञया ॥ (रघु०१५।७३)।

१४—भगवति, मदीयेषु लेखेषु तत्रभवते त्वामुद्दिश्य सभाजनाक्षराणि पातयिष्यामि। (मालविका०५)।।

१५—हा कथ सीतादेव्या ईदृश जनापवाद देवस्य कथयिष्यामि। अथ वा नियोग खल्वीदृशो मन्दभाग्यस्य। (उत्तर०१)।

१६—चाणक्य —अपि प्रचीयन्ते सव्यवहाराणा लाभा व ।
चन्द्रगुप्त —आर्य, अथ किम्। ( मुद्रा० १ )।

१७—अथ धर्मानुरोधादितरपक्षावलम्बनद्वारेण मृत्युमगीकरोमि । एवमपि प्रथम तावत् स्वयमागतस्य तत्रभवत कपिजलस्य प्रणयप्रसरभग । पुनरपर यदि तस्य जनस्य 'मत्कृताशाभगात् प्राणविपत्तिरुपजायते तदपि मुनिजनवधजनितं महदेनो भवेत्। ( काद० )।

१८—चाणक्य —अगृहीते राक्षसे किमुत्खातं नन्दवशस्य कि वा स्थैर्यमुत्पादित चन्द्रगुप्तलक्ष्म्या । अहो राक्षसस्य नन्दवशे निरतिशयो भक्तिगुण । स कस्मिश्चिदपि जीवति नन्दान्वयावयवे वृपलस्य साचिव्य ग्राहयितु न शक्यते। (मुद्रा० १)।

१९—यदि यथा वदति क्षितिपस्तथा त्वमसि
किं पितुरुत्कलया त्वया।
अथ तु वेत्सि शुचिव्रतमात्मनः
पतिकुले तव दास्यमपि क्षमम्॥ ( शकु० ५ )।

२०—अप्यग्रणीमन्त्रकृताम् ऋषीणाम्
कुशाग्रबुद्धे कुशली गुरुस्ते। (रघु० ५।४)

२१—विललाप स बाष्पगद्गद
सहजामप्यपहाय धीरताम्।
अभितप्तमयोऽपि मार्दव
भजते कैव कथा शरीरिषु॥ (रघु० ८।४३)।

२२—अपि क्रियार्थं सुलभं समित्कुशं
जलान्यपि स्नानविधिक्षमाणि ते।
अपि स्वशक्त्या तपसि प्रवर्तसे
शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्॥
(कुमार० ५।३३)।

२३—अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम्।
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि॥
(भगवद्गीता २।२६)

२४—सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यम्
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्॥
(शाकु० १)।

## संस्कृत में अनुवाद कीजिए

१—मूर्ख का भी अपमान नहीं किया जाना चाहिए, विद्वान् पुरुष का तो दूर किनारा।

२—परन्तु यदि तुम मुझे वहाँ जबरदस्ती ले चलोगे, तो भी मेरा मन अपनी प्रिया के प्रति लगा रहेगा जो कि मेरे प्रेम का एकमात्र आस्पद है।

३—स्वामी—क्या जो काम मै ने तुमको करने के लिए कहा था उसे कर लिया।

भृत्य—उसे किए हुए मुझे बहुत समय हो गया।

४—अपनी प्रजाओं की सम्यक् रूप से रक्षा करने के कारण यह राजा प्रशंसा का पात्र है, अथवा, क्यों, ऐसा करना तो राजाओं का कर्तव्य ही है।

५—जिस लडके के बारे मे मै कह रहा हूँ वह बडा कुशाग्रबुद्धि है।

६—जो पुरुष किसी निश्चित कारण पर क्रोध करता है वह उस कारण के दूर होते ही शान्त होजाता है।

७—इस पर भगवान् विष्णु गरुड के निवासस्थान पर गए। वह अपने माननीय स्वामी का स्वागत करने के लिए तुरन्त निकल आए।

८—क्या यह सम्भव है कि मेरी आकाङ्क्षाएँ पूर्ण हों।

९—इन विपद्ग्रस्त पुरुषों की क्या ही दयनीय दशा है। यह पाषाण-हृदय को भी द्रवीभूत कर देगी।

१०—आहा, इस रमणीक उद्यान की ऐसी सौम्य सुन्दरता।

११—अभीष्ट मनोरथ की पूर्ति कितने विघ्नों से भरी हुई होती है।

१२—हाय, मैने अपना सारा समय जुआ खेलने में बिता दिया, इसके लिए अपने अतिरिक्त और किसको दोष दूँ।

१३—ओ हो यह तो मेरी ही अँगूठी है। मै आज आठ दिन से इसे खोज रहा हूँ। आप ने इसे कहाँ पाया।

१४—मैं चलते-चलते थक गया हूँ। कृपया, अब चलिए, घर चले।

१५—आशा है कि जिस पुरुष के विषय मे मैने आप से एक मास पूर्व कहा था उसका स्मरण आप को है।

---

# द्वाविंशतितम पाठ

## आ, आ, आ, इति, इव, उत, एव, एवम्, ओम्

२५२—आ का अर्थ 'तक' और 'से' तो होता ही है, इसके अतिरिक्त इसका अर्थ 'थोड़ा थोड़ा' 'कुछ कुछ' भी होता है। यह विशेषणों के पहिले जुड़ा रहता है, जैसे, आपिंगल—थोड़ा थोड़ा चितकबरा। आमत्ताना कोकिलाना कूजितै (मालविका० ३)—कुछ-कुछ मतवाली कोयलों के कूजन से।

आ का प्रयोग क्रियाओं के साथ होता है—यह तो सभी को भलीभाँति विदित है।

(क) 'आ' अतीत घटनाओं को स्मरण करने मे प्रयुक्त होता है, जैसे, आ एवं किल तदासीत् (उत्तर० ६)—अच्छा, तो बात ऐसी थी। कभी-कभी केवल पादपूरण अथवा वाक्यालंकार ( expletive ) के तौर पर प्रयुक्त होता है, जैसे, आ एव मन्यसे (गणरत्न महोदधि)।

२५३—आ भी अतीत घटना को स्मरण करने मे प्रयुक्त होता है और कभी कभी दृढ संकल्प का बोध कराने के लिए

१—आङीषदर्थेऽभिव्याप्तौ सीमार्थे धातुयोगजे।

२—आ प्रगृह्य स्मृतौ वाक्ये। (अ०)।

१—आ स्मृतौ चावधारणे। (वि०)

प्रयुक्त होता है, जैसे, किं नाम दण्डकेयम् — (सर्वतो-विलोक्य) —आ (उत्तर० २)—क्या सचमुच यह दण्डकारण्य है। (चारों ओर देखकर)। हाँ हाँ (अब मुझे स्मरण आ रहा है)। आं चिरस्य प्रतिबुद्धोऽस्मि (गणरत्नमहो०धि) —सचमुच, मैं तो बहुत देर बाद जागा हूँ।

(क) कभी-कभी आ का प्रयोग 'हाँ'-ऐसा उत्तर देने में होता है, जैसे, आं देव्या पार्श्वगतोऽसौ जनश्चित्रे दृष्ट (मालविका० १ —हाँ, रानी के पास खड़ा हुआ पुरुष एक चित्र में देखा गया था।

२५४-[1]आ पीड़ा या क्रोध सूचित करने के लिए प्रयोग में आता है; जैसे, आ शीतम् (गणरत्न महोदधि)—ओ हो, कैसा जाड़ा है। आः कथमद्यापि राक्षसत्रास (उत्तर० १ —अरे, क्या अब भी राक्षसों से भय है।

२५५—किसी के कथन को वक्ता के ही शब्दों में सूचित करने के लिए इति का प्रयोग होता है और वक्ता के कथन के बिल्कुल बाद में रक्खाजाता है, जैसे, आज्ञप्तोऽस्मि राजश्यालकेन। स्थावरक प्रवहणं गृहीत्वा जीर्णोद्यानमागच्छेति मृच्छकटिकम् ६)— मुझे राजा के साले द्वारा आज्ञा मिली है कि हे स्थावरक, गाड़ी लेकर पुरानी बाग में आओ। तयोर्मुनिकुमारकयोरन्यतर कथयति अक्षमालामुपयाचितुमागतोस्मीति काद०)—मुनिकुमारों में से एक कह रहा है कि अक्षमाला माँगने आया हूँ।

विशेष—अप्रत्यक्ष कथन (Indirect narration) का अनुवाद करने में यह देखना चाहिए कि यदि यह कथन प्रत्यक्ष कथन (Direct narration) में रक्खा गया होता तो इसका क्या स्वरूप होता। प्रत्यक्ष कथन (Direct narration) में वक्ता जिन शब्दों का

---

१—आस्तु स्यात् कोपपीडयो । (अ०)

(७) इति का अर्थ 'मत' या 'विचार' भी होता है, जैसे, इत्यापिशलि (गणरत्न महोदधि) — यह आपिशलि का मत है।

(८) 'उदाहरण' देने में भी इति का प्रयोग किया जाता है, जैसे, इन्दुरिन्दुरिव श्रीमानित्यादौ तदन्वय (चन्द्रालोक)।

विशेष—प्रकार और स्वरूप—ये दोनो अर्थ एक समान ही हैं। प्रत्यक्ष, प्रकाश और अवधारण के उदाहरण बहुत कम मिलते हैं।

(क) बलयुक्त प्रश्न करने के लिए 'किमिति' प्रयुक्त किया जाता है, जैसे, किमित्यपास्याभरणानि यौवने धृतं त्वया वार्धकशोभि वल्कलम् (कुमार० ५. ४४)—क्यो तुमने युवावस्था मे आभूषणों को त्याग रक्खा है और वल्कलवस्त्र धारण कर रक्खा है जो केवल वृद्धावस्था मे ही शोभा देता है।

२५७—इव[1] प्राय उपमा देने में प्रयुक्त होता है और उपमान के अनन्तर आता है, जैसे वैनतेय इव विनतानन्दजनन. (काद०)—वह वैनतेय के समान था जो कि विनता को सुख देते थे (अथवा उनको सुख देते थे जो उनके सम्मुख झुक जाते थे—हार मान लेते थे)। संसार अर्णव इव—समुद्र-तुल्य संसार।

विशेष—इव से जुडे हुए शब्द एक ही कारक मे होने चाहिएँ। जैसे, महीमिव जलभृतदेहा कन्यका ददर्श (कादम्बरी)—उसने पृथिवी के समान एक कन्या देखी—ऐसी पृथिवी जिसका धरातल जल से भरा हो (कन्यापक्ष मे—उसने अपना शरीर जल द्वारा धारण कर रक्खा था,। दिवसेनेव मित्रानुवर्तिना विलासिजने नाधिष्ठिता (कादम्बरी)—सूर्य का अनुसरण करने वाले दिन के समान जो अपने मित्रो का अनुसरण किया करते थे ऐसे विलासी जनो से बसा हुआ (भरा हुआ)।

(क) इव के और भी अर्थ ये हैं—(१) थोड़ा सा, कुछ कुछ,

१—ईषदर्थोपमोत्प्रेक्षा वाक्यभूषणयोरिव (गणरत्नमहोदधि

कहार इवायम् ( गणरत्न महोदधि )—वह थोड़ा थोड़ा ( कुछ कुछ ) चितकबरा है। (२) मानो गोया कि, जैसे, **मृगानुसारिणपिनाकिनमिव पश्यामि** (शकु० १)—मानों मृग का अनुसरण करने वाले पिनाकी (शिव) को देखता हूँ। **यो जहासेव वासुदेवम्** काद०,—जो मानों वासुदेव की हँसी कर रहा था।

(ख) 'सम्भवत', अथवा 'वस्तुत' का अर्थ सूचित करने के लिए इव प्रश्नवाचक सर्वनामों तथा प्रश्नवाचक सर्वनाम-निष्पन्न शब्दों के साथ जोड़ दिया जाता है, जैसे, **विना सीतादेव्या किमिव हि रघुपते** (उत्तर० ६)—महारानी सीता से वियुक्त श्री रामचन्द्र जी को, सम्भवत, क्या चीज दुःखदायी प्रतीत न होगी। **परायत्त प्रीते कथमिव रस वेत्तु पुरुष** (मुद्रा० ३—सम्भवत पराधीन पुरुष कैसे सुख का आनन्द (स्वाद) जाने।

२५८—[1]उत प्राय 'अथवा' के अर्थ में आता है और साधारणतया **किम्** का इतरेतरसम्बन्धी बनकर प्रयुक्त होता है। कभी-कभी उत के स्थान पर **आहो** या **उताहो** या आहोस्वित् भी प्रयोग में आते हैं, जैसे, **न जाने किमिद वल्कलानां सदृशमुताहो जटानां समुचित किं तपसोनुरूपमाहोस्वित् धर्मोपदेशांगमिदम्** (कादम्बरी)—मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि यह तुम्हारे वल्कलवस्त्रों के लिए उचित है, अथवा तुम्हारी जटाओं के योग्य है, या तुम्हारी तपस्या को शोभा देता है, अथवा तुम्हारे धर्मोपदेश का एक अंग है।

(क) जब उत की पुनरुक्ति होती है तब उसका अर्थ होता है, 'या तो—या', जैसे, **एकमेव वर पुंसामुतराज्यमुताश्रम** (गणरत्न-महोदधि)—मनुष्य को एक ही चीज अभीष्ट होती है, या तो राज्य या आश्रम।

---

१—उत प्रश्न वितर्के स्यादुतात्यर्थ विकल्पयो (वि०)

२५९—उत जब अकेला आता है तब उसके ये अर्थ होते हैं। (१) सन्देह अनिश्चय, अन्दाज या अनुमान, जैसे स्थाणुरयमुत पुरुष. (गणरत्नमहोदधि)—यह या तो खूँटा हो सकता है या पुरुष। (२) प्रश्न में उत आता है, उत दण्ड. पतिष्यति (गणरत्नमहोदधि)—क्या डंडा गिर जायगा।

विशेष— "अत्यर्थ" अर्थ में उत बहुत कम आता है।

२६० किसी शब्द द्वारा सूचित भाव को पुष्ट करने और उस पर जोर देने के लिए एव का प्रयोग होता है। इस अर्थ मे इसका अनुवाद इन शब्दों द्वारा किया जा सकता है—ठीक, वही, केवल, अकेला पहिले ही, तत्क्षण, मुश्किल से, जैसे एवमेव—ठीक ऐसा ही। अर्थोष्मणा विरहित पुरुष स एव (भर्तृहरि नीति० श्लोक ४९)—धन की गर्मी से रहित वही पुरुष। सा तथ्यमेवाभिहिता भवेन (कुमार० ३।६३) शिव द्वारा उसको सच्ची बात मात्र बतला दी गई। नाम्नैव निर्भिन्नाराति-हृदय (कादम्बरी)—जो नाम से ही शत्रुओं के हृदय को विदीर्ण कर देता था (भेद देता था)। उपस्थितेय कल्याणी नाम्नि कीर्तित एव यत् (रघु० १।८७)—चूँकि वह स्त्री यहाँ है, अत एव जिसी क्षण (ज्योंही) उसका नाम लिया गया। भवितव्यमेव तेन (उत्तर० ४)—यह तो होवेगा ही।

२६१—[1]एवम् का अर्थ साधारणतया 'ऐसा' या 'इस प्रकार' होता है। इसका सम्बन्ध किसी पूर्व कथित वस्तु अथवा बाद में आने वाली वस्तु से होता है, अथवा किसी कार्य को करने के लिए आदेश देने में इस शब्द का प्रयोग होता है, एवमुक्त कपिजल प्रन्यवादीत् (काद०)—(मुझसे) इस प्रकार कहे जाने पर कपिजल ने उत्तर दिया।

(क) स्वीकृति'—अर्थात् 'हाँ' का भी बोध कराने मे इसका प्रयोग होता है, जैसे एवमेतत् (उत्तर० १)—हाँ, यह ऐसा ही है। एवं कुर्मः—हाँ, हम लोग ऐसा करेंगे।

१—एव प्रकारोपमयोरगींकारेऽवधारणे। (वि०)

विशेष—'सादृश्य' अथवा 'दृढसंकल्प' का बोध कराने मे एवम् बहुत कम आता है ।

२६२—[1]ओम् बहुत ज्यादा प्रयोग मे नही आता । प्राय यह शब्द शुभ-प्रारम्भ का बोध कराने के लिए आता है, जैसे, ओम् अग्निमीडे पुरोहितम् । अथवा धार्मिक विधि या क्रिया वा प्रायन। की समाप्ति का बोध कराने के लिये भी इसका प्रयोग होता है, जैसे ब्रह्म भू भुव स्वरोम् ।

(क) संस्कृत मे यह शब्द अनुमति के अर्थ मे प्रयुक्त होता है; जैसे, ओमित्युच्यताममात्य (मालति-६)—मन्त्री से कह दो कि मै ऐसा ही करूँगा । द्वितीयश्चेदोमिति ब्रूम ।

अभ्यास

१—भर्तृदारिके, आर्यया पण्डितकौशिक्या स्वरसंयोग श्रूयते । (मालवि ग ५) ।

२—उत्खातिनी भूमिरिति मया रश्मिसंयमनाद्रथस्य मन्दीकृतो वेग । (शाकु १) ।

३—प्रथममिति प्रेक्ष्य दुहितृजनस्यैकोऽपराधो भगवता मर्षयितव्य । (शाकु ४) ।

४—अतिभूमि गतेन रणरणकेनार्यपुत्रशून्यमिवात्मान पश्यामि । (उत्तर ०१) ।

५—सखे करटक किमित्ययमुदकार्थी स्वामी पानीयमपीत्वा सचकितो मद मदमवतिष्ठते । (हितोप०) ।

६—सखे पुण्डरीक, सुविदितमेतन्मम केवलमिदमेव पृच्छामि यदेतदारब्ध भवता किमिद गुरुभिरुपदिष्टम् उत धर्मशास्त्रेषु पठितमुत मोक्षप्राप्तियुक्तिरियमाहोस्विदन्यो नियमप्रकार । (कादम्बरी) ।

---

१—उत प्रश्न निर्के स्यादुनात्यथविकल्पयो । (वि०)

७—सीता—एते चत्वारो भ्रातरो विवाहदीक्षिता यूयम्। अहो जाने तस्मिन्नेव प्रदेशे तस्मिन्नेव काले वर्ते इति। राम—एवम्।

८—पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः
(मालविका० १)।

९—यदभावि न तद्भावि भावि चेन्न तदन्यथा।
इति चिन्ताविषघ्नोऽयमगदः किं न पीयते॥ (हितोप०)

१०—प्रकृत्यैव प्रिया सीता रामस्यासीन्महात्मनः।
प्रियभावः स तु तया स्वगुणैरेव वर्धितः॥
तथैव रामः सीताया प्राणेभ्योऽपि प्रियोऽभवत्।
हृदयं त्वेव जानाति प्रीतियोगं परस्परम्॥ (उत्तर० ६)

११—ययातेरिव शर्मिष्ठा भर्तुर्बहुमता भव।
पुत्रं त्वमपि सम्राजं सेव पूरुमवाप्नुहि॥ (शाकु ४)

१२—लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्विफलतां गता॥ (मृच्छकटिकम् ५)।

## अभ्यासार्थ अतिरिक्त-वाक्य

१—किमिव दुष्करमकरुणानां यतः सोऽकयन्नैव पादपमधिरुह्यैकैकशः फलानीव तस्य वनस्पतेः शाखासन्धिभ्यः कोटरान्तरेभ्यः शुकशावकानग्रहीदपगतासूंश्च कृत्वा क्षितावपातयत् (कादम्बरी)।

२—स मद्वचनानन्तरमेव न वेद्मि किमसद्वृत्तेर्मदनज्वरस्य वेगादुत सद्योविपाकस्यात्मनो दुष्कृतस्य गौरवादाहोस्विन्मद्वचस एव सामर्थ्यादाच्छिन्नमूलस्तरुरिव क्षितावपतत् (कादम्बरी)

३—पात्रविशेषन्यस्तं गुणान्तरं व्रजति शिल्पमाधातुः।
जलमिव समुद्रशुक्तौ मुक्ताफलतां पयोदस्य। (मालवि० १)

४—सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन यथाप्रदेशं विनिवेशितेन ।
सा निर्मिता [illegible] प्रयत्नादेकस्थसौन्दर्यदिदृक्षयेव ॥ (कुमार१।४९)

५—का [illegible] नैव कृत
हु कारेण [illegible] ॥ (शकु [illegible])

६—गत [illegible] पदानि [illegible] ।
अहह [illegible] ॥ (कुमार०४ । ३०)

७—[illegible] ।
विरह [illegible] ॥ (रघु०८।८९)

८—प्रय [illegible] इव
[illegible] (मालती० ९)

९—[illegible] मत्यजा न ।
[illegible] ॥ (रघु०१४३४

संस्कृत में अनुवाद [illegible]—

१—चूँकि दुष्ट पुरुष मीठी-मीठी बातें बोलता है इसलिए वह विश्वसनीय नहीं है ।

२—वह यहाँ पिछले दो महीने से रह रहा है ताकि वह शहर के विद्वानों से परिचित हो जाय ।

३—शीघ्रता से मेरे पास आकर मानो क्रुद्ध होकर उसने मुझसे कहा कि तुमने मेरा बड़ा भारी अपराध किया है ।

४—'विपत्तियाँ अकेली नहीं आतीं' यह उक्ति संसार के लोगों से प्रायः अनुभूत बुद्धिमत्तापूर्ण उक्ति है ।

५—जब शत्रु हम लोगों पर ओले के समान टूट पड़े तो हम लोग को यह नहीं सूझ पड़ा कि क्या करें ।

६—बहुत दिनों से भोजन न पाने के कारण वह मानों मरने को हो गया ।

७—सारा संसार मुझको शक्तिहीन समझता है क्योंकि मैं किसी को नुकसान नहीं पहुँचाता।

८—मेरी बातों को सुनते ही वह असमीक्ष्यकारी पुरुष केवल एक अनुचर लेकर प्राणों को संकट में डालने को तैयार हो गया।

९—मैं नहीं जानता कि अब आगे क्या करना चाहिए, मैं इसी नगर में रहूँ अथवा यहाँ से चला जाऊँ।

१०—वह यही सोचता रह गया कि सामने खड़ा हुआ पुरुष मेरा शत्रु है, अथवा यतिवेषधारी कोई चर है अथवा शरण की इच्छा रखने वाला कोई भिखमंगा है।

# त्रयोविंशतितम पाठ

## कच्चित्, क्व-क्व कामम्, किं, ( किमु, किमुत, किंपुनः ), किल, केवलम्, खलु

२६३[1]—कच्चित् से वक्ता द्वारा व्यक्त की गई हुई किसी आशा का बोध होता है, और इसका अर्थ हुआ करता है "मै आशा करता हूँ कि"। स्वरूपत यह प्रश्नवाचक हुआ करता है और प्रश्न करने के ढंग के अनुसार इसका प्रत्याशित उत्तर 'हाँ' या 'नही' होता है, जैसे, शिवानि वस्तीर्थजलानि कच्चित् (रघु०५।८)—आप के तीर्थजल विघ्नरहित तो हैं? अर्थात् मै आशा करता हूँ कि आप के तीर्थजल विघ्नरहित हैं। कच्चिन्न वाटवादिरुपप्लव आश्रमपादपानाम् (रघु०)—मै आशा करता हूँ कि आश्रमके वृक्षों के ऊपर आँधी-तूफान जैसी कोई उपद्रव या दुर्घटना तो नही बीती। (नही, कोई दुर्घटना नही बीती)।

२६४[2]—'क्व" का अर्थ हैं 'कहाँ' जब यह दो या दो से अधिक उपवाक्यो मे दोहराया जाता है, तो इसका अर्थ होता है 'बहुत बडा अन्तर" अथवा "बहुत बडी अयोग्यता', जैसे, क्व सूर्यप्रभवो वंश क्व चाल्पविषया मति (रघु०१।२)—कहाँ तो सूर्य से पैदा हुआ वश, और कहाँ स्वल्प ज्ञान वाला मेरी बुद्धि (अर्थात् दोनों मे बहुत बडा अन्तर है क्योंकि

१—क्वचित् कामप्रवेदने।(अ०)

२—द्वौ क्व शब्दो महदन्तर सूचयत (रघु० १।२ की मल्लिनाथ कृतटीका)

'मेरी बुद्धि उस वंश का वर्णन करने के लिए बिल्कुल अयोग्य है)। तप क्व वत्से क्व च तावकं वपुः (कुमार ५।४)–तपस्या तथा तेरे शरीर में कितना जबर्दस्त अन्तर है (अर्थात् तेरा कोमल शरीर तपस्या करने के लिए उपयुक्त नहीं है)।

२६५[1]—'कामम्' का अर्थ है स्वेच्छानुसार, 'अपनी इच्छा भर'। परन्तु जिन अर्थों मे इसका प्रयोग साधारणत होता है वे ये है—"माना कि" "थोड़ी देर के लिए कल्पना करते हुए"। ऐसे प्रयोगो मे "कामम्" के बाद 'तु' या 'तथापि' अवश्य आता है जैसे, कामं न तिष्ठति मदाननसंमुखी सा भूयिष्ठमन्यविषया न तु दृष्टिरस्याः (शकु०)—माना कि वह मेरे सामने मुँह करके नहीं खड़ी होती तब भी उसकी दृष्टि अधिकांशतः किसी अन्य वस्तु की तरफ नहीं है।

२६६[2]–"किम्" प्रश्न करने में प्रयुक्त होता है और 'क्यों' 'किस कारण से' अर्थों को प्रकट करता है, जैसे, तत्रैव किं न चपले प्रलयं गतासि (मुद्रा० २)—ऐ चपल देवि, तू उसी स्थान पर नष्ट क्यो नहीं हो गई।

कभी-कभी 'किम्' शब्द 'खराब' या 'कुत्सित' के अर्थ मे समास मे आता है, जैसे, स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपम् (किरात० २।५)—जो स्वामी को उचित राय नहीं देता वह क्या मित्र है (अर्थात् वह बुरा मित्र है)।

२६७—'किम्' के बाद जब वा, उत, आहो इत्यादि आते हैं तो 'किं' का अर्थ होता है 'कि.. या' जैसे, ज्ञायतां किमेतदारण्यकं ग्राम्यं वेति (पंच)—इस का पता लगा लिया जाय कि वह पशु जंगली है या पालतू। उत के साथ किम् का प्रयोग समझने के लिए सेक्शन २५८ देखिए।

---

१—कामं प्रकामेऽनुमतावसूयायामपि च। (वि०)

२—किं पृच्छायां जुगुप्सने। (अ०)

(क)[1] जब किम् शब्द उ, उत अथवा पुनः के साथ जोड दिया जाता है तब उसका अर्थ होता है—क्या कहना है, उसकी तो बात ही क्या है, जैसे, एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्—एक भी अनर्थ कारी हैं, जहाँ चारो हो वहाँ तो कहना ही क्या है। चाणक्येनाहूतस्य निर्दोषस्यापि शङ्का जायते किमुत सदोषस्य (मुद्रा०१)—चाणक्य द्वारा बुलाए जाने पर तो निर्दोष व्यक्ति के भी हृदय मे शंका पैदा हो जाती है, तो फिर अपराधी पुरुष का तो कहना ही क्या है।

मयि नान्तकोऽपि प्रभुः प्रहर्तुं किमुतान्यहिंस्राः (रघु० २।६२)—यमराज भी मुझे मारने मे समर्थ नही है, अन्य हिंसक जतुओं की भला क्या मजाल है।

स्वयं रोपितेषु उत्पद्यते स्नेहः किं पुनरङ्गसंभवेष्वपत्येषु (काद०)—अपने लगाए हुए वृक्षों के प्रति तो स्नेह उत्पन्न ही हो जाता है, फिर अपनी सन्तानो के प्रति तो कहना ही क्या है।

भवादृशस्य त्रैलोक्यमपि न क्षमं परिपन्थीभवितुं किं पुनर्युधिष्ठिरबलम् (वेणी० ३)— आप जैसे पुरुषो के सामने तीनों लोक तो अड़चन डाल ही नही सकते, फिर भला युधिष्ठिर की सेना की क्या मजाल।

विशेष—अनिश्चयात्मकता अथवा सन्देह बतलाने के लिए भी किमु शब्द का प्रयोग होता है, जैसे, किमु विषविसर्पः किमु मदः (उत्तर०१)—क्या यह विष का प्रसार है अथवा अत्यन्त हर्ष।

२६८—किल का साधारण अर्थ है 'सचमुच', 'वस्तुत:' 'निश्चय ही।' किल शब्द उसके बाद आता है जिस पर जोर देना होता है, जैसे, अर्हति किल कितवः उपद्रवम् (मालविका)—निश्चय ही इस शठ का उपद्रव होना उचित है। प्रत्यूहः सर्वसिद्धीनामुत्तापः प्रथमः

---

१—किमु सम्भावनायां स्यात् विमर्षे चापि दृश्यते।
किमुतातिशये प्रश्ने विकल्पे च प्रयुज्यते।

किल—(हितोप०)—पहिले से ही बहुत ज्यादा जोश का होना सारे मनोरथो की प्राप्ति मे निश्चय ही बाधक होता है।

२६९[1]—किल निम्नलिखित अर्थो मे भी आता है। (१) कहते हैं, लोग कहते है, जसे, **बभूव योगी किल कार्तवीर्य**—लोग कहते हैं कि कार्तवीर्य नामक एक योगी था। **जघान कंसं किल वासुदेव** (महाभाष्य)।

(२) नकली कार्य को द्योतित करने के लिए, जैसे, **प्रसह्य सिंहः किल तां चकर्ष** (रघु० २।२७)—एक नकली सिंह ने उसे जबर्दस्ती खींच लिया। **पयस्यगाधे किल जातसम्भ्रमा** (किरात० ८।४८)।

(३) आशा प्रकट करने के लिए, जैसे **पार्थ किल विजेष्यति कुरून्**—मे आशा करता हूँ कि पार्थ कुरुओ को जीत लेगा।

विशेष—अरुचि और न्यक्करण (घृणा)—इन दोनों अर्थों का उल्लेख वर्धमान ने किया है (**एवं किल केचित् वदन्ति, त्वं किल योत्स्यसे**)। जब किल शब्द किम् के साथ जोड़ दिया जाता है तब अरुचि और न्यक्करण का अर्थ निकलता है, जैसे, **न श्रद्दधे किं किल त्वं शूद्रान्नं भोक्ष्यसे** (सि० कौ०)—मे यह विश्वास नही कर सकता कि तुम शूद्रों का अन्न खाओगे।

**हेतु** का अर्थ बहुत कम देखने मे आता है।

२७०—**केवलम्** क्रियाविशेषण अव्यय है। इसका अर्थ होता है 'सिर्फ'। परन्तु कभी-कभी यह शब्द विशेषण के तौर पर भी प्रयुक्त होता है, जैसे, **निषेदुषी स्थण्डिल एव केवले** (कुमार० ५।१२)—सिर्फ स्थण्डिल पर बैठती थी (अर्थात् स्थण्डिल पर कोई चीज बिछाती नही थी)

(क) 'अपि' अथवा 'किन्तु' के साथ **न केवलम्** का प्रयोग साधारणतया देखने मे आता है, जैसे, **वसु तस्य विभोर्न केवलं गुणवत्तापि परप्रयोजना** (रघु० ८।३१)—न सिर्फ उसकी सम्पत्ति ही

[1] १—वार्ता सम्भाव्ययोः किल

किल इत्यागमार्थेऽचिन्न्यक्करणसम्भाव्यहेत्वलीकेषु (गणरत्नमहोदधि)

बल्कि उसमे अच्छे अच्छे गुणों का होना भी दूसरों की भलाई के लिये था।

(ख) कभी-कभी 'अपि' के स्थान पर प्रत्युत का प्रयोग होता है, जैसे, अय वत्सो न केवल ध्रियते प्रत्युत प्राजलिना गरुडेन पर्युपास्य-मानस्तिष्ठति (नागानन्द ५)—मेरा बच्चा न सिर्फ जीवित ही है बल्कि हाथ जोड कर गरुड जी उसकी सेवा भी कर रहे है।

२७१[1] —खलु निम्नलिखित अर्थों मे आता है—

(१) वस्तुत., निश्चय ही। किसी बात पर जोर देने के लिए, जैसे, मार्गे पदानि खलु ते विषमीभवन्ति (शकु ४)—सचमुच तेरे कदम रास्ते मे अट शरट पडते हैं।

(२) प्रार्थनासूचक शब्द के तौर पर, न खलु न खलु बाण सन्निपात्योऽयमस्मिन् (शकु० १)— इसके ऊपर बाण न छोडा जाय। न खलु न खलु मुग्धे साहस कार्यमेतत् (नागा० २)।

(३) शिष्टतापूर्ण तथा मृदुलतापूर्ण प्रश्न करने मे, न खलु तामभिक्रुद्धो गुरु (वेणी ० ३) — मै जानना चाहता हूँ कि क्या गुरु जी उस मे क्रुद्ध हो गए ?

(४) निषेधार्थक कृत्वान्त शब्दों के साथ, जैसे, अलम् (सेक्शन ५७ देखिए), निर्धारितेर्थे लेखेन खलूक्त्वा खलु वाचिकम् (शिशु०-२। ७०) — जब कोई मामला पत्रद्वारा निर्णीत किया जाता हो तो मौखिक सन्देश मत जोड दो (अर्थात् मौखिक सन्देश कहलाना अना-वश्यक है)।

(५) कारण, न विदीर्ये कठिना खलु स्त्रिय (कुमार० ४। ५) —मै टुकडे टुकडे नही हो जाती हूँ, क्योकि स्त्रियाँ कडी होती हैं (वर्धमान ने विषाद के उदाहरण के तौर पर इसका उल्लेख किया है)।

---

१—निषेधवाक्यालकारजिज्ञासानुनये खलु। (म्यु०)

खलु इति निषेधवाक्यालकारजिज्ञासानुनयनिश्चयहेतुविषादेषु (गणरत्न महोदधि)

विधिना जन एष वञ्चितस्त्वदधीन खलु देहिना सुखम् (कुमार ४ । १०) ।

(६) कभी-कभी यह केवल वाक्यालकार के तौर पर प्रयुक्त होता है।

विशेष—गणरत्नमहोदधि मे उल्लिखित नियम और निश्चय करीब करीब एक ही हैं ।

## अभ्यास

१—विकारं खलु परमार्थतोऽज्ञात्वाऽनारम्भ प्रतीकारस्य (शाकु०३)।

२—न खलु विदितास्ते तत्र निवसतश्चाणक्यहतकेन —अथ किम् ( मुद्रा ० २ )।

३—भर्तृगतया चिंतयात्मानमपि नैषा विभावयति किं पुनरागतुकम् ( शाकु ० ४ )

४—द्वावपि किलागमिनौ प्रयोगनिपुणौ च। किन्तु शिष्यागुण विशेषेण गणदास उन्नमितोपदेश ( मालविका ० ३ )।

५—अनुत्सेक खलु विक्रमालकार ( विक्रमो ० १ )।

६—भो, न केवलं रूपे, शिल्पेऽप्यद्वितीया मालविका। ( मालविका ० २ )

७—वत्से सीते स्वहस्तावचितै पुष्पै सवितार देवमुपतिष्ठस्व । न च त्वामवनिपृष्ठचारिणीमस्मत्प्रभावाद्वनदेवता अपि द्रक्ष्यंति किं पुनर्मर्त्या । [ उत्तर ० ३]

८—गर्भेश्वरत्वमभिनवयौवनत्वमप्रतिमरूपत्वममानुषशक्तित्वं चेति महतीय खल्वनर्थपरंपरा । सर्वाविनयानामेकैकमप्येषामायतनं किमुत समवाय । [ कादं ]

९—भो कामं धर्मकार्यमनतिपात्य देवस्य। तथापीदानीमेव धर्मासनादुत्थितस्य पुनरुपरोधकारि कण्वशिष्यागमनमस्मै निवेदयितुं नोत्सहे। [ शाकु ० ५ ]

१०—एव कदलीदलेनानवरत वीजयत समुद्भन्मे मनसि चिता। नास्ति खल्वसाध्य मनोभुव । क्वाय हरिण इव वनवासनिरत. स्वभावमुग्धो जन क्व च विविधविलासरसराशिगंधर्वराजपुत्री महाश्वेता [ कादं ० ]

११—निवार्यतामालि किमप्ययं बटु पुनर्विवक्षु स्फुरितोत्तराधर. ।
न केवलं यो महतोऽपभाषते शृणोति तस्मादपि य. स पापभाक् ॥ [ कुमार ५।८३ ]

१२—किमपेक्ष्य फल पयोधरान्ध्वनत प्रार्थयते मृगाधिप ।
प्रकृति खलु सा महीयस सहते नान्यसमुन्नतिं यया ।
[ किरात ० २।२१ ]

१३—कच्चिदेतच्छ्रुत पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ।
कच्चिदज्ञानसमोह प्रनष्टस्ते धनजय ॥ [ भगवद् ० १८।७२ ]

१४—काम नृपा सतु सहस्रशोन्ये राजन्वतीमाहुरनेन भूमिम् ।
नक्षत्रताराग्रहसकुलापि ज्योतिष्मती चद्रमसैव रात्रि. ॥
[ रघु ० ६।२२ ]

१५—क्व वय क्व परोक्षमन्मथो मृगशावै सममेधितो जन ।
परिहासविजल्पित सखे परमार्थेन न गृह्यता वच ॥
[ शाकु ० २ ]

## अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—वयस्य मया न साधु मनर्थितमापत्प्रतीकार किल प्रमदवनोद्यानप्रवेश इति (विक्रमो २)

२—भगवन जाबालिमवलोकयाहमचिंतयम् । तपस्विना प्रतनुतपसामपि तेज प्रकृत्या दु सहं भवति किमुत सकलभुवनवदितचरणाना मुनीनाम् । एवविधानामघक्षय कारणानि पुण्यानि नामग्रहणान्यपि महामुनीना किं पुनर्दर्शनानि । (काद ०)

३—आजन्मन शाठ्यमशिक्षितो यस्तस्याप्रमाण वचन जनस्य ।
परातिसंधानमधीयते यैर्विद्येति ते सतु किलाप्तवाच ॥ (शकु ५)

४—यदृच्छया त्व सकृदप्यवध्ययो पथि स्थिता सुन्दरि यस्य नेत्रयो ।
त्वया विना सोऽपि समुत्सुकोविभवेत्सखीजनस्ते किमु रूढसोहृद । (विक्रमो १)

५—न केवल दरीसस्थ भास्वता दर्शनेन व ।
अतर्गतमपास्त मे रजसोऽपि पर तम ॥ (कुमार ६ । ६०)

६—न केवल तद्गुरुरेकपार्थिव ।
क्षितावभूदेक धनुर्धरोपि स । (रघु ३ । ३)

७—सुखश्रवा मगलतूर्यनिस्वना प्रमोदनृत्यै सह वारयोषिताम् ।
न केवल सद्मनि मागधीपते पथि व्यजृम्भ त दिवौकसामपि ॥ (रघु ३ । १९)

८—रघुमेव निवृत्तयौवन तममन्यत नरेश्वरं प्रजा ।
स हि तस्य न केवला श्रियप्रतिपेदे सकलान्गुणानपि ॥ (रघु ८ । ५)

९—मेघालोके भवति सुखिनोप्यन्यथावृत्ति चेत
कठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसस्थे । (मेघ० ३)

१०—दृष्टे मय्यें पुनरपि भवान् वाहयेदध्वशेष
मदायते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्या ॥ (मेघ ३०)

११—स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु
सदृश्यते किमुत या प्रतिबोधवत्य ।

प्रागतरिक्षगमनात्स्वमपत्यजात-
मन्यैर्द्विजै परभृता खलु पोषयन्ति ॥ (शकु ५)

१२—करुजा हृदयप्रमाथिनी क्व च ते विश्वसनीयमायुधम् ।
मृदुतीक्ष्णतर यदुच्यते तदिदं मन्मथ दृश्यते त्वयि ॥ (मेघ ३)

१३—काम प्रिया न सुलभा मनस्तु तद्भावदर्शनाश्वासि ।
अकृतार्थेपि मनसिजे रतिमुभयप्रार्थना कुरुते ॥ (शकु २)

सस्कृत में अनुवाद कीजिए :—

१— कहा जाता है कि हम लागो को अनवधानता के कारण राजा हम लोगों से बहुत ही क्रुद्ध हो गए हैं ।

२— केवल एक बार भी देखे हुए व्यक्ति को मै नहीं भूल सकता, भला फिर पुराने मित्र को कैसे भूल सकता हू ?

३— इस तपोवन मे निर्जीव पदार्थ भी एक पावन शक्ति से युक्त मालूम पडते हैं, भला फिर सजीव पदार्थो की क्या कहना है !

४— जब मै उसके पास पहुँचा तो उसने न केवल मेरी ही, अपितु आचार्य की भी निन्दा की । ( निर + भर्त्स् अथवा गर्ह्, निन्द् )

५— न केवल इतनी ही बात है कि कोई भी आदमी मुझसे घृणा नही करता, प्रत्युत लोग मुझे भोजन भी कराते हैं ।

६— मै आशा करता हूँ कि यह बात राजा के कान तक नही पहुँची है कि कौमुदी-उत्सव को तत्काल बन्द करने की आज्ञा मैंने ही दी है ।

७— हम लोग देखते है कि जो लोग धनी पेदा होते है वे भी इस ससार मे पूर्ण रूप से प्रसन्न नही हैं, जिन्हे नाना प्रकार के कष्टप्रद व्यवसायो द्वारा अपनी जीविका उपार्जन करना पड़ता है उनकी तो बात ही क्या है ।

८— मै दृढ आशा करता हूँ कि आप इस असहाय पुरुष का प्राण मुक्त कर देंगे । सज्जन पुरुष अपने शत्रु तक को मारने मे हिचकते हैं, फिर भला इस शिशु जैसे निरपराध जीव का क्या कहना है ।

९— मै आशा करता हूँ कि आप लोगों की तपस्या निर्विघ्न चल रही है ।

१०—माना कि आप मे सभी उत्तम गुण विद्यमान हैं, तथापि आप को उपदेश देना मै अपना कर्तव्य समझता हूँ ।

११—वस्तुत मुझे नही स्मरण है कि मैने इसे व्याहा था। पर इसे देखकर मेरे मन पर बहुत बड़ा प्रभाव पडा है।

१२—क्या तेरी पवित्र विद्या तथा हृदय की इस चचलता मे कोई सगतता (सादृश्य) है?

१३—कहाँ तो प्रकृत्या अपरिमेय राजाओं के कार्य और कहाँ स्वल्प ज्ञान वाले मुझ जैसे पुरुष।

---

# चतुर्विंश पाठ

## च (च-च) जातु, तत्, ततः, तथा, तावत्, तु

२७२[1]—"च" सयोजक समुच्चयबोधक अव्यय है और शब्दो अथवा वक्तव्यों (उक्तियों) को जोडता है। जिन जिन शब्दो अथवा वक्तव्यो को जोडता है उनमे से प्रत्येक के साथ, अथवा सब मे अन्त वाले के साथ यह आता है। परन्तु यह कभ भी वाक्य मे पहिले नहीं आ सकता, जैसे, **रामश्च गोविन्दश्च** अथवा **रामो गोविन्दश्च**। **तण्डुलानानयति च तान् पचति चौदन भुक्ते च** अथवा **तण्डुलानानयति तान् पचत्योदनं भुक्ते च**। परन्तु सब से अन्त वाले के साथ ही च को रखना अधिक अच्छा मालूम पडता है। प्रत्येक शब्द अथवा प्रत्येक वक्तव्य के साथ 'च" को लगाना सुन्दर नही मालूम होता। **कुलेन कान्त्या वयसा नवेन गुणैश्च तैस्तैर्विनयप्रधानै** (रघु० ६।७९)

(क) प्राय 'च' वाक्य के प्रथम शब्द के अलावा किसी भी भाग मे रख दिया जाता है, जैसे, **अथ गजस्तं प्रणम्य प्रस्थित। शशकाश्च**

१—चान्वाचये समाहारेप्यन्योन्यार्थे समुच्चये।
पक्षान्तरे तथापाद पूरणेप्यवधारणे॥

तद्दिनादारभ्य सुखेन तिष्ठन्ति (पचतन्त्र ३।१)—तब उसे प्रणाम करके हाथी चला गया, और उस दिन म खरगोश सुखपूर्वक रहने लगे।

(ख) जब "च" "न" के साथ आता है तो उसका अथ "न तो" "न" होता है, जैसे, न च न परिचितो न चाप्यगम्य (मालविका०१) —न तो वह अप्रसिद्ध ही है, न अगम्य ही है।

(ग) कभी कभी इससे विरोधात्मक भाव अथवा विभेदात्मक भाव सूचित होता है। ऐसी दशा मे इसका अनुवाद 'परन्तु' 'तथापि' आदि से किया जाता है, जैसे, शान्तमिदमाश्रमपद स्फुरति च बाहु (शकु० १)—यह आश्रम तो शान्त है, तथापि मेरी भुजा फड़क रही है।

विशेष—इस अर्थ में च दो बार आता है। अगला सेक्शन देखिए।

(घ) बहुत विरल स्थलो पर ही इसका अर्थ 'सचमुच' 'वस्तुत' होता है, जैसे, अतीत पथान तव च महिमा वाड्मनसयो (गणरत्न-महोदधि)–आप की महिमा वस्तुत वाणी और मन के मार्ग से परे है।

(ङ) यह कभी-कभी "शर्त" सूचित करने के लिए प्रयोग में लाया जाता है, जैसे, जीवित चेच्छसे मूढ हेतु मे गदत शृणु (महाभाष्य) अर्थात् जीवितमिच्छसे चेत्।

(च) यह वाक्यालकार के तौर पर अथवा पादपूरण के लिये भी प्रयोग म लाया जाता है, जैसे, भीम पार्थस्तथैव च (गणरत्न महोदधि)।

विशेष—कोषों मे "च" के ये अर्थ दिए गए हैं, अन्वाचय, समाहार, इतरेतर, समुच्चय। अन्वाचय का अर्थ है—किसी आश्रित घटना या इतिवृत्त को किसी प्रधान घटना या इतिवृत्त के साथ जोड़ना, जैसे, भिक्षामट गा चानय—भीख मागने जाओ और (ऐसा करने के साथ ही साथ) गाय लेते आना।

'समाहार" सामूहिक (समष्टिगत) ऐक्य को कहते है, जैसे, पाणी पादौ च पाणिपादम्।

"इतरेतर" पारस्परि सम्बन्ध को कहते है, जैसे, प्लक्षश्च न्यग्रोधश्च प्लक्षन्यग्रोधौ ।

"समुच्चय" समूह को कहते है । अथवा यो कहिए कि समुच्चय से समूह सूचित होता है, जैसे, पचति च पठति च ।

२७३— "च" प्राय दो वक्तव्यों के साथ दोहराया जाता है ।

(१) एक अर्थ तो है -- एक तरफ दूसरी तरफ, यद्यपि —तथापि, जैसे, न सुलभा सकलेन्दुमुखी च सा किमपि चेदमनङ्गविचेष्टितम् (विक्रमो० २) — एक तरफ तो यह कि पूर्णचन्द्र समान मुखवाली स्त्री मिलना सुलभ नही है, दूसरी तरफ यह कि कामदेव की यह अवर्णनीय चेष्टा हो रही है ।

(२) दो घटनाओं का साथ होना अथवा अविलम्ब से होना सूचित करने के लिए "च" प्रयोग मे आता है, जैसे, तें च प्रापुरुदन्वन्त बुबुधे चादिपूरुष (रघु० १० । ६)— ज्योंही वे लोग समुद्र पर पहुँचे त्यों ही आदिपुरुष (विष्णु) जाग पडे ।

२७४— जातु का अर्थ होता है — जरा भी, सम्भवत, कदाचित्, स्यात्, जैसे, किं तेन जातु जातेन (पचतन्त्र १ । १) —सम्भवत उसके पैदा होने से क्या लाभ ?

न जातु बाला लभते स्म निर्वृतिम् (कुमार० ५ । ५५)—उस कुमारी ने जरा भी सुख नही भोग पाया ।

विशेष— पाणिनि का कहना है कि जातु का प्रयोग 'नही मानना" के अर्थ मे विधिलिङ् के साथ किया जाता है, जैसे, जातु यत्त्वादृशो हरिं निन्देन्न मर्षयामि (सि० कौ०)— मै नहीं मानता कि आप का सा व्यक्ति हरि की निन्दा करेगा ।

२७५— तद् सर्वनाम (सेक्शन १३२ देखिए) तथा क्रियाविशेषण अव्यय भी है । क्रियाविशेषण की दशा में इसका अर्थ है — इस

कारण से, इसलिए, जैसे, राजपुत्रा वयं, तद्विग्रह श्रोतु नः कुतूहलमस्ति (हितो प० ३) — हम लोग राजपुत्र हैं, इसलिए, हमे सग्राम के विषय मे सुनने की इच्छा है।

(२) तो, उस दशा मे— इस अर्थ मे यदि का इतरेतरसम्बन्धी बन कर आता है जैसे, तदेहि विमर्दक्षमां भूमिमवतराव (उत्तर० ५) — तो आओ, युद्ध के लिए उपयुक्त किसी स्थान पर चले। तथापि यदि महत् कुतूहलं तत् कथयामि (काद०)—तो भी यदि बड़ी जबर्दस्त जिज्ञासा हो तो मै कहूँ।

२७६—तत तद् की पचमी के रूप के स्थान पर आता है, जैसे, तस्मात्, तस्या, ततोऽन्यत्रापि दृश्यते (सि० कौ०) = तस्माद्-न्यत्रापि। पर यह क्रियाविशेषण अव्यय के तौर पर बहुत आता है। प्रधानत इसका अर्थ है "वहाँ से" "उस स्थान से", पर साधारणतः इसका अर्थ है 'तब', 'बाद मे', "इसके बाद", जैसे, तत कतिपयदिवसापगमे (कद०)—बाद मे कुछ दिनो के बीत जाने पर।

इसका अर्थ (१) "इस कारण से", "इसलिए", "फलस्वरूप" भी होता है और यत का इतरेतरसम्बन्धी बनकर वाक्य मे आता है (२) तो, उस दशा मे, यदि का इतरेतरसम्बन्धी बनकर आता है; जैसे, यदि गृहीतमिह तत किम् (काद० १२०)—यदि यह पकड लिया गया तो क्या होगा? (३) कभी कभी तत का अर्थ होता है उसके परे, आगे, इसके अतिरिक्त, जैसे, तत परतो निर्मानुषमरण्यम् (काद०)—उसके परे एक निर्जन वन है।

(क) ततस्तत (तत + तत्) सवादों मे आता है। इसका अर्थ है—फिर इसके आगे, कहते चलिए, आगे कहिए, जैसे, राक्षस —उभयोरप्यस्थाने प्रयत्न। ततस्तत (मुद्रा० २)—राक्षस —दोनों का प्रयत्न अनुचित था, अच्छा, तो आगे क्या हुआ, कहते चलिए।

२७७—तथा[1] का अर्थ है "इस प्रकार," "वैसा ही", जैसे, तथा मा वञ्चयित्वा (शकु० ५)—इस प्रकार मुझे धोखा देकर। सूतस्तथा करोति (विक्रमो० १)—सारथि वैसा ही करता है। तथा च श्रुति (शङ्कर भाष्य)—और वेद ऐसा (इस प्रकार) कहता है।

(क) यह इन निम्नलिखित अर्थों में भी प्रयुक्त होता है —

(१) और भी, इसी प्रकार से यह भी, जैसे, अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिस्तथा (पञ्चतन्त्र १। १३)—जो भविष्य के लिए व्यवस्था करता है और भी जो प्रत्युत्पन्नमति होता है।

(२) हाँ, ऐसा ही हो, इसी प्रकार होगा। ऐसी दशा में यह स्वीकृति, अथवा प्रतिज्ञा सूचित करता है और 'इति'-परक रहता है, जैसे राजा—एनं तत्रभवतः सकाशं प्रापय। प्रतीहारी—तथेति निष्क्रान्ता। राजा—इन्हें श्रीमान् जी के पास ले जाओ। प्रतीहारी—अच्छा, ऐसा ही होगा (आपकी आज्ञा मानी जायगी)। ऐसा कहती हुई निकल गई।

(३) शपथ लेने में, इसका प्रयोग "यथा"—पूर्वक होता है और इसका अर्थ होता है—इतने निश्चयपूर्वक जितने, जैसे, यथाहमन्यं न चिन्तये तथायं पततां परासुः—जितना यह निश्चय है (सत्य है) कि मैं किसी भी दूसरे पुरुष के बारे में नहीं सोचता हूँ उतने ही निश्चयपूर्वक यह घटना भी घटे कि यह व्यक्ति मर जाय।

जब यथा का परस्परसम्बन्धी होकर तथा आता है तो इसके अर्थ कुछ और ही होते हैं—इसके लिए सत्ताईसवाँ पाठ देखिए।

विशेष—तथाहि का अर्थ होता है क्योंकि, ऐसा कहा गया है, उदाहरणार्थ—तथाच का अर्थ होता है "और इसीप्रकार"। इन

---

१— तथाभ्युपगमे पृष्टप्रतिवाक्ये समुच्चये। सदृशे निश्चयेपि स्यात् (मे०)

शब्दों का प्रयोग प्राय किसी की उक्ति का उद्धरण करने मे होता है।

२७८—तावत् का प्रयोग इन अर्थों मे होता है —

(१) इसका जो शब्दार्थ है उस अर्थ में, यानी "पहिले", और कुछ करने के पहिले, जैसे, प्रिये इतस्तावदागम्यताम् (शकु० १) —मेरी प्यारी, पहिले इधर तो आओ। आह्लादयस्व तावच्चन्द्रकर् श्चन्द्रकान्तमिव (विक्रमो० ५) —पहिले तो मुझे प्रसन्न करो जैसे चन्द्रमा की किरण चन्द्रकान्तमणि को प्रसन्न करती है।

(२) रही बात, इसी बीच मे, तब तक, जैसे सखे स्थिर-प्रतिबन्धो भव। अहं तावत् स्वामिनश्चित्तवृत्तिमनुवर्तिष्ये (शकु० २)—मित्र, विरोध करने म दृढ बन रहो, रही बात मेरी, सो मै तो अपने स्वामी की इच्छा के अनुसार आचरण करूँगा।

(३) अभी, जैसे, गच्छ तावत्—अभी जाओ।

(४) किसी वक्तव्य पर बल देने के लिए वस्तुत के अर्थ मे, जैसे, त्वमेव तावत् प्रथमो राजद्रोही (मुद्रा० १)—तू ही पहिला राज-द्रोही है।

(५) रही, विषय मे, जैसे, एवकृते तव तावत् प्राणयात्रा क्लेशं विना भविष्यति (पचतत्र १। ८)—रही बात तुम्हारी, सो ऐसा हो जाने पर, तुम्हारी जीविका बिना किसी कष्ट के हो जाया करेगी। विग्रहस्तावदुपस्थित (हितोप० ३)—रही बात युद्ध की, सो तो सामने उपस्थित है।

जब यावत् का इतरेतरसम्बन्धी होकर तावत् आता है तब उसके जो अर्थ होते हैं वे सत्ताईसवे पाठ मे लिखे जायेंगे।

२७९—तु[1] प्राय. विरोधवाची बनकर प्रयोग मे आता है। इस दशा मे इसका अर्थ होता है—परन्तु, इसके विरुद्ध, जैसे, स सर्वेषां सुखानां प्रायोऽन्तं ययौ। एकं तु सुतमुखदर्शनसुखं न लेभे (काद०)—वह सभी सुखों को पूर्णरूप से भोगता था, परन्तु

१—तु पादपूरणे भेदे समुच्चयेऽवधारणे (वि०)

उसने पुत्रमुखदर्शन का सुख कभी भी नही भोगा। इस अर्थ मे यह किम् या परम् से जुडा हुआ रहता है।

टिप्पणी—तु वाक्य के आरम्भ मे कभी भी नही आता, पर परन्तु और किन्तु सदा ही वाक्यारम्भ मे आते हैं।

(क) "तु" प्राय "और अब' 'अब' 'तो' के अर्थ मे आता है और कोई भी विरोधवाची भाव सूचित नही करता, जैसे **एकदा तु नातिदूरोदिते सहस्रमरीचिमालिनि प्रतिहारी समुपसृत्याब्रवीत्** (काद०)—अब, एक बार, जब सहस्रकिरणधारी भगवान् सूर्यदेव बहुत ऊँचे नही चढे थे, कि इतने ही मे द्वारपाल ने समीप आकर कहा। "**अवनिपतिस्तु तामनिमेषलोचनो ददर्श**" (काद०)—महाराज तो उसकी तरफ टकटकी लगाकर देखने लगे। **यत्तु आसन् शब्दस्यामन्नादेश इति काशिकायामुक्त तत् प्रामादिकम्** (सि०कौ०)। **निर्वापित तु परिरभ्य वपुर्न नाम** (मालती० ८)।

(ख) कभी कभी तु शब्द विभिन्नता या उत्तमतर गुण सूचित करता है, जैसे, **मृष्ट पयो मृष्टतर तु दुग्धम्** (गणरत्न महोदधि)—पानी निर्मल होता है, परन्तु दूध और भी निर्मल होता है।

कभी कभी बल देने के लिए भी इसका प्रयोग होता है, जैसे, **भीमस्तु पाण्डवाना रौद्र** (गणरत्न महोदधि)—भीम पाण्डवों में सबसे भयकर हैं।

## अभ्यास

१—तद्यदि नातिखेदकरमिव तत कथनेनात्मानमनुग्राह्यमिच्छामि। [काद०]

२—अपसृते च तस्मिन् स विहगराजो राजाभिमुखो भूत्वा राजानमुद्दिश्यार्यामिमां पपाठ। राजा तु तां श्रुत्वा सजातविस्मयोऽमात्यमब्रवीत। [काद०]

३—आर्ये तत कि विलंब्यते । त्वरितं [ त ] प्रवेशय [ उत्तर० १ ]

४—अनेन क्रमेण तस्य सर्वेष्वरण्यवासिष्वाधिपत्य बभूव । ततस्तेन स्वजातिभिरावृतेनाधिकं प्रभुत्वं साधितम् । [हितोप ० ३ ]

५—आर्ये कृतपरिश्रमोस्मि चतु षष्ट्य गे ज्योति.शास्त्रे । तत्प्रवर्त्यतां भगवतो ब्राह्मणानुद्दिश्य पाक । चद्रोपराग प्रति तु केनापि विप्रलब्धासि । [ मुद्रा ०१ ]

६—भगवन् कुसुमायुध त्वया चद्रमसा च विश्वसनीयाभ्यामति-सधीयते कामिजनसार्थं । [शकु० ३ ]

७—तात लता भगिनीं वनज्योत्स्नां तावदामत्रयिष्ये । [ शकु ० ४ ]

८—करटक उवाच । भद्र कि कृत तत्रभवता । दमनक आह । मया तावन्नीतिबीजनिर्वापण कृत परतो दैवविहितायत्तम् । [ पचतत्र १ । १५ ]

९—दृष्ट्वा मेघनाद दूरत एव कृतनमस्कार तमप्राक्षीत् । तिष्ठतु तावत्पुरस्तात्पत्रलेखागमनवृत्तातप्रश्नो वैशपायनवृत्तातमेव तावत् पृच्छामि [ कादं ० ]

१०—अयमेकपदे तया वियोग. सहसा चोपनत' सुदु.सहो मे ।
नववारिधरोदयादहोभिर्भवितव्य च निरातपत्वरम्यै' ॥
[ विक्रमो०४ ]

११—प्रतिग्रहीतु प्रणयिप्रियत्वात्त्रिलोचनस्तामुपचक्रमे च ।
समोहन नाम च पुष्पधन्वा धनुष्यमोघं समधत्त बाणम् ॥
[ कुमार ० ३ । ६६ ]

१२—न जातु काम कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥ [ मनु ० २ ।६४ ]

## अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—अत्रभवत्या प्रसवादस्मद्गृहे तिष्ठतु। कुत इदमुच्यत इति चेत् त्वं साधुभिरुपदिष्टः प्रथममेव चक्रवर्तिनं पुत्रं जनयिष्यसीति। स चेत्तल्लक्षणोपपन्नो भविष्यति अभिनंद्य शुद्धान्तमेनां प्रवेशयिष्यसि। विपर्यये तु पितुरस्याः समीपनयनमवस्थितमेव। (शकु ५)

२—कथारंभकाले राजपुत्रा ऊचुः। आर्य मित्रलाभः श्रुतस्तावदस्माभिः। इदानीं सुहृद्भेदं श्रोतुमिच्छामः। (हितोप २)

३—सुखमापतितं सेव्यं दुःखमापतितं तथा।
चक्रवत्परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च॥ (हितोप)

४—लब्धांतरा सावरणेऽपि गेहे योगप्रभावो न च लक्ष्यते ते।
बिभर्षि चाकारमनिर्वृतानां मृणालिनी हैममिवोपरागम्॥ (रघु० ६। ७)

५—मुनिसुताप्रणयस्मृतिरोधिना मम च मुक्तमिदं तमसा मनः।
मनसिजेन सखे प्रहरिष्यता धनुषि चूतशरश्च निवेशितः॥ (शकु० ६)

६—देव परावृत्तेषु कण्वशिष्येषु—
सा निंदती स्वानि भाग्यानि बाला बाहूत्क्षेपं क्रंदितुं च प्रवृत्ता।
स्त्रीसंस्थानं चाप्सरस्तीर्थमाराद्दुत्क्षिप्यैनां ज्योतिरेकं जगाम॥ (शकु० ५)

७—धर्मं तावदसुलभं लब्धं कृच्छ्रेण रक्ष्यते।
लब्धनाशो यथा मृत्युस्तस्मादेतन्न चिंतयेत्॥ (हितोप)

८—सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्॥ (भगवद् गीता १५। १५)

९—न खलु न खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन्
मृदुनि मृगशरीरे तूलराशाविवाग्निः
क्व बत हरिणकानां जीवितं चातिलोलं
क्व च निशितनिपाता वज्रसाराः शरास्ते। (शकु १)

१०—अपूर्णश्च कलाभिरिंदुरमलो यातश्च राहोर्मुखं
स्वजातश्च घनाघनो जलधरः शीर्णश्च वायोर्जवात् ।
निवृत्तश्च फलेग्रहिद्रुमवरो दग्धश्च दावाग्निना
त्व चूडामणिता गतश्च जगतो यातश्च मृत्योर्वशम् ।। (मालती९)

## संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—जो लोग धर्मानुकूल आचरण करते हैं और परोपकार में लगे रहते हैं, वे ही परमात्मा की कृपा के पात्र होते हैं।

२—मैं बम्बई से आठ रेशमी वस्त्र, पाँच चाँदी के पात्र, और कई उपयोगी वस्तुएँ लाया हूँ।

३—एक तरफ तो यह कि मैंने उन्हें कभी पहिले नहीं देखा है, दूसरे यह कि उनकी वाणी वज्राघात के समान कठोर है, सम्भवतः यह कौन पुरुष हो सकता है ?

४—ज्योंही ये वीर योद्धा अपने स्वामी का पक्ष त्याग देंगे, त्योंही मैं उसके राज्य में विद्रोह उभाड़ दूँगा।

५—तुमने युद्ध के लिये बड़ी अच्छी तैयारियाँ कर ली हैं, इसलिये तुम्हें किसी बात की भी कमी न होगी।

६—दुर्योधन—उस युवा वीर के शौर्य पर बड़ा आश्चर्य है। मैं समझता हूँ कि उसके अद्भुत वीरकृत्यों को देखकर सभी योद्धा थोड़ी देर तक आश्चर्य के मारे स्तब्ध हो गये होंगे। अच्छा, आगे कहो।

७—अपने मधुर-वाक्यों से इस प्रकार मुझे ठगकर क्या तुम अब मुझे त्याग कर शरमाते नहीं हो।

८—अपनी सहचरी के क्षणिक वियोग से तुम इतने व्यथित हो, और इतने पर भी मुझ-जैसे कामाभिभूत व्यक्ति को अपनी खोई हुई प्रिया के विषय में कोई भी समाचार बतलाने से इतना हिचकते हो।

९—ज्योंही उसने घर की देहरी पर पॉव रक्खा त्योंही तीन आदमी उस पर झपट पडे और उसे बन्दी कर ले गये।

१०—अब आप धन, प्रतिष्ठा, सन्तति, और मनुष्यो द्वारा अभिलषित और भी अन्य वस्तुएँ प्राप्त कर चुके। अब आप और क्या चाहते हैं? अथवा, हॉ, हॉ, ठीक ही कहा है कि मनुष्य को तृष्णाएँ (इच्छाएँ) कहॉ तक फला हे इसका कोई ठिकाना नही है।

११—यज्ञशर्मा के पास जाओ और उससे पूछो कि तुम इतनी देर क्यों रुक गए, तब तक मे जाकर दूसरे ब्राह्मणा को बुला लाता हूँ।

१२—बडे प्रातःकाल उठकर राम अध्ययन करना आरम्भ कर देता है, तुम तो बिस्तर पर खर्राटे मारते रहते हो।

१३—जहॉ तक मित्रगुप्त के ज्येष्ठ पुत्र का सम्बन्ध है, उसका विश्वास तो किया जा सकता है, परन्तु मे उसके अन्य पुत्रों के विषय मे कुछ भी नहीं जानता।

१४—यदि यह हो जाय तो आप स्वय ही निर्विघ्न अपना कार्य करते चलेगे और हम लोग भी अपना अपना कार्य कर सकेंगे।

---

# पंचविंश पाठ

## दिष्ट्या, न, नाम, नु, ननु, नूनम्,

२८०—दिष्ट्या हर्षसूचक अव्यय है। इसका अर्थ है—मै प्रसन्न हूँ, हर्ष की बात है, सौभाग्य की बात है, भगवान् को धन्यवाद है। जैसे, दिष्ट्या प्रतिहत दुर्जातम् (मालती० ४)—हर्ष की बात है कि टल गया। दिष्ट्या कोपव्याजेन देव्या परित्रातो भवान्

(मालविक० १)—भगवान् को धन्यवाद है कि आप महारानी द्वारा क्रोध के बहाने बचा लिए ग ।

(क प्राय दिष्ट्या वृध् धातु के साथ आता है। दिष्ट्या वृध् का अर्थ है—बधाई देना। जिसको बधाई दी जाती है वह वृध् धातु का कर्ता कारक होता है, जिस कारण से बधाई दी जाती है वह तृतीया विभक्ति में रक्खा जाता है, जैसे, दिष्ट्या महाराजो विजयेन वर्धते (विक्रमो० १)—मै श्रीमान् को आप की विजय पर बधाई देता हूँ। दिष्ट्या सुहृद्-बुद्ध्या वर्धितोऽसि (मालती० ४)—आप के मित्र मूर्च्छा से उठकर होश में आए इस पर मै आप को बधाई देता हूँ।

२८१—"न" क्रिया वशेषण अव्यय के तौर पर प्रयुक्त होता है, जैसे, न दृष्टोऽय मया—वह मुझसे नहीं देखा गया। न कोऽपि नरो मामायात—मेरे पास कोई भी मनष्य नही आया था। योगिनां न किमपि भयम्—योगियों को कोई भी भय नही है।

निषेधार्थक वाक्यों मे अनिश्चय वाचक रूपों से समष्टि का बहिष्करण सूचित होता है, जैसे, मरणान्न कोऽपि बिभेति—मौत से कोई भी नहीं डरता।

(क) अनेक स्थलो पर न न का प्रयोग बहुत ही बलशाली वक्तव्य सूचित करने के लिए किया जाता है, जैसे, नेय न वक्ष्यति मनोगत-माधिहेतुम् (शकु०३)—यह निश्चय ही अपनी मनोव्यथा का गूढकारण बता देगी (यह बात नहीं है कि वह नही बतावेगी)।

२८२[1]—"नाम" प्राय. "नामक" के अर्थ मे प्रयुक्त होता है, जैसे, रावणो नाम लकेश— रावण नामक लका का राजा। पुष्पपुरी नाम नगरी—पुष्पपुरी नामक नगरी।

---

१—नामप्राकाश्यसभाव्यक्रोधोपगमकुत्सने(म्यु०)

नामप्राकाश्यकुत्सयो

सम्भाव्याभ्युपगमयोरलीके विस्मये क्रुधि। (है०)

**विशेष**—**नाम** शब्द के पूर्व आने वाला शब्द उसी विभक्ति मे होना चाहिए जिस विभक्ति मे वह सज्ञा होगी जिसका कि वह गुण है, जैसे, **मेघनादो नाम मित्रम्** (पचतत्र)—मेघनाद नामक मित्र। **तन्नन्दिनीं सुवृत्तां नामोपयम्य** (दशकुमार १।१)। **अस्ति पाटलिपुत्रे नाम नगरे बलभिन्नाम वणिक्** (दशकुमार २।६)।

यह **नाम** शब्द किसी के साथ समस्त नही होता। **नामन्** के साथ इसे गड़बड़ाना नही चाहिए। **नामन्** शब्द बिल्कुल पृथक् वस्तु है और समस्त होता है, जैसे, **दशरथ नाम राजा** बिल्कुल अशुद्ध प्रयोग है। या तो **दशरथो नाम राजा** होना चाहिये, या **दशरथनामा राजा** होना चाहिये (दशरथो नाम यस्य सः)।

**२८३—नाम** शब्द का एक दूसरा अर्थ है—वस्तुत, निश्चय ही: सत्यत. जो साधारणतया प्रयोग में आता है, जैसे **मया नाम जित** (विक्रमो० १)—मै वस्तुतः जीत गया हूँ। **विनीतवेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि नाम** (शकु०)—अवश्य ही, आश्रमों मे बहुत सीधा-सादा वस्त्र पहन कर घुसना चाहिए।

**विशेष**—जब **नाम** शब्द कः, किम्, कथम् इत्यादि के साथ आता है तब इसका अर्थ होता है—**सम्भवतः मै जानना चाहूँगा** (२५७ सेक्शन के इव के साथ तुलना कीजिये), जैसे, **को नाम राज्ञां प्रियः** (पचतत्र) —सम्भवत. राजाओं का कौन प्रिय है। **को नाम पाकाभिमुखस्य जतुर्द्वाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे** (उत्तर० ७)—मै जानना चाहता हूँ कि जब भाग्य अपनी शक्ति दिखलाने पर तुला हो तो भला उसके दरवाजे को कौन बन्द कर सकता है? **अयि कथ नामैतत्** (उत्तर० ६—वस्तुत यह कैसी बात है?

२८४—(१) **बहाना** सूचित करने के लिये भी **नाम** शब्द का प्रयोग होता है, जैसे, **कार्तान्तिको नाम भूत्वा** (दशकुमार २।६)—ज्योतिषी का बहाना करके।

(२) आज्ञा (लोट्) के रूपों के साथ नाम शब्द आता है। इस दशा में इसका अर्थ होता है—मानलिया, सम्भव है कि, यदि आप चाहें; जैसे, यत् खल्वनालोचितावधि दु:खावसानमेव दुःख तन्मरण-भीरोर्भवतु नाम शोकावेगाय (काद०)—मानलिया कि (हो सकता है कि) अनिश्चित काल तक टिकने वाली विपत्ति जिसका अन्तिम परिणाम शोक ही हुआ करता है मृत्यु से डरने वाले पुरुष के हृदय मे शोक की ही भावनाएँ पैदा करेगी। एवमस्तु नाम—अच्छा, ऐसा ही हो।

(३) आश्चर्य, अन्धो नाम पर्वतमारोहति (गणरत्नमहोदधि)—आश्चर्य की बात है कि अन्धा आदमी पर्वत पर चढता है।

(४) क्रोध, और कभी कभी निन्दा, जैसे, किं नाम विस्फुरन्ति शस्त्राणि (उत्तर० ४)—ओं हो, क्या अस्त्र-शस्त्र चमक रहे हैं? ममापि-नाम दशाननस्य परै: परिभव (गणरत्नमहोदधि)—ऐं, क्या मुझ दशानन रावण की भी दूसरो से पराजय हो?

२८५[1]—नु प्रश्न करने में प्रयुक्त होता है और सन्देह अथवा अनिश्चय सूचित करता है, जैसे, स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु (शकु०६)—क्या वह स्वप्न था, अथवा धोखा, अथवा मस्तिष्क का पागलपन?

(क) नु प्राय प्रश्नवाचक सर्वनाम तथा प्रश्नवाचक सर्वनाम निष्पन्न शब्दों के साथ समस्त कर दिया जाता है और "सम्भवत:" "वस्तुत" इन अर्थों को द्योतित करता है (सेक्शन २५७ के इव से तुलना कीजिए), जैसे, किं न्वेतत् स्यात् किमन्यदितोऽथवा (मालती०१)—यह सम्भवत क्या हो सकता है? अथवा इसके अतिरिक्त और दूसरा क्या हो सकता है? कथं नु गुणवद् विन्देयं कलत्रम् (दशकुमार २।६)—सचमुच मै गुणवती स्त्री कैसे पाऊँ?

---

१—नु पृच्छायां विकल्पे च। (अ०)

२८६[1]—नु प्राय न के साथ जोड़ा जाता है, और ननु पृथक् शब्द ही माना जाता है। ननु निम्नलिखित अर्थों में प्रयुक्त होता है—

(१) 'क्या वस्तुतः यह बात नहीं है कि', 'अवश्य ही यह ऐसी ही बात है', जैसे, यदाऽमेधाविनी शिष्योपदेश मलिनयति तदाचार्यस्य दोषो ननु ( मालविका १ )—जब मन्दबुद्धि शिष्या उपदेश को नष्ट कर देती है तो क्या वस्तुत आचार्य का दोष नहीं ?

(२) ननु सशोधक शब्द के तौर पर प्रयुक्त होता है, जैसे, ननु पदे परिवृत्य भण (मृच्छकटिक ६)—मै कहता हूँ, कि शब्दो को बदल कर कहो। ननु भवानग्रतो मे वर्तते (शकु०२)—क्यों, आप मेरे सामने हैं ? ( क्या यह बात सच नहीं है कि आप मेरे सामने हैं ? ) ननु विचिनोतु भवांस्तदस्मिन्नुद्याने (विक्रमो०२)—उसे तुम्हे इस बगीचे मे खोजना चाहिए।

(३) "प्रार्थना करता हूँ" "कृपया" इन अर्थो मे, जैसे, ननु मा प्रापय पत्युरन्तिकम् (कुमार०४।३२)—कृपया मुझे मेरे पतिदेव के पास पहुँचा दीजिए।

(४) सम्बोधन करने मे। इस दशा मे इसका अर्थ होता है "ओहो, आहा", जैसे, राजवाहनोऽभाषत। ननु, मानव, अत्र भवानेकाकी किमिति निवसति ( दशकुमार १।२ )—राजवाहन ने कहा, "ऐ मनुष्य, तुम यहाँ अकेले क्यो रहते हो ?" ननु मूर्खा पठितमेव युष्माभिस्तत्काण्डे (उत्तर ४)—"हे मूर्खो, तुमने उस अध्याय में यह विषय पहिले ही पढ़ लिया है।"

(५) प्रश्न करने में, जैसे, ननु समाप्तकृत्यो गौतम (उत्तर ४) —क्या गौतम ने अपना कार्य समाप्त कर लिया ?

(क) तार्किक शास्त्रार्थों में आपत्ति अथवा विरोधी सिद्धात उपस्थित

---

१—प्रश्नाव धारणानुज्ञानुनयामंत्रणे। (अ०)

करने के लिए ननु का प्रयोग होता है और अत्रोच्यते अथवा केवल उच्यते उस वक्तव्य के साथ जोड दिया जाता है जिसमे आपत्ति का उत्तर रहता है अथवा सिद्धात की काट रहती है, जैसे, 'ननु एकाधिकं हरेज्ज्येष्ठ इति' वचनेन विषमो विभाग' दर्शित इति। अत्रोच्यते । सत्यमय विषमो विभाग सशास्त्रस्तथापि लोक-विद्विष्टत्वान्नानुष्ठेय (मिताक्षरा)—अब यह आपत्ति की जा सकती है कि ज्येष्ठ पुत्र को दो भाग मिलना चाहिए इस वचन से पैतृकसम्पत्ति का विभाग विषम है इसका उत्तर यह है—यह बात सत्य है कि यह विषम विभाग शास्त्रसगत अथवा शास्त्रविहित है तथापि उसका अनुसरण नहीं किया जाना चाहिए क्योकि यह लोकव्यवहार के विरुद्ध है।

ननु अचेतनान्येव वृश्चिकादिशरीराण्यचेतनाना च गोमयादीनां कार्याणीति उच्यते (शाकर भाष्य ४२८)। और भी अन्य उदाहरण ये है-- ननु चेतनमपि कार्यकारण स्वामिभृत्यन्यायेन भोक्तुरुप-करिष्यति । न । (शाकर भाष्य ४२३)। ननु जगदप्यप्रकृतमसंशब्दित च। सत्यमेतत् (शाकर भाष्य ३८३)।

विशेष—आपत्ति उपस्थित करने मे कथ तर्हि (तो यह कैसे), और इति चेत् (यदि कोई ऐसा कहे कि) का प्रयोग होता है, जैसे, कथ तर्हि 'कासि हे सुभ्रु'—प्रमाद एवायमिति भागुरि. (सि० कौ०)--अब कोई भी यह पूछ सकता है कि यह 'सुभ्र' कैसे होता है? इस के उत्तर में हमारा निवेदन है कि भागुरि के विचार से यह अशुद्ध है।

२८७—नून का प्रधान अर्थ है "निश्चय ही", "वस्तुत" "अवश्य ही," जैसे, स नून तव पाशाश्छेत्स्यति (हितोप०१)--वह अवश्य ही तुम्हारे जालो को काट देगा। अद्यापि नून हरकोपवह्निस्त्वयि ज्वलति (शकु०३)—निश्चय ही हर की क्रोधाग्नि तुममें आज भी जल रही है।

## अभ्यास

१—ननु समानेऽपि ज्ञानवृद्धभावे वयोवृद्धत्वात् गणदास पुरस्कारमर्हति (मालविका०२)।

२—मया नाम मुग्धचातकेनेव शुष्कघनगर्जितेऽन्तरिक्षे जलपानमिष्टम्। (मालविका-२)

३—अनियन्त्रणानुयोगो नाम तपस्विजन। (शकु० ६)

४—अल रुदित्वा। ननु भवतीभ्यामेव स्थिरीकर्तव्या शकुन्तला। (शकु. ४)

५—दिष्ट्या धर्मपत्नीसमागमेन पुत्रमुखदर्शनेन चायुष्मान्वर्धते। (शकु ७)

६—निशम्यैतन्नियतिबलान्नु तत्पाटवान्नु स्वबुद्धिमान्द्यान्नु स्वनियममनादृत्य तस्यामसौ प्रासजत्। (दशकुमार २।२)

७—एतद्वचनं श्रुत्वा बद्धकलकले महाजने पितुरंगे प्रदीप्तशिरसमाशीविषं न्यक्षिपम्। अहं च भीतो नामावप्लुत्य तातस्य विषं क्षणादस्तम्भयम्। (दशकुमार २।४)

८—इमं ललनाजनं सृजता विधात्रा नूनमेषा घुणाक्षरन्यायेन निर्मिता। नोचेदब्जभूरेवंविधनिर्माणनिपुणो यदि स्यात् तर्हि समानलावण्यामन्या तरुणीं किं न करोति। (दशकुमार० १।५)

९—यदि गर्जति वारिधरो गर्जतु तन्नाम निष्ठुरा पुरुषाः
अयि विद्युत्प्रमदानां त्वमपि च दुःखं न जानासि॥
(मृच्छकटिक ५)

१०—प्रश्च्योतनं नु हरिचन्दनपल्लवानां
निष्पीडितेन्दुकरकन्दलजो नु सेकः।
आतप्तजीवनमनःपरितर्पणो मे
संजीवनौषधिरसो नु हृदि प्रसिक्तः॥

## अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—नन्वार्यमिश्रैः प्रथममेवाज्ञप्तमभिज्ञानशाकुन्तलं नामापूर्वं नाटकं प्रयोगेणाधिक्रियतामिति। (शकु० १)

२—अनुपपन्नं खल्वीदृशं त्वयि। न कदाचित्सत्पुरुषाः शोकपात्रात्मानो भवन्ति। ननु प्रवातेऽपि निष्कम्पा गिरयः। (शकु० ६)

३—सखि लवङ्गिके दिष्टया वर्द्धसे। ननु भणामि प्रतिबुद्ध एव ते प्रियवयस्यः प्रतिपन्नचेतनो महाभागो मकरन्द इति। (मालती० ४)

४—आर्य ननु रामभद्र इत्येव मां प्रत्युपचारः शोभते तातपरिजनस्य। तद्यथाभ्यस्तमभिधीयताम्। (उत्तर० १)

५—स शक्तिकुमारो नाम श्रेष्ठिपुत्रोऽष्टादशवर्षदेशीयश्चिन्तामापेदे। नास्त्यदाराणामननुदाराणां वा सुखं नाम। तत्कथं नु गुणवद्विन्देयं कलत्रमिति। अथ परप्रत्ययाहृतेषु दारेषु यादृच्छिकीं सम्पत्तिमनभिसमीक्ष्य कार्तान्तिको नाम भूत्वा भुवं बभ्राम। (दशकुमार६।६)

६—विधिप्रयुक्तां परिगृह्य सत्क्रियां परिश्रमं नाम विनीय च क्षणम्।
उमां स पश्यन्नृजुनैव चक्षुषा प्रचक्रमे वक्तुमनुज्झितक्रमः ॥ (कुमार ५।३२)

७—नियमयसि विमार्गप्रस्थितानात्तदण्डः
प्रशमयसि विवादं कल्पसे रक्षणाय।
अतनुषु विभवेषु ज्ञातयः सन्तु नाम
त्वयि तु परिसमाप्तं बन्धुकृत्यं प्रजानाम् ॥ (शकु ५)

८—वपुषा करणोज्झितेन सा निपतन्ती पतिमप्यपातयत्।
ननु तैलनिषेकबिन्दुना सह दीपार्चिरुपैति मेदिनीम् ॥ (रघु० ८।३८)

९—अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तिप्रदः
शृङ्गारैकरसः स्वयं नु मदनो मासो नु पुष्पाकरः।
वेदाभ्यासजडः कथं नु विषयव्यावृत्तकौतूहलो
निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः ॥ (विक्रमो० १)

## संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—मणिपुर नामक नगर मे धनमित्रनामक धनी वणिक् रहता था।

२—बडे बडे ऋषियों के लिए भी अप्रतर्क्य परमात्मा की महत्ता को कौन सा मर्त्य सम्भवत· जान सकता है?

३—अन्य गुणी राजपुत्रों के होते हुये भी अशुभ लक्षणों से युक्त वह व्यक्ति राजा करके अभिषिक्त कर दिया गया।

४—कौन ऐसा है जो अपने ही हाथो अपने सिर पर विपत्ति लाने की चेष्टा करेगा?

५—अभीष्ट मनोरथ की सिद्धि पर आप सब लोगों को बधाई देता हूँ।

६—भगवान् को धन्यवाद है कि दीर्घकालिक वियोग के बाद तू फिर मुझसे देखा जाता है।

७—मित्र, कृपया मेरे लिये इतना तो करो। मै स्त्री का वेष धारण कर आप की पुत्री बन जाऊँगा, तब आप मुझे राजा के पास ले चलिएगा और उनसे इस प्रकार कहिएगा।

८—क्या यह सच्चा बाघ हो सकता है अथवा बाघ का चमडा पहिने हुये कोई दूसरा जानवर है?

९—गोविन्द—राम, गुरु जी की सेवा करने कब जाओगे?
राम—क्यों, आज गुरु जी की सेवा करने की तुम्हारी पारी है।

१०—तुम कहते हो कि रुपया खर्च करने मे गोविन्द बहुत ही अपव्ययी है। क्यो, तुम स्वय ही उससे इस बात मे तथा अन्य बहुत सी बातों मे मिलते जुलते हो।

११—तो यदि वह मित्र पूछे कि ब्रूटस (गोपाल) सीजर (विष्णु) के विरुद्ध क्यों उठ खडा हुआ तो मेरा उत्तर यह है कि मै सीजर को कम नहीं प्यार करता था, परन्तु मै रोम को अधिक प्यार करता था।

———

# षड्विंश पाठ

## पुनः, प्रायः (प्रायेण), बत, बलवत्, मुहुः, यत्, यत्सत्यम्

२-८—साधारणतया "पुन " का अथ हुआ करता है 'फिर , जैसे, पुनर्विवक्षु (कुमार५।८२)—फिर से बोलने का इच्छुक। परन्तु प्राय इसका अर्थ हुआ करता है 'परन्तु', 'इसके विरुद्ध', जैसे, तदेव पंचवटीवन, स एव आर्यपुत्र । मम पुनर्मन्दभाग्याया दृश्यमानमपि सर्वमेवैतन्नास्ति (उत्तर०३)—यह वही पचवटी का जगल है, और आर्यपुत्र भी वही हैं, परन्तु, मुझ अभागिनी के लिए यह सब दिखाई पड़ते हुए भी कुछ भी नही हे ।

(क) "पुन. पुन " अकेले "पुन " से अधिक बलशाली होता है। इसका अर्थ होता है 'बार बार', जैसे, स्वपाठान् पुन पुनर्वाचय—अपने पाठा को बार बार पढो ।

किम् के साथ पुन का उल्लेख पहिले ही किया जा चुका है (सेक्शन २०७ देखिए) ।

२८९—प्राय. अथवा प्रायेण का अर्थ है "साधारणतया" और यह साधारण नियम बनाने मे काम आता है, जैसे, प्रायो भृत्यास्त्यजन्ति प्रचलितविभव स्वामिन सेवमाना (मुद्रा० ४)—जब स्वामी की सम्पत्ति नष्ट हो जाती है तब साधारणतया उसकी सेवा करने वाले नौकर उसको त्याग देते हैं । प्रायेणैते रमणविरहेष्वगनाना विनोदा. (मेघ-८७)—प्राय अपने प्रमियो से वियोग हो जाने पर स्त्रियों के ये ही मनोरजन हुआ करते हैं ।

२९०--बत[1] निम्नलिखित अर्थों मे प्रयुक्त होता है—

(१) अफसोस, जिससे दु:ख, शोक अथवा करुणा प्रकट की जाती है, जैसे, अहो बत महत् पाप कर्तुं व्यवसिता वयम् (भगवद्गीता १।४५)—हाय, शोक की बात है, हम लोग कैसा बड़ा पाप करने जा रहे है।

(२) हर्ष अथवा आश्चर्य, इन अर्थो मे यह प्राय अहो के साथ आता है, जैसे, अहो बतासि स्पृहणीयवीर्यः (कुमार ३।२०)—ओहो, तेरी वीरता कैसी स्पृहणीय है। अहो बत महच्चित्रम् (काद०)। हता बत वराकी सा (गणरत्न महोदधि)। सम्बोधन के तौर पर, जैसे, बत वितरत तोय तोयवाहा नितान्तम् (गणरत्न महोदधि)- -ऐ बादलो, खूब जल दो। त्यजत मानमलं बत विग्रहै. (रघु ९।४७)।

२९१---"बलवत्" का अर्थ है "बलशाली"। यह क्रियाविशेषण अव्यय के तौर पर प्रयुक्त होता है और इसका अर्थ होता है "बड़े जोरों से" "अत्यन्त ही" "खूब", जैसे, शिव इन्द्रियक्षोभं बलवन्निजग्राह (कुमार०३। ६९)—शिव जी ने बडे जोरो से अपनी इन्द्रियो के क्षोभ को दबाया। बलवदस्वस्थशरीरा शकुन्तला (शकु० ३)—शकुन्तला की तबियत बहुत ही खराब है (शकुन्तला का शरीर बहुत ही अस्वस्थ है)।

२९२—मुहु का अर्थ है प्राय, जैसे, बालो मुहू रोदिति—बच्चा प्राय· रोया करता है। इस अर्थ मे यह प्राय. दोहरा दिया जाता है। इसका यह भी अर्थ होता है—किसी समय, दूसरे समय, कभी—कभी। इस अर्थ में यह प्रत्येक उपवाक्य के साथ प्रयुक्त होता है, जैसे, मुहुर्भ्रश्यद्बीजा मुहुरपि बहुप्रापितफला। अहो चित्राकारा नियतिरिव नीतिर्नयविद (मुद्रा०५)—एक समय तो उसके बीज लुप्त होते हुए मालूम पड़ते हैं, दूसरे समय वह बहुत से फल देती है ओहो,

१—खेदानुकम्पासन्तोषविस्मयामंत्रणे बत।

भाग्य के समान राजनीतिज्ञ की नीति कितने विचित्र-विचित्र प्रकार की होती है।

२६३–यत् से प्रत्यक्ष कथन का प्रारम्भ होता है, प्रत्यक्ष कथन के अंत में इति कभी रक्खा जाता है और कभी नहीं रक्खा जाता, जैसे, सत्योऽयं जनप्रवादो यत् संपत् संपदमनुबध्नातीति (काद०)—यह लोकोक्ति सत्य है कि एक सम्पत्ति के बाद दूसरी सम्पत्ति चली आती है।

तस्य कदाचिच्चिन्ता समुत्पन्ना यदर्थोत्पत्त्युपायाश्चिन्तनीयाः कर्तव्याश्च (पंचतंत्र)—उसके मस्तिष्क में एक विचार आया कि धन प्राप्त करने के लिए उपाय सोचा जाना चाहिए और किया जाना चाहिए।

(क) यत् का अर्थ है 'कि', जैसे, किं त्वं मत्तोऽसि यदेवमसंबद्धं प्रलपसि। इसका अर्थ "क्योंकि" भी होता है, जैसे, किं शेषस्य भरव्यथा न वपुषि क्ष्मां न क्षिपत्येष यत् (मुद्रा० २)—क्या शेषनाग को अपने शरीर पर बोझे का भारीपन नहीं मालूम पड़ता ? क्योंकि वह अपने सिर से पृथ्वी को फेंक नहीं देते। प्रियमाचरितं लते त्वया मे यदियं पुनर्मया दृष्टा (विक्रमो० १)—ऐ लते, तुमने मेरी एक भलाई की है, क्योंकि यह मेरे द्वारा फिर एक बार देख ली गई।

विशेष—यत-अत चूँकि–इसलिए, इसलिए, अतः का अर्थ रखने वाले वाक्यों का अनुवाद करने में तत् अथवा ततः का प्रयोग होता है, अथवा यत् या यत के द्वारा सारा वाक्य अनूदित किया जा सकता है, जैसे अहं भ्रातरं गृहान्निष्कासयामि यत् (यतः) सोऽतीव दुर्वृत्तः—मैं अपने भाई को घर से निकाल दूँगा क्योंकि वह बहुत ही दुराचारी है।

२६४—यतः का अर्थ है 'जिस जगह से'। यह यस्मात् के स्थान पर प्रयोग में आता है, जैसे, यतस्त्वया ज्ञानमशेषमाप्तम् (रघु० ५ ४)—जिससे (अर्थात् जिस गुरुजी से) तुमने पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया।

जब कारण प्रकट रहता है तब इसका अर्थ होता है "क्योंकि", जैसे, किमेवमुच्यते महद्‌तर यत कर्पूरद्वीप स्वर्ग एव (हितोप)—तुम ऐसा क्यों कहते हो ? बडा भारी अन्तर है क्योंकि कर्पूरद्वीप साक्षात् स्वर्ग ही है।

२६५—यत्सत्यम् एक शब्द है, अलग-अलग दो शब्द नहीं हैं। इसका अर्थ है "निश्चय" ही "अवश्य ही" "सच पूछिये तो," "सत्यतः,", जैसे, अमगलाशसयास्य वो वचनस्य यत्सत्य कम्पित-मिव मे हृदयम् (वेणी० १)—तुम्हारे अमगलसूचक वचन से, सत्यतः, मेरा हृदय कॉपता है।

## अभ्यास

१—यद्वेतस कुब्जलीला विडबयति तत्किमात्मन· प्रभावेण ननु नदीवेगस्य। (शकु २)

२—इदं तत्प्रत्युत्पन्नमति स्त्रैणमिति यदुच्यते। (शाकु)

३—निराकरणविक्लवाया प्रियाया समवस्थामनुस्मृत्य· बलवदशरणोस्मि। (शाकु ६)

४—सर्वथा न कश्चिन्न खलीकरोति जीविततृष्णा यदीदृगस्वस्थमपि मामायासयति जलाभिलाष। (कादम्बरी)

५—पुण्यभाज खल्वमी मुनयो यदहर्निशमेन भगवत पुण्या· कथा· शृण्वंत· समुपासते। (कादम्बरी)

६—कस्मान्मया निष्प्रयोजनमिदमश्वमुखद्वयमनुसृतमिति विचार्यमाणे यत्सत्यमात्मैव मे परिहासमुपजनयति। (कादम्बरी)

७—अहं तं समादिशम्। सैषा सज्जनाचरिता सरणिर्यदणीयसि कारणेऽनणीयानादर· स दृश्यते। (दशकुमार २।७)

८—अलमन्यथा गृहीत्वा न खलु मनस्विनि मया प्रयुक्तमिदम्।

## पुनः, प्राय (प्रायेण), बत

प्राय' समानविद्या परस्परयश पुरोभागाः ॥ (मालविक॰

९—अयि कठोर यश' किल ते प्रियं किमयशो ननु घोरमतः परम् ।
किमभवद्विपिने हरिणीदृश कथय नाथ कथं बत मन्यसे ॥
(उत्तर॰ ३)

१०—यत्सत्य काव्यविशेषवेदिन्या परिषदि प्रयुजानस्य ममापि चेतसि सुमहान् परितोप. प्रादुर्भवति । यत

११—चीयते बालिशस्यापि सत्क्षेत्रपतिता कृषि ।
न शाले स्तबकरिता वप्तुर्गुणमपेक्षते ॥ (मुद्रा १)

## अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—अथ तेषा मध्यात् काकः प्रोवाच । स्वामिन्नय तावत्सर्वत्र पर्यटिताऽपर न किंचिन्मत्त्वमासादित दृष्ट वा । तदद्य मा भक्षयित्वा प्राणान्धारयतु स्वामी येन देवस्याप्यायना भवति । मम पुन स्वर्गप्राप्तिरिति (पञ्चतन्त्र) ।

२—इह (पचमे प्रकोष्ठे) गधर्वसुरगणैरिव विविधालंकारशोभितैर्गणिकाजनैर्बंधुलैश्च यत्सत्य स्वर्गायित इद गे.म् । (मृच्छकटिक. ४)

३—आपारितोषाद्विदुषा न साधु मन्ये प्रयागविज्ञानम् ।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः ॥ (शकु. १)

४—ज्वलति चलितेंधनोग्निर्विप्रकृत पन्नग फणा कुरुते ।
प्रायः स्व महिमान क्षोभात्प्रतिपद्यते जतु (शकु॰ ६)

५—अदूरवर्तिनीं सिद्धि राजन्विगणयात्मन ।
उपस्थितेय कल्याणी नाम्नि कीर्तित एव यत् ॥ (रघु॰ १।८७)

६—अथवा मम भाग्यविप्लवादशनि कल्पित एष वेधसा ।
यदनेन तरुर्न पातितः क्षपिता तद्विटपाश्रिता लता ॥ (रघु॰ ८।४७)

७—खल्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणैः सन्तापितो मस्तके
वाञ्छन्देशमनातपं विधिवशात्तालस्य मूलं गतः ।
तत्राप्यस्य महाफलेन पतता भग्नं सशब्दं शिरः
प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यान्त्यापदः ॥ (भर्तृहरि० २।९०)

## संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—मैं इस विषय पर कुछ भी बोलना उचित नहीं समझता, क्योंकि मैं इसके विवरण से परिचित नहीं हूँ।

२—चूँकि कल रात में तुम लोगों ने मेरे घर में सेंध मारी, इसलिए मैं तुम लोगों को बन्दी बनाता हूँ और जाँच पड़ताल के लिये तुम्हें न्यायालय में ले चलता हूँ।

३—कन्या सम्बन्धी मामलों में गृहस्थ लोग प्रायः अपनी पत्नियों के नेत्रों से देखते हैं।

४—आहा, इस स्थान का अनुपम वैभव! सच बात तो यह है कि सौन्दर्य में यह इन्द्र के बगीचे से भी स्पर्धा करेगा।

५—जिस जगह से तुम आए हो क्या वह जगह प्रचुर अन्न से युक्त है?

६—मैं स्वामी की आज्ञा पालन करने जा रहा हूँ, पर तुम कहाँ जा रहे हो?

७—इस प्रकार लकड़हारे ने अपना प्राण और धन बचाया, पर पिशाच पूरे बारह वर्ष काम में लगा रहा।

८—सुवदना मुझसे कहती है कि उसकी स्वामिनी चन्द्रलेखा जिस दिन दुर्गा के मन्दिर में नाची थी उसी दिन से बहुत बीमार है। अब मैं अवश्य यह पूछने जाऊँगा कि उसकी तबियत कैसी है।

९—यह साधारण नियम है कि मालिक लोग नौकरों के प्रति जो सम्मान प्रदर्शित करते हैं वह भृत्यों द्वारा कराये जाने वाले कार्य के प्रकार के अनुसार बदलता रहता है।

१०—क्या तुम समझते हो कि सूर्य नहीं थकता है, क्योंकि वह अपने आकाशमार्ग में कभी-भी स्थिर नहीं रहता।

११—मित्र, बहुत जल्द मेरे जालों को काट कर मुझे बचाओ, क्योंकि यह सच ही कहा गया है कि विपत्ति मित्रता की कसौटी है।

---

# सप्तविंश पाठ

## यथा-तथा; यावत्-तावत्

२६६—यथा शब्द का अर्थ है (१) 'जैसे' 'उक्त प्रकार से', जैसे, **यथाज्ञापयति देव** (शाकु० १)—जिस प्रकार महाराज आज्ञा देते हैं, अर्थात् आप की आज्ञा पालन की जायगी।

(२) अर्थात्, निम्नलिखित रीति से, इस प्रकार, जैसे, **तद्यथानुश्रूयते** (पंचतंत्र)—जैसा नीचे कहा जाता है वह इस प्रकार है याना यह निम्नलिखित प्रकार में है।

(३) समान, इव के समान तुलना सूचित करता है, जैसे, **आसोदियं दशरथस्य गृहे यथा श्रीः** (उत्तर० ४)—यह दशरथ के घर में लक्ष्मी के समान था।

(४) यह प्रत्यक्ष कथन के प्रारम्भ में भी प्रयुक्त होता है, जैसे, **विदित खलु ते यथा स्मर क्षणमप्युत्सहते न मां विना** (कुमार० ४.३६)—यह तो आप को पहिले ही से मालूम है कि कामदेव मेरे बिना एक क्षण भर के लिए भी चैन नहीं पाता। इस अर्थ में अन्त में **यथा** के बाद **इति** जोड़ देते हैं, जैसे, **संदिष्टास्मि तातेन। यथा वत्स मित्रावसो जीमूतवाहनात् यारयतरो वरो न लभ्यते। तस्मादस्मै मलयवतीं प्रतिपादयतामिति** (नागानन्द २)—मेरे पिता जी ने मुझ से यह सन्देश

कहा है कि---ऐ मित्रावसु, जीमूतवाहन से बढकर दूल्हा नही मिल सकता। इसलिए मलयवती को उसके हाथ मे अर्पण कर दो।

(५) जैसे, उदाहरणार्थ, जैसे, यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्र वह्निः यथा महानसे (तर्कसंग्रह)--जहाँ जहाँ धुआँ रहता है वहाँ-वहाँ आग रहती है, जैसे ( उदाहरणार्थ ) रसोई घर मे।

(६) ताकि, जिसमे, प्राय इस अर्थ मे यथा के स्थान पर येन का प्रयोग पाया जाया है, जैसे, त्वं दर्शय त चौरसिंह यथा व्यापादयामि (पचतत्र)—तुम मुझे उस बदमाश सिंह को दिखलाओ ताकि मैं उसे मार डालूँ। स्वामिन्, मम प्राणै प्राणयात्रा विधीयता येन ममोभयलोकप्राप्तिर्भवति ( पचतत्र )--स्वामिन्, मेरा प्राण लेकर आप अपना जीव (प्राण) धारण करे ताकि मै दोनो लोक पा जाऊँ।

२६७---यथा—तथा के निम्नलिखित अर्थ हुआ करते हैं—

(१) जैसा---वैसा, इस अर्थ मे कभी-कभी तथा के स्थान मे तद्वत् का प्रयोग हाता है, जैसे, यथा वृक्षस्तथा फलम्---जैसा वृक्ष वैसा फल। यथा बीजाकुर. सूक्ष्म. प्रयत्नेनाभिरक्षित। फलप्रदो भवेत् काले तद्वल्लोक. सुरक्षित (पचतत्र)--जैसे अच्छे प्रकार से रक्षा किया हुआ बीज का अकुर उचित समय पर फल देता है, उसी प्रकार भली भाँति रक्षा की हुई प्रजा।

(२) इस प्रकार कि, इस अर्थ में इस प्रकार के स्थान पर तथा आता है और कि के स्थान पर यथा आता है,जैसे, यदि वामनुमत तथा वर्तेथा यथा तस्य राजर्षेरनुकम्पनीया भवामि (शकु ३)---यदि आप इसका अनुमोदन करे तो इस प्रकार आचरण करूँ कि मैं राजर्षि जी की दया का पात्र बन जाऊँ। अह स्वामिन विज्ञाप्य तथा करिष्ये यथा स वधं करिष्यति(पचतत्र)-मैं श्रीमान् जी से निवेदन करके इस प्रकार व्यवस्था करूँगा कि वह उसे मार डालेगा।

विशेष—ईदृश, तादृश, तावत्, एतावत्, इयत् शब्दों का प्रयोग "तथा" के स्थान पर होता है. और सम्बन्धवाचक सर्वनामों के रूप, प्राय येन, दूसरे उपवाक्य के साथ प्रयुक्त होते हैं, जैसे, ईदृशी अह मन्दभागिनी यस्या न केवलमार्यपुत्रविरह पुत्रविरहोऽपि (उत्तर०३)—मै ऐसी मन्दभागिनी हूँ कि मैं न केवल अपने पतिदेव से वियुक्त हूँ, अपि तु अपने पुत्र से भी।

मम चैतावान् लोभविरहो येन स्वहस्तगत सुवर्णककणमपि यस्मै कस्मैचिद् दातुमिच्छामि (हितोप)—मेरा लोभाभाव इतना (इस प्रकार का) हो गया है कि मै अपने हाथ में स्थित सोने के कगन को भी किसी भी व्यक्ति को दे देना चाहता हूँ।

(३) चूँकि—इसलिए, जैसे, यथाय चलितमलयाचलशिलासचय: प्रचडो नभस्वास्तथा तर्कयामि आसन्नीभूत पक्षिराज (नागानन्द ४)—चूंकि मलय पर्वत पर स्थित प्रस्तर-समूह को हिला देने वाली यह हवा बड़ी प्रचण्ड (भयंकर) है, इसलिए मै समझता हूँ कि पक्षिराज आ गए हैं।

(४) यदि .. तो यदि . . .तर्हि के समान प्रयुक्त होता है। अथवा बहुत कड़ी शपथ के तौर पर यथा .तथा का प्रयोग होता है, जैसे,

वाड्मन.कर्मभि पत्यौ व्यभिचारो यथा न मे।
तथा विश्वम्भरे देवि मामतर्धातुमर्हसि।
(रघु ० १५।८१)

—यदि अपने पतिदेव के प्रति मेरे आचरण मे मनसा, वाचा, कर्मणा कोई भी बुराई न हो, तो ऐ विश्वव्यापिनी पृथ्वी देवी, कृपा कर मुझे अपने अन्दर ले लो।

(५) जितना .उतना, उतना जितना—इस दशा मे तथा का अर्थ

होता है 'उतना' और 'यथा' का अर्थ होता है 'जितना' और विवक्षित अर्थ समानता सूचित करता है, जैसे, न **तथा बाधते शीतं यथा बाधति बाधते** (सुभाषित रत्नाकर०)—जाडा मुझको उतना नहीं सता रहा है, जितना 'बाधति' शब्द। इस अर्थ मे **यथा** और **तथा** दोनों के साथ अथवा एक ही के साथ **एव** शब्द प्राय. जोड़ दिया जाता है ताकि समानता और भी अधिक बलवती हो जाय, जैसे, **वधूचतुष्केऽपि यथैव शान्ता प्रिया तनूजास्य तथैव सीता** (उत्तर०४)—चारो बहुओं मे सीता उन्हें इतनी प्यारी थी जितनी कि उनकी कन्या शान्ता।

(क) यथा यथा . तथा तथा—जितना जितना ..उतना उतना, जितनाही... उतनाही का अर्थ देते हैं, जैसे, **यथा यथा यौवनमतिचक्राम तथा तथा अनपत्यताजन्मा महानवर्धतास्य संताप** (काद०)—ज्यो ज्यो वह जवान होता गया त्यों त्यों सन्तान-हीनताजनित उसका सन्ताप बढता ही गया। **यथा यथा मृतपुत्र न चिन्तयिष्यसि तथा तथा तव दु ख शममेष्यति** अथवा **यथा यथा अल्पीयसी पुत्रचिंता तथा तथा अल्पीयो दु खम्।**

२६८—[1]जब "यावत्" शब्द अकेला प्रयुक्त होता है तो इसका अर्थ होता है "जहाँ तक" "तक", और यह काल की अवधि अथवा मार्ग (दूरी) द्योतित करता है। ऐसी दशा में इसके योग मे द्वितीया आती है; जैसे. **स्तनत्याग यावत् पुत्रयोरवेक्षस्व** ( उत्तर० ७ )—इन पुत्रो की तब तक देख रेख करो जब तक ये स्तन का दूध पीना छोड़ न दें। **कियतमवधिं यावदस्मच्चरित चित्रकारेणालिखितम्** ( उत्तर० १ )—चित्रकार द्वारा हमारी जीवन घटना कहाँ तक चित्रित की गई है?

(क)—**यावत्** का कभी-कभी अर्थ होता है 'अभी' 'तो' और इससे तत्काल किए जाने वाले कार्य का बोध होता है; जैसे, **तद् यावद्**

---

१—यावत्तावच्च साकल्येऽवधौ मानेऽवधारणे। (अ०)

गृहिणीमाहूय सगीतकमनुतिष्ठामि ( शकु० १ )—तो अपनी स्त्री को बुलाकर मै सगीत प्रारम्भ करता हूँ। यावदिमां छायामाश्रित्य प्रतिपालयामि ता (शकु ०३)--इस छाया का सहारा लेकर, मै उसकी प्रतीक्षा करता हूँ।

२६६—इतरेतरसम्बधी के तौर पर यावत् - तावत् के ये अर्थ होते हैं—

(१)उतना ही . जितना, इस दशा म तावत् का अर्थ होता है उतना ही और यावत् का अथ होता है 'जितना' जैसे, पुरे तावंतमेवास्य तनोति रविरातपम् । दीर्घिकाकमलोन्मेषो यावन्मात्रेण साध्यते (कुमार० २।३३)—उसके नगर मे सूर्यदेव उतना ही काम करते हैं जितने से तालाबों म के कमलो की कलियाँ खिल जाँय।

(२) सब, इस दशा मे दोनों (यावत्—तावत्) मिलकर साकल्य (सब) का अर्थ देते हैं, जैसे यावद् दत्त तावत् भुक्तम् (गणरत्न महोदधि) —जितना मुझे दिया गया उतना सब मैने खा डाला। यावन्मानुष्यके शक्यमुपपादयितु तावत् सर्वमुपपाद्यताम् (काद०)।

(३) जब तक तब तक—इस दशा में यावत् का अर्थ होता है 'जब तक' और तावत् का अर्थ होता है 'तबतक', जैसे यावद्वित्तोपार्जनशक्तस्तावन्निजपरिवारो रक्त ( मोहमुद्गर )=जब तक मनुष्य धन कमाने के योग्य रहता है तब तक उसका परिवार उसमे अनुराग करता है (उसमे अनुरक्त रहता है)।

विशेष—जिन स्थलो मे जब तक, तब तक, पयुक्त होते हैं उनमें यावत् और तावत् दोनों का प्रयोग करना पडता है। यावत् का प्रयोग क्रियाविशेषण उपवाक्य के साथ होगा और तावत का प्रयोग प्रधान उपवाक्य के साथ होगा, जैसे, यावद्राज्यभारो मयि विन्यस्तस्तावदहं प्रजा अनुरक्ता करिष्यामि—जब तक राज्य का भार मुझको सौंपा जाता है, तब तक मैं प्रजा को सन्तुष्ट रक्खँगा। सूत तावद्रथ स्थापय

यावदहमवतरामि—ऐ सारथि, जब तक मैं उतर न आऊँ तब तक रथ को रोक रक्खो।

(ख) पहिले ही, पूर्व ही का अनुवाद 'यावन्न' से किया जाता है, जैसे, सरोवर से इनके उड़जाने के पूर्व ही मुझे इनसे समाचार प्राप्त कर लेना चाहिये—यावदेते सरसो नोत्पतन्ति तावदेतेभ्य प्रवृत्तिरवगमयितव्या (विक्रमो० ४)।

३००—कभी कभी यावत् तावत् का केवल जब-तब अर्थ होता है; जैसे, यावदसौ पान्थ उत्थायोर्ध्व निरीक्षते तावत्तेनावलोकितो हंसः काण्डेन हतो व्यापादितश्च (हितोप)—जब पथिक उठकर ऊपर की ओर देखने लगा तब हंस उसके द्वारा देखा जाकर बाण से मार दिया गया।

कभी कभी यावत् का अर्थ होता है 'ज्योंही' और तावत् का अर्थ होता है 'त्योंही,' जैसे, एकस्य दुःखस्य न यावदन्त गच्छामि तावद् द्वितीय समुपस्थित मे (हितोप)—ज्योंही मैं ने एक विपत्ति का पार पाया त्योंही मेरे ऊपर दूसरी आ उपस्थित हुई।

## अभ्यास

१—भगवन्सकल्पयोने प्रतिबधत्स्वपि विपर्येष्वभिनिवेश्य तथा प्रहरसि यथा जनोय कालान्तरक्षमो न भवति। (मालविका ३)

२—अकथितोपि ज्ञायत एव यथायमाभोगस्तपोवनस्येति। (शाकु १)

३—आश्रमवासिनो यावदवेक्ष्याहमुपावर्ते तावदार्द्रपृष्ठा क्रियन्ता वाजिन। (शाकु १)

४—बहुवल्लभा राजान श्रूयते। तद्यथा नौ प्रियसखी बन्धुजनशोचनीया न भवति तथा निर्वाहय। (शाकु. ३)

५—संजीवक आह। मा भित्र कथय कोऽयं महात्मा दुष्टबुद्धिरिति।
इयतं कालं यावदुत्तरोत्तरस्नेहेन प्रमादेन चाहं दृष्ट।
(पचतत्र)

६—यद्येव नकुलस्य बिलद्वारात्सर्पकोटर यावन्मत्स्यमांसशकलानि
प्रक्षिप यथा नकुलस्तन्मार्गेण गत्वा त दुष्टसर्पं विनाशयति।
(पञ्चतत्र)

७—अयि मातर्देवयजनसभवे देवि सीते ईदृशस्ते निर्माणभाग.
परिणतो येन लज्जया स्वच्छंदेनाक्रन्दितुमपि न शक्यते।
(उत्तर ४)

८—ततो यावदसौ पाथस्तद्वचसि प्रतीता लोभात्सरसि स्नातु
प्रविशति तावन्महापंके निमग्न पलायितुमक्षम। (हितोप)

९—यथा यथेयं चपला दीप्यते तथा तथा दीपशिखेव कज्जलम-
लिनमेव कर्म केवलमुद्वमति। (काद)

१०—यावत्सबंधिनो न परापतति तावद्वत्सया मालत्या नगरदेवता-
गृहं गतव्यमित्यादिशति भगवतीनिदेशवर्तिनोऽमात्यदारा.।
(मालती ६)

११—यथेतोमुखागतैरपि महान् कलकल श्रुतोऽस्माभिस्तथा
तर्कयामि। अन्यदपि पारक्य बलमुपगतमिति। (मालती० ८)

१२—क्रोध प्रभो सहर सहरेति यावद्गिर खे मरुता चरन्ति,
तावत्स वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेष मदन चकार॥
(कुमार ३।७२)

१३—यथैव श्लाघ्यते गगा पदेन परमेष्ठिन।
प्रभवेण द्वितीयेन तथैवोच्छ्रितरसा त्वया॥ (कुमार ६।७०)

१४—अर्थेन तु विहीनस्य पुरुषस्याल्पमेधस।
क्रिया सर्वा विनश्यंति ग्रीष्मे कुसरितो यथा॥ (हितोप०)

१५—यावत् कुरुते जंतुः सम्बधान्मनसः प्रियान् ।
तावंतोऽस्य निखन्यन्ते हृदये शोकशंकवः ।। (हितोप०)

१६—स तावदभिषेकांते स्नातकेभ्यो ददौ वसु ।
यावतैषां समाप्येरन् यज्ञाः पर्याप्तदक्षिणाः ।। (रघु०१७ । १७)

## अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—यावत्तत्र भवान्वयस्यः कार्यमनादुत्तिष्ठति तावदस्मिन्विरलजनसम्पाते विमानोत्सङ्गपरिसरे स्थास्यामि (विक्रमो० २) ।

२—नदेवं प्रायेऽतिकुटिलकष्टचेष्टासहस्रदारुणे राज्यतन्त्रेऽस्मिन् महामोहान्धकारकारिणि च यौवने कुमार तथा प्रयतेथा यथा नोपहस्यसे जनैर्नोपालभ्यसे सुहृद्भिर्नाक्षिप्यसे विषयैर्न कृष्यसे रागेण नापह्रियसे सुखेन (काद० ) ।

३—यथा यथा चलितजलयन्त्रविगलिताभिरम्बुधाराभिराहन्यते मा तथा तथा वैद्युतानल सहोदर इव स्फुरति मदनपावकः । (काद०) ।

४—चन्द्रापीड प्रातरेव किंवदन्तीं शुश्राव यथा किल दशपुरीं यावत् परागतः स्कन्धावार इति (काद०) ।

५—वत्स यावदयं संसारस्तावत्प्रसिद्धैवेयं लोकयात्रा यत्पुत्रैः पितरो लोकद्वयेऽप्यनुवर्तनीया इति । (वेणी० ३) ।

६—अपि दृष्टवानसि मम प्रियां वने कथयामि ते तदुपलक्षणं शृणु ।
पृथुयौवना सहचरी यथैव ते सुभग तथैव खलु मापि वीक्षते ।। (विक्रमो० ४)

७—वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जडे
न तु खलु तयोर्ज्ञाने शक्तिं करोत्यपहन्ति वा ।
भवति च पुनर्भूयान् भेदः फलं प्रति तद्यथा
प्रभवति शुचिर्बिम्बोद्ग्राहे मणिर्न मृदां चयः ।। (उत्तर०)

८—यथा कालकृतोद्योगात्कृषिः फलवती भवेत् ।
तद्वन्नीतिरियं देव चिरात्फलति न क्षणात् ।। (हितोप०)

९—काडीकोशिथमं यथा जातमानित्थता ।

धात्रीव जननी पश्चात्तथा शोकस्य क क्रम ॥ (नागानन्द,१)

१०—यथा काष्ठ च काष्ठ च समेयाता महोदधौ ।

समेत्य च व्यपेयाता तद्वद्भूतसमागम ॥ हितोप०)

११—उभयोर्न तथा लोक• प्रावाण्येन विसिष्मिये ।

नृपते प्रविदानेषु वीतस्पृहतया यथा ॥ (रघु १५ ६८)

१२—यावत्स्वस्थमिद कलेवरगृह यावच्च दूरे जरा

यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुष ।

आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्य• प्रयत्नो महान्

प्रोद्दीप्ते भवने तु कपखनन प्रत्युद्यम कीदृश ॥ (भर्तृहरि० ३ । ८८)

१३—यथा प्रदीप्त ज्वलन पतगा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगा ।

तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगा• ।(भगवद्गीता ११।२९)

## सस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—अपने मित्रो के परामर्श से मेरे द्वारा उसके नाश के लिए सैकड़ा उपाय सोचे गए हैं, वे निम्नलिखित हैं ।

२—मै समझता हूँ कि आपने पहिले ही मे सुन रक्खा है कि स्वर्ग मे अप्सरा नाम की वारागनाओ का एक वर्ग रहता है।

३—शूरता मे तो वह भीम के समान है, पर हृदय की दुष्टता मे वह निर्दय से निर्दय राक्षस को भी मात करता है ।

४—रावण ने अपनी तपस्या द्वारा शकर जी को ऐसा प्रसन्न कर लिया कि उन्होने उसे कई वरदान दिये।

५—यह राजा अपने देश के ऊपर ऐसी अच्छी तरह शासन करता है कि इसकी असख्य प्रजाओ मे से कोई भी इसके प्रति श्रद्धाहीन नही है ।

६—चूँकि युद्ध की सारी तैयारियाँ पूरी हो चुकी हैं, इसलिए शत्रु के

साथ सन्धि करना मै उचित नहीं समझता।

७—मै जितना ही अधिक इस ससार के बारे मे सोचता हूँ उतना ही मेरा मन इससे विरक्त होता जाता है।

८—ज्योंही वह अपने मकान मे घुसा त्योंही उसकी स्त्री यह चिल्लाती हुई उसके पास झपट कर आई कि—एक साँप ने मेरे बच्चे को काट खाया है।

९—मै आशा करता हूँ कि आप यहाँ तब तक ठहरे रहेंगे जब तक गोविन्द अपनी तीर्थयात्रा से लौट नही आवेगे।

१०—जब तक मुझ मे जरा भी दम है (साँस है) तब तक मै अपने प्राण को सकट मे डालकर भी अपने देश को बचाऊँगा, ताकि अपमान से दूषित (मलिन) नाम छोडकर मै न मरूँ।

११—उसने इक्कीस दिन डाक्टर की दवा खाई, पर कुछ भी लाभकर परिवर्तन न पाकर उसने वह दवा लेना बन्द कर दिया।

१२—अध्यापक ने बच्चे को छडी से इतनी कडी मार मारी कि वह बेहोश होकर पृथ्वी पर गिर पडा।

१३—दार्शनिक लोग जितना ही अधिक ईश्वर के बारे मे सोचते हैं उतना ही कम उसे जान पाते हैं।

१४—वह अपने आचरण की शुचिता के कारण उतना ही विख्यात है जितना कि अपने गुणों के कारण, और परोपकार करने में उतना ही तत्पर है जितना कि अपनी इन्द्रियों का नियंत्रण करने में।

१५—क्या तुम नही जानते कि सभी मासाहारी पशुओं के पजे होते हैं (यावत्-तावत् का प्रयोग कीजिए)।

१६—जितना ही अधिक परिश्रम से पढोगे, तुम्हारी असफलता की उतनी ही कम "गुंजाइश" रहेगी और सुधार की सम्भावना उतनी ही अधिक होती चलेगी।

———

# अष्टाविंश पाठ

## वरं-न, वा, स्थाने, हन्त, हा, हि

२०१—"वरम्—न" के पीछे प्राय च, तु, अथवा पुन आता है। इसका अर्थ होता है—**अच्छा है . . .न कि, अच्छा है . . परन्तु नहीं।** वरम् उस उपवाक्य के साथ आता है जिसमें अधिक वाञ्छित वस्तु रहती है वह अधिक वाञ्छित वस्तु कर्ता कारक मे रक्खी जाती है, और न च, न तु अथवा न पुन उस उपवाक्य के साथ रक्खा जाता है जिसमें कम वाञ्छित वस्तु रक्खी जाती है (कम वाञ्छित वस्तु भी कर्ता-कारक मे रक्खी जाती है), जैसे, **वर कन्या जाता न चाविद्वांस्तनयः** (पञ्चतत्र)—अच्छा है कि कन्या पैदा होवे, परन्तु मूर्ख पुत्र नहीं। **वरं प्राणत्यागो न पुनरधमानामुपगम** (हितोप)—प्राण छोड देना अच्छा है, परन्तु नीचों का सम्पर्क (सान्निध्य) अच्छा नही।

(क) कभी कभी "न" अकेला हो आता है च, तु अथवा पुन के साथ जुडा हुआ नही आता, जैसे, **याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा** (मेघ ५)—श्रेष्ठ पुरुष से की हुई याचना चाहे असफल भी हो जाय तो भी अच्छा है, परन्तु अधम पुरुष से की हुई याचना चाहे सफल भी हो जाय तो भी अच्छा नही। **वर भ्रान्त वनचरैः सह, न मूर्खजन-सपर्क** (भर्तृहरि नीति. १४)—जङ्गली जानवरों (अथवा मनुष्यो) के साथ भ्रमण करना अच्छा है परन्तु मूर्खो के साथ सम्पर्क रखना अच्छा नहीं।

२०२—**वा**[1] का अर्थ है "या" (सेक्शन २७२ देखिए), जैसे, राम

---

१—वा समुच्चय एवार्थ उपमानविकल्पयो। (है.)

या गोविन्द—रामो गोविन्दो वा अथवा रामो वा गोविन्दो वा। इन उदाहरणो से स्पष्ट है कि जैसे "च" या तो प्रत्येक शब्द या प्रत्येक वक्तव्य के साथ जोडा जाता है या केवल शब्दो अथवा वक्तव्यो के अन्त में जोडा जाता है, उसी प्रकार "वा" भी या तो प्रत्येक शब्द या प्रत्येक वक्तव्य के साथ जोडा जाता है या शब्दो अथवा वक्तव्यों के केवल अन्त में।

(क) वा के निम्नलिखित अर्थ भी होते है—

(१) और, भी, जैसे, पत्रलेखे, कथय महाश्वेताया कादम्बर्याश्च कुशल कुशली वा सकल परिजन इति (कादम्बरी)—पत्रलेखा, मुझसे बताओ कि महाश्वेता और कादम्बरी सकुशल तो हैं, और यह भी बताओ कि सारा भृत्यवर्ग सकुशल तो है।

(२) वा शब्द समान और इव का भी अर्थ देता है, जैसे, जाता मन्ये तुहिनमथिता पद्मिनी वान्यरूपाम् (मेघ० ८६)—मैं उसे पाले से मारी हुई कमलिनी के समान विकृत आकार वाली (परिवर्तित आकार वाली) समझता हूँ।

(३) विकल्प से, प्राय. व्याकरण-सम्बन्धी नियमों म, जैसे, दोषो णौ। वा चित्तविरागे (पाणिनि० ६।४।९०—९१।)-प्रेरणार्थक मे दुष् का उ दीर्घ कर दिया जाता है, परन्तु जब इसका अर्थ होता है 'मस्तिष्क को उलट पुलट देना' तब विकल्प करके उ को दीर्घ किया जाता है।

(ख) इव या नाम क समान सम्भवत के अर्थ में वा शब्द प्रश्नवाचक सर्वनामो के साथ और प्रश्नवाचकसर्वनाम-निष्पन्न शब्दों के साथ जोड़ दिया जाता है, जैसे, मृत को वा न जायते (पचतत्र)—सम्भवत कौन सा मरा हुआ व्यक्ति फिर से पैदा नहीं होता। कस्य वान्यस्य वचसि मया स्थातव्यम् (काद०)—दूसरे किस व्यक्ति के

कहने के अनुसार मे व्यवहार करूँ । कथं वा गम्यते (उत्तर० ३)—सचमुच तुम कैसे जा सकते हो या जाओगे ।

३०३—वा वा का अर्थ होता है 'या तो या' जैसे, उभे एव क्षमे वोढुमुभयोर्बीजमाहितम् । सा वा शम्भोस्तदीया वा मूर्तिर्जलमयी मम (कुमार० २ । ६०)—हम दोनों के वीर्य को केवल दो ही धारण करने मे समर्थ हैं, या तो शम्भु जी के वीर्य को पार्वती, या मेरे वीर्य को उनकी जलमयी मूर्ति ।

तत्र कविपरिश्रमानुरोधाद् वा उत्तानकथावस्तुगौरवाद् वा नवनाटकदर्शनकुतूहलाद् वा भवद्भिरवधानं दीयमानं प्रार्थये (वेणी० १)—मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप लोग इधर ध्यान दें, चाहे कवि के परिश्रम का आदर करके, चाहे उच्चतम कथावस्तु के महत्त्व का विचार करके, चाहे नए नाटक के अभिनय को देखने की इच्छा से ।

३०४—न्यायत, औचित्यत, यह सर्वथा उचित ही है कि—इन अर्थों मे स्थाने शब्द का प्रयोग क्रियाविशेषण अव्यय के तौर पर होता है, जैसे, स्थाने प्राणा कामिना दूत्यधीना (मेघ० ३)—यह उचित ही कहा गया है कि प्रेमियों (कामियो) का प्राण दूतियों के अधीन होता है । स्थाने तपो दुश्चरमेतदर्थमपर्णया पेलवयापि तप्तम् (कुमार० ७ । ६५)—यह सर्वथा उचित ही है कि कोमलाङ्गी होते हुए भी अपर्णा ने उन (शिवजी) के लिए बहुत ही कठिन (घोर) तपस्या की ।

(क) अस्थाने का अर्थ है "अनुपयुक्त" "अनवसर", जैसे, अस्थाने द्वयोरपि प्रयत्न (मुद्रा० २)—दोनों का प्रयत्न अनवसर अथवा अनुपयुक्त था ।

३०५—[1]"हन्त" निम्नलिखित अर्थों में प्रयुक्त होता है—

(१) हर्ष, आश्चर्य, जैसा कि हिन्दी के 'अरे' और 'ओह' शब्दों

---

१—हर्षे हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविषादयो । (अ०)

से प्रकट किया जाता है, जैसे, हत प्रवृत्तं सगीतकम् (मालविका०१) —अरे, सगीत आरम्भ हो गया।

(२) अनुकम्पा, खेद, जैसे, पुत्रक, हत ते धानाका (गणरत्न महोदधि)—ऐ पुत्र, खेद (शोक) का विषय है कि तुम्हारे पास केवल धानाक हैं।

(३) विषाद सूचक ओह, या हाय, जैसे, हत, धिङ् मामधन्यम् (उत्तर०१)—हाय, मुझ अभागे को धिक्कार है।

(४) यह कभी कभी वाक्यारम्भ करने के लिये प्रयुक्त होता है; जैसे, हत ते कथयिष्यामि (रामायण १।४८।१४)—अच्छा, अब मै आप से कहूँगा।

३०६—[1]"हा" शोक, विषाद, खेद, व्यथा, वेदना का अर्थ सूचित करता है, जैसे, हा प्रिये जानकि (उत्तर०३)—हाय प्यारी जानकी। हा हा देवि स्फुटति हृदयम् (उत्तर०३)—हाय, देवी मेरा हृदय विदीर्ण होता है।

कभी कभी यह आश्चर्य या विस्मय भी सूचित करने के लिये प्रयोग मे लाया जाता है, जैसे, हा कथ महाराजदशरथस्य धर्मदाराः प्रियसखी मे कौसल्या—(उत्तर०४)—ओहो, यह तो वस्तुत महाराज दशरथ की धर्मपत्नी मेरी प्रिय सखी कौसल्या हैं।

द्वितीया के साथ 'हा' का प्रयोग समझने के लिए सेक्शन ३४ देखिए।

**विशेष**—हा के प्रयोग जुगुप्सा (धिक्कारना, डाटना) के अर्थ में बहुत कम मिलते हैं।

३०७—[2]"हि"कदापि वाक्य के प्रारम्भ मे नही प्रयुक्त होता है। यह निम्नलिखित अर्थों में प्रयुक्त होता है —

---

१—हा इति विस्मयविषादशुग् जुगुप्सार्तिषु (ग० म०)

२—हि पाद पूरणे हेतौ विशेषेप्यवधारणे (वि०)

(१) क्योंकि, बहुत ही शुद्ध और सुदृढ तार्किक युक्ति सूचित करता है, जैसे. अग्निरिहास्ति धूमो हि दृश्यते (गणरत्न महोदधि) —यहाँ आग है क्योंकि धुआँ दिखाई पड़ता है । अपि महर्षिणा त्वं गृहायानुमत्त । कालो ह्यय सक्रमितुं द्वितीयमाश्रमं (रघु०५।१०)—क्या तुम गृहस्थ बनने के लिए महर्षि से स्वीकृति पा चुके हो, क्योंकि यह द्वितीय आश्रम मे प्रवेश करने का समय है।

विशेष—किसी प्रयोग विशेष के सबन्ध में जो साधारण वचन या कथन कहे जाते हैं उनमें "हि" का यह अर्थ छिपा रहता है।

(२) वस्तुत , सत्यत , जैसे, देव,प्रयोगप्रधानं हि नाट्यशास्त्रं किमत्र वाग्व्यवहारेण ( मालविका० १ )—महाराज, नाट्यशास्त्र में वस्तुत प्रयोग ही प्रधान वस्तु होता है, इस विषय में मौखिक वादविवाद से क्या लाभ ? न हि कमलिनी दृष्ट्वा ग्राहमवेक्षते मतंगजः (मालविका० ३)—वस्तुत कमलिनी को देखकर हाथी ग्राहकी परवाह नहीं करता ।

(३) इसका प्राय 'स्फुटार्थ' 'उदाहरणार्थ' अर्थ हुआ करता है। जब तथाच के अर्थ में कोई बात किसी पूर्वोल्लिखित वचन के उदाहरण रूप में कही जाती है उस समय भी 'हि' का प्रयोग होता है, जैसे, प्रजानामिव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्। सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रस रविः (रघु.१।१८)—वह केवल प्रजाओं का हित करने के लिये उनसे कर लेता था, उदाहरणार्थ सूर्यदेव जल को हजारगुना बढ़ाकर लौटालने के लिए ही जल को पीते हैं ।

(४) केवल, अकेला। किसी बात पर बहुत बल देकर कहने में हि शब्द का प्रयोग होता है, जैसे, मूढो हि मदनेनायास्यते (कादं.)—केवल मूर्ख पुरुष कामदेव से सताया जाता है ।

## अभ्यास

१—शकुंतला—सखि कस्य वान्यस्य कथयिष्यामि । किंत्वा-यासयित्रीदानीं वा भविष्यामि ।

२—उभे-अत एव खलु निर्बन्ध । स्निग्धजनसंविभक्त हि दुःख सह्यवेदन भवति । (शाकु० ३)

३—हन्त भो. शकुंतला पतिकुल विसृज्य लब्धमिदानीं स्वास्थ्यम् । (शाकु० ४)

४—स्थाने खलु प्रत्यादेशविमानिताप्यस्य कृते शकुंतला क्लाम्यति । (शाकु० ६)

५—अविनीत किं नोऽपत्यनिर्विशेषाणि सत्त्वानि विप्रकरोषि । हंत वर्धते संरभ । स्थाने खलु ऋषिजनेन सर्वदमन इति कृतना-मधेयोसि । (शाकु० ७)

६—स्थाने खलु नारायणमृषि विलोभयत्यस्तदूरुसंभवामिमा दृष्ट्वा व्रीडिता सर्वा अप्सरस इति । (विक्रमो०१)

७—भवादृशा एव भवन्ति भाजनान्युपदेशानाम् । अपगतमले हि मनसि स्फटिकमणाविव रजनिकरगभस्तयो विशन्ति सुखमुप-देशगुणा । (काद- )

८—तदेषा भवत कांता त्यजैना वा गृहाण वा ।
उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी ॥ (शाकु० ५)

९—अनंतरत्नप्रभवस्य यस्य हिम न सौभाग्यविलोपि जातम् ।
एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतींदो किरणेष्विवांक (कुमार १।३)

१०—बहूनामप्यसाराणा समवायो हि दुर्जय. ॥
तृणैरावेष्ट्यते रज्जुर्यया नागोपि बध्यते (पंचतंत्र १ । १४ )

११—कुसुमान्यपि गात्रसंगमात्प्रभवन्त्यायुरपोहितुं यदि।
न भविष्यति हन्त साधनं किमिवान्यत्प्रहरिष्यतो विधेः॥
(रघु० ८।४४)

१२—सेवां लाघवकारिणीं कृतधियः स्थाने श्ववृत्तिं विदुः (मुद्रा० ३)।

१३—वरं मौनं कार्यं न च वचनमुक्तं यदनृतं
वरं क्लैब्यं पुंसां न च परकलत्राभिगमनम्।
वरं प्राणत्यागो न च पिशुनवाक्येष्वभिरुचि-
र्वरं भिक्षाशित्वं न च परधनास्वादनसुखम्॥
(हितोप०)

## अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—वरमावाभ्यां कतिपयदिवसानन्योन्यदर्शनकृताः क्लेशा अनुभूता न पुनरस्य वैशम्पायनानवलोकनदुःखदीनं दिने दिने मुखमीक्षितम् (कादं०)

२—असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः।
सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः॥ (शकु० १)

३—सुतनु हृदयात्प्रत्यादेशव्यलीकमपैतु ते
किमपि मनसः संमोहो मे तदा बलवानभूत्।
प्रबलतमसामेवंप्रायाः शुभेषु हि वृत्तयः
स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहिशङ्कया॥ (शकु० ७)

४—राजा—एवमादिभिरनुपक्रम्योऽयमातङ्कः। पश्य
कुसुमशयनं न प्रत्यग्रं न च चन्द्रमरीचयो
न च मलयजं सर्वाङ्गीणं न वा मणियष्टयः।
मनसिजरुजं सा वा दिव्या ममालमपोहितुं
रहसि लघयेदारब्धा वा तदाश्रयिणी कथा॥ (विक्रमो० ३)

५—स्थाने त्वा स्थावरात्मान विष्णुमाहुस्तथाहि ते ।
चराचराणा भूताना कुक्षिराधारता गत ॥ (कुमार ६ । ६७)

६—आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा
मत्सादृश्य विरहतनु वा भावगम्य लिखति ।
पृच्छती वा मधुरवचना सारिका पजरस्था
कच्चिद्भर्तु स्मरसि रसिके त्व हि तस्य प्रियेति ॥ (मेघ० ८८)

७—अरुधती—हा वत्से
शिशुर्वा शिष्या वा यदसि मम तत्तिष्ठतु तथा ।
विशुद्धेरुत्कर्षस्त्वयि तु मम भक्तिं द्रढयति ॥

८—शिशुत्व स्त्रैण वा भवतु ननु वद्यासि जगतो
गुणा. पूजास्थान गुणिषु न च लिंगं न च वय ॥ (उत्तर ०४)

९—स्थाने भवानेकनराधिप सन्नकिंचनत्व मखज बिभर्ति ।
पर्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशो कलाक्षय श्लाघ्यतरो हि वृद्धे ॥ (रघु० ५। १६

१०—प्रेष्यभावेन नामेयं देवीशब्दक्षमा सती ।
स्नानीयवस्त्रक्रियया पत्रोर्णं वोपयुज्यते ॥ (मालविका०५)

११—नृपते प्रतिषिद्धमेव तत्कृतवान् पक्तिरथो विलंघ्य यत् ।
अपथे पदमर्पयति हि श्रुतवतोपि रजोनिमीलिताः ॥ (रघु९ । ७४)

१२—तमवेक्ष्य रुरोद सा भृश स्तनसबाधमुरो जघान च ।
स्वजनस्य हि दु.खमग्रतो विवृत्तद्वारमिवोपजायते ॥ (कुमार० ४ । २६)

१३—व्यतिषजति पदार्थानांतरः कोपि हेतु- र्न खलु बहिरुपाधीन्प्रीतयः सश्रयते
विकसति हि पतंगस्योदये पुण्डरीक द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चद्रकांतः ॥
(मालती०१)

१४—अर्हस्येन (दावाग्निं) शमयितुमलं वारिधारासहस्र-
　　रापन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम्। (मेघ०५४)

१५—स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
　　रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः॥ (भगवद्गीता ११। ३६)

१६—राक्षस—अहो सुश्लिष्टोऽभूदयं प्रयोगः।
　　लेखोयं न ममेति नोत्तरमिदं मुद्रा मदीया यतः
　　　　सौहार्दं शकटेन खण्डितमिति श्रद्धेयमेतत्कथम्।
　　मौर्ये भूषणविक्रयं नरपतौ को नाम संभावयेत्
　　　　तस्मात्सप्रतिपत्तिरेव हि वरं न ग्राम्यमत्रोत्तरम्॥ (मुद्रा०५)

१७—स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवंविधैव।
　　अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं शमयति परितापं छायया संश्रितानाम्॥

—उचितः प्रणयो वरं विहन्तुं बहवः खण्डनहेतवो हि दृष्टाः।
　　उपचारविधिर्मनस्विनीनां न तु पूर्वाभ्यधिकोपि भावशून्यः॥ (मालविका०३)

## संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—एक दरवाजे से दूसरे दरवाजे पर भीख माँग कर जीविका निर्वाह करना अभिमानी धनाढ्यों की सदैव खुशामद करने की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छा है।

२—या तो वह या उसके दोनों भाई इसे करने में समर्थ हैं परन्तु अन्य कोई भी व्यक्ति नहीं।

३—यह उचित ही है कि द्रव्य को मितव्ययता-पूर्वक खर्च करने के

१४—सैकड़ों राजाओं में से उसने केवल इस राजा को पति चुना, क्योंकि मन अपने पूर्व सम्बन्धों को जानता रहता है।

१५—सम्भवतः दुष्टों के फन्दे मे फँस कर कौन सा पुरुष सरलता से बच पाया है। और कौन सा कमजोर आदमी मजबूतों के साथ संघर्ष करने के प्रयत्न मे असफल नही हुआ है।

———

# ऊनत्रिंश पाठ

## आत्मनेपद और परस्मैपद

सूचना—इस पाठ मे तथा तीसवे पाठ मे जिन उद्धरणों के सामने कुछ नहीं लिखा गया है वे सिद्धान्त कौमुदी के हैं।

३०८—सस्कृत में दो पद होते है—आत्मनेपद और परस्मैपद। आत्मनेपद यह सूचित करता है कि क्रिया का फल कर्ता के लिए है (कर्तृगामि फलम्), जैसे, कुरुते का अर्थ हुआ "अपने लिए करता है"। परस्मैपद यह सूचित करता है कि क्रिया का फल दूसरे के लिए है, जैसे, गच्छति का अर्थ हुआ "दूसरे के लिए जाता है"। पर यह भेद कार्यरूप मे नही माना जाता। इन शब्दों के मौलिक अर्थ यही हैं जो कि अभी बताए गए हैं, पर सर्वत्र इनका पालन करना असम्भव हो जाता है। सस्कृत लेखक दोनो पदों को बिना किसी भी भेद भाव के प्रयोग में लाते हैं, जैसे निदेशमिदानीं श्रोतुमिच्छामि (मालविका० १)—अब मैं सन्देश सुनना चाहता हूँ। उत्कण्ठासाधारणं परितोषमनुभवामि (शकु० ४)।—यावद् यते साधयितुं त्वदर्थम् (रघु० ५। १५)

यदि यह कहा जाय कि यह भेद उभयपदी धातुओं के विषय में ही माना जाता है, तो यह बात भी प्रयोगों तथा उदाहरणों से सिद्ध नहीं होती, जैसे, **राजा स्वसूनोश्चन्द्रापीड इति नाम चकार। शुकनासोऽपि विप्रजनोचितं वैशंपायन इति नाम चक्रे** (काद०)। यहाँ पर दोनों पद एक ही अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं।

३८९—कुछ धातुओं के रूप केवल एक ही पद में चलते हैं, जैसे, **नम्, भ्रम्, रुच्, भाष्**। कुछ धातुओं के रूप दोनों पदों में चलते हैं, जैसे **कृ, चि, चुर्, दुह्**। कुछ परस्मैपदी धातुएँ उपसर्गयुक्त होने पर सर्वथा आत्मनेपदी हो जाती हैं, तथा कुछ आत्मनेपदी धातुएँ उपसर्गयुक्त होने पर अपना पद छोड़कर सर्वथा परस्मैपदी हो जाती हैं अथवा वे किसी विशेष अर्थ में प्रयोग में आती हैं, जैसे, गम् धातु परस्मैपदी है, परन्तु सम् उपसर्ग पूर्वक गम् धातु आत्मनेपदी हो जाता है। शास् (शासन करना) परस्मैपदी धातु है, परन्तु आ उपसर्ग पूर्वक शास् धातु (आशीर्वाद देना) आत्मनेपदी हो जाती है। इस प्रकार की कुछ धातुओं का उल्लेख इस पाठ में तथा अगले पाठ में होगा।

## भ्वादिगणी धातुएँ

३९०[1]—उपसर्ग रहित रहने पर क्रम् धातु उभयपदी होती है। परन्तु जब यह आत्मनेपद में रहती है तब यह **नैरन्तर्य** अथवा **बाधाभाव**, **शक्ति**, विकास या उन्नति का अर्थ सूचित करती है, जैसे, **क्रममाणोऽरिसंसदि** (भट्टि काव्य ८। १२) -शत्रु की सभा में निर्बाध घूमता हुआ। **अध्ययनाय क्रमते**-अध्ययन के लिए स्फूर्ति दिखलाता है। **क्रमतेऽस्मिन् शास्त्राणि**—इसमें शास्त्र विकसित होते हैं।

---

१—वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः। उपपराभ्याम्। आङ० उद्गमने। वे० पादविहरणे। प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम्। अनुपसर्गाद् वा (१। ३। ३८-४३)

(क) उप तथा परा पूर्वक क्रम् धातु आत्मनेपदी होती है और वही उपरिलिखित अर्थ सूचित करती है, जैसे, इत्युक्त्वा खे पराक्रस्त (भट्टि ८। २२)--ऐसा कह कर उसने आकाश में अपनी शक्ति (पराक्रम) दिखाई। परीक्षितुमुपाक्रस्त राक्षसी तस्य विक्रमम् (भट्टि० ८ २१)—उस राक्षसी ने उसके शौर्य की परीक्षा लेने की धृष्टता की।

(ख) आ पूर्वक क्रम् धातु आत्मनेपदी होती है और किसी नक्षत्र का उदय होना सूचित करती है, जैसे, आक्रमते सूर्यः (महाभाष्य —सूर्य उदित होता है। दिवमाक्रममाणेव (भट्टि० ८। २३)। परन्तु आक्रामति धूमो हर्म्यतलात्—महल के ऊपर से धुआँ निकलता है। अथवा आक्रामति धूमो हर्म्यतलम् (महाभाष्य)—धुआँ महल के ऊपरी भाग को ढक लेता है।

(ग) चलने अथवा कदम रखने के अर्थ में वि उपसर्ग पूर्वक क्रम् धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, विष्णुस्त्रेधा विचक्रमे—विष्णु ने तीन कदम लिए। वाजी विक्रमते। परन्तु विक्रामति सन्धि—सन्धि फट रही है (जोड़ टूट रहा है)।

(घ) आरम्भ करने के अर्थ मे प्र तथा उप पूर्वक क्रम् धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, वक्तुं मिथः प्राक्रमतैवमेनम्। (कुमार० ३। २)—इस प्रकार एकान्त मे बातचीत करने लगा। परन्तु प्रक्रामति—जाता है, उपक्रामति —आता है।

२११—[1]क्रीड् धातु परस्मैपदी है, पर अनु, सम्, परि तथा आ पूर्वक क्रीड् धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे अनु-परि-आ-क्रीडते माणवकः, सक्रीडंते मणिभिः यत्र कन्या (मेघ० ७)—जहाँ कन्याएँ मणियों से खेलती हैं। परन्तु माणवकमनुक्रीडति (महाभाष्य)—माणवक के साथ खेलता है।

---

१—क्रीडोऽनुसम्परिभ्यश्च (१। ३। २१)

(क) शोर करने के अर्थ में सम् पूर्वक क्रीड् धातु परस्मैपदी होती है, जैसे, सक्रीडन्ति शकटानि (महाभाष्य)—छकड़े आवाज करते हैं (शोर करते हैं)।

३११[1]—'मिलजाने', 'जुड़जाने,' के अर्थ में सम् पूर्वक गम् धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, अक्षधूर्तैः समगंसि (दशकुमार २। २)।—मैं जुआड़ियों में मिल गया। इसी प्रकार सम् पूर्वक ऋ या ऋच्छ् धातु आत्मनेपदी हो जाती है, जैसे, समारन्त ममाभीष्टाः (भट्टि० ८। १६)।

३१२[2] - उद् पूर्वक चर् (चलना) धातु जब सकर्मक के तौर पर प्रयुक्त होती है तो आत्मनेपदी होती है, जैसे, पानशौंडाः पथः क्षीबा वृन्दैरुदचरन्त च (भट्टि ८।३१)—नशे में मतवाले पियक्कड़ झुण्ड के झुण्ड मार्ग से भटक गए। धर्ममुच्चरते—धर्म (कर्तव्य) का उल्लंघन करता है। परन्तु बाष्पमुच्चरति—भाप ऊपर उठती है।

(क) तृतीयान्त वाहन के योग में सम् पूर्वक चर् धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, यानैः समचरन्तान्ये (भट्टि० ८।३२)—अन्य लोग रथों से गए। क्वचित् पथा सञ्चरते सुराणाम् (रघु० १३।१९)—कभी कभी देवताओं के मार्ग से होकर जाता है।

३१३[3]—वि तथा परा पूर्वक जि धातु जीतना, विजयी होना, हरादेना - इन अर्थों में आत्मनेपदी होती है, जैसे, चक्षुर्मेचकमम्बुजं विजयते (विद्धशालभंजिका)—उसकी (नीली नीली) आँखें नील कमल को जीत लेती हैं। विजयतां देव (मालविका० १)—महाराज की जय हो (महाराज विजयी हों); खं पराजयमानासौ (भट्टि० ८।६) - आकाश को हराते हुए।

---

१—समो गमृच्छिभ्याम् (१। ३। २९)

२—उदश्चरः सकर्मकात्। समस्तृतीयायुक्तात् (१।३।५३—५४)

३—विपराभ्यां जेः (१।३।१९)

३१५[1]—जब वि अथवा उद् पूर्वक तप् धातु अकर्मक के तौर पर प्रयुक्त होती है, अथवा जब शरीर का कोई अवयव उसका कर्म होता है तो वह आत्मनेपदी होती है, जैसे, रविर्वितपतेत्यर्थम् (भट्टि० ८।१४)—सूर्य बहुत जोरों से तप रहा है। तीव्रमुत्तपमानोयमशक्य सोढुमातप. (भट्टि० ८।१५)—यह अत्यन्त ही झुलसाने वाला घाम असह्य है। उत्तपते वितपते पाणी (महाभाष्य)—वह अपने हाथों को सेंकता है। परन्तु उत्तपति सुवर्णं सुवर्णकार (महाभाष्य)—सोनार सोने को तपाता है। इसी प्रकार चैत्रो मैत्रस्य पाणिमुत्तपति।

विशेष—तप् धातु स्वत· अकर्मक है, जैसे, तमस्तपति घर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति (शकु० ५)—सूर्य के चमकते रहते भला अन्धकार कैसे प्रकट होगा।

३१६— उद्, उप, वि, पूवक नी धातु अथवा इन उपसर्गों से रहित नी धातु निम्नलिखित अर्थों मे आत्मनेपदी होती है—

(१) उपदेश देना अथवा आदेश देना, जैसे शास्त्रे नयते--शास्त्र का उपदेश देता है।

(२) उठाना, जैसे, दण्डमुन्नयते—डण्डा उठाता है।

(३) धार्मिक सस्कार की दीक्षा देना, जैसे, माणवकमुपनयते—माणवक का यज्ञोपवीत सस्कार करता है।

(४) ज्ञान, अन्वीक्षण, जैसे, तत्त्व नयते—सत्य की जाँच पड़ताल करता है।

(५) मजदूरी पर लगाना या नियुक्त करना, किराए पर लगाना, जैसे, कर्मकरानुपनयते—मजदूरों को किराए पर रखता है।

---

१—उद्विभ्यां तप (१।३।२७) स्वांगकर्मकाच्चेति वक्तव्यम्। (वार्तिक)

(६) ऋण या कर देना, जैसे, कर विनयते—राजकर देता है।

(७) व्यय करना, काम में लगाना, जैसे, शतं विनयते—सौ रुपया ( दान ) खर्च करता है।

(क) जब शरीरावयव के अतिरिक्त अन्य कोई चीज कर्म हो तो वि पूर्वक नी धातु आत्मनेपदी होता है, जैसे विनेष्ये क्रोधमथवा (भट्टि० ८।२२ )—अथवा मैं अपना क्रोध दूर कर दूंगा। परन्तु गंडं विनयति—अपना गाल फेर लेता है।

विशेष—शिक्षा देना, पालतू बनाना—इन अर्थों में वि+नी परस्मैपदी होती है, जैसे वन्यान् विनेष्यन्निव दुष्टसत्वान् (रघु० २।८)—मानो जंगल के दुष्ट पशुओं को पालतू बनाने की इच्छा करते हुए।

३१४—आ पूर्वक यम् धातु जब अकर्मक के तौर पर प्रयुक्त होती है अथवा जब शरीरावयव या शास्त्रातिरिक्त (ग्रन्थातिरिक्त) कोई वस्तु इसका कर्म हो तो यह आत्मनेपदी होती है, जैसे, आयच्छते—फैलाता है, पाणिमायच्छते—अपना हाथ फैलाता है, वस्त्रमायच्छते—कपड़ा फैलाता है।

(क) जब सम्+उत् पूर्वक यम् धातु का कर्म शास्त्र नहीं होता बल्कि शास्त्रातिरिक्त अथवा साहित्यातिरिक्त कोई दूसरी वस्तु कर्म हो तो यह आत्मनेपदी होती है, जैसे, व्रीहीन् संयच्छते—चावल इकट्ठा करता है, भारमुद्यच्छते—बोझा उठाता है। परन्तु उद्यच्छति वेदम्—वेद पढ़ने के लिये घोर परिश्रम करता है।

(ख)[1] उप पूर्वक यम् धातु विवाहार्थ अथवा स्वीकारार्थ में आत्मनेपदी होती है, जैसे, सीतां हित्वा दशमुखरिपुर्नोपयेमे

१—उपाद् यम स्वीकरणे (१।३।५६)।

यदन्याम् (रघु० १४।७१)—सीता को त्याग कर दशमुख के शत्रु (श्री रामजी) ने जो दूसरी स्त्री नहीं ब्याही।

३१८[1]—रम् (रमण करना, विहार करना साधारणत: आत्मनेपदी है, परन्तु वि, आ, परि उपसर्ग पूर्वक रम् धातु परस्मैपदी हो जाती है, जैसे, विरम विरम वह्ने (रत्न ५)—ऐ अग्निदेव, रुको, रुको। आरमति उद्याने—बगीचे में आराम करता है। क्षणं पर्यरमत्तस्य दर्शनात् (भट्टि ८।५३)—उसको देखकर क्षण भर के लिए प्रसन्न हो गया।

(क) उप पूर्वक अकर्मक रम् धातु उभयपदी होती है, जैसे उपारंसीच्च सम्पश्यन् वानरस्त चिकीर्षितात् (भट्टि० ८।५४)—वानर जो कुछ करना चाहता था उसे देखकर उसने बन्द कर दिया। नात्र सीतेत्युपारंस्त (भट्टि ।५५)—सीता यहाँ नहीं है यह देखकर वह रुक गया।

३१९[2]—वद् धातु स्वतः ता निम्न लिखित अर्थों मे आत्मनेपदी है—

(१) किसी चीज मे मेधावित्व अथवा बुद्धिवैचक्षण्य दिखलाना, जैसे, शास्त्रे वदते,

(२) शान्त करना, पुचकारना, (इस अर्थ में प्राय उप पूर्वक रहता है), जैसे, भृत्यानुपवदते अपने नौकरों मे मेल मिलाप कर लेता है अर्थात् उन्हें शान्त कर देता है।

(३) ज्ञान; जैसे, शास्त्रे वदते—शास्त्रों को जानता है।

---

१—व्याङ्परिभ्यो रमः। विभाषाऽकर्मकात्। (१।३।८३-८५)।

२—भासनोपसम्भाषा ज्ञान-यत्न-विमत्युपमन्त्रणेषु वदः। व्यक्तवाचां समुच्चारणे। अनोरकर्मकात्। विभाषा विप्रलापे (१।३।४७—५०)।

(४) प्रयास, उद्योग, जैसे, क्षेत्रे वदते - खेत में खूब कड़ी मिहनत करता है।

(५) 'मतभेद', 'विवाद'(प्राय इस अर्थ में यह वि पूर्वक रहती है), जैसे परस्पर विवदमानाना शास्त्राणाम् (हितोप०)—आपस में वाद विवाद करने वाले शास्त्रों का।

(६) चापलूसी करना, प्रार्थना करना, जैसे, दातारमुपवदते—दाता की चाटुकारी करता है [यह न०२ के समान ही है]

(क) सम्प्र पूर्वक वद् धातु मनुष्यों के समान जोर से तथा स्पष्ट बोलने के अर्थ में आत्मनेपदी होती है, जैसे, सम्प्रवदन्ते ब्राह्मणाः—ब्राह्मण लोग बड़े जोरों से बोल रहे हैं। परन्तु वरतनु, सम्प्रवदन्ति कुक्कुटा (महाभाष्य)—ऐ सुन्दर शरीर वाली स्त्री, मुर्गे बाँग दे रहे हैं।

(ख) उपर्युक्त परिस्थिति में अनु पूर्वक वद् धातु अकर्मकदशा में आत्मनेपदी होती है, जैसे, अनुवदते कठ कलापस्य—कठ कलाप की नकल करता है। परन्तु उक्तमनुवदति—कहे हुए को फिर से कह देता है। अनुवदति वीणा—वीणा बोलती है।

(ग) वि+प्र पूर्वक वद् धातु "झगड़ा करने" के अर्थ में उभयपदी होती है जैसे, विप्रवदते वैद्या' अथवा विप्रवदति वैद्या —वैद्य लोग वाद विवाद करते हैं। ऐदू विप्रवदमानैस्ता संयुक्ता ब्रह्मराक्षसैः (भट्टि० ८। ३०)—झगड़ते हुए ब्रह्मराक्षसों से भरी हुई उस (स्थली) के पास गया।

(घ) धिक्कारने, अथवा डाटने के अर्थ में अप पूर्वक वद् धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, न्यायमपवदते, नृभ्योऽपवदमानस्य (भट्टि०४५)।

३२०[1]—अपना अभिप्राय प्रकाशन करने के अर्थ में, अथवा किसी को न्यायाधीश या पंच के तौर पर स्वीकार कर लेने के अर्थ

में स्था धातु स्वत आत्मनेपदी होती है, जैसे, गोपी कृष्णाय तिष्ठते—गोपी कृष्ण से अपने सारे मनोगत भावों को प्रकाशित कर देती है। सशय्य कर्णादिषु तिष्ठते य· (किरात० ३ । १४)—सशय आ पड़ने पर जो व्यक्ति कर्ण आदि को अपना पंच मान लेता है।

(क) सम्, अव, प्र और वि पूर्वक स्थाधातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, दारिद्र्यात् पुरुषस्य बान्धवजनो वाक्ये न संतिष्ठते (मृच्छकटिक १ —गरीबी के कारण बान्धव लोग (भी) मनुष्य के कहने में नहीं रहते। क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन् यदि जन्तु (रघु० ८ । ८७)।—यदि जीव क्षण भर के लिए भी साँस लेता है। हरिहरिप्रस्थमथ प्रतस्थे (शिशुपाल ३ । १)—तब हरि हरिप्रस्थ को चल दिए। इसी प्रकार, अत्रापरे प्रत्यवतिष्ठन्ते (शांकरभाष्य ४५), अग्नेर्ज्वलत विस्फुलिंगा विप्रतिष्ठेरन् (शांकर भाष्य ४५)।

(ख) केवल प्रतिज्ञा के अर्थ में आ पूर्वक स्था धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, जलं विषं वा तव कारणादास्थास्ये (महाभारत,—तेरे कारण मैं अवश्य जल अथवा विष का आश्रय लूँगा)।

३२१[2]—उठने के अर्थ में उत् पूर्वक स्थाधातु परस्मैपदी होती है, परन्तु आलंकारिक अर्थ में यह आत्मनेपदी हो जाता है, जैसे, उत्तिष्ठमानं मित्रार्थे कस्त्वां न बहु मन्यते (भट्टि० ८ । ११)—मित्र के लिए प्रयत्न करने वाले तुमको कौन नहीं मानता या पूजता। मुक्तावुत्तिष्ठते—मुक्ति के लिए उटता है (उच्चाकांक्षा रखता है)। (किरात ११ । १३ तथा शिशुपाल १४ । १७ देखिए)। परन्तु पीठादुत्तिष्ठति और ग्रामाच्छतमुत्तिष्ठति—गाँव में एक सौ मिलता है।

३२२[3]—धार्मिक विधि के अनुसार सेवा करने या देवता जैसे पूजा करने के अर्थ में उप पूर्वक स्था धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे,

१—समवप्रविभ्यः स्थः । प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च । (१ । ३ । २२—२३)

२—उदोऽनूर्ध्वकर्मणि (१ । ३ । २४)

३—उपान्मन्त्रकरणे (१ । ३ । २५)

ये सूर्यमुपतिष्ठन्ते मंत्रै. (भट्टि० ८ । १३)—जो लोग मन्त्रों द्वारा सूर्य को पूजते हैं। न त्र्यम्बकादन्यमुपास्थितासौ (भट्टि० १ । ३)

विशेष[1]—साधारण सेवा करने या पूजा करने के अर्थ में यह धातु साहित्य में उभयपदी पाई जाती है, जैसे, उपतस्थुर्महात्मान धर्मपुत्र युधिष्ठिरम् (महाभारत २ । ४ । ७ । स्तुत्य स्तुतिभिरर्थ्याभिरुपतस्थे सरस्वती (रघु० ४ । ६ )

३२३[2]—उप पूर्वक स्था धातु निम्नलिखित अर्थों में भी आत्मनेपदी होती है—

(१) मिलना, सम्मिलित होना, जैसे, गगा यमुनामुपतिष्ठते—गगा यमुना मे मिल जाती है ।

(२) किसी के साथ मैत्री करना, जैसे, रथिकानुपतिष्ठते (महाभाष्य)—सारथियो से मैत्री करता है ।

(३) जाना, जैसे मार्ग चला जाता है, अय पन्था साकेतमुपतिष्ठते ( महाभाष्य )— यह मार्ग साकेत (अयोध्या) को चला जाता है ।

(क) जब किसी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा विवक्षित होती है तब उप पूर्वक स्था धातु उभयपदी होती हैं, जैसे, भिक्षुको ब्राह्मणकुलमुपतिष्ठति—उपतिष्ठते वा (महाभाष्य)— भिक्षुक कुछ पाने की इच्छा

---

१—इस पर महाभाष्य का यह वचन है—

बहूनामप्यचित्तानामेको भवति चित्तवान्

पश्य वानरसैन्येऽस्मिन् यदर्कमुपतिष्ठते ॥

मैव मस्थाः सचित्तोयमेषोपि हि यथा वयम् ।

एतद् प्यस्य कापेयं यदर्कमुपतिष्ठति ॥

२—उपाद् देवपूजासंगतिकरणमित्रकरणपथिष्विति वाच्यम ।

से ब्राह्मण के घर पर जाता है। जब यह अकर्मक के तौर पर प्रयुक्त होती है तब भी आत्मनेपदी होती है, जैसे, भोजनकाले उपतिष्ठते—भोजन के समय तैयार होकर खड़ा हो जाता है।

३२४[1]—निरन्तर अभ्यास करने के अर्थ मे अनुपुर्वक हृ धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, पैतृकमश्वा अनुहरन्ते—घोडे सदा अपने पुरखों की गति (चाल) का अभ्यास करते हैं। परन्तु "मिलना जुलना" अर्थ में यह परस्मैपदी होती है, जैसे, रामभद्रमनुहरति (उत्तर०)।

३२५—ललकारने के अर्थ में आ पूर्वक ह्वे धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, कृष्णश्चाणूरमाह्वयते (सि० कौ०)। आह्वयत चेदिराट् मुरारिम् (शिशु० २०। १)। परन्तु इत एवाह्वयैनमायायुष्मन्तं (उत्तर० ६)— इस चिरजीवी बालक को भी यहाँ बुलाओ।

## अभ्यास

१—राज्य नाम शक्तित्रयायत्तम्। शक्तयश्च मन्त्रप्रभावोत्साहा. परस्परानुगृहीता कृत्येषु क्रमते। (दशकुमार० २।८)

२—असौ पाप क्रमेण शाखातरै सचरमाण कोटरमागत्य तातमपगतासुमकरोत्। (काद०)

३—एव भो संततिविच्छेदनिरवलबाना मूलपुरुषावसाने सपद परमुपतिष्ठति। (शाकु० ६)

४—उषसि स्नात्वा कृतमगलो मन्त्रिभि सह समगच्छे। (दशकुमार० २।३)

५—अये वनदेवतेय फलकुसुमपल्लवार्घ्येण मामुपतिष्ठते। (उत्तर० २)

---

१—हरतेगतताच्छील्ये। (वार्तिक)

२—स्पर्धायामाङः (१।३।३१)

६—विजयेता रामलक्ष्मणौ कुंभकर्णमेघनादौ। (अनर्घ्यराघव६)
७—तत प्रतस्थे कौबेरी भास्वानिव रघुर्दिशम्। (रघु० ४।६६)
८—वक्तु धीर. स्तनितवचनैर्मानिनी प्रक्रमेथा। मेघदूत १०१)
९—बलिर्बबंधे जलधिर्ममथे जह्रेऽमृत दैत्यकुल विजिग्ये।
कल्पांतदु स्था वसुधा तथोहे येनैष भारोऽतिगुरुर्न तस्य ॥
(भट्टि० २।३९)
१ —उत्तिष्ठमानस्तु परो नोपेक्ष्य पथ्यमिच्छता।
समौ हि शिष्टैराम्नातौ वत्स्यंतावामय स च ॥
(शिशु० २।१०)
११—अयमपि च गिर नस्त्वत्प्रबोधप्रयुक्ता-
मनुवदति शुकस्ते मजुवाक् पजरस्थ। (रघु० ५।७४)
१२—यावत्प्रतापनिधिराक्रमते न भानु-
रह्नाय तावदरुणेन तमो निरस्तम्। (रघु० ५।७१)
१३—अथ सर्वस्य धातार ते सर्वे सर्वतोमुखम्।
वागीश वाग्भिरर्थ्याभि प्रणिपत्योपतस्थिरे ॥ (कुमार २।३)
१४—स मानसी मेरुसख पितॄणा कन्या कुलस्य स्थितये स्थितिज्ञ।
मेना मुनीनामपि माननीयामात्मानुरूपा विधिनोपयेमे ॥
(कुमार २।१८)
१५—पटुधारावाही नव इव चिरेणापि हि न मे
निकृतन्मर्माणि क्रकच इव मन्युर्विरमति। (उत्तर० ४)
१६ फलान्याहरस्व चित्राणि परिक्रीडस्व सानुषु।
साध्वनुक्रीडमानानि पश्य वृक्षानि पक्षिणाम् ॥
( भट्टि० ८।१० )
१७—कच्चिन्नोपावदिष्टासौ केनचिद् व्यवदिष्ट न।
शृण्वन् सम्प्रवदमानाद्रावणस्य गुणान् जनात् ॥
(भट्टि० ८।२८)

# अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—एते भगवत्या भूमिदेवाना मूलमायतनमतर्वेदि पूर्वेण कृष्णागरुमलयजरसमगरागम-न्योन्यस्य कुर्वाणे कलिंदकन्याम दाकिन्यौ सगच्छेते। (अनर्घ्यराघव ७)

२—इत्युक्त्वा शुकनासो हेमतकालोत्पलिनीमिवोद्वाष्पा दृष्टिमुद्वहन् द्वेपिताधरश्च बहिर्लब्धनिर्गमेण स्फुटनिवातमनुपूरेण निश्वसन्नेवावतस्थे। (काद०)

३—वयोवेषविसवादि रामस्य च तयोस्तदा।
जनता प्रेक्ष्य सादृश्यं नाक्षिकम्प व्यतिष्ठत॥ (रघु०६७)

४—तत्रैन हेमकुम्भेषु सभृतैस्तीर्थवारिभि।
उपतस्थुः प्रकृतयो भद्रपाठोपवेशिनम् (रघु० १ १०)

५—इति दर्शितविक्रिय सुन मरुत. कोपपरीतमानसम्।
उपसान्त्वयितु महीपतिर्द्विरद दुष्टमिवोपचक्रमे॥ (किरात० २। २५)

६—पारसीकास्ततो जेतु प्रतस्थ स्थलवर्त्मना।
इन्द्रियाख्यानिव रिपूस्तत्त्वज्ञानेन सयमी॥ (रघु० ४। ६०)

७—विनयते स्म तद्योधा मधुभिर्विजयश्रमम्।
आस्तीर्णाजिनरत्नासु द्राक्षावलयभूमिषु॥ (रघु०४। ६५)

८—श्रुतमप्यधिगम्य ये रिपून् विनयंते न शरीरजन्मन।
जनयन्त्यचिराय सपदामयशस्ते खलु चापलाश्रयम्॥ (किरात० २। ४१)

९—प्रियप्राया वृत्तिविनयमधुरो वाचि नियम
प्रकृत्या कल्याणी मतिरनवगीत परिचय।
पुरो वा पश्चाद्वा तदिदमविपर्यासितरस
रहस्यं साधूनामनुपधि विशुद्धं विजयते॥ (उत्तर० २)

१०—क्षणं भद्रावतिष्ठस्व तत प्रस्थास्यसे पुन।
न तस्सस्थास्यते कार्य दक्षे गोरीकृत त्वया॥ (भट्टि० ८। ११)

११—द्रष्टुं प्रक्रममाणोसौ सीतामंभोनिधेस्तटम् ।
उपाक्रंस्ताकुलं घोरैः क्रममाणैर्निशाचरैः ॥ (भट्टि ८ । २५)

१२—जल्पितोत्क्रुष्टसंगीतप्रनृत्तस्मितवल्गितैः ।
घोषस्यान्ववदिष्टेव लङ्का पूतक्रतोः पुरः ॥ (भट्टि । ८ २९)

१३—व्यरमत्पथनाद्यस्मात्परित्रस्तः सहस्रदृक् ।
क्षणं पर्यरमत्तस्य दर्शनान्मारुतात्मजः ॥ (भट्टि॰ । ५३ )

१४—यावदर्थपदां वाचमेवमादाय माधवः ।
विरराम महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः ॥ (शिशु० २ । १३

१५—विपक्षमखिलीकृत्य प्रतिष्ठा खलु दुर्लभा ।
अनीत्वा पङ्कतां धूलिमुदकं नावतिष्ठते (शिशु-२ । ३४)

१६—समगध्वं पुरः शत्रोर्भेदयध्वं रवूत्तमम् ।
मोचयध्वं भयं सीता नोपायंस्त दशाननं ॥
ततः प्राश्विषनाद्रींद्रं महेंद्रं वानरा द्रुतम् ।
सर्वे किलकिलायन्तो धैर्यं चाधिषताधिकम् ॥ (भट्टि० ७ । १०१)

## संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—आधी रात को जब मैं अपने बिस्तरे पर गहरी नींद में सो रहा था तो परस्पर विवाद करते हुए पुरुषों की तरफ से आने वाले कोलाहल से जाग पड़ा ।

२—कुटुम्ब की रक्षा ज्येष्ठ पुत्र को सौंप कर बुड्ढा आदमी तीर्थ-यात्रा के लिये चल दिया (प्र+स्था) ।

३—योग्यतम सेनापति से आज्ञप्त फ्रांसीसियों ने दुर्ग पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया ( उप+क्रम् ), परन्तु चीन-निवासियों ने उन्हें सरलता-पूर्वक हरा दिया ( परा+जि ) ।

४—ज़ोर जोर बातें करते ही करते दोनों युवक एक दूसरे पर प्रहार करने

लगे और दोनों मे अधिक उग्र प्रकृति वाले युवक ने दूसरे को द्वन्द्व-युद्ध के लिये ललकारा (आ+ह्वे)।

५—केवल धन प्राप्त करने की इच्छा से धनाढ्यों की सेवा करने वालों (उप+स्था) तथा चापलूसी करने वालों को धिक्कार है।

६—यमुना जी प्रयाग में गङ्गाजी मे मिल जाती हैं, (सम्+गम्) और यह स्थान हिन्दुओं द्वारा बहुत ही पवित्र माना जाता है।

७—क्रोध रोको (वि+रम्) और लोभ छोड़ो, किसी भी प्रकार अनर्थ करने की चेष्टा न करो।

८—जब परशुराम जी एक उरुसत्त्व घोडे पर चढ कर सञ्चरण कर रहे थे (सम्+चर्) तो घोड़ा एक जलाशय देखकर चकित हो गया और अश्वारोह बडे वेग से नीचे गिर पडा।

९—इङ्गलैण्ड के युवराज ने डेनमार्क की राजकुमारी से विवाह कर लिया (उप+यम्)।

१०—जो व्यक्ति बालक का उपनयन कराता है, (उप+नी) और ब्रह्म-विद्या पढाता है वह आचार्य कहलाता है।

११—यह मार्ग सीधे नदी को जाता है, पर दूसरा बिल्कुल टेढा मेढा है, जिसे चाहो उसे चुन लो।

१२—जब कि घाम इतना तपाने वाला है तो तुम बिना छाता के कैसे बाहर जा सकते हो।

१३—ब्राह्मण की प्रकृति मृदु होती है। चाहे वह थोड़ी देर के लिये क्षुब्ध भी हो जाय, परन्तु बहुत जल्द ही वह अपनी मौलिक स्थिति पर आ जाता है (सप्तमी के साथ अव+स्था)।

१४—कृपा के इच्छुक हम लोगों ने दुष्ट के व्यंग्यों को तथा अभिमानियों द्वारा किए हुए अपमानों को बहुत देर तक क्लीबवत् सहा, तो, ऐ आशे, तू अपना कार्य कब बन्द करेगी?

१५—शुकनास चन्द्रापीड के पास गया (उप+स्था) और उसे कई महत्त्वपूर्ण विषयों पर मन्त्रणा (परामर्श) देकर प्रसन्नचित्त हो घर लौट आया।

—०—

# त्रिंशत्तम पाठ

## अदादिगणी धातुएँ

३२६—पहिचानने के अर्थ मे सम् पूर्वक विद् (जानना) धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, पितरावपि मा न प्रतिसंविदाते (दशकुमार० २।३)—मेरे माँ बाप भी मुझे नही पहिचानते।

(क) "जानने" के अर्थ में अकर्मक के तौर पर प्रयुक्त होने वाली सम् पूर्वक विद् धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, के न संविदन्ते वायोर्मैनाकाद्रिर्यथा सखा (भट्टि० ८।१७)—कौन नहीं जानता कि मैनाक पर्वत वायु का मित्र है।

३२७— आशीर्वाद देने के अर्थ मे आ पूर्वक शास् धातु और प्रार्थना करने या माँगने के अर्थ मे प्र पूर्वक शास् धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, ऋक्छन्दसाशास्ते (शकु० ४)—एक ऋक् द्वारा उसे आशीर्वाद देता है। इद प्रशास्महे (उत्तर० १)—हम लोग यह माँगते हैं या प्रार्थना करते हैं।

३२८—हन् साधारणतः परस्मैपदी होती है, पर अकर्मक के तौर पर प्रयोग मे आने पर और अपने ही शरीर से सम्बन्ध रखने पर आ पूर्वक हन् धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, आघ्नान इव स दीप्तै-

ज्वलतै सर्वतो मुहु (भट्टि० ८।१५)—मानों चारों ओर जलते हुए आग के अगारो स मारते हुए। परन्तु परस्य शिर आहृति(सि०कौ०)।

विशेष—यह नियम सदा नही माना जाता, आजघ्ने विषमविलोचनस्य वक्ष (किरात० १७।३३)।

## जुहोत्यादि, दिवादि तथा स्वादि गण की धातुएँ

३२६—दा धातु स्वत तो उभयपदी होती है, परन्तु आ पूर्वक दा धातु 'लेने' के अर्थ में आत्मनेपदी होती है, जैसे, नादत्ते भवतीं स्नेहेन या पल्लवम् (शकु० ४)—जो प्रेम के कारण आप लोगों क पत्तियो को नही तोड़ती थी। परन्तु मुख व्याददाति—मुँह बाता है (फैलाता है)। और भी विपादिका व्याददाति—अपने पॉव पर की फोड़िया को फोड़ता है। नदी कूलं व्याददाति। परन्तु व्याददते पिपीलिका. पतगस्य मुखम् (महाभाष्य)।

३३०—सम् पूर्वक नह् धातु तैयार होने, या तैयार करने के अर्थ मे आत्मनेपदी होती है, जैसे, छेत्तुं वज्रमणीन् सनह्यते (भर्तृहरि० २।६)—वज्र मणियों को काटने के लिये तैयार होता है। युद्धाय संनह्यते (महाभाष्य) युद्ध के लिए तैयारी करता है।

३३१—सम् पूर्वक श्रु धातु जब सकर्मक के तौर पर प्रयुक्त होता है तो परस्मैपदी होती है, जैसे, मद्वचन न सश्रृणोति—मेरी बाते नहीं सुनता (मेरी बातों की परवाह नहीं करता)। परन्तु अकर्मक के तौर पर प्रयुक्त होने पर आत्मनेपदी होती है, जैसे, स श्रृणुष्व कपे (भट्टिकाव्य ८।१६)—ऐ वानर, सुनो।

## तुदादिगणी धातुएँ

३३२—अपपूर्वक कृ धातु 'ऊपर फेंकना' या जीविका के लिए

अथवा घर बनाने के लिए 'हर्ष के मारे खरोंचना' के अर्थ में आत्मनेपदी होती है, जैसे, छायापस्किरमाणविष्किर (उत्तर० २)—छाया में भोजन प्राप्त करने के लिए जमीन को खरोंचते हुए पशु। अपस्किरते कुक्कुटो भक्षार्थी, श्वा आश्रयार्थी। परन्तु अपकिरति कुसुमम्—फूलों को बिखेरता है।

३३३—अव पूर्वक गॄ धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, अवगिरते ग्रासम्—कौर निगल जाता है।

(क) प्रतिज्ञा करने के अर्थ में सम् पूर्वक गॄ धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, संगिरते शब्दम्। परन्तु संगिरति ग्रासम्।

३३४—बिदा होने के अर्थ में आ पूर्वक प्रच्छ् धातु आत्मनेपदी होती है, आपृच्छस्व प्रियसखममुम् (मेघ० ६)—अपने इस प्रिय मित्र से बिदा होना।

३३५—नि पूर्वक विश् धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, किष्किन्ध्याद्रिं न्यविशत (भट्टि० ६।१४३)—किष्किन्धा पर्वत में प्रवेश किया।

(क) अभि पूर्वक विश् धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, भयं तावत् सेव्यादभिनिविशते सेवकजनम् (मुद्रा०)—पहिले तो नौकर के हृदय में सेव्य पुरुष का भय घुस जाता है।

## रुधादिगणी धातुएँ

३३६[1]—केवल रक्षणार्थ के अतिरिक्त अन्य अर्थों में भुज् धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, ओदनं भुङ्क्ते—भात खाता है। सदयं बुभुजे स मेदिनीम् (रघु० ८।७)—उसने दयापूर्वक पृथ्वी को भोगा। वृद्धो जनो दुःखशतानि भुङ्क्ते—बूढे लोग सैकड़ों दुःख भोगते हैं।

---

१—भुजोऽनवने (१।३।६६)

३३७[1]—यज्ञपात्रों के अतिरिक्त अर्थों में प्र तथा उप पूर्वक अथवा किसी भी स्वरान्त या स्वरादि उपसर्ग पूर्वक युज् धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, प्रयुञ्जान प्रिया वाच (भट्टि० ३६)—प्रियवाणी का प्रयोग करता हुआ। आश्रमधर्मे नियुंक्ते शकु०१। तमन्वयुङ्क्त (रघु० ८।१८)। पणबन्धमुखान गुणानज षडुपायुंक्त (रघु० ८।२१)—अज ने शम आदि छहों उपायों का प्रयोग किया।

## तनादिगणी धातुएँ

३३८—कृ (करना) धातु स्वत उभयपदी होती है, परन्तु उपसर्गपूर्वक कृ धातु निम्नलिखित अर्थों में आत्मनेपदी होती है—

(१) किसी को चोट पहुँचाना, जैसे, उत्कुरुते—किसी के विरुद्ध समाचार देता है।

(२) निन्दा, या विजय, जैसे श्येनो वर्तिकामुदाकुरुते—बाज बटेर को जीत लेता है।

(३) सेवा करना, जैसे, हरिमुपकुरुते—हरि की सेवा करता है।

(४) धर्षणा या बलात्कार करना, जैसे, परदारान् प्रकुरुते—दूसरे की स्त्री के साथ बलात्कार करता है।

(५) तैयार करना, जैसे, एधो दकस्योपस्कुरुते—ईंधन पानी को तैयार करता (उबालता) है।

(६) कहना, जैसे, गाथा. प्रकुरुते—कहानियाँ कहता है।

(७) लगाना, काम मे लगाना, जैसे, शत प्रकुरुते—(किसी धार्मिक कृत्य मे) एक सैकडा लगाता है। इसी प्रकार उपकुर्वन्तमत्यर्थं प्रकुर्वाणोऽनुजोविघत् (भट्टि० ८।१८)।

---

१—प्रोपाभ्या युजेरयज्ञपात्रेषु। (१ ३ ६४)
स्वरद्यन्तोपसर्गादिति वक्तव्यम्। (वार्तिक)

(क) उपकार करने के अर्थ में उप पूर्वक कृ धातु उभयपदी होती है, जैसे, नहि दीपौ परस्परस्योपकुरुत (शांकर भाष्य ४२०)—दो दीपक आपस में एक दूसरे का उपकार नहीं करते। किं वा भूय प्रियमुपकरोमि (मुद्रा० ७)। सा लक्ष्मीरुपकुरुते यया परेषाम् (किरात० ७।२८)—लक्ष्मी वह है जिससे लक्ष्मीवान् पुरुष दूसरे का उपकार करता है।

(ख)[1] अनु तथा परा उपसर्ग पूर्वक कृ धातु परस्मैपदी होती है; जैसे, परापकरोति दानम्—दान को अस्वीकार कर देता है। अनुकरोति भगवतो नारायणस्य (काद०)।

३३६[2]—सहन करने अथवा अभिभूत करने के अर्थ में अधिपूर्वक कृ धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, शत्रुमधिकुरुते—शत्रु को क्षमा कर देता है अथवा पराभूत कर देता है।

परन्तु मनुष्यानधिकरोति शास्त्रम् (शांकर भाष्य)—शास्त्र मनुष्यों को अधिकार देता है।

३४०[3]—बोलने के अर्थ में जब विपूर्वक कृ धातु का कर्म शब्द होता है, तो यह आत्मनेपदी होती है, जैसे स्वरान् विकुरुते—स्वर (आवाज) पैदा करता है—बोलता है। परन्तु चित्तं विकरोति कामः—कामदेव चित्त में विकार पैदा कर देता है।

(क) जब वि पूर्वक कृ धातु अकर्मक के तौर पर प्रयोग में आती है, तो आत्मनेपदी होती है, जैसे, विकुर्वे नगरे तस्य (भट्टि० ८।२१)—उसके नगर में मैं स्वेच्छापूर्वक आचरण करूँगा। (विविधं चेष्टे)।

---

१—अनुपराभ्यां कृञः। (परस्मैपदम्। १।३।७०)

२—अधेः प्रसहने। (१।३।३३)

३—वेः शब्दकर्मणः। अकर्मकाच्च (१।३।३४-३५)

## क्र्यादिगणी धातुएँ

३४१[1]--परि, वि तथा अव पूर्वक क्री (खरीदना) धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, कृतेनोपकृतं वायो परिक्रीणानम् (भट्टि० ८।८)—वायु द्वारा किए हुये उपकारों का बदला कार्य द्वारा करते हुये को। यस्तानि विक्रीणीते (याज्ञवल्क्यस्मृति व्यवहाराध्याय)--जो उन्हें बेचता है।

३४२[2]–स्वत ज्ञाधातु उभयपदी है, जैसे, जानासि विनोदयितुम् (उत्तर०१)। जानीते हि भवान् (विक्रमो०२)।

अपपूर्वक ज्ञा धातु, छिपाने, इनकार करने के अर्थ में आत्मनेपदी होती है, जैसे, शतमपजानीते—एक सैकडा इनकार करता है।

(क) सोचने, विचारने या ध्यान करने के अतिरिक्त अर्थों मे सम पूर्वक तथा प्र पूर्वक ज्ञा धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, शत सजानीते—एक सैकड़ा खोजता है। हरचापारोपणेन कन्यादान प्रतिजानीते (प्रसन्न राघव ४)—हर के धनुष की डोर चढा देने की शर्त पर कन्या प्रदान करने की प्रतिज्ञा करता है। परन्तु मातर म तुर्वा सजानाति—अपनी माता के विषय मे सोचता है।

(ख) अनु पूर्वक ज्ञा धातु उभयपदी होती है, जैसे, अनुजानीहि मां गमनाय (उत्तर०३)। ततोऽनुजज्ञे गमन सुतस्य (भट्टि० ३।२३)—तब पुत्र को जाने की अनुमति दे दी।

(ग) सन्नन्त ज्ञाधातु सर्वदा आत्मनेपदी होती है, जैसे, जिज्ञासमानानुचरस्य भावम् (रघु० २।२६)—अपने अनुचर का भाव जानने की इच्छा करती हुई।

---

१--परिव्यवेभ्य क्रिय (१ ३।१८)

२—अपह्नवे ज्ञ । स प्रतिभ्यामनाध्याने (१।३।४४,४६)

# चुरादिगणी और प्रेरणार्थक धातुएँ

३४३—चुरादिगण की धातुएँ तथा प्रेरणार्थक धातुएँ उभयपदी होती हैं। परन्तु इस नियम के अनेक अपवाद भी हैं।

(क)[1] जब सकर्मक धातुओं के प्रेरणार्थक रूप प्रयोग मे आते हैं, अथवा जब मूल रूप का कर्म प्रेरणार्थक में कर्ता हो जाता है तब आत्मनेपद का प्रयोग होता है, परन्तु उत्कण्ठापूर्वक स्मरण करने के अर्थ मे नही, जैसे, भक्ता भव पश्यन्ति-- भक्त लोग भव को देखते हैं। भवो भक्तान् दर्शयति—भव अपने आप को भक्तो को दिखा देते हैं। दर्शयसे नित्य मनुष्यान् (महाभारत २।५।८६)। परन्तु स्मरयति वनगुल्म कोकिलम्—उत्कण्ठापूर्वकस्मृतौ विषयो भवति (सि० कौ०)। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि प्रेरणार्थक के साधारण प्रयोग से यह प्रयोग सर्वथा भिन्न है, भक्तान् भव दर्शयति देवदत्त।

(ख) साधारणतया, जब क्रिया का फल कर्ता के ऊपर आता है, तब प्रेरणार्थक आत्मने-पद मे होता है, जैसे, कट कारयते—अपने लिए चटाई बनवाता है। स्वार्थं कारयमाणाभि (भट्टि० ८।४८—अपना मतलब साधन करवाने वाली (स्त्रियो) से।

३४४[2]—बुध्, युध्, नश्, जन्, अधि+इ, प्रु, द्रु, स्रु परस्मैपदी होती हैं, जैसे, बोधयति पद्मम् नाशयति दु:खम्, जनयति सुखम्।

(१) भक्षणार्थक, निगिरणार्थक, तथा कम्पनार्थक धातुएँ परस्मैपदी होती हैं। जब अद् धातु की क्रिया कर्ता के लिये नहीं की जाती उस दशा के अतिरिक्त अन्य अर्थो मे यह अपवाद–स्वरूप है।

---

१—णेरणौ यत्कर्म णौ चेत् स कर्ताऽनाध्याने (१।३।६७)

२—बुधयुध नशजनेड् प्रु द्रु स्रु भ्योणे (१।३।८६)

३४५[1]—पा (पीना) का प्रेरणार्थक रूप, दम्, आ+यम्, आ+यस्, परि+मुह्, रुच्, नृत् और अभि+वद् धातुओं का फल जब कर्ता के लिये होता है, तब ये आत्मनेपदी होती हैं, जैसे, पिबत्यसौ पाययते च सिन्धू (रघु०१३)।

(क) सम्बोधन करने तथा विदा होने या विदा करने के अर्थ में आ पूर्वक मन्त्र् धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, आमन्त्रयस्व सहचरम् (शकुं०३)—अपने मित्र से विदा होओ।

## अभ्यास

१—सा दूरस्थितैव पाणिना वेणुलतामादाय नरपतिप्रबोधनार्थं सकृत्सभाकुट्टिममाजघान। (काद०)।

२—सखे सीरध्वज हृदयमेवामन्त्रयस्व किमर्थं कृतार्थमसीति। (अनर्घ्यराघव १३)।

३—सखे सैव धन्या गणिकादारिका यामेव भवन्मनोऽभिनिविशते (दशकुमार २।२)।

४—इयमतिक्रम्य स्वकुलधर्ममर्थनिरपेक्षा गुणेभ्य एव स्व यौवन विचिक्रीषते (दशकुमार २।२)।

५—राज्ञा च तथानुशिष्टा सत्यप्यनाश्रवैव सा यदासीत्तदास्या स्वसा माता च निर्बंधेन राज्ञे समगिरेताम्। (दशकुमार २।२)।

६—मानी मानसारो महेश्वर समाराधनात्समाढयदा गदा लब्ध्वा आत्मानमप्रतिभट मन्यमानो महाभिमानो भवंतमभियोक्तुमुद्युङ्क्ते (दशकुमार १।१)।

७—तत प्रवृत्तासु प्रीतिस कथासु सुहृदा वृत्तान्त श्रोतु कृतप्रस्तावस्ताश्च तदुक्तावन्वयुङ्क्त। (दशकुमार २।१)।

---

[1] १—न पादम्याङ्यमाङ्यसपरिमुह रुचिनृतिवदवस. (१।३।८९)

८—तथास्मासु प्रतिविधाय तिष्ठत्सु राजापि विज्ञापितोदंतो जातानुताप पारग्रामिकान् प्रयोगान् प्राय' प्रायुक्त ।
(दशकुमार २।४) ।

६—मदसिक्तमुखैर्मृगाधिप करिभिर्वर्तयते स्वयं हतै ।
लघयन् खलु तेजसा जगन्न महानिच्छति भूतिमन्यत ॥
(किरात० २।१८) ।

१०—उज्झत्सु स हार इवास्तसख्यमह्वाय तेजस्विषु जीवितानि ।
लोकत्रयास्वादनलोलजिह्व न व्याददात्याननमत्र मृत्यु ॥
(किरात १६।१६) ।

११—मृदुव्यवहित तेजो भोक्तुमर्थान् प्रकल्पते ।
प्रदीप स्नेहमादत्ते दशयाभ्यतरस्थया ॥ (शिशुपाल २।८५) ।

१२—षाड्गुण्यमुपयुजीत शक्त्यपेक्षी रसायनम् ।
भवन्त्यस्यैवमङ्गानि स्थास्नूनि बलवति च॥ (शिशुपाल २।६८)।

१३ - कृतसीतापरित्याग स रत्नाकरमेखलाम् ।
बुभुजे पृथिवीपाल पृथिवीमेव केवलाम् ॥ (रघु० १५।१) ।

१४—कुलभार्या प्रकुर्वाणमह द्रष्टु दशाननम् ।
यामि त्वरावान् शैलेद्र मा कस्यचिदुपस्कृथा ॥
योऽपचक्रे वनात्सीतामधिचक्रे न य हरि ।
विकुर्वाण स्वरानद्य बल तस्य निहन्म्यहम् ॥ (भट्टि० १६।२०)।

१५--आत्मानमपजानान शशमात्रोऽनयद्दिनम् ।
ज्ञास्ये रात्राविति प्राज्ञ प्रत्यज्ञास्त क्रियापटु. ॥

१६—सजानानान् परिहरन् रावणानुचरान् बहून् ।
लका समाविशद्रात्रौ वदमानोऽरिदुर्गमाम् ॥
( भट्टि० ८।२६-२७ ) ।

# अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—अथ कुपितोऽथपतिर्व्यवहर्तुमर्थगर्वादभियोक्ष्यते । त च भूयश्चित्रैरुपायैः कौपीनावशेषं करिष्याव । (दशकुमार २।२)।

२—प्रजाभिस्तु बंधुमतो राजानो न ज्ञातिभि । तदुत्तिष्ठ कुरुष्व पुरेव सर्वा क्रिया । कृताहारे त्वय्यहमपि सुखमुपभोक्ष्ये पथ्यमित्येवमभिहितस्यास्य दिधक्षन्निव हृदयमनितरां शोकानल सदुधुक्षे । (हर्ष चरित ५) ।

३—सभाजने मे भुजमूर्ध्वबाहु सव्येतर प्राध्वमित प्रयुक्ते । (रघु० १३।४३)।

४—स किसखा साधु न शास्ति योऽधिप हितान्न य संश्रृणुते स किप्रभु । सदानुकूलेषु हि कुर्वते रति नृपेष्वमात्येषु च सर्वसंपद ।। (किरात १ ५)।

५—सखीनिव प्रीतियुजोऽनुजीविन समानमानान् सुहृदश्च बंधुभिः । स सतत दर्शयते गतस्मय कृताधिपत्यामिव साधु बंधुताम् ।। (किरात १।१०)

६—मदमानसमुद्धत नृप न वियुङ्क्ते नियमेन मूढता । अतिमूढ उदस्यते नयान्नयहीनादपरज्यते जन ।। (किरात २।४९) ।

७—स राजलोक कृतपूर्वसंविदारम्भसिद्धौ समयोपलभ्यम् । आदास्यमान प्रमदामिष तदावृत्य पन्थानमजस्य तस्थौ ।। (रघु० ७।३१) ।

८—असंविदानस्य ममेश संविदां तितिक्षितु दुश्चरित त्वमर्हसि । विरोध्य मोहात्पुनरभ्युपेयुषा गतिर्भवानेव दुरात्मनामपि ।। (किरात १८।४२)।

९—तत्प्रतीपपवनादि वैकृत प्रेक्ष्य शान्तिमधिकृत्य कृत्यवित् । अन्वयुङ्क्त गुरुमीश्वर क्षितेः स्वन्तमित्यलघयत्स तद्व्यथाम् ।। रघु० ११।६२) ।

१०—नृपतिः प्रकृतीरवेक्षितु व्यवहारासनमाददे युवा । परिचेतुमुपांशु धारणा कुशपूत प्रवयास्तु विष्टरम् ।। (रघु० ८।१८) ।

११—समनद्ध किमङ्ग भूपतिर्यदि संधित्सुरसौ सहामुना । हरिराक्रमणेन सन्नति किल बिभ्रेति भियेत्यमभ्र ।। (शिशुपाल १६।३४)।

१२—न्यस्ताक्षरामक्षरभूमिकाया कार्त्स्न्येन गृह्णाति लिपि न यावत् । सर्वाणि तावच्छ्रुतवृद्धयोगात् फलान्युपायुङ्क्त स दण्डनीते ।। (रघु० १८।४३) ।

१३—नैतच्चित्रं यदयमुदधिश्यामसीमां धरित्री-
मेकः कृत्स्नां नगरपरिघप्रांशुबाहुर्भुनक्ति ।
आशंसन्ते समितिषु सुराः सक्तवैरा हि दैत्यै-
रस्याधिज्ये धनुषि विजयं पौरहूते च वज्रे ॥ (शकु० २)

१४—यस्मा विधेय वषये स भवान्नियुक्तो
स्नेहस्य तत्फलमसौ प्रणयस्य सारः । (मालती० १)

१५—अवाद्वायुः शनैरस्यां लता नर्तयमानवत् ।
न यासयत संत्रस्ता ऋतवोऽन्योन्यसंपदः ॥
ज्योत्स्नामृतं शशी यस्यां वापीर्विकसितोत्पलाः ।
अपाययत संपूर्णः सदा दशमुखाज्ञया ॥
प्रादमयंत पुष्पेषु यस्यां बंधः समाहृताः ।
परिमोहयमाणाभी राक्षसीभिः समावृता ॥
यस्यां वासयते सीता केवलं स्म रिपुः स्मरात् ।
न त्वरोचयतात्मानं चतुरो बुद्धिमानपि ॥ (भट्टि० ८ । ६१-६४ )

१६—उत्क्षिप्तगात्रः स्म विडम्बयन्नभः समुत्पतिष्यन्तमगेंद्रमुच्चकैः ।
आकुंचितप्रोहनिरूपितक्रमं करेणुरारोहयते निषादिनम् (शिशु० १२ । ५)

## संस्कृत में अनुवाद कीजिये—

१—ऋष्यशृंग ने सीता जी को आशीर्वाद दिया (आ + शास्) कि तू वीर पुत्र पैदा कर ।

२—जब इस द्वन्द्व युद्ध की तैयारी करना (सम् + नह्) तो अपने साथ अपने सर्वोत्तम अस्त्रशस्त्रों को ले लेना (आ + दा) ।

३—महाराज, सुनिए—चाहे आप मेरे ऊपर अत्याचार कर लें, चाहे मेरी सारी सम्पत्ति छीन लें, पर सत्य के प्रति मेरी आस्था मुझसे आप नहीं ले सकते ।

४—व्याघ्रचर्म से ढका हुआ गदहा खेत में चरने वाले पशुओं को डराता था (भी+णिच्)।

५—कुछ उपायों में से साम को सर्वदा पहिले काम में लाना चाहिये (प्र+युज्), उसके असफल हो जाने पर अन्य उपायों का अवलम्बन करना चाहिये।

६—बालक अपनी माता को तालाब का निर्मल जल पिला कर (पा णिजन्त) सन्ध्या समय अपने घर गया।

७—जब मनुष्य दूर जाने लगता है, तो वह अपने गुरुजनों से बिदाई लेता है (आ+पृच्छ्) और अपने कुलदेवता को प्रणाम करता है।

८—मूर्ख [illegible] हाथी तुरन्त अगाध जल वाले [illegible] डुबा गया।

९—[illegible] प्रजा [illegible] सन्तानवत् रक्षा करने वाला (भुज्) राजा स्वयं ही आनन्द सुख [illegible] है और सिंहासन के प्रति प्रजा की श्रद्धा प्राप्त करता है।

१०—एक जलपात्र के ऊपर लटकती हुई मछली की परछाईं को नीचे से देखकर उसे बेध देने वाले को द्रुपदराज ने कन्यादान की प्रतिज्ञा की।

११—यज्ञीय अश्व को खोजते खोजते सगर पुत्रों ने कपिल मुनि को देखा और उनके ऊपर अश्वापहारक का अभियोग लगाया (अभि+युज्)।

१२—गमनाय [illegible] अत्यधिक (सरभस) भगदड़ में, त्वरा से अन्धी माता ने अपने प्रिय शिशु का सिर एक पत्थरखण्ड से टकरा कर (आ+हन्) उसे मार डाला।

१३—कौवा रोटी के तथा अन्य खाद्य पदार्थों के टुकड़ों को चुन चुनकर

(अप+हृ) अपना प्राण धारण करता है।

१४—एक बार फारसदेश के एक राजा ने किसी दार्शनिक से पूछा (अनु+युज्) कि आप राजाओं मे किस चीज को सब से अधिक सम्मान की दृष्टि से देखते है। उसने उत्तर दिया—तृष्णा का अभाव।

१५—इस कलियुग में माँ बाप प्राय. अपनी कन्याओं को द्रव्य के लिये बेच डालते हैं (वि+क्री) और वृद्धावस्था से दोहरे झुके हुए पुरुषो के साथ उनका व्याह कर देते हैं। क्या यह राक्षसी कर्म नही हैं।

---

# चतुर्थ भाग

## वाक्य विश्लेषण तथा वाक्य संकलन

३४६—वाक्यवि लेषण से सस्कृतनिबन्ध-लेखन मे बड़ी सहायता मिलती है। अत इस विषय का निरूपण भी आवश्यक है।

### प्रथम सेक्शन

### वाक्य-विश्लेषण

३४७—किसी पूर्ण विचार को भाषा मे व्यक्त करने को वाक्य कहते हैं।

केवल एक विचार मात्र की अभिव्यक्ति को पद (word) कहते है, उद्देश्य तथा विधेय से रहित दो या दो से अधिक पदों के समूह को पदसमुच्चय (Phrase) कहते हैं। किसी पूर्ण विचार तथा प्रधान क्रिया सूचित करने वाले शब्द-समूह को वाक्य कहते हैं, जैसे,

रामः, सुवर्णम्, नौति—ये पद हैं । रामविवासनम अग्नितप्त सुवर्णम्, जनहितावहा नीति —ये पद-समुच्चय हैं । रामविवासन कैकेय्या अभिमतम्, अग्नितप्त सुवर्ण विलिनाति, जनहितावहा नीतिः राजा अनुरुध्यते—ये वाक्य हैं ।

टिप्पणी—वाक्य चाहे साधारण हो, चाहे आज्ञा (लोट्) मे हो, चाहे आशीर्वादात्मक हो, चाहे प्रश्नवाचक हो, तत्वतः सब एक ही हैं ।

३४८—प्रत्येक वाक्य मे दो भाग होते हैं—उद्देश्य तथा विधेय । जिसके विषय मे कुछ कहा जाता है वह उद्देश्य कहलाता है । उद्देश्य के विषय मे जो कुछ कहा जाता है वह विधेय है । जैसे, सविता उदेति—सूर्य उदित होता है । यहाँ सविता उद्देश्य है और उदेति विधेय है ।

३४६—वाक्य तीन प्रकार के होते हैं—साधारण, मिश्रित (सकीर्ण) तथा सयुक्त ।

साधारण वाक्य वह है जिसमे एक उद्देश्य और एक प्रधान क्रिया हो अथवा जो भी विधेय का काम करता हो वह हो (और आगे देखिए), जैसे, अह पापकारिणी महाभागमद्राक्षम् (काद०), धिक् ताम् (भर्तृहरि)।

मिश्रित (सकीर्ण) वाक्य वह है जिसमे केवल एक प्रधान उद्देश्य (कर्ता) और एक ही प्रधान विधेय होता है, परन्तु दो या तीन-परिमित क्रियाएँ (finite verbs) होती हैं, जैसे, या चिंतयामि सतत मयि सा विरक्ता (भर्तृहरि), यदि गर्जति वारिधरो (स) गर्जतु (मालविका० ५) ।

सयुक्त वाक्य वह है जिसमे दो या दो से अधिक प्रधान उपवाक्य हो,

जैसे दुदोह गां स यज्ञाय शस्याय मघवा दिवं (दुदोह व ।-
रघु० १ । २६ ।

## साधारण वाक्य

३५०—साधारण वाक्य में एक कर्ता और एक परिमित क्रिया ( finite verb ) होता है ।

साधारण वाक्य का यही वाक्य प्रारम्भिक स्वरूप अथवा मूल स्वरूप है । आगे इन विविध का जो वर्णन किया जाएगा जिनसे इसके बृहत्तर तथा पेचीदा स्वरूप बनते हैं ।

३५१—साधारण वाक्य के मूल तत्वों—उद्देश्य और विधेय—में और भी गौण अवयव जोड़कर उनको बढ़ाया जा सकता है, और उन गौण अवयवों में भी और व्यापक अवयव जोड़कर वे भी बढ़ाए जा सकते हैं ।

### उद्देश्य

३५२—उद्देश्य संज्ञा ( साधारण अथवा संकीर्ण ) अथवा सर्वनाम हो सकता है ।

'आत्मा' तपस्यायोजित ( काद० ) 'शुकनास' अविरतमुवाच ( काद० ), 'भरतशत्रुघ्नौ' छन्दं बभूवतु ( रघु० १० । ८१ ), 'त्रैलोक्यमपि' पीडितम् , 'पद्मराग' कथायोगेन बुध्यते (हितो०); 'मरणं' प्रकृति शरीरिणाम् ( रघु० ८ । ८७ ), 'सो'ऽप्याचचक्षे ( दशकुमार० २ । ८ ) ।

विशेष—( क ) क्रिया से स्वयं ही कर्ता का वचन और पुरुष मालूम हो जाता है । अत. प्राय उसे ( कर्ता को ) बिल्कुल ही प्रकट नहीं करते, जैसे, ( भवान् ) अपनयतु न कुतूहलम् ( काद० ), कथं

मन्दभाग्य करोमि ( अहम् ) ( उत्तर० ३ ), (त्व) ब्रूहि रामचरितम् ( उत्तर० २ )।

(ख) प्राय विशेषण अपने विशेष्य के बिना हो प्रयुक्त होता है, जैसे, 'विद्वान्' सर्वत्र पूज्यते, 'द्वावपि' आगमिनौ ( मालविका० ३ )।

(ग प्राय सख्यावाचक शब्द वाक्य के उद्देश्य के तौर पर प्रयुक्त होते , जैसे, शरदाम् अयुत ययौ ( रघु० १० । १ ), शतम् अनूच्य-मायुष्कामस्य ।

३५३—सज्ञा अथवा सर्वनाम का विशेषता बनाने वाले भिन्न भिन्न साधना स साधारण कर्ता बढाया जा सकता है—

(१) विशेषण द्वारा—विशेषण चाहे सार्वनामिक हो, चाहे कृदन्तीय हो, चाहे गुणबोधक हो, चाहे परिमाण-बोधक हो,

'स' राजा किमारम्भ' सम्प्रति ( उत्तर० २ ), का 'इयमन्या' विभीपिका ( उत्तर० ४ ), व्रजश्च ( स ) समर्थयामास ( काद० ), एवम 'अभिधीयमान' स प्रत्यवादीत् ( काद ), पदपक्तिर्दृश्यते अभिनवा (शकु ३),'चतुर्दश' सहस्राणि रक्षसा भीमकर्मणाम् हतानि (उत्तर० २)।

( २ ) षष्ठ्यन्त सज्ञापद अथवा सर्वनामपद से, जैसे, 'रामस्य' करुणो रस ( उत्तर०३ ), अपि कुशली 'ते' गुरु ( रघु० ५ ।४ ); अन्यविषया न तु दृष्टिः 'अस्या' ( शकु० ३ )।

( ३ ) समानाधिकरण सज्ञाद्वारा , जैसे, तस्मिन् 'भोजवशभूषण' 'संभावयिना बुधान्' पुण्यवर्मा नामास्मीन् ( दशकुमार० )।

विशेष—सकर्मक क्रियाओं से बने हुए कृदन्तीय विशेषणों के योग में कर्म कारक भी आता है जैसे ,

'आसेदिवान्' रत्नवत् 'आसनं' स गुहेनोपमेयकान्तिरासीत्

( रघु० ६ । ४ ), अनुयास्यन् मुनितनया' ( अह ) विनयेन वारित-प्रसर ( शकु२ १ ), 'रसिकमनासि समुल्लासयन' वसन्तसमय समाजगाम ( दशकुमार )।

३५४—संस्कृत मे प्राय समासों द्वारा विस्तार किया जाता है, समास सस्कृत का सार है, और समासहीन अनुच्छेद पा जाना बडा कठिन हो जाता है। इन समासो के लम्बान की कोई भी सीमा निर्धारित नहीं है। यदि यह देखना हो कि सस्कृत-लेखको ने इस अधिकार को कितनी स्वतन्त्रता-पूर्वक प्रयुक्त किया है तो दण्डी,सुबन्धु और बाणभट्ट तथा भव-भूति की कृतियाँ देखिए' ( मालतीमाधव के तृतीयाक में लवगिका की उक्तियाँ तथा पचमांक मे सुप्रसिद्ध दण्डकछन्द देखिये )। उचित लम्बान वाले समासो मे वाक्य की शोभा बढ जाती है, और शब्दों के प्रयोग म बहुत किफायत भी हो जाती है।

३५५—सज्ञा और सर्वनाम के विस्तार मे सब से अधिक प्रयोग तत्पुरुष तथा बहुव्रीहि समासो का होता है।

(१) स धारण विशेषण के स्थान पर व्यधिकरण तत्पुरुष, कर्मधारय, उपपद तत्पुरुष और बहुव्रीहि का प्रयोग किया जा सकता है।

त्तपिता तद्विटपाश्रिता लता ( रघु० ८।४७ ), अबलाविप्रयुक्त' कनकवलयभ्रशरिक्तप्रकोष्ठ स कामी (मेघ० २); उटजद्वारविरूढम् नीवारबलिम् ( शकु०४ ), ताम्बूलकरंकवाहिनी तरलिका (काद०), गृहीतप्रतिमुक्तस्य तस्य ( रघु० ४ । ४३ ), कुल्याम्भोभि पवन-चपलै ( शकु० १ )।

षष्ठीतत्पुरुप प्राय सम्बन्ध सूचित करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है

कौत्स प्रपेदे वरतन्तुशिष्य ( रघु० ५ । १), नष्टाशका हरिण-शिशव चरन्ति ( शकु० १ )।

३५६—उपर्युक्त विधियों में से दो या दो से अधिक को एकसाथ मिलाकर उद्देश्य का और भी आगे विस्तार किया जा सकता हैं, और यदि वे विस्तार वाले शब्द सज्ञा या सर्वनाम हों तो उनका विस्तार और भी आगे किया जा सकता है

**एकदा तत्रस्थ एव मृगयानिर्गतो विचरन्** [विशेषण] **काननं किन्नरमिथुनमद्राक्षीत्** (काद)। **तत्तनयश्च** (षष्ठीतत्पुरुष) **हारीतनामा** (विशेषण) **तापसकुमारक** (समानाधिकरण सज्ञा टद) **सनत्कुमार इव सर्वविद्यावद्धातचेता** (बहुव्रीहि) **सिस्नासु** (विशेषण) **उपागमत्** (काद)। **ताभिरष्टाभि प्रत्यक्षाभि** (तनुभि का विशेषण) **तनुभि प्रपन्न** कर्ता का विशेषण **ईशो व अवत** (शकु १)। **मदम्बा पूर्णभद्रबोधितार्था** (विशेषण) **तादृशेपि व्यसने** (आगेवाले का क्रिया-विशेषण) **नातिविह्वला** (विशेषण) **कुलपरिजनानुयाता** (विशेषण) **मत् पितुरुत्तमांगम् उत्संगेन धारयन्ती** (कर्म सहित कृदन्तीय विशेषण और क्रियाविशेषण) **राज्ञे समादिदेश** (दशकुमार २।४)। इसी प्रकार **'तस्य' 'त्रय', 'पुत्रा' 'परमदुर्मेधस वसुशक्तिरुग्रशक्तिरनेकशक्तिश्चेति नामानो बभूवु** (पंचतन्त्र)। **दु खेन तप्यन्ते 'त्रयो' 'न' पितर' 'अपरे'** (उ० र ५)।

**विशेष**—बाण, सुबन्धु और दण्डी ने पुरुषो, स्थानो, नगरो, नदियों आदि के वर्णन मे इस विस्तार की पराकाष्ठा कर दी है। वस्तुत विस्तार उसी सीमा तक किया जाना चाहिए जहा तक वाक्यार्थ जटिल अथवा दूरूह न हो जाय। जब वाक्यार्थ जटिल होता हुआ दिखाई पडे, तो वाक्य को दो या दो से अधिक वाक्यों मे विभक्त कर देना चाहिए।

## कर्म अथवा विधेय की पूर्ति

३५७—यदि विधेय कोई सकर्मक क्रिया, या गत्यर्थक क्रिया हो, या कोई ऐसी क्रिया हो जो कर्मप्रवचनीय के बल से सकर्मक हो जाती हो, तो

वह कर्म द्वारा पूरी की जाती है। वह कर्म या तो संज्ञापद हो सकता है, या सर्वनाम पद या कोई भी ऐसा शब्द जो संज्ञा का काम कर सकता हो,

जाबालिम् अपश्यम् (काद.), आखडल काममिद बभाषे (कुमार० ३।२)। याति अस्त-शिखर पतिरोषधीनाम् (शकु ४) विचचार दावम् (रघु० २।८)। पत्ति पदातिम् अभ्यपतत् (रघु० ७।३७)।

३५८—कर्म का भी विस्तार उसी प्रकार किया जा सकता है जिस प्रकार कर्ता का—त्र्यम्बक सयमिन ददर्श (कुमार ३।४४)। विलपत कपिजलमश्रौपम् (काद)। त तस्थिवास नगरोपकण्ठे (विशेषण का क्रिया विशेषण) प्रत्युज्जगाम क्रथकैशिकेन्द्र (रघु० ५।६१)। प्रकृतिवक्र स कस्य अनुनय प्रतिगृह्णाति (शकु ४)। इदम् अव्याजमनोहर वपु तप क्षम साधयितु य इच्छति (शकु १)। मेघम् आश्लिष्टसानुम् वप्रक्रीडा-परिणतगजप्रेक्षणीय ददर्श (मेघ० २)। अवनिपतिस्तु प्रतीहार्या निर्दिश्यमानां तां प्रावृषमिव घनकेशजालाम् अलकोद्भासिनीम् अचिरोपरूढयौवनाम् अतिशयरूपाक्रांतम् अनिमेषलोचनो ददर्श (काद)।

३५९—बनाना, नाम रखना, पुकारना, सोचना, विचारना नियुक्तकरना-इन अर्थों का द्योतित करने वाली धातुओं का, मुख्यकर्म के अतिरिक्त, एक पूरक कर्म भी होता है, जैसे,

तमात्मजन्मानम् अज चकार (रघु० ५।३६)। आज्ञामपि वरप्रदान मन्यन्ते, दर्शनप्रदानमपि अनुग्रह गणयन्ति (काद)। प्रत्याख्यानमपि ईर्षा सभावयति आक्रोशमपि परिहासम् आकलयति

दोपसकीर्तनमपि, स्मरणोपायम् अवगच्छति, अवज्ञामपि अनियन्त्रण प्रणयम् उत्प्रेक्षते ( काद )

३६०—दुह्, याच्, शास्, नी इत्यादि धातुएँ दो कर्म लेती हैं। उनमे से एक प्रधान कर्म कहलाता है, दूसरा गौण कर्म अथवा एक प्रत्यक्षकर्म, दूसरा अप्रत्यक्ष कर्म अथवा अकथित कर्म (सक्शन४० देखिये)

३६१—अर्थदृष्टि से सकर्मक की श्रेणी मे गिनी जाने वाली धातुएँ कभी कभी नियम-विशेष के कारण चतुर्थ्यन्त, अथवा पञ्चम्यन्त अथवा षष्ठ्यन्त अथवा सप्तम्यन्त पद लेती है। ऐसे प्रयोगो को विधेय का पूरक समझना चाहिए, क्योंकि उनके बिना अर्थ पूर्ण नही होता,

स्पृहयामि दुर्ललिताय 'अस्मै' ( शकु ७ ७ )। कुप्यन्ति हितवादिने' ( काद० )। असूयन्ति मह्य प्रकृतय ( विक्रमो० ४ )। पापात्' जुगुप्सते ( महाभाष्य )। स्मरसि वा तस्य प्रदेशस्य' ( उत्तर० ६ )। स म्निह्यति आवयो ( उत्तर०६ )।

३६२—देना, बतलाना, प्रतिज्ञा करना, भेजना—इन अर्थों का बोध कराने वाली धातुओ के योग मे चतुर्थी होती है, और चतुर्थी मे वह व्यक्ति रक्खा जाता है जिसे कोई चीज दी जाती है अथवा जिसमे कोई चीज बनाई जाती है। इस चतुर्थ्यन्त पद को अप्रत्यक्ष कर्म अथवा अकथित कर्म समझना चाहिए,

'विप्राय' गा प्रतिश्रृणोति, भोजेन दूतो 'रघवे' विसृष्ट ( रघु० ५। ३० ), 'तस्मै' प्रस्तुतमाचचक्षे (रघु० ५।१६ )।

विशेष—एक दूसरे दृष्टिकोण मे ये विधेय के विस्तार कहे जा सकते हैं, और उनसे इन प्रश्नो का उत्तर मिलता है—'किसको', 'कहाँ'।

## विधेय

३६३—विधेय मे अकेली क्रिया हो सकती है, जैसे, 'आज्ञापयतु' भवान् (शकु ४)। त्वया सह गौतमी 'यास्यति' ( शकु ४ )।

३६४—गम्यमान अथवा प्रत्यक्ष 'अस्'-धातु-युक्त कोई विशेषण पद या विशेष्यपद या संज्ञापद भी विधेय हो सकता है, जैसे,

अविवेक परमापदां 'पदम्' (किरात० २। ३०)। त्वम् असि महम्सा 'भाजनम्' (मालती० १)। वत्से, किमेवं 'कातरा' 'असि' (शकु० ४)। गृहीत' सन्देश (शकु० ४)। 'अवहितोऽस्मि' (शकु० ७)। तेन हि श्रेयांसि 'अनतिक्रमणीयानि' (शकु० ७)। 'दूषिता स्थ' 'परिभूता स्थ' रामहतकेन (उत्तर० १), व्यावर्तितुरगश्च पुनः चिंतितवान् (काद०)।

(क) अस् धातु अपूर्ण विधेया धातु है, अतः अर्थ को पूर्ण करने के लिए इसे एक संज्ञापद अथवा सर्वनामपद की अपेक्षा होती है, जैसा कि ऊपर के उदाहरणों में है। परन्तु जब यह 'अस्तित्व' अर्थात् 'सत्ता' का बोध कराती है, तब यह अकेली ही आती है, जैसे,

हिमालयो नाम नगाधिराज अस्ति (कुमार० १। १)।

इसी प्रकार, भू धातु भी जब अस्तित्व का बोध कराती है तब अकेली ही आती है, परन्तु जब 'होना' अर्थ में आती है तब अपूर्णविधेया रहती है, जैसे, 'बभूव' योगी किल कार्तवीर्य (रघु० ६। ३८)।

(ख) कभी कभी अस्, विद्, और वृत् बिल्कुल ही नहीं प्रकट रहती, मातले कतमस्मिन् प्रदेशे मारीचाश्रम (शकु० ७)। इस वाक्य में अस्ति अथवा विद्यते छिपा हुआ है।

३६५—अपूर्णविधेया धातुएँ और भी हैं, जैसे, भू, वृत् (होना) जन् (होना), भा (मालूम पड़ना), दृश् कर्मवाच्य (मालूम पड़ना), लक्ष् कर्मवाच्य (मालूम पड़ना)। विधेयको पूर्ण करने के लिए इन्हें भी संज्ञापद अथवा विशेषणपद की अपेक्षा होती है, जैसे,

तेऽपि 'यथोक्ता' संवृत्ता' (पंचतंत्र)। तव प्रजासु विडौजाः 'प्राज्यवृष्टिर्भवतु (शकु० ७)। ईदृशानां विपाकोऽपि 'परमाद्भुतो' जायते' (उत्तर० ३)। स्वात्यां सागरशुक्तिसंपुटगत (पय)

सन्मौक्तिक जायते ' ( भर्तृहरि० नीति० ६७ )। अय पाण्ड्य' 'अद्रिराज ' इवाभाति ( रघु० ६। ६० )। 'मदनक्लिष्टा' इयमालक्ष्यते ( शकु ३ )।

(क) मन् ( समझना, सोचना ) तथा कृ धातु जब कर्मवाच्य में रहती हैं तब उनका भी प्रयोग इसी प्रकार होता है, जैसे,

नलिनी 'पूर्वनिदर्शन मता ( रघु० ८। ४५ )। व्याघ्र 'कुक्कुट कृत ' ( हितोप० )। स 'सेनापति. नियुक्तः'।

इसलिए जब विधेय सज्ञापद अथवा विशेषणपद होता है तब उसी विभक्ति म रक्खा जाता है जिस विभक्ति मे कर्ता रहता है, अथवा वह प्रथमा विभक्ति मे रक्खा जाता है ।

३६६—कभी कभी अव्ययो का प्रयोग करके 'वाक्य सक्षिप्त रूप मे प्रकट किया जाता है और उद्देश्य तथा विधेय दोनों ही गम्यमान रहते हैं, प्रकट नही रहते, और उन्ही अव्ययो में मे निकालकर प्रकट किए जाते हैं, जैसे

'धिक्' ता च त च='सा' च 'स' च 'निन्द्यौ' स्त ।

शिवाय 'नम '=शिव प्रणम्यते ।

अल यत्नेन=प्रयत्नेन न 'किमपि' साध्यम् इत्यादि।

३६७—प्राय. अव्यय पद विधेय का काम देते ह, जैसे,

विषवृक्षोऽपि छेत्तुम् असाम्प्रतम्' (कुमार २। ५५)=न युज्यते।

पवन आलिङ्गितु 'शक्यम्' ( शकु ३ )=शक्यते। 'कष्ट' खलु अनपत्यता (शकु ६)। मनसिजरुजं सा वा दिव्या मम 'अलम' अपोहितुम् ( विक्रमो० ३ )।

## विधेय का विस्तार

३६८—विधेय का विस्तार निम्नलिखित साधनों से हुआ करता है—

(१) अव्यय द्वारा

(२) जिस किसी में क्रियाविशेषण अव्यय की क्षमता हो उसके द्वारा

(३) जो भी क्रियाविशेषण अव्यय के तुल्य हो उसके द्वारा

काल—स्थान—प्रकार—वाचक क्रियाविशेषण अव्यय, विस्मयादि बोधक अव्यय, बहुत से सुबन्त पद (प्रथमा, द्वितीया, षष्ठी, और सम्बोधन के अतिरिक्त) इसी प्रकार का कार्य करते हैं अर्थात् विधेय के विस्तार के काम में आते हैं। संज्ञापदों के साथ परसर्गों (कर्म प्रवचनीयों) अथवा क्रियाविशेषणों का जुड़ जाना भी विधेय के विस्तार के काम में आता है, मया सार्धम्, रामाद् विना, वृक्षाणामध, राज्ञः समक्षम् आदि।

३६९—विधेय के विस्तार का चार श्रेणियों में वर्गीकरण हो सकता है—

(१) समय वाचक

(२) स्थानवाचक

(३) प्रकारवाचक

(४) कार्य तथा कारणवाचक

## कालवाचक क्रियाविशेषण विस्तार

३७०—कालवाचक क्रियाविशेषणवाले विस्तारों से निम्नलिखित वस्तुएँ प्रकट होती हैं—

(१) कब—इस प्रश्न का उत्तर प्रकट होता है, जैसे,

द्वयं गतं सम्प्रति शोचनीयताम् (कुमार० ५। ७१) 'ततः' प्रविशति कञ्चुकी (शकु० ५)। यास्यति 'अद्य' शकुन्तला (शकु० ४)। आषाढस्य 'प्रथमदिवसे' मेघं ददर्श (मेघ० २)। 'अनुदिवसम्' परिहीयसे अङ्गैः (शकु० ३)। गिरिशमुपचचार 'प्रत्यहम्' सा सुकेशी (कुमार० १। ६०)

'अस्मात् परं' को न कुले निवपनानि नियच्छति ( शकु ३ )।

विशेष—(क) भावसप्तमी से बने हुए वाक्यांश प्रायः कालवाचक क्रियाविशेषण अव्यय माने जा सकते हैं,

'अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे दृष्टिं न नन्दयति ( शकु ४ )। 'गते च केयूरके' चन्द्रापीडमुवाच ( काद० )।

(ख) इसीप्रकार क्त्वान्त या ल्यबन्त शब्द भी कालवाचक क्रियाविशेषण हैं। वे जब समापिका क्रिया के साथ आते हैं तब उनका कर्ता होता है,

'प्रतिनिवृत्य' तं प्रदेशमवलोकयम् ( काद० )। नातिचिरेण तच्छ्रुत्वा सुचिरं 'विचार्य' केयूरकमाहिणोत् ( काद० ) अचिरात् पावनं तनयं प्रसूय' मम विरहजां शुचं न गणयिष्यसि ( रघु ८. ९८ )

(२) 'कब तक' 'कहाँ तक'—इस प्रश्न का उत्तर, जैसे 'नयति दिवसानि' प्रजागरकृशो लक्ष्यते ( शकु० )। तत्तदृष्टिं 'सुचिरं' अचिरम् ( काद० )। 'क्रोशं' कुटिला नदी ( सि० कौ० )। स्तम्भयत्यागं यावत् अवेक्षस्व ( उत्तर० ७ )।

(३) 'कितनी बार'—इस प्रश्न का उत्तर जैसे,'वारंवारं तिरयति दृशोरुद्गमं बाष्पपूरः ( मालती० १ )। अह्नो 'द्विः' भुङ्क्ते ( सि० कौ० )। तान्यन्वभूत् अनति 'बहुशः' चन्द्रपादान् ( मालती० ३ )

स्थानवाचक क्रियाविशेषणविस्तार

३७२—स्थानवाचक क्रियाविशेषण निम्न तीन बातें सूचित करते हैं—

(१) किसी स्थान में रहना। इससे 'कहाँ'—इस प्रश्नका उत्तर मिलता है, जैसे,

अस्ति 'अवन्तिषु' उज्जयिनी नाम नगरी ( काद० )। 'कस्मिंश्चिद्-

धिष्ठाने कोलिकरथकारौ प्रतिवसत स्म (पंचतन्त्र)। एष कण्वस्य महर्षे 'उपमालिनीतीरम्' आश्रमो दृश्यते (शकु १) अस्ति 'उत्तरस्यां दिशि' नगाधिराज (कुमार० १।१)। निर्मल-नख-लग्नमूर्ति 'पादयो' पतति (काद०)।

(२) किसी स्थान की तरफ गति प्रकट करता है, और 'किस तरफ' —इस प्रश्न का उत्तर देता है, जैसे,

सा तरलिका 'क्व' गता (काद०)। 'नीचै' गच्छति 'उपरि' च दशा (मेघ० ११२)। 'गृहाभिमुख' प्रतस्थे (हितो०)। मदोद्धता 'प्रत्यनिल' विचेरु (कुमार० ३। ३१)।

(३) किसी स्थान से पृथक्त्व प्रकट करता है, और "कहाँ से' —इस प्रश्न का उत्तर देता है, जैसे, यदि मे 'दर्शनपथात्' नापयाति (काद०)। 'वनस्पतिभ्य' कुसुमान्याहरत (शकु ४)। 'कुत' इदं मौध-मागतम् (दशकुमार०२।५)।

विशेष—कारण अथवा अभिप्राय के अतिरिक्त पंचमी के शेष अर्थ इसी प्रकार प्रकट किए जाते हैं, 'तीक्ष्णात्' उद्विजते (मुद्रा० ३)। 'दिवाकरात्' अन्धकार रक्षति (कुमार० १। १२)।

## प्रकारवाचक क्रियाविशेषण विस्तार

३७२—प्रकारवाचक क्रिया-विशेषणविस्तार निम्नलिखित बातें प्रकट करते हैं—

(१) किसी क्रिया का प्रकार या ढंग (कैसे), चन्द्रापीड 'सविनयम्' अवादीत् (काद०)। माधव 'सलज्जम्' अधोमुखस्तिष्ठति (मालती१)। को वा दुर्जनवागुरासु पतित 'क्षेमेण' यात पुमान् (पंचतन्त्र)। तडिद 'कणशो' विकीर्यते (कुमार० ४।२७)। 'त्वरितम्' अपसर्पता तरुगहनेन (उत्तर० ४)। अथवा 'कथ' भवान् मन्यते (माल-

विका०१)। 'अयत्नेनैव' उपहासास्पदतामीश्वरो नयति जनम् (काद०)। 'प्रकृत्या' यद् वक्रम् (शकु० १)।

(२) मात्रा,

तमवेक्ष्य सा 'भृश' रुरोद (कुमार० ४।२६)। स राज्य गुरुणा दत्त प्रतिपद्य 'अधिक' बभौ (रघु० ४।१)। 'यावच्छक्यं' सुहृदसवो रक्षणीया (काद)।

विशेष—तुलनावाचा पचम इस वर्ग में रक्खी जा सकती है,

'मोहात्' प्रबोध कष्टतरोऽभूत् (रघु०१४।५६)। गृह 'कान्तारात्' अतिरिच्यते (पचतत्र)।

(३) किसी क्रिया का करण या साधन,

सचूर्णयामि 'गदया' न सुयोधनोरू (वेणी० १)। क्वचित् 'पथा' सचरते सुराणाम् (रघु० १३।१९)। विसृजति 'हिमगर्भै मयूखै' अग्निमिन्दु (शकु० ३)।

विशेष—किसी क्रिया के कर्ता का बोध कराने वाली तृतीया इस वर्ग मे रक्खी जा सकती है,

जनपदहितकर्ता त्यज्यते 'पार्थिवेन' (पचतत्र)। 'त्वय 'चन्द्रमसा' च अतिसन्धीयते कामिजनसार्थ (शकु० ३) इदम् 'अशरणै' अद्याप्येव रुद्यते (उत्तर ३)।

अथवा इस प्रकार की तृतीया कर्ता के खाने मे रक्खी जा सकती है क्योंकि वह क्रिया के कर्ता का बोध कराती है।

(४) सहगामिनी परिस्थितियाँ,

'त्वया सह निवत्स्यामि (उत्तर० २)। रत्न समागच्छतु 'काचनेन' (रघु० ६।७९)। 'जटाभि' तापस (भवति अथवा ज्ञायते)। 'महत्या सेनया' निर्जगाम। स्मर क्षणमप्युत्सहते न 'मा विना' (कुमार० ४।३६)।

## ... क्रियाविशेषण विस्तार

२७३—इस प्रकार के विस्तार से निम्नलिखित बातें ज्ञात होती हैं—

(१) किसी क्रिया का कारण, या अभिप्राय (तृतीया तथा पञ्चमी से सूचित होने वाले अर्थ)—

'दौर्मन्त्र्यात्' नृपति विनश्यति (भर्तृहरि नीति ४२) 'अन्तर्गत-चिन्तया आत्मानमपि नैषा विभावयति (शकु ४) 'आवेगस्खलितया गत्या प्रभ्रष्टं मे कुसुमभाजनम् (शकु ) कापुरुषः 'स्वल्पकेनापि' तुष्यति (पञ्चतन्त्र)। लज्जेऽहम् 'अनेन प्रागल्भ्येन' (... । 'स्नेहा' जगन्ति पुरुषा ... उत्तर० १)। ... 'त्वया' लोका (उत्तर० १)।

(२) किसी क्रिया का अन्तिम कारण अथवा निमित्त, जैसा कि चतुर्थी से अथवा तुमुन्नन्त से सूचित होता है,

'समिदाहरणाय प्रस्थिता वयम्' (शकु १) ... श्रयति बहुशो 'मृत्यवे' चन्द्रपादान् (... ) ... 'प्रकृतिहिताय' पार्थिवः (शकु ७)। 'अशीत्या प्रावृतान्तः कृते' कि नारभामि ... (भर्तृहरि० वैराग्य० ३ )। तद् गच्छ 'सिद्ध्यै' (कुमार० ३। १८)। 'लोकान् उद्धर्तुं' ... (कुमार० ...। ५२)। ... 'साधयितुं' ... (रघु० ५।२५) 'छेत्तुं वज्रमणीन्' शिरीष-कुसुमप्रान्तेन सन्नह्यते (भर्तृहरि० नीति० ६)।

(३) विरोध (*Concession*) ...

'तथापि ...' (मालविका० १)। नन्दा हता 'पश्यतो राक्षसस्य' (मुद्रा० ३)

२७४—एकविंशतितम पाठ से लेकर अष्टाविंशतितम पाठ तक में जिन अव्ययों का निरूपण किया गया है वे वाक्य-विश्लेषण में या तो

छोड़ दिए जाते हैं या प्रकारवाचक क्रियाविशेषण विस्तार के खाने मे रक्खे जा स ते है।

३७५—ऊपर जो चार विधियाँ बताई गई हैं उनमें से दो को या दो से अधिक को एक मे मिलाकर विधेय का विस्तार कि ा जा सकता है। सेक्शन ३५३ से लेकर सेक्शन ३५६ तक मे जिन विधियो का उल्लेख किया गया है उनमे से किसी एक का प्रयोग करके विस्तारों का और भी आगे विस्तार किया जा सकता है।

'दिष्ट्या' 'धर्मपत्नी समागमेन' 'पुत्रमुखदर्शनेन' चायुष्मान् वर्धते (शकु ७)। अयं च 'मन्दाकिनी चित्रकूटवनविहारे' 'सीतादेवी मुद्दिश्य' रघुपते श्लोक (उत्तर० ६)। 'नियत 'स्वयमेव' इयम् 'अतिविनीततया' 'कतिपयैरेव दिवसै' कुमारमाराधयिष्यति (काद०)। 'प्रत्यूषे' 'उत्थाय' 'तेनैव क्रमेण' 'अनवरतप्रयाणकैः प्रतिप्रयाणकम् उपचीयमानेन सेनासमुदायेन' जर्जरयन् वसुन्धरां प्रातिष्ठत (काद)।

'अथ' राजवाहन 'पुष्पोद्भवेन सह' 'स्वमन्दिरमुपेत्य' 'सादर' 'बालचन्द्रिकामुखेन' 'निजवल्लभायै' 'सगमोपाय वेदयित्वा,' कौतुकाकृष्टहृदय. अतिष्ठत् (दशकुमार)।

## साधारणवाक्यों का वाक्यविश्लेषण

३७६—साधारणवाक्यो का वाक्य-विश्लेषण करने की यह विधि है —

१—पहिले वाक्य का कर्ता ढूढ निकालिए।

२—तब कर्ता के विस्तारों को ढूढ लीजिए।

३—विधेय (प्रधान क्रिया) को ढूढिये।

४—कर्म बतलाइए (यदि प्रधान क्रिया सकर्मक है)।

५—कर्म के विस्तारों को लिख डालिए।

६—अन्त में, प्रधान क्रिया के क्रियाविशेषणात्मक विस्तारों को लिख दीजिए।

## उदाहरण

(१) विश्व मरात्मजा देवी राज्ञा त्यक्ता महावने।
प्राप्तप्रसवमात्मानं गङ्गादेव्या विमुञ्चति॥ (उत्तर० ७)

(२) एवं क्रमेण समारूढयौवनारम्भं परिसमाप्तसकलकलाविज्ञानमवगम्यानुमोदितमाचार्यैश्चन्द्रापीडमानेतुं राजा बलाधिकृतं बलाहकनामानं बहुतुरगबलपदातिपरिवृतं प्राहिणोत्। ( कादम्बरी )

(३) पारसीकांस्ततो जेतुं प्रतस्थे स्थलवर्त्मना।
प्राप तालीवनश्याममुपकण्ठं महोदधेः॥ (रघु० ४।३४)

(४) पुराणस्य कवेस्तस्य चतुर्मुखसमीरिता।
प्रवृत्तिरासीच्छब्दाना चरितार्था चतुष्टयी। (कुमार २२।१)

(५) एवंगते मन्त्रिणि राजनि च कामवृत्ते चन्द्रपालितोऽभ्येत्य विविधाभिः क्रीडाभिर्विहारभद्रमात्मसादकरोत्।
(दशकुमार २।८)

(६) कौशिकेन स किल क्षितीश्वरो राममध्वरविघातशान्तये।
काकपक्षधरमेत्य याचित (रघु० ११।१)

(७) धिक् सानुज कुरुपति। (वेणीसंहार ३)

| कर्ता | कर्ता का विस्तार | क्रिया | कर्म | कर्म का विस्तार | क्रिया के क्रिया-विशेषण विस्तार |
|---|---|---|---|---|---|
| १. देवी, | विश्वभरात्मजा, राज्ञा महा-वने त्यक्ता | विसृजति | आत्मानं | प्राप्तप्रसव | गङ्गादेव्या (स्थान) |
| २. राजा | | प्राहिणोत् | बलाधिकृत | बहुतुरगबलपदाति परिवृत (विशेषण) ब...कनामान | एवं क्रमेण समा-विशा नमवगम्य (काल), आ त्र यैरनुमोदितं चन्द्रापी डमानेतु (अभिप्राय) |
| ३ जयी | तास्मान् पौरस्त्यान् जनपदान्समाक्रामन् | प्राप | उपकंठ | ताल वनश्याम (विशे) महोदधे (सम्बन्धे षष्ठी) | |
| ४ प्रवृत्ति | ...दाना, चतुष्यी तस्य पुराणस्य कवेश्च मुंख-समीरिता | चरितार्था आसीत् | | | |
| ५ चन्द्र-पालित | | आत्मसात् अकरोत् | विहारचन्द्र | | एवम् अभ्येत्य (काल) विविधाभि क्रीडाभि (साधन) |
| ६ क्षितीश्वर कौशिकेन (कर्ता) | स (सार्वनामिक विशेषण) | याचित | राम (गौण कर्म) | काकपक्षधरं | एत्य (काल), किल (प्रकार), अध्वर-विघातशान्तये (अभिप्राय) |
| ७ कुरुपति | मानुज | धिक्—निद्य | | | |

## मिश्रित वाक्य

३७७—मिश्रित वाक्य मे एक प्रधान कर्ता होता है और एक प्रधान क्रिया, पर इनके अलावा दो या दो से अधिक आश्रित क्रियाएँ हो सकती हैं।

'यस्यार्था' तस्य मित्राणि (हितोप)। 'इतश्चेतश्च निर्गतो युवराज इति' आकर्ण्य आचकम्पे मेदिनी (कादम्बरी)।

जिस अंश मे प्रधान कर्ता और प्रधान क्रिया होते हैं उसे प्रधान उपवाक्य कहते हैं, शेष को आश्रित अथवा अधीन उपवाक्य कहते हैं।

३७८—आश्रित उपवाक्य तीन प्रकार के होते है—सज्ञा उपवाक्य, विशेषण उपवाक्य, और क्रिया विशेषण उपवाक्य।

वस्तुत मिश्रित वाक्य साधारण वाक्य का एक विस्तृत स्वरूप है, जिसमे सज्ञा उपवाक्य सज्ञा का प्रतिनिधित्व करता है, विशेषण उपवाक्य विशेषण का और क्रिया विशेषण उपवाक्य क्रियाविशेषण का।

## संज्ञा उपवाक्य

३७९—सज्ञा उपवाक्य सज्ञा के स्थान पर आता है, अर्थात्, वह निम्नलिखित कार्य करता है—

(१) प्रधान क्रिया का कर्ता
(२) प्रधान क्रिया का कर्म
(३) प्रधान उपवाक्यस्थित किसी सज्ञापद का समानाधिकरण
(४) प्रधान उपवाक्य मे आई हुई किसी क्रिया का कर्म —

(१) 'अय पुनरविरुद्ध प्रकार इति' वृद्धेभ्य श्रूयते (उत्तर ४) 'श्रूयते' (का कर्ता)

'स स पापादृते तासां दुष्यत ' इति घुष्यताम् (शकु . ६) —'घुष्यताम्' का कर्ता

(२) प्रकाश निगतस्तावदवलोकयामि 'कियदवशिष्ट रजन्या. इति' (शकु ४)—'अवलोकयामि' का कर्म

(३)'अप्रतिष्ठे रघुज्येष्ठे का प्रतिष्ठा कुलस्य न ' । इति दु.खेन तप्यन्ते त्रयो न पितरोऽपरे ॥ (उत्तर०५)-दु खेन का समानाधिकरण।

तस्य कदाचित् चिन्ता समुत्पन्ना 'यदर्थोत्पत्युपायाश्चिन्तनीया' (पचतन्त्र)—चिन्ता का समानाधिकरण।

(४) 'तथापि सुहृदा सुहृदसन्मार्गप्रवृत्तो यावच्छक्तितो निवारणीय इति मनसा अवधार्य अब्रवम् (कादम्बरी)—अवधार्य का कर्म।

३८०–सज्ञा उपवाक्य प्रधानतया 'इति' से सूचित किए जाते हैं, अथवा यथा, यद् से आरम्भ होकर कभी इति से और कभी बिना इति के समाप्त होते हैं।

अकथितोपि ज्ञायत एव यथाय तपोवनस्याभोग इति (शकु .१), सत्योय जनप्रवादो यत्सम्पत् सपदमनुबध्नातीति(कादम्बरी)। अविज्ञातमदनवृत्तान्ता 'क गच्छामि इति' नाज्ञासिषम् (कादम्बरी)।

विशेष—कभी कभी इति का प्रयोग नहीं भी होता, जैसे, कथय 'सत्सगति पुसा कि न करोति' (भर्तृहरि० नीति० २८)। एतत् कल्याणाभिनिवेशिन श्रुतिविषयमापतितमेव 'यथा बिबुधसद्मन्यप्सरसो नाम कन्यका सन्ति' (कादम्बरी)।

## विशेषण उपवाक्य

३८१–विशेषण उपवाक्य किसी सज्ञा वा सर्वनाम की विशेषता बताता है, और विशेषणधर्मा होता है। इसका आरम्भ सम्बन्धवाचक सर्वनाम "यद्" के स्वरूपों (यावत्, यादृश आदि) से होता है।

विशेषण उपवाक्य निम्नलिखित के साथ प्रयुक्त हो सकता है—

(१) कर्ता के साथ, 'यदालोके सूक्ष्म व्रजति सहसा तद् विपुलताम् (शकु १)।

तत्तस्य किमपि द्रव्य 'यो हि यस्य प्रियो जन' (उत्तर० २)।

'अहेतु पक्षपातो य' तस्य नास्ति प्रतिक्रिया (उत्तर० ५)—कर्ता की विशेषता बताने वाले 'तस्य' की विशेषता बता रहा है।

(२) कर्म के साथ, 'यस्यागम केवलजीविकायै' त ज्ञानपण्य वणिज वदन्ति (मालविका १) स तावदभिषेकान्ते स्नातकेभ्यो ददौ वसु। यावतैषां समाप्येरन् यज्ञा पर्याप्तदक्षिणा ॥ रघु० १७।१७।

(३) प्रधान क्रिया के विस्तार के साथ, युगान्तकालप्रतिसहृतात्मनो जगन्ति यस्या सविकाशमासत। तनौ ममुस्तत्र न कैटभद्विषस्तपोधनाभ्यागमसम्भवा मुद: (शिशुपाल० १।२३)—'ममु' का विस्तारसूचक शब्द 'तनौ' की विशेषता बताता है।

विशेष—विशेषण उपवाक्य की स्थिति को ध्यानपूर्वक देखिये। यह या तो प्रधान उपवाक्य के पहिले आता है या बाद मे आता है।

३८२–प्राय विशेषण उपवाक्य विशेषणधर्मी समासों द्वारा सूचित किए जाते हैं,

अर्थात् व्यधिकरण तत्पुरुष और कर्मधारय समास तथा बहुव्रीहि समास द्वारा और क्तप्रत्ययान्त, क्तवतु-प्रत्ययान्त, कृत्यप्रत्ययान्त, शब्दो द्वारा—

तन्नन्दिनीं सुवृत्ता नामैतस्मात् द्वीपादागतो रत्नोद्भवो नाम रमणीयगुणालयो भ्रांतभूवलयो व्यवहारी उपयेमे (दशकुमार) यहाँ पर आगत और भ्रान्तभूवलय यो द्वीपादागच्छत् और यो भूवलय बभ्राम—इन विशेषण उपवाक्यो का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।

## क्रिया विशेषण उपवाक्य

३८३—क्रिया विशेषण उपवाक्य क्रियाविशेषण अव्यय का समान-धर्मी होता है और क्रिया की विशेषता बतलाता है। यह क्रियाविशेषण अव्यय के स्थान पर आता है और उसी की रचना के समान इसकी भी रचना होती है। क्रिया विशेषण अव्यय ही के समान यह भी काल स्थान, प्रकार, कारण और कार्य सूचित करता है।

३८४— कालवाचक-क्रिया-विशेषण उपवाक्य प्रधान उपवाक्य के अन्दर आई हुई क्रिया का काल बताता है।

त्वर निवेदय 'यावत् दृष्ट्यन्तर्गतो न भवसि' (पञ्च)। अत्रैव तावद्रथं स्थापय यावदवतरामि (शकु १ ।यदा हर पार्वतीं परिणेष्यति तदा स्मर स्वेन वपुषा नियोजयिष्यति (कुमार० ४।४)। यावदसौ पान्थ सरसि स्नातुं प्रविशति तावत् महापङ्के निमग्न (हितोप०)।

३८५— स्थानवाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य किसी स्थान मे किसी वस्तु की स्थिति अथवा किसी स्थान के प्रति किसी वस्तु की गति सूचित करते हैं। 'यत्र यत्र धूम. तत्र तत्र वह्नि'।

३८६—प्रकार-वाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य निम्नलिखित बातें सूचित करते हैं—

(१) समानता—यह इव और यथा से द्योतित की जाती है (इव और यथा इतरेतरसम्बन्धी हैं तथा और तद्वत् के), जैसे, पुत्रं लभस्वात्मगुणानुरूपं भवन्तमीड्यं भवत पिता इव' (अलभत)—रघु०५ ।६४। आसीदियं दशरथस्य गृहे 'यथा श्री' (अस्ति)- उत्तर०४।

यथा काष्ठ च काष्ठ च समेयाता महोदधौ। समेत्य च व्यपेयाताम्' तद्वद् भूत-समागम (हितो ८४)

विशेष—यथा अथवा इव से प्रारम्भ किए हुए उपवाक्य प्रायः सङ्क्षिप्त रहते हैं।

(२)मात्रा अथवा सम्बध (समानता, अगाधता आदि)—

'वितरति गुरु. प्राज्ञे विद्या यथैव तथा जडे (वितरति) उत्तर०२
'यथा यथा अम्बुधाराभिराहन्यते तथा तथा स्फुरति मदन-पावक (कादम्बरी)

३८७—बहुव्रीहि समासो को क्रियाविशेषण अव्यय के तौर पर प्रयोग करके भी प्रकार-वाचक क्रियाविशेषण उपवाक्यो को सूचित करते हैं, जैसे, राजा सविलक्षस्मितम् आह यथा विलक्षस्मित स्यात्' तथा आह। 'उद्योतिताम्बरदिगन्तरम् अशुजाल' शक्ति पपात हृदि तस्य महासुरस्य (कुमार० १७ ५)।

३८८—काय-कारण वाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य निम्नलिखित बाते सूचित करते हैं —

(१) कारण,

'वत्से कठोरगर्भेति नानीतासि (उत्तर०१)। ममापि तर्हि धर्मतस्तथैव 'यत प्रियवयस्य इत्यात्थ' (उत्तर० ५) इत्यादि नन्विह निरर्थकमेव 'यस्मात्कामो जृम्भितगुण' (मालती. १) कमपरमवश न विप्रकुर्यु 'विभुमपि त यदमी स्पृशन्ति भावा.' (कुमार६। ६५)। कच्चिद् भर्तु. स्मरसि रसिके 'त्व हि तस्य प्रियेति' (मेघ० ८८)।

(२) शर्त,

श्रूयतां 'यदि कुतूहलम्' (काद)। 'अथ तु वेत्सि शुचिव्रत-मात्मन'' पतिकुले तव दास्यमपि क्षमम् (शकु ५)। 'जात्या चेद्-वध्योहम् एषा सा जाति परित्यक्ता ( वेणी. ३ )

(३) Concession,

'काममनुरूपमस्या वपुषो वल्कल' न पुनरलकारश्रिय न पुष्यति (शकु .१)। 'नेत्रे पुनर्यद्यपि रक्तनीले, तथापि सौभाग्यगुण स एव (उत्तर ६)।

(४) अभिप्राय,प्रयोजन,

दोष तु मे कचित् कथय 'येन स प्रतिविधीयेत ( उत्तर १)। 'तदागच्छ यथा दर्शयामि' (पचतत्र)। भो धीर गच्छ 'मा खलु तत्रभवती धारिणी विसवदिष्यति' (मालविका.१) अस्य शरीरस्य मा विनाशो भूदिति' मयेदमुत्क्षिप्य समानीतम् (काद)।

(५) परिणाम,

कुमार, तथा प्रयतेथा 'यथा नोपहस्यसे जनै. ( कादम्बरी )' स ऋत्विजस्तथानर्च 'यथा साधारणीभूत नामास्य धनदस्य च' (रघु० १७। ८०) सा वेणुलतामादाय सभाकुट्टिममाजघान 'येन सकलमेव तद्राजक तदभिमुखमासीत्' (कादम्बरी)

३८९—सज्ञा, विशेषण, अथवा क्रियाविशेषण उपवाक्य की द्विरुक्ति कर मिश्रित वाक्य का विस्तार किया जा सकता है। परन्तु उस दशा म वह वाक्य सयुक्त वाक्य हो जायगा, जिसके प्रत्येक अशभूत वाक्य मिश्रित वाक्य होगे।

'कथ स त्वया दृष्ट ''कि किमभिहितासि तेन''कियत कालमव-

स्थितास्मि तत्र' 'कियदनुसरन्नस्मानसावागत' इति पुन पुन पर्यपृच्छम् (कादम्बरी) 'यस्य चेन्द्रियाणि सन्ति' 'य पश्यति वा' 'श्रुतमवधारयति वा' स खलूपदेशमर्हति (काद०)।

३६०—पुनश्च, आश्रित उपवाक्यो में से दो या दो से अधिक एक ही मिश्रित वाक्य मे आ सकते हैं,

क्रोध प्रभो संहर संहरेति (संज्ञा) यावद् गिर खे मरुता चरति (क्रिया विशेषण) तावत् स वह्नि भवनेत्रजन्मा भस्मावशेष मदनं चकार ॥ (कुमार० ३ । ७२ )।

राष्ट्रमुख्यमाहूयाख्यातवान् । योऽसौ अनंतसीर प्रहारवर्मण पक्ष इति निनाशयिषित. (विशेषण) सोऽपि पितरि मे प्रकृतिस्थे किमिति नश्येतेति (संज्ञा)—दशकुमार।

## आश्रित उपवाक्य बनाने वाले शब्द

संज्ञा उपवाक्य—'इति', 'यथा', इति-सहित अथवा इति-रहित 'यद्'।

विशेषण उपवाक्य—यद् शब्द के रूप।

क्रियाविशेषणउपवाक्य—(१) कालवाचक—यदा, यावत्, यावत् न · तावत्, यदा यदा।

(२) स्थानवाचक—यत्र, यत्र यत्र।

(३) प्रकारवाचक—इव, यथा—तथा वा तद्वत्, यथैव · तथैव यथा यथा।

(४) कारण वाचक (क) इति यत: तत, यद्, यथा तथा, हि,

( ख ) यदि · तर्हि, तद्, तत , चेद्, अथ।

(ग) यद्यपि, काम (तु, पुन.)।

(घ) येन, इति, यथा, मा (लृट्, लुट् अथवा लोट् के साथ)।

(ङ) यथा येन।

## मिश्रित वाक्यों का विश्लेषण

३६१—मिश्रित वाक्यों का विश्लेषण इस प्रकार किया जाना चाहिए मानो प्रत्येक आश्रित उपवाक्य एक शब्द अथवा एक वाक्यांश हो। तदनन्तर, आश्रित उपवाक्यों का अलग से साधारण वाक्यों के समान विश्लेषण किया जाना चाहिए।

## उदाहरण

(१) अथ स निश्वस्य लज्जाविशीर्यमाणविरलाक्षर सखे कपिजल विदितवृत्तान्तोऽपि कि मा पृच्छसीति कृच्छ्रेण शनै शनैरवदत्। (काद०)

(२) एष नामानुगृहीत. य शूलादवतार्य हस्तिस्कन्धे प्रतिष्ठापितः (शकु० ६)

(३) अन्वेषमाणश्च यथा यथा नापश्य त, तथा तथा सुहृत्स्नेह-कातरेण मनसा तत्तदशोभनमाशकमानो निपुणमितस्ततो दत्तदृष्टि सुचिर व्यचरम् (काद०)।

## वाक्यविश्लेषण की विधि

| कर्ता | कर्ता का विस्तार | क्रिया | कर्म | कर्म का विस्तार | क्रिया के क्रियाविशेषणात्मक विस्तार |
|---|---|---|---|---|---|
| १. स | ,, | अवदत् | सखे कपिंजल पृच्छसीति (क) | ,, | अथ (काल) नि श्वस्य (काल) लज्जाविशीर्यमाण–विरलाक्षरम् (प्रकार) कृच्छ्रेण शनैः शनैः (प्रकार) |
| (क) (ख) सखे कपिंजल कर्ता के साथ | विदितवृत्तातोपि (विशेषण) | पृच्छसि | | मा (मुख्य) कि (गौण) | |
| २–एष | य –प्रतिष्ठापित (क) | अनुगृहीत॰ | | | नाम (प्रकार) |
| (क) य | | प्रतिष्ठापित | | | हस्तिस्कंधे (स्थान) शूगादवतार्य (काल) |
| ३–(अह) | सुहृत्स्नेह शंकमान. शानजन्त विशेषण निपुणं इतस्ततो दत्तदृष्टिः (विशेषण) | व्यचरम् | | | तथातथा (मात्रा) यथायथा अन्वेषमाणो नापश्य त (मात्रा) सुचिर (काल) |
| (क) अह | अन्वेषमाणः (शानजन्ता विशेषण) | अपश्य (न) | त | | यथायथा (मात्रा) |

## सयुक्त वाक्य

३६२—सयुक्त वाक्य मे दो य दो से अधिक साधारण अथवा मिश्रित वाक्य होते हैं जो आपस मे एक दूसरे के समानाधिकरण होते हैं।

सयुक्त वाक्य के अशभूत उपवाक्य निम्नलिखित श्रेणी के हो सकते है—

(१) साधारण वाक्य

(२) कुछ तो साधारण वाक्य हो सकते हैं और कुछ मिश्रित

(३) सभी मिश्रित वाक्य हो सकते हैं

१—तथाप्येष प्राण स्फुरति न तु पापो विरमति ( उत्तर० ६ )
मनो निष्ठाशून्य भ्रमति च किमप्यालिखति च ॥ ( मालती० १)

( इसमे प्रत्येक साधारण वाक्य है )

२—दाक्षिण्य नाम बिम्बौष्ठि बैबिकाना कुलव्रतम् । तन्मे दीर्घाक्षि ये प्राणास्ते त्वदाशानिबन्धना ॥ ( मालविका ४ )

( इसमे दूसरा अश मिश्रित वाक्य है )

३—यदि यथा वदति क्षितिप तथा त्वमसि किं पितुरुत्कलया त्वया ।
अथ तु वेत्सि शुचिव्रतमात्मन पतिकुले तव दास्यमपि क्षमम् ॥
(शकु ५)

( दोनो अश मिश्रित वाक्य हैं )

इन उदाहरणो में जो पृथक् पृथक् वाक्य हैं वे किसी भी प्रकार एक दूसरे के आश्रित नहीं हैं। प्रत्येक उक्ति स्वतः स्वतत्र है। परन्तु मिश्रित वाक्य स्वतत्र अर्थ रखने वाले वाक्यों में विभक्त नही किया जा सकता।

३६३—सयुक्तवाक्य के अशों में परस्पर निम्नलिखित सम्बन्ध हो सकते हैं—

(१) Cumulative relation सामूहिक सबन्ध। यह सम्बन्ध च, तथा, अपिच से सूचित किया जाता है और इस मे दो या दो से अधिक कथन साथ साथ जोडे जा सकते हैं।

(२) Adversative relation प्रतिकूल सम्बन्ध अथवा विरोध-सूचक सम्बन्ध। यह सम्बन्ध वा, तु, पुन, परन्तु आदि समुच्चयबोधक अव्ययो से सूचित किया जाता है, और इसमे दूसरा वाक्य पूर्वगामी वाक्य का विरोधी होता है।

(३) आनुमानिक सम्बन्ध। यह सम्बन्ध अत, ततः, तत मे सूचित किया जाता है और इस मे किसी पूर्वगामिनी घटना से किसी परिणाम अथवा कार्य का प्रादुर्भूत होना दिखलाया जाता है।

## सामूहिक सम्बन्ध

## Cumulative Relation

३९४—सामूहिक सम्बन्ध म उक्तियों का परस्पर सम्मिलन तीन प्रकार से हो सकता है—

(१) उक्ति के ऊपर समान बल देकर—

तटस्थ स्वानर्थान् घटयति 'च' मौन 'च' भजते (•मालती० १)। त्रिलोचनस्तवा प्रतिग्रहीतुमुपचक्रमे च' पुष्पधन्वा धनुष्यमोघ बाण समधत्त 'च' ( कुमार० ३ (६६)। तृणमिव वने शून्ये ( सा) त्यक्ता न 'चापि' अनुशोचिता ( उत्तर० ३ )

(२) दूसरे उपवाक्य के ऊपर अधिक बल देकर—

न केवलं ताननियोग एव 'अस्ति मे सोदरस्नेहोऽप्येतेषु' (शकु १) पुण्यानि नामग्रहणा न्यपि मुनीना 'किं पुन दर्शनानि' (काद )

(३) विचारों में उत्तरोत्तर उत्थान दिखला कर—

उदेति पूर्व कुसुमं 'ततः' फलम् (शकु. ५)। जगज्जीर्णारण्यं भवति हि विकल्पव्युपरमे। कुकूलानां राशौ 'तदनु' हृदयं पच्यत इव। (उत्तर० ६)

विशेष—इस सम्बन्ध में कई समानाधिकरण वाक्य एक दूसरे के पास पास रक्खे हुए एक दूसरे के पीछे आते जाते हैं। परन्तु इनको जोड़ने के लिए कोई भी शब्द इनके बीच में नहीं रक्खा जाता, उनका अर्थ गम्यमान रहता है। शुश्रूषस्व गुरून् कुरुप्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी (शकु ४) (इसमें चार कथन या उक्तियाँ) हैं।

जाड्यं धियो 'हरति' सिञ्चति' वाचि सत्यम् मानोन्नतिं 'दिशति' पापम् 'अपाकरोति' चेतः 'प्रसादयति' दिक्षु 'तनोति' कीर्तिम् सत्संगतिः (भर्तृहरि० नी० २०)।

दारिद्र्याद् ह्रियमेति ह्रीपरिगतः प्रभ्रश्यते तेजसो निस्तेजाः परिभूयते परिभवात् निर्वेदमापद्यते। निर्विण्णः शुचमेति शोकपिहितो बुद्ध्या परित्यज्यते निर्बुद्धिः क्षयमेत्यहो निधनता सर्वापदामास्पदम् (मृच्छ० १)

## विरोधसूचक सम्बन्ध

३६५—विरोधसूचक सम्बन्ध तीन प्रकार से सूचित किया जाता है—

(१) बहिष्कार सूचक समुच्चयबोधक अव्ययों द्वारा, जिनमें पहली परिस्थिति का बहिष्कार द्योतित होता है —

प्रज्ञाहीनोऽयं राजा 'नोचेत्' नीतिशास्त्रकथाकौमुदीं वागुल्काभिः कथं तिमिरयति (हितोप ०)। व्यक्तं नास्ति

कथम् 'अन्यथा' वासत्यपि ता न पश्येत् (उत्तर० ३)। अद्यापि हरकोपवह्निस्त्वयि ज्वलति। 'अन्यथा त्वं भस्मावशेष कथमित्थमुष्ण (शकु ३)।

(२) Alternative Conjunction—द्वारा, वा-वा, किम्—अथवा, उत, आहो, आहोस्वित् —

तदेषा भवत कान्ता त्यजैनां 'वा' गृहाण 'वा' (शकु० ५)। सूतो 'वा' सूतपुत्रो 'वा' यो 'वा' को वा' भवाम्यहम् (वेणी०३)। किं धर्मोपदेशागमिदम् 'उत' मोक्षप्राप्तिरियम् 'आहोस्वित्' अन्य कश्चिन्नियमप्रकार (कादम्बरी)।

(३) Arrestive Conjunctions के द्वारा, तु, किन्तु, परम् (तु, पन, तथापि, और (कभी कभी) केवलम्

दैवायत्त कुले जन्म मदायत्तं 'तु' पौरुष (वेणी ३), (अय कथाप्रविभाग.) प्रणीतो न'तु'प्रकाशित (उत्तर ४), सखे पुण्डरीक सुविदितमेतन्मम 'किंतु' इदमेव पृच्छामि (कादम्बरी १५५), न च न परिचितो न चाप्यगम्य चकितमुपैमि 'तथापि' पार्श्वमस्य (मालती १), लौकिकाना हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते। ऋषीणा 'पुन' आद्याना वाचमर्थोनुधावति॥ (उत्तर १), अनुदिवस परिहीयसे अगैः 'केवल' लावण्यमयो छाया त्वा न मुचति (शकु ३)

३६६—आनुमानिक सम्बन्ध Illative Relation निम्नलिखित शब्दो से सूचित किया जाता है—अतः, तस्मात्, ततः, अनेन हेतुना, एव च, तेन हि.—

सतीमपि ज्ञातिकुलैकसश्रया भर्तृमतीं जनोन्यथा विशकते 'अत प्रमदा स्वबधुभि परिणेतुः समीपे इष्यते (शकु ५), भो उपस्थित नयनमधु सनिहिता च मल्लिका। तत् अप्रमत्ता इदानीं पश्य (मालविका. २), जनकोद्य गतो विदेहान्। 'ततो' विमनसो देव्या परिसात्वनाय नरेन्द्रो वासगृह विशति (उत्तर १), अत्यद्भुतादपि

गुणातिशयातिग्योसि तस्मात् सखा त्वमसि (उत्तर ५), मध्यस्था नौ गुणदोपत परिच्छेत्तुमर्हति । 'तेन हि' प्रस्तूयता विवादवस्तु (मालविका० १)

३६७—प्राय संस्कृत मे जब संयुक्त वाक्य के समानाधिकरण भागों का एक ही कर्ता या एक ही क्रिया होती है या कोई भी अश उभयनिष्ठ होता है तो उभयनिष्ठ अश दोहराया नहीं जाता, और इस प्रकार से वाक्य संक्षिप्त बना दिया जाता है ।

(१) तटस्थ स्वानर्थान् 'घटयति च मौन च भजते'
हृदयमशरणं मे पक्ष्मलाक्ष्या कटाक्षै
'अपहृत' 'अपविद्ध' 'पीत' 'उन्मूलित' च

(२) दिष्ट्या न केवल 'उत्संग' चिरात् 'मनोरथोपि' मे पूर्ण.'
(उत्तर० )

न मा त्रातु 'तात' प्रभवति' न 'चांबा' न 'भवती'

## समानाधिकरण वाक्यों को जोड़ने वाले शब्दो का वर्गीकरण

**Cumulative Relation**
- (१) च, च च, तथाच, अपि, अपिच, अपरच, अन्यच्च
- (२) केवल-अपि, किमुत, किपुन
- (३) अथ, तदनु, पूर्व-तत , अनतर तत. पर, ततश्च अनतर च

**Adversative Relation**
- (१) अन्यथा, न (नो) चेत्
- (२) वा, का-वा, न वा.
- (३) तु, किंतु, पर तु), तथापि पुन , केवलं

**Illative Relation.**
- तत , तस्मात्, अत , तत., तथा. एवं च. एव, तेन हि

## संयुक्त वाक्यों का वाक्य-विश्लेषण

३६८—सयुक्त वाक्य का विश्लेषण करने मे पहिले भिन्न भिन्न समानाधिकरण उपवाक्यो का परस्पर सम्बन्ध बताइए । तदनन्तर इन समानाधिकरण उपवाक्यों का अलग से विश्लेषण कीजिए। यदि वे साधारण वाक्य हो तो साधारण वाक्यो का सा विश्लेषण कीजिए, यदि वे मिश्रित वाक्य हो तो मिश्रित वाक्यों का सा विश्लेषण कीजिए ।

### उदाहरण

(१) वर्ष वा गर्ज वा शक्र मु च वा शतशोऽशनिम् (मृच्छकटिक ५)

(२) उचित प्रणयो वर विहतु बहव खडनहेतवो हि दृष्टा। उपचारविधिर्मनस्विनीना न तु पूर्वाभ्यधिकोऽपि भावशून्य । (मालविका ३)।

(३) दृष्टा खलु मया तत्रभवत्या मालविकाया. प्रियसखी बकुलावलिका श्राविता च तमर्थं भवता य' सदिष्ट (मालविका ३)

१. शक्र (त्व) वर्ष वा (क)—प्रधान वाक्य

(त्व) गर्ज वा (ख)—प्रधान—क का समानाधिकरण

(त्व) शतशोऽशनि मुच वा (ग)-प्रधान—क और ख का समानाधिकरण विरोध सूचक सम्बन्ध है

| कर्ता | क्रिया | कर्म | क्रियाविशेषणात्मक विस्तार |
|---|---|---|---|
| क (त्व) शक्र | वर्ष (वा) | | |
| ख (त्व) | गर्ज (वा) | | |
| ग (त्वं) | मुच (ग) | अशनि | शतश (प्रकार) |

२—उचित. प्रणयो विहतु वर बहव खडनहेतवो दृष्टा. हि (क)

न तु पूर्वाभ्यधिकोपि भावशून्यो मनस्विनीनामुपचारविधि वरं (ख) विरोध सूचक सम्बन्ध है

## क—का विश्लेषण जो कि मिश्रत वाक्य है

| कर्ता | क्रिया | कर्म | क्रियाविशेषणात्मक विस्तार |
|---|---|---|---|
| (क) प्रणय | वर | | विहतुम् (अभिप्राय) |
| (उचित —विशेषण) | | | बहव दृष्टा. (कारण) |
| (क) खडनहेतवः | | | |
| बहव. (विशे.) | दृष्टाः | | हि (कारण) |
| (ख) उपचारविधि | | | |
| मनस्विनीना (षष्ठी) | | | |
| पूर्वाभ्यधिकोऽपि न (वरम्) | | | |
| भावशून्य (विशेषण) | | | |

३—पहिला साधारण वाक्य है, दूसरा मिश्रित वाक्य है, जिसका विश्लेषण ऊपर दे दिया गया है।

## अभ्यासार्थ विविध उदाहरण

निम्नलिखित वाक्यों का विश्लेषण ऊपर बताई हुई विधि के अनुसार कीजिए और यह भी बताइए कि वे साधारण वाक्य हैं अथवा मिश्रित अथवा सयुक्त—

१—महत्येव प्रत्यूषे दास्या पुत्रै शकुनिलुब्धकैर्वनग्रहणकोलाहलेन प्रतिबोधितोऽस्मि। (शाकु. २)

२—कुतो धर्मक्रियाविघ्न सतां रक्षितरि त्वयि। (शाकु ५)

३—प्रमाणादधिकस्यापि गडश्याममदच्युते ।
पद मूर्ध्नि समाधत्ते केसरी मत्तदन्तिन ॥ (पचतत्र)

४—लघुहृदयां मा लोक कलयिष्यतीति निर्ह्रीकया मया नाकलितम्। ( काद )

५—दर्शनादारभ्य शरीरस्याप्ययमेव प्रभु किमुत भवनस्य विभवस्य वा। ( काद )

६—स चानुयुक्तो ब्रूते सविनयमावेदयत्। विदितमेव खलु वो यथाह युष्मदाज्ञया पितृवनमभिरक्ष्य तदुपजीवी प्रतिवसामि। ( दशकुमार )

७—यदा किंचित् किंचिद् बुधजनसकाशादवगत
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगत (भर्तृहरि २। ८)

८—अहमतिमृदुनि पुलिनवति सरस्तीरेऽवरोप्य सस्पृह निर्वर्णयस्तां मत्प्राणैकवल्लभा राजकन्या कटुकावतीमलक्षयम्। ( दशकुमार )

९—एवमेतत्। किन्तु न कदाचिदार्यस्य निष्प्रयोजना प्रवृत्तिरित्यस्ति न प्रश्नावकाश। (मुद्रा० ३)

१०—विचिंतयती यमनन्यमानसा तपोधन वेत्सि न मामुपस्थितम्।४
स्मरिष्यति त्वा न स बोधितोपि सन् कथा प्रमत्त प्रथम कृतामिव। (शकु ४)

११—अये महाराजेति निष्प्रणयमामन्त्रणपद सौमित्रिमात्रे च बाष्पस्खलिताक्षर कुशलप्रश्न। तथा मन्ये विदितसीतावृत्तान्तेयमिति। ( उत्तर ३ )

१२—वरेषु यद्बालमृगाक्षि मृग्यते तदस्ति कि व्यस्तमपि त्रिलोचने (कुमार ५। ७२ )

१३—तद् ब्रूत वत्सा किमित प्रार्थयध्व समागता।
मयि सृष्टिर्हि लोकाना रक्षा युष्मास्ववस्थिता।
( कुमार २। २८ )

१४—काम भवान् प्रकृत्यैव धीर पित्रा च महता प्रयत्नेन समारोपितसंस्कार । तथापि भवद्गुणसंतोषो मामेव मुखरीकृतवान्॥ ( काद )

१५—वध्ये मयि मत्ताहस्ती मृत्युविजयो नाम हिंसाविहारी राजगोपुरोपरितलाधिरूढस्य पश्यत उत्तमामात्यस्य शासनाज्जनकठरवद्विगुणितघटारवो मडलितहस्तकाड समभ्यधावत् ( दशकुमार )

१६—यज्ञोपवीत नाम
अमौक्तिकमसौवर्ण ब्राह्मणाना विभूषणम् ।
देवताना पितृणा च भागो येन प्रदीयते ॥ (मृच्छकटिक १ )

१७—अत्रांतरे ब्राह्मणेन मृतं पुत्रमुत्क्षिप्य राजद्वारे सोरस्ताडनमब्रह्मण्यमुद्घोषितम् । ततो न राजापराधमतरेण प्रजास्वकालमृत्युश्चरतीत्यात्मदोष निरूपयति करुणामये रामभद्रे सहसैवाशरीरिणी वागुदचरत् । ( उत्तर २ )

१८—अथ कदाचित् पिगलको नाम सिंह सर्वमृगपरिवृत पिपासाकुल उदकग्रहणार्थ यमुनातटमवतीर्ण सजीवकस्य गभीरतरशब्द दूरादेवाशृणोत् । ( पचतंत्र )

१९—यदि समरमपास्य नास्ति मृत्योर्भयमिति युक्तमितोन्यत प्रयातुम् । अथ मरणमवश्यमेव जतो किमिति मुधा मलिनं यश कुरुध्वे ॥ ( वेणी ३ )

२०—प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यात्यापद ।
( भर्तृहरि २ । ९० )

२१—यावत्स्वस्थमिद कलेवरगृह यावच्च दूरे जरा
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्य प्रयत्नो महान्
( भर्तृहरि २ । ८८ )

२२—यथा तिरश्चीनमलातशल्य प्रत्युप्तमत सविषश्च दश ।
तथैव तीव्रो हृदि शोकशकुर्मर्माणि कृंतन्नपि कि न सोढ ॥
( उत्तर ३ )

२३—परस्परविरोधीन्योरेकसश्रयदुर्लभम ।
सगत श्रीसरस्वत्योर्भूतयेऽस्तु सदा सताम् ॥ ( विक्रमो ५ )

२४—सर्वैरुस्रै समग्रैस्त्वमिव नृपगुणैर्दीप्यते सप्तसप्ति
( मालविका २ )

२५—अस्त्वमर्षो मा भूद्वा । एतत्तु पृच्छामि दात हि राघव राजान शृणुम । स किल नात्मना दृप्यति न चाप्यस्य प्रजा ईदृशो जायन्ते तत् किमस्य मनुष्या राक्षसीं वाच वदति । (उत्तर ५)

२६—यथा नो प्रियसखी बधुजनशोचनीया न भवति तथा निर्वाहय ।
( शाकु ३ )

२७—अथ स विषयव्यावृत्तात्मा यथाविधि सूनवे
नृपतिककुद दत्त्वा यूने सितातपवारणम् ।
मुनिवनतरुच्छाया देव्या तया सह शिश्रिये
गलितवयसामिक्ष्वाकूणामिद हि कुलव्रतम् ॥ (रघु ३ । ७०)

और अधिक अभ्यास करने के लिए विद्यार्थी पूर्व पाठो से वाक्यों क चुन लें और उनका विश्लेषण करे ।

---

# द्वितीय सेक्शन

## वाक्यों में शब्दों का क्रम

३६९—प्रथम भाग के भूमिकाश मे पहले ही कहा जा चुका है

कि सस्कृत वाक्य मे शब्दों का क्रम कोई बड़ा महत्वशाली विषय नही है। सस्कृत मे अव्ययो के अतिरिक्त सभी शब्दो मे प्रत्यय लगे रहते हैं, और प्रत्ययों से स्वय ही मालूम हो जाता है कि एक शब्द का दूसरे शब्द के साथ क्या सम्बन्ध है। इस प्रकार, व्याकरण की दृष्टि से क्रम नामक कोई ऐसा विषय नही है जिस पर बहुत ध्यान दिया जाय।

"कथमपि तत्याज वने सीतां लक्ष्मण कठोरगर्भाम्'—इस प्रकार का वाक्य भले ही देखने में बडा भद्दा लगता हो, परन्तु व्याकरण की दृष्टि से यह गलत नहीं है। परन्तु यदि व्याकरण–सम्बन्धी क्रम न भी हो, तो भी विचारों का एक तार्किक क्रम ऐसा होता है जो एक विशेष रीति के अनुसार एक दूसरे के पीछे आना ही चाहिये। यदि हम किसी भी संस्कृत गद्य ग्रथ के पृष्ठों को देखें तो हमें उसमें शब्दों का कोई विशेष क्रम अवश्य मिलेगा, उदाहरणार्थ, पहिले विशेषण-सहित कर्ता कारक आता है, चाहे प्रकट रूप मे, चाहे अप्रकट रूप से; तब यदि कर्म रहता है, तो वह आता है, और अन्त मे क्रिया अथवा विधेय, जैसे,

सा तु महाश्वेताया एव मुखमवलोकितवती (काद०)

महीपति तं विद्येश्वरं सबहुमानं विससर्ज (दशकुमार०)

यद्यपि काव्य और नाटकीय कविताएँ साधारण गद्य के नियमों से मुक्त हैं तथापि उनमे भी इन नियमों का बड़ी कड़ाई के साथ पालन किया जाता है,

रघूणामन्वय वक्ष्ये [रघु० १।८]

तृष्णां छिन्द्धि, पापे रतिं मा कृथा [भर्तृहरि २।७७]

वदनकमलक शिशो स्मरामि [उत्तर० ४]

असिर्गात्र गात्र सपदि लवशस्ते विकिरतु [मालती माधव ५]

अब वाक्यों में शब्दों के क्रम के विषय में कुछ नियम विहित किए जायँगे।

४००—गद्य वाक्य में शब्दों की व्यवस्था करने के लिए सर्वोत्तम अनुसरणीय नियम यह है—[१] पहिले विशेषणसहित तथा विशेषण-वाक्यांशसहित कर्ता को रखना चाहिए, [२] तब विशेषणसहित कर्म कारक रखना चाहिए, [३] अन्त में विधेय [चाहे वह कृदन्तीय हो, चाहे ताद्धतीय हो]। क्रियाविशेषण तथा क्रियाविशेषणवाक्यांश अन्तिम स्थान के अतिरिक्त अन्य किसी भी स्थान पर रक्खे जा सकते हैं। कुछ समुच्चयबोधक अव्ययों को छोड़ कर शेष सभी कर्ता के पूर्व आते हैं। यदि कोई विद्यार्थी निम्नलिखित वाक्य लिखे या बोले तो वह वाक्य महा भद्दा होगा— "सकाशं गुरो आशिषं राज्ञे अग्रजन्मा प्रयुज्य प्रतीयायेत्थम्"।

इसके स्थान पर यदि वह निम्नलिखित प्रकार से वाक्य को लिखे या बोले तो क्या ही अच्छा लगेगा—

"इत्थं राज्ञे आशिषं प्रयुज्य अग्रजन्मा गुरोः सकाशं प्रतीयाय [रघु० ५। ३५]।"

४०१—जब किसी श्लोक का अन्वय किया जाता है, तब उपर्युक्त क्रम साधारणतया पालन किया जाता है। उदाहरणार्थ यह श्लोक लीजिए

अथ प्रजानामधिपः प्रभाते
जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्याम्।
वनाय पीतप्रतिबद्धवत्सां
यशोधनो धेनुमृषेर्मुमोच (रघु० २।१)।

इसका अन्वय इस प्रकार होगा—

अथ (समुच्चयबोधक अव्यय) यशोधनः (वि०) प्रजानां (ष०)

अधिप ( कर्ता ) प्रभाते ( कर्म के विशेषण का विस्तार ) जायाप्रति-ग्राहितगन्धमाल्या ( वि० ) पीतप्रतिबद्धवत्साम् ( दूसरा वि० ) ताम् ( कर्म का वि० ) ऋषे ( कर्म का वि० ) वेनु ' ( कर्म) वनाय (विधेय-का विस्तार ) मुमोच ( क्रिया ) ।

इसी प्रकार, अभिहन्ति हन्त कथमेष माधव सुकुमारकायम् अनवग्रह स्मर ( मालती माधव १ ), हन्त कथमेषोऽनवग्रह स्मर. सुकुमारकाय माधवमभिहन्ति, अथवा हन्त एष कथमभिहन्ति ।

अब साधारण नियम को विशेष विशेष उदाहरणों में तोड़कर दिखाया जा सकता है कि भिन्न-भिन्न शब्दों का परस्पर क्या सम्बन्ध होना चाहिए ।

४०२—साधारण नियम से सब से पहिली बात यह सीखनी चाहिये कि शब्दों का विन्यास इस प्रकार किया जाय कि एक विचार दूसरे विचार के पीछे अपने प्राकृतिक क्रम में आता चले । अर्थात् आश्रित शब्द साधारणतया उन शब्दों के पूर्व आवे जिन पर वे निर्भर हैं अथवा जिनके द्वारा वे शासित हैं ।

इस प्रकार, विशेषण और उसका विशेष्य, सकर्मक क्रिया और उसका कर्म, क्रियाविशेषण तथा क्रियाएँ, कर्मप्रवचनीय तथा सम्बन्ध सूचक अव्यय तथा उनके द्वारा शासित शब्द जहाँ तक हो सके बिलकुल समीप में रक्खे जायँ ।

४०३—जब किसी वाक्य में कोई साधारण सा कर्ता और क्रिया होते हैं, तो कर्ता पहिले रक्खा जाता है, रघुपतिस्तिष्ठति ( उत्तर० ६ ) ।

विशेषण विशेष्य के पहिले आते हैं, 'देवो' रघुपतिस्तिष्ठति (उत्तर० ६) । 'उपात्तविद्य' 'गुरुदक्षिणार्थी' कौत्स. त प्रपेदे (रघु० ५ १) । 'अपगतश्रम.' चाभिमत दिगन्तरमयासीत् (काद०) ।

(क) जब विशेषण विधेय बनकर आता है तब वह अपने विशेष्य के पीछे आता है।

(ख) जब किसी वाक्य में सार्वनामिक तथा गुणबोधक विशेषण दोनों ही आते हैं तो, सार्वनामिक विशेषण पहिले रक्खा जाता है, गुणबोधक विशेषण बाद में, तस्याम् अतिदारुणायां हतनिशायाम् (काद० )—उस महाभयङ्कर और अभागी रात में। परन्तु कभी-कभी गुणबोधक विशेषण सार्वनामिक विशेषण के पहिले आता है, जैसे, विचक्षणो वर्णी स· (रघु० ५।१६ पर मल्लिनाथ)। यूना 'अनेन' पार्थिवेन सह (रघु० ६।३२ पर मल्लिनाथ)।

४०४—समानाधिकरण संज्ञा पहिले आनी चाहिए —

आसीदशेषनरपतिशिर समभ्यर्चितशासन 'आदर्श सर्वशास्त्राणाम्' 'उत्पत्ति कलाना' 'कुलभवन गुणाना' राजा शूद्रको नाम (काद०)।

अथ 'मीनकेतनसेनानायकेन' दक्षिणानिलेन मन्मथानलमुज्ज्वलयन् (दशकुमार १।५)।

४०५ षष्ठी का जिससे सम्बन्ध होता है, प्राय उसके पहिले आती है, 'जगत ' पितरौ वन्दे (रघु० १।१)। 'अर्थानाम्' ईशिषे (भर्तृहरि-३।३०)।

(क) जब संज्ञा की विशेषता बताने वाला कोई विशेषण होता है, तो प्राय: यह क्रम रहता है—विशेषण, षष्ठी, तब संज्ञा, जैसे, अयम् अस्या देव्या सन्ताप (काद०)। तस्य एवंविधस्य पद्मसरस पश्चिमे तीरे (काद०)।

४०६—सम्बोधन को वाक्य के एकदम प्रारम्भ में रखना चाहिए, जैसे, 'तात' क एष बाल. ( दशकुमार० २।८ )। 'सखे पुण्डरीक' नैतद् भवतोऽनुरूपम् (काद०)। 'आर्यपुत्र इयमस्मि' ( शकु० १ )।

४०७—विधेय ( चाहे वह कृदन्तीय हो, चाहे तद्धितीय हो ) सर्वदा वाक्य के अन्त में रक्खा जाता है, वाक्य के द्वारा विवक्षित भाव को वह पूर्ण कर देता है अत उसका सर्वोत्तम स्थान अन्त में ही है।

(क) वर्णनों मे 'अस्' और 'भू' धातुएँ सबसे पहले आती हैं,

'अस्ति' गोदावरीतीरे विशाल शाल्मलीतरु ( हितोप० ) । 'अस्ति' मगधदेशशेखरीभूता पुष्पपुरी नाम नगरी ( दशकुमार ) । 'अभूत्' अभूतपूर्वो राजा चिन्तामणिर्नाम ( वासवदत्ता ) ।

(ख) कभी कभी बल देने के लिए प्रभाव शाली बनाने के लिये—विधेय पहिले आता है

'भवेयु' तावत् प्राणादय पञ्च जना माध्यदिनानाम् (शङ्कर-भाष्य ३७१), 'आस्ताम्' तावत् सर्व मेवेदम् ( काद ), 'उत्सर्पिणी' खलु महतां प्रार्थना (शकु .७), 'कृत' त्वया रामसदृशं कर्म (उत्तर २), 'विरला.' हि तेषामुपदेष्टार (काद ), 'भवितव्यमेव' तेन (उत्तर ४) ।

(ग) जब प्रश्नवाचक शब्द का प्रयोग नहीं होता तो प्रश्नवाचक वाक्यों मे भी यही बात होती है, जैसे, जात 'अस्ति' ते माता 'स्मरसि' वा तातम् ( उत्तर०४ ), 'स्मरसि' च तदुपान्तेष्वावयोर्वर्तनानि ( उत्तर १ )

४०८—उपसर्ग धातुओ के पहिले जुडे हुए रहते हैं वे कर्मप्रवचनीय की ही हैसियत से प्रयुक्त होते हैं, अकेले कभी भी नहीं प्रयुक्त होते।जब कभी भी प्रयुक्त होगे तब धातुओं के पहिले जुड़कर।जब कर्मप्रवचनीय बनकर आते हैं तब तो जिस शब्द पर शासन करते हैं उसके अनन्तर प्रयुक्त होते हैं, जैसे,

इति मन्दमतीन् 'प्रति' भायात् (शकर भाष्य) । अयोध्याम् 'अनु' जलानि वहति (रघु० १३ । ६१) ।

(क) सह, ऋते, विना, अलम् आदि शब्द सज्ञाओ अथवा सर्वनाम के पर शासन करते हैं, और प्रायः जिन शब्दों पर शासन करते हैं उनके

बाद मे आते हैं, जैसे, रामेण सह, ईश्वरात् ऋते, मा बिना, संतोषाय अलम् आदि ।

४०९—संस्कृत मे अव्ययो का क्षेत्र अंग्रेजी के क्रियाविशेषणों के क्षेत्र की अपेक्षा कहीं अधिक विस्तृत है । अव्ययों मे उन सभी शब्दो का समावेश है जिनका रूप नही चलता, जैसे, क्रियाविशेषण, स्थानबोधक, समुच्चय बोधक, तथा विस्मयादिबोधक । सज्ञाओं तथा सर्वनामो की सभी विभक्तियाँ क्रिया विशेषण मानी जा सकती हैं, परन्तु प्रथमा तथा द्वितीया विभक्तियो को छोड़कर, क्योंकि ये विभक्तियाँ क्रिया के कर्ता और कर्म का काम करती हैं, तथा षष्ठी विभक्ति को भी छोड़कर, क्योकि यह विभक्ति एक शब्द का दूसरे शब्द के साथ सम्बन्ध सूचित करती है । क्रियाविशेषणों की स्थिति के विषय मे निम्नलिखित नियम कारक-विभक्तियो मे भी लागू होगे ।

४१०—कालवाचक, स्थानवाचक, प्रकारवाचक, कारणवाचक तथा परिणामवाचक क्रियाविशेषण अव्यय प्राय. उन शब्दो के समीप रक्खे जाते हैं जिनकी वे विशेषता बताते हैं —

हंसधवलशयनतले निषण्णां पितरमपश्यम् (काद )—यहाँ 'तले' 'निषण्णां' की विशेषता बताता है, क्योंकि 'निषण्णाम्' का स्थान बताता है, इसलिए इसे 'निषण्णाम्' के पहिले ही रखना चाहिये ।

इसी प्रकार 'आलोकमात्रेणैव' (कारणवाची क्रियाविशेषण) अपगतश्रमो मनसि (स्थानवाची क्रियाविशेषण) एवम् (प्रकारवाची क्रियाविशेषण) अकरोत् (काद ) ।

'इति मनसावधार्य' अब्रवम् (काद ) । तनवेदं (कालवाची क्रियाविशेषण) सा भृशं रुरोद (कुमार० ४ । २६)–यहाँ 'भृशम्' पहिले नहीं रक्खा जा सकता, क्योंकि पहिले रखने से अर्थ ही बदल जायगा ।

४११—जब क्रियाविशेषण शब्द विधेय की विशेषता बताते हैं तब

वे कर्ता के पहिले भी आ सकते हैं, कर्ता के बाद मे भी आ सकते हैं अथवा यदि कोई कर्म हो तो कर्म के बाद भी, परन्तु अन्त मे नही आ सकते,

अनेकवारम (समय, अपरिश्लथम् (प्रकार) मा परिष्वजस्व (उत्तर ० ६), प्रजानामेव भूत्यर्थम् अभिप्राय) स ताभ्यो (स्थान) बलिमग्रहीत् (रघु ० १ । १८), सर्वं सौदामिन्या (स्थान) सम्भाव्यते (मालती-माधव १)।

दारिद्र्याद् (कारण) ह्रियम एति (मृच्छकटिक १) । हरिणा (कर्ता) असुरा तव शरण्य कृता (शकु ६)। शिवाभ्यो (अभिप्राय वस्तुत· तो अकथित कर्म) मासबलिपिडम् अनुदिन निशि (समय) समुत्ससर्ज (बाद)।

गुरौ भक्त्या मयि अनुकम्पया (कारण) च प्रीतास्मि (रघु० २ । ६३)।

विशेष—यदि कर्ता अथवा कम के कोई विशेषण शब्द हो तो दुविधा मिटाने के लिए क्रियाविशेषण को कर्म के बाद मे रखना चाहिए।

(क) भाववाचक उपवाक्य अथत कालवाचक और कभी कभी कारण वाचक अव्यय हुआ करते हैं, इसलिये प्रायः पहिले रक्खे जाते हैं.—

'चन्द्रिकायामभिव्यक्तायां' कि दीपिकापौनरुक्त्येन (विक्रमो० ३)

'युष्माक प्रेक्षमाणानाम्' एन स्मर्तव्यशेषं नयामि (वेणी ० ४)

विशेष—कालवाची तथा स्थानवाची क्रियाविशेषण अव्यय प्राय· समुच्चयबोधक अव्ययो के अत्यन्त सन्निकट, वाक्य के प्रारम्भ मे रक्खे जाते हैं।

४/२—'च', 'वा', 'तु', 'हि', 'चेत्'—ये कभी भी आदि मे नहीं आते। 'अथवा', 'अथ', अपिच', 'किच' प्राय आदि में आते हैं। इतरेतर सम्बन्ध-बोधक-समुचय-वाची अव्यय, जैसे, यथा—यथा,

यावत्—तावत् , यद्—तद् , यत – तत जिन उपवाक्यो को जोड़ते हैं उनके प्रारम्भ मे आते हैं। उदाहरण के लिए प्रासंगिक सेक्शनों को देखिए।

४१३—प्रश्न-वाचक शब्द वाक्य के प्रारम्भ में आते हैं,

(क)'अपि', एतत् तपोवनम् ,'अपि'कुशली ते गुरु ,'कथ'शास्त्राणा परिचय , 'कियद्' वा वय (कादि-)।

'एव', 'नाम', 'किल', 'खलु', 'हि' आदि बलदेने वाले शब्द जिन पर बल देते हैं उन्ही से जोड़ दिए जाते है। 'इव,, 'नु', 'अपि' जिन शब्दो की विशेषता बताते हैं उन्ही के साथ आते है।

(ख) हा, हन्त, अहह आदि विस्मयादि-बोधक अव्यय तथा 'अहो' 'अये', 'अयि' सम्बोधन-सूचक शब्द प्राय वाक्य के आरम्भ मे आते हैं।

४१४—पुनरुक्त शब्द, अथवा किसी पूर्वप्रयुक्त शब्द का सजातीय शब्द जहाँ तक हो सके उसी शब्द के समीप रक्खा जाना चाहिये , जैसे, गुणा गुण वेत्ति न वेत्ति निर्गुण.।

# तृतीय सेक्शन

## वाक्यो का सश्लेषण

४१५—संस्कृत वाक्यो के विश्लेषण की व्याख्या करके और शब्दो के क्रम के विषय मे कुछ नियम बनाकर, अब हम विद्यार्थी को एक पग और आगे ले चलेगे वाक्यों का सयुक्तीकरण।

विद्यार्थी ने पहिले ही देख लिया है कि किसी भी वाक्य मे कम से

कम एक कर्ता और एक क्रिया होनी चाहिए, और यह भी देख लिया कि कर्ता अथवा कर्म का विस्तार विशेषण द्वारा, षष्ठ्यन्त संज्ञा शब्द द्वारा, समानाधिकरण संज्ञा द्वारा, समासों द्वारा, अथवा इन सब विधियों को एक मे मिलाकर भी किया जा सकता है, और यह भी देखा कि क्रिया का विस्तार कालवाची, स्थानवाची, कारणवाची, तथा परिणामवाची परिस्थितियों से किया जा सकता है। अब उसे वाक्यों को जोडने का प्रयत्न करना चाहिए।

## साधारण वाक्य

४१६— "राम" और "गम्" शब्दों को ले लीजिए। इन दोनों को मिलाकर एक वाक्य बनाया जा सकता है—**रामो जगाम**। यह वाक्य—**रामो जगाम**—अपने प्रारम्भिक स्वरूप मे है। कर्ता का विस्तार यों किया जा सकता है —

(१) दशरथस्य पुत्र अथवा दशरथपुत्रो रामो जगाम,
(२) कौसल्यानन्दवर्धन अखिलजनप्रियो दशरथपुत्रो आदि,
(३) भरताग्रज कौसल्यानन्दवर्धन आदि आदि,
(४) भरताग्रज कौसल्यानन्दवर्धन अखिलजनप्रियो दशरथपुत्रो राम ससीतालक्ष्मणो रम्याणि उपवनानि पश्यन् जगाम।

अब स्पष्टतया देखा जा सकता है कि किस प्रकार अन्तिम वाक्य दो साधारण शब्दो से अर्थात् राम और गम् से—प्रादुर्भूत हुआ है।

### अभ्यास १

अर्जुन, हनुमत् गगा, और हरि शब्दों को कर्ता बनाकर वाक्य बनाइए और क्रमश. उपर्युक्त विधि के अनुसार उनका विस्तार कीजिए।

### अभ्यास २

रु, रच, पत्, रम्, धातुओं का विधेय के तौर पर प्रयोग करते हुए वाक्य बनाइए और किसी भी दो विधि के अनुसार कर्ता का विस्तार कीजिए।

### अभ्यास ३

इन शब्द-युग्मों को लीजिए और किसी षष्ठ्यन्त संज्ञा शब्द तथा विशेषण द्वारा कर्ता का विस्तार करते हुए वाक्य बनाइए।

शुक—डी। अंगना—या। सैनिक—युध् तथा हन् (कर्मवाच्य)। भृत्य—तड् (कर्मवाच्य)।

### अभ्यास ४-५

रावण सीता जहार—और सारमेयोऽम्रियत—इन वाक्यों को लीजिए और कर्ता का विस्तार सभी विधियों के अनुसार कीजिए।

४१७—यदि क्रिया सकर्मक हो तो उसका कर्म देकर वाक्य पूरा किया जा सकता है। कर्म कारक संज्ञा अथवा सर्वनाम होता है, अतः कर्ता के समान कर्म का भी विस्तार किया जा सकता है, जैसे, अहं प्रासादमपश्यम्—यहाँ पर कर्म का विस्तार इस प्रकार किया जा सकता है।

अहं विशालं प्रासादमपश्यम्। अहं वंगाधिपस्य विशालं प्रासादमपश्यम्। अहं सौख्यनिकेतनं नगरभूषणं च अनेकरक्षिपरिवृतं वंगाधिपस्य विशालं प्रासादमपश्यम्।

उसी प्रकार "राजा अमात्यं प्रोवाच" विस्तृत किए जाने पर राजा शास्त्राध्ययनकठोरधियम् अनुरंजितसकलप्रजाजनं सुरगुरोः प्रत्यादेशं स्वम् अमात्यं प्रोवाच।

कीजिए और कर्म का विस्तार कृदन्तीय विशेषण द्वारा करके विधेय को पूरा कीजिए।

## अभ्यास १२

छ. वाक्य बनाइए जिनमें कर्ता तथा कर्म दोनों का विस्तार कृदन्तीय विशेषण तथा षष्ठ्यन्त संज्ञा अथवा सर्वनाम द्वारा हो।

४१८—कालवाची, स्थानवाची, प्रकारवाची, कारणवाची तथा परिणामवाची परिस्थितियों से विधेय का विस्तार किया जा सकता है। "त्वं यासि" इस वाक्य को लीजिए। विधेय का विस्तार इस प्रकार किया जा सकता है—

त्वम् अधुना यासि (काल)। त्वम् अधुना कुत्र यासि (काल-तथा स्थान)। त्वम् अधुना सत्वरं कुत्र यासि (काल, स्थान तथा-प्रकार)। त्वम् अधुना समिदाहरणाय सत्वरं किमिति पद्भ्यामेव यासि (काल, प्रकार, अभिप्राय, कारण)। त्वमधुना समिदाहरणाय गुरुमपृष्ट्वा सत्वरं किमिति आदि यासि।

इसी प्रकार सखे मां प्रति पालय का विस्तार भिन्न भिन्न विधियों से किया जा सकता है—

सखे, विरचितायां प्रयाणसंविधायां पितरावापृच्छ्य द्वारे क्षणं मां प्रति पालय।

स निशितेन शरेण व्याघ्राहारार्थं कमपि विलोलनेत्रं हरिणशिशुं नितम्बदेशे विव्याध।

पश्यतोऽपि पितुः त्वं ह्यः स्ववेश्मनः निष्क्रम्य किङ्करेण सार्धम् अतिचटुलया गत्या कुत्र खलु अगच्छः।

## अभ्यास १३

निम्नलिखित वाक्यों में क्रियाओं में उपयुक्त कालवाची तथा प्रकार-वाची क्रियाविशेषणात्मक विस्तार जोड़िए—

(१) विहगा डयन्ते (२) पुस्तकं वाचय (३) अहं गामानयम् (४) गुरूननुरुध्यस्व (५) त्वया रुद्यते (६) आपण याति (७) सैनिका युयुधिरे (८) कृषीवल. क्षेत्रमकृषत् (९) प्रमदा उद्यान जग्मु. (१०) सपद् उद्यमम् अनुगच्छति।

अभ्यास १४

निम्नलिखित क्रियाविशेषणात्मक विस्तारों का प्रयोग करते हुए वाक्य बनाइए जिनमे कर्ता का विस्तार दो से अधिक विधियो के अनुसार किया गया हो —

सहसा वार वार, त्रीन् सवत्सरान्, सपदि, कदा, पुन., कल्याणाय पूर्व (अनादन के साथ) तदानीम्, प्रत्यनलम् प्रतिदिनम्, उपनदि, द्विक्रोश, रात्रिदिवम्।

अभ्यास १५

निम्नलिखित का प्रयोग करते हुए वाक्य बनाइए जिनमे कर्ता का विस्तार एक विशेषण द्वारा तथा षष्ठ्यन्त सज्ञा या सर्वनाम द्वारा हो —

सेनया सह, श्रमाद् ऋते, अनेन हेतुना, कस्य हेतो, मित्र सान्त्वयितुम्, जठरस्यार्थे, अपवादश्रवणात्, तथानुष्ठिते, पाठमधीत्य, गृहस्योपरि, ग्रामतरेण, दुर्दैवात्, अरण्ये, प्रबलवेदनया। अनुगगम्।

अभ्यास १६

निम्नलिखित शब्द-युग्मो को लेकर क्रिया का विस्तार कालवाची तथा स्थानवाची क्रिय-विशेषणात्मक विस्तारों द्वारा कीजिए —

मुनि —वस्। राजन् रक्ष। पुत्र—सेव। कोकिल—वि+रु। हरि —क्रुध्। शिष्य —प्र+नम्।

अभ्यास १७

निम्नलिखित धातुओं का प्रयोग करते हुए तथा विधेय का प्रकार

वाची, कारणवाची तथा परिणामवाची क्रियाविशेषणों द्वारा विस्तार करते हुए वाक्य बनाइए —

मृ, प्र+या, प्र+स्था, मृज् उत् + वह्, याच् पा ( रक्षा करना ), स्निह्, ईश्, अधि + इ ।

अभ्यास १८

निम्नलिखित कर्तृपदों को लेकर क्त्वान्त अथवा ल्यबन्त द्वारा क्रिया का विस्तार कीजिए :—

मृगाः, नर, देवाः, अमी, राक्षसै (कर्तृपद), भीमः, सामाजिकाः, दूतः, अधिराजः, अश्वत्थामा, सुभद्रा, यवनाः ।

अभ्यास १९

निम्नलिखित धातुओं का प्रयोग करते हुए भाववाचक वाक्यांश द्वारा क्रिया का विस्तार कीजिए —भाष्, दह्, प्रच्छ्, कृ (क्तान्त), स्पृह्, वद्, हन् (क्तान्त), पठ्, सम् + मन्त्र्, या ।

अभ्यास २०

कालवाची, प्रकारवाची तथा निम्नलिखित धातुओं को तुमुनन्त बनाकर क्रिया का विस्तार कीजिए —

बन्ध्, कथ्, चुद्, शास्, जि, स्तु, ग्रह्, आ+दा, वि+श्वस्, उप+आस्, सू, परि+नी ।

अभ्यास २१

बारह वाक्य बनाइए जिनमें क्रिया का विस्तार कालवाची, स्थानवाची प्रकार वाची, कारणवाची, तथा परिणामवाची, क्रियाविशेषण-वाक्यांशों द्वारा हो ।

४१९—जब क्रिया के साथ-साथ कर्ता और कर्म का भी विस्तार हुआ रहता है तब वाक्य अपने पूर्णतम स्वरूप में दृष्टिगोचर होता है। "रविरुदगच्छत्" साधारणतम स्वरूप वाला वाक्य है। कर्ता और क्रिया का विस्तार करके इस प्रकार का वाक्य हो सकता है :—

अरुणपुरःसरो रविः तमोजालं निरस्य जनक्रियाप्रवृत्तये प्राच्यां दिशि झटिति उदगच्छत्।

इसी प्रकार 'स पदवीमन्वयात्'—यह वाक्य विस्तृत होकर इस प्रकार हो सकता है—गुरुभिरुपदिष्ट स प्रथमे वयसि वर्तमानोऽपि संसाराद् उद्विजमान अनेकयतिप्रतिपन्ना परमसुखदायिनी साधुपदवीं निवारयतोऽपि पितु पारत्रिकसुखावाप्तये प्रशान्तचेतसा अन्वयात्।

इसी प्रकार "पांथ. भुजग ददर्श" विस्तृत किए जाने पर इस प्रकार हो सकता है .—

अथ असौ पांथ. ग्रामांतर गच्छन् अध्वश्रमार्त कथमपि पदानि न्यस्यन् अनाक्रान्ते एवार्धपथे कंचित् बृहत्कायं प्रसारितफण श्यामदेह भुजग यदृच्छया तरुतले ददर्श।

अन्य उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

इति परिकलय्य किंचिदुन्नमितकन्धरो भयचकितया दृशा दिशोवलोक्य तृणेऽपि चलति पुनः प्रतिनिवृत्तं तमेव पदे पदे पापकारिणम् उत्प्रेक्षमाणो निष्क्रम्य तस्मात् तमालतरुमूलात् सलिलसमीपम् उपसर्तुं प्रयत्नमकरवम् (काद)।

अनुबध्यमानश्च तया तां सर्वाम् अतिथिसपर्याम् अतिदूरावनतेन शिरसा सप्रश्रय प्रतिजग्राह (काद)।

किंनिमित्तं वा अनेकसिद्धसाध्यसबाधानि सुरलोकसुलभान्यपहाय दिव्याश्रमपदानि एकाकिनी वनमिदममानुषमधिवसति (काद.)।

### अभ्यास २२

छः वाक्य बनाइए जिनमे कर्ता तथा क्रिया दोनो का विस्तार सभी विधियो से रहे। निम्नलिखित धातुओं का प्रयोग कीजिए —

**धाव प्रकाश्, उत्, + स्था, पत, आस्, भ्रम्,।**

### अभ्यास २३

छः वाक्य बनाइये जिनमे क्रिया और कर्म का विस्तार रहे। निम्नलिखित धातुओ का प्रयोग कीजिए :—

**भृ, स्तु, मन्, दुह्, चि, विद्।**

### अभ्यास २४

छः वाक्य बनाइये जिनमे कर्ता, क्रिया तथा कर्म का विस्तार एक से अधिक विधि के अनुसार रहे।

४२०—साधारण वाक्यों में अर्थ को बिना बदले हुए क्रिया के वाच्य का परिवर्तन करके शब्दो का रूपान्तर किया जा सकता है। **दासी पुष्पाण्यानयत्** इस वाक्य का वही अर्थ है जो **दास्या पुष्पाणि आनीयन्त** का है।

कभी कभी वाक्याश बदलकर शब्दो का रूपान्तर किया जा सकता है, **कस्माद् हेतोरत्र निवससि, पिता सपुत्रो ग्राम गत;** इन वाक्यों का वही अर्थ है जो **किमर्थमत्र निवससि** और **पिता पुत्रेण सह (अथवा सहित) ग्राम गत.** का है।

परन्तु सस्कृत मे हम एक ही भाव को भिन्न भिन्न शब्दों द्वारा प्रकट कर किसी भी वाक्य के शब्दों का रूपान्तर कर सकते हैं। **उद्यमात् विभवः प्रभवति**—इस वाक्य को लीजिए। अर्थ को बदले बिना यह वाक्य निम्नलिखित ढगों से अनेकधा प्रकट किया जा सकता है:—

**उद्यमाद् विभव उत्पद्यते-संजायते**

**उद्यमो विभवाय कल्पते-भवति-जायते**

उद्यमप्रभवो विभवः
उद्यमेन नरो विभवं याति-विभवयुतो भवति
उद्यमी नरो विभवसम्पन्नो भवति
उद्यममवलम्ब्य नरो विभवं याति
उद्यमपरेण नरेण (प्राय) विभवयुतेन भाव्यम्
उद्यमबीजाद् विभवांकुरः प्ररोहति

अभ्यास २५

उपर्युक्त वाक्य के आदर्श पर निम्नलिखित वाक्यों को भिन्न भिन्न प्रकार से प्रकट कीजिए :—

(१) निर्धनता सर्वापदामास्पदम् (२) अस्य कोपः सनिमित्तः (३) मूर्खाणामुपदेशः प्रकोपाय भवति (४) अविवेकः आपदां परं पदम् (५) न धनवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते (६) विद्वान् सर्वत्र पूज्यते (७) दैवपरा नरा विनश्यन्ति (८) सुतो लालनाद् विनश्यति (९) त्वमेव नः परमा गतिः (१०) पराभवोऽपि मानिनाम् उत्सव एव।

## मिश्रित वाक्य

४२१—मिश्रित वाक्य को देखने से यह स्पष्ट हो है कि उसमें एक प्रधान कथन होता है और कम से कम एक आश्रित कथन। प्रधान उपवाक्य स्वतंत्र हुआ करता है, और आश्रित उपवाक्य बनावट में प्रधान के ऊपर आश्रित रहते हैं। इस प्रकार इस वाक्य को लीजिए—दूतो राज्ञे वार्तां न्यवेदयत्।

यह साधारण वाक्य है। तीन प्रकार के आश्रित उपवाक्यों में से कोई एक भी जोड़कर यह मिश्रित बनाया जा सकता है।

सामन्ता महाराजमभिद्रोग्धुम् अहर्निशं यतन्ते इति वार्तां दूतो राज्ञे न्यवेदयत् (संज्ञा उपवाक्य)।

यः पौरजानपदानपसर्पितु प्रयुक्त . स दूत .

(विशेषण उपवाक्य) ।

काले उपायश्चिन्त्येतेति हेतोः दूत आदि ।

(क्रियाविशेषण उपवाक्य) ।

४२२—अब मिश्रित वाक्य बनाने के लिए कुछ अभ्यास दिए जायँगे । आश्रित वाक्य बनाने के लिए जो शब्द प्रयोग में लाए जाते हैं वे पृष्ठ ३४२पर सेक्शन ३६० के चक्र मे दिखाए गए हैं । उन शब्दो को इस अवसर पर देख लेना चाहिए ।

## अभ्यास २६—२८

पॉच वाक्य बनाइए जिनमें सज्ञा उपवाक्य (१) कर्ता अथवा कर्म बने (२) प्रधान उपवाक्य के कर्ता अथवा कर्म का समानाधिकरण हो, अथवा (३) प्रधान उपवाक्य मे स्थित किसी शब्द का कर्म बने ।

## अभ्यास २९

निम्नलिखित में मे प्रत्येक के विषय में एक मिश्रित वाक्य बनाइए, सुवर्णकार, गुरु, विद्या, सुशिष्य, बाजीनृप, शिवराज,

## अभ्यास ३०

चार मिश्रित वाक्य बनाइए जिनमें विशेषण उपवाक्य क्रमश. कर्ता, कर्म, किसी क्रिया-विशेषणात्मकविस्तार की, और कर्ता, कर्म या क्रिया के किसी विस्तार की विशेषता बतावे ।

## अभ्यास ३१—३४

छ मिश्रित वाक्य बनाइए जिनमें (१) कालवाची क्रियाविशेषण उपवाक्य हो (२) स्थानवाची क्रियाविशेषण उपवाक्य हो (३) प्रकार-वाची क्रियाविशेषण उपवाक्य हो (४) कारणवाची, दशावाची, अभिप्रायवाची क्रियाविशेषण उपवाक्य हो । निम्नलिखित धातुओं का प्रयोग कीजिए --

स्वन्, उप+स्था, हन्, लभ्, पत्, आ+राध् (प्रेरणार्थक)।

अभ्यास ३५

छः मिश्रित वाक्य बनाइए जिनमें क्रमशः कालवाची क्रियाविशेषण उपवाक्य, स्थानवाची क्रियाविशेषण उपवाक्य, सादृश्यवाची क्रियाविशेषण उपवाक्य, प्रकारवाची क्रियाविशेषण उपवाक्य, परिणामवाची क्रियाविशेषण उपवाक्य तथा दशावाची क्रियाविशेषण उपवाक्य आवे।

४२३—ऐसे मिश्रित वाक्यो का अभ्यास दिया जा चुका जिनमे एक प्रकार का आश्रित उपवाक्य प्रयुक्त था। अब ऐसे वाक्य लिए जायँगे जिनमे दो या दो से अधिक प्रकार के आश्रित उपवाक्य आवेगे। इस वाक्य को लीजिए "वृषल. समाज्ञापयति।" य एष क्षपणको जीवसिद्धि. नाम राक्षसप्रयुक्तो विषकन्यया प्रवर्तक घातितवान् स एकमेव दोष प्रख्याप्य सनिकार नगरात् निर्वास्यताम् इति (मुद्रा० १)।"

यहाँ 'समाज्ञापयति' का कर्म "स एकमेव दोष प्रख्याप्य सनिकारं नगरात् निर्वास्यताम् इति" यह उपवाक्य है। इस उपवाक्य के कर्ता की विशेषता एक विशेषण उपवाक्य कर रहा है, वह विशेषण उपवाक्य यह है, "य एष क्षपणको जीवसिद्धिः नाम राक्षसप्रयुक्तो विषकन्यया प्रवर्तक घातितवान्"।

इसी प्रकार "यदैव मयाय देवस्य उज्जयिनीगमनवृत्तान्तो निवेदित. तदैव सनिर्वेदमेव मेतदित्युक्त्वा उत्थाय महाश्वेता पुनस्तपसे स्वमाश्रमपदमाजगाम" इस वाक्य में प्रधान क्रिया की विशेषता एक कालवाची क्रियाविशेषण उपवाक्य कर रहा है, वह कालवाची क्रियाविशेषण उपवाक्य यह है "यदैव मयाय देवस्योज्जयिनीगमनवृत्तान्तो निवेदित" और इसके एक विस्तार के साथ एक संज्ञा उपवाक्य जुड़ा हुआ है (उक्त्वा का कर्म एवमेतत् है)।

इस प्रकार एक ही मिश्रित वाक्य मे दो या दो से अधिक प्रकार के आश्रित उपवाक्य जोडे जा सकते हैं, यदा अतितृष्णा नराणा हृदये पदं करोति तदा ते यदीश्वरेणात्मने स्थित्यनुरूप दत्त तेनापरितुष्टा. सन्तः ततोधिकतरमीहमाना यत्तै सुखेन भोक्तु शक्य तृष्णातिरेकात् प्रायो हापयन्तीति असकृद् वयमस्मिन् जगति प्रतीम इस मिश्रित वाक्य मे एक क्रियाविशेषण उपवाक्य यह है—यदा करोति जो "हापयति" की विशेषता बताता है, दो विशेषण उपवाक्य हैं (१) यत् दत्तम् और (२) यत् शक्यम् और एक सज्ञा उपवाक्य है "तत्ते हापयन्ति"।

## अभ्यास ३९—४०

पॉच मिश्रित वाक्य बनाइए, जिनमे प्रत्येक मे (१) एक विशेषण उपवाक्य और एक सज्ञा उपवाक्य हो (२) एक क्रिया-विशेषण उपवाक्य और एक विशेषण उपवाक्य हो (३) एक सज्ञा उपवाक्य और एक क्रिया-विशेषण उपवाक्य हो (४) एक क्रिया-विशेषण उपवाक्य और एक सज्ञा उपवाक्य हो, और इनमे से प्रत्येक की विशेषता एक विशेषण उपवाक्य करे (५) तीनों उपवाक्य साथ साथ प्रयुक्त हो।

## सयुक्त वाक्य

४२४—सयुक्त वाक्य में दो या दो से अधिक प्रधान कथन रहते हैं। ये कथन सब के सब साधारण अथवा मिश्रित, या साधारण और मिश्रित मिले हुए हो सकते हैं।

एक साधारण वाक्य लीजिए "यात्रिक काशीमगच्छत्।" इसको सयुक्त वाक्य मे परिवर्तित करने के लिए हम इस प्रकार कह सकते हैं—

(१) यात्रिक काशीमगच्छत्, गगाया. पावने सलिलेऽस्नात्, सकलानि च तत्रत्यानि तीर्थानि दृष्ट्वा स्वग्राम न्यवर्तत।

(२) यात्रिकः काशीमगच्छत् किन्तु गगासलिले स्नानार्थमवतीर्णः केनचित् महानक्रेण सहसा गृहीत्वाऽभक्ष्यत ।

(३) यात्रिकः काशीमगच्छत् तेनात्मान परिपूतं मेने ।

यहाँ पर सयुक्त वाक्यों के भिन्न-भिन्न अश साधारण वाक्य के स्वरूप मे हैं । आवश्यकता पड़ने पर वे मिश्रित बनाए जा सकते हैं ।

उपर्युक्त जो द्वितीय वाक्य है उसे लीजिये—

यात्रिक काशीमगच्छत् किंतु यावत् स्नानार्थं गगासलिलेऽवतरति तावत् केनचित् महानक्रेण सहसा गृहीत्वा भक्षित ।

यहाँ द्वितीय अश मिश्रित वाक्य हैं और पहिला अश साधारण वाक्य है, जो मिश्रित वाक्य बनाया जा सकता है —

श्री विश्वेश्वरदर्शनेनात्मानं निर्धौतकल्मष करोमीति यदा गाढाभिलाषो मनसि पद चकार तदा स यात्रिक आदि आदि ।

## अभ्यास ४१—४२

ऊपर के आदर्श पर १) पॉच सयुक्त वाक्य बनाइये जिनके अंग साधारण वाक्य रहे (२) पॉच सयुक्त वाक्य बनाइये जिनके अग मिश्रित वाक्य हों ।

एक सयुक्त वाक्य लिखिये जिसमे निम्नलिखित मे से प्रत्येक का वर्णन हो :—

(१) वर्षाकाल· (२) पाणिनि (३) अराजको जनपद (४) राजधर्मः (५) धनम् (६) कालिदास·

४२५ – सस्कृत में बहुव्रीहि तथा तत्पुरुष समासो द्वारा बहुत से साधारण वाक्य एक वाक्य में जोडे जा सकते हैं। इस प्रकार जो नया वाक्य बनेगा वह या तो साधारण वाक्य होगा या मिश्रित या सयुक्त ।

एकदा सा गम्भीरध्वनि शुश्राव । तदाकर्ण्य तस्या. कुतूहलमुप-

जातम् । अतः सा तस्या दिशि दृष्टिं प्रेरितवती महान्तं च शबर-गणं ददर्श ।

इन सब वाक्यों को मिलाकर एक साधारण वाक्य इस प्रकार बनाया जा सकता है—

एकदा श्रुते गंभीरे ध्वनौ सा तदाकर्णनोपजातकुतूहला तद्दिशि प्रेरितदृष्टि महान्त शबरगणं ददर्श ।

इसी प्रकार अथैकदा राजा दुष्यन्तो मृगयार्थं वनमियाय । तं तस्य सैनिका अमात्याश्चानुजग्मु । वने स बहून् मृगान् जघान । तेषु एकं मृग पलायमानमनुससार । मार्गे दिव्याश्रमपदं ददर्श ।

ये वाक्य एक मिश्रित वाक्य मे इस प्रकार जोड़े जा सकते हैं —

सैनिकैरमात्यैश्चानुगतो यदैकदा राजा दुष्यन्तो मृगयार्थं वनमियाय तदा स तत्र बहून् मृगान् हत्वा तेष्वेकं मृग पलायमानमनुसरन् मार्गे दिव्याश्रमपदं ददर्श ।

अथवा इससे भी अधिक संक्षिप्त इस प्रकार किया जा सकता है.—
ससैनिकामात्यो राजा दुष्यन्तो मृगयार्थं वनं गत बहून् मृगान् आदि आदि ।

## अभ्यास ४४

निम्नलिखित वाक्यसमूहों को जोडकर एक साधारण अथवा मिश्रित अथवा सयुक्त वाक्य बनाइये ।

(१) एव महाश्वेता आहार परिसमाप्य सन्ध्योचिताचारा-न्निवर्तयामास । पश्चात्सा एकस्मिन् शिलातले विश्रब्धमुपाविशत् । तथा स्थिता ता चन्द्रापीडो निभृतमुपससार मुहूर्तमिव स्थित्वा च ता स सविनयमवादीत्

(२) तस्मिन्दिव्याश्रमपदे दुष्यत कामपि कन्यकामपश्यत् । सा

कन्या चारुसर्वाङ्गी आसीत्। स कण्वमुनेराश्रम'। तं राजा प्राविशत्। तदा तत्सत्कारार्थ शकुन्तला आश्रमाद्बहिराजगाम। शकुन्तला कण्वस्य कृतिका दुहितासीत्। सा सप्रश्रयं दुष्यंत स्वागत व्याजहार।

(३) पेशवे इति ख्याताना महाराष्ट्राधिकारिणां मध्ये चरमो बाजीराज इत्युक्तो बभूव। स पुण्यपत्तनमधितष्ठौ। स किल बहुगुणोपपन्न आसीत्। किंतु तस्य राजकार्यावेक्षणविषयेऽतीव मंदादर आसीत्। अत कर्मसचिवस्थाने बहवो नर्मसचिवा एव त पर्यवारयन्। तैस्तस्य मनो विषयभोगेषु सुतरामाकृष्यत। एव कामाधीने राजनि तच्छंदानुवर्तिनि चामात्यगणे महाराष्ट्रदेशोऽनायासेनैव रध्रान्वेषणदक्षाणा शत्रूणामामिपता गतः।

४२६—ऊपर बता दिया गया है कि कतिपय दिए हुए वाक्यों को जोड़ कर किस प्रकार एक वाक्य बनाया जा सकता है। अब यह बताया जायगा कि किसी दिए हुए वाक्य को किस प्रकार भिन्न भिन्न वाक्यो मे तोड़ना चाहिए। इससे विद्यार्थी को किसी भी दिए हुए मौलिक सस्कृत वाक्य की टीका सस्कृत मे ही करने का अच्छा अभ्यास प्राप्त हो जायगा। इस प्रणाली से टीका करने के कार्य मे बडी सुविधा प्राप्त हो जायगी। यदि दिए हुए वाक्य को भिन्न भिन्न वाक्यों में तोड़कर विद्यार्थी मौलिक शब्दों के स्थान पर अन्य पर्यायवाची शब्द रख दे तो मानों उसने उस वाक्य का स्वतत्र अनुवाद कर दिया।

उदाहरणार्थ यह श्लोक लीजिए—गुणदोषौ बुधो गृह्णन्निदुक्ष्वेडाविवेश्वर'। शिरसा श्लाघते पूर्वं परं कंठे नियच्छति।

यह श्लोक भिन्न भिन्न वाक्यों द्वारा इस प्रकार प्रकट किया जा सकता है :—

शिव इन्दुं विष च द्वे अपि स्वी करोति, किंतु इन्दुं शिरोधार-

णपूर्वकं प्रशंसति विषं च स्वकण्ठे नियच्छति । एवं प्राज्ञो नरः कस्यचिन्नरस्य गुणं दोषमुभावपि गृह्णाति । किन्तु गुणं ग्रीवान्दोलनापूर्वकं श्लाघते, दोषं तु स्वकंठे नियम्य तन्नाममात्रमपि विलोपयति ।

वस्तुत यह मौलिक श्लोक की स्वतंत्र टीका है, पर इससे अर्थ पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है । एक दूसरा वाक्य लीजिए:—

संग्रामनिर्विष्टसहस्रबाहुरष्टादशद्वीपनिखातयूपः ।
अनन्यसाधारणराजशब्दो बभूव योगी किल कार्तवीर्यः ॥

यह श्लोक निम्न लिखित प्रकार से कई वाक्यों में तोड़ा जा सकता है:

पुरा किल कार्तवीर्यो नाम योगी समजायत । तस्य युद्धेषु (एव) बाहुसहस्रं परैरनुभूतम् (अन्यत्र स द्विभुज एव)। तेन अष्टादशसु द्वीपेषु यज्ञस्तम्भा स्थापिताः । तथा च तस्य राजशब्दो नान्यसामान्य आसीत् । इसी प्रकार

श्रुतिसुभग गीतध्वनिं श्रुत्वा संजातकुतुको ध्वनिप्रभवजिज्ञासया कृतगमनबुद्धिः दत्तपर्याणम् इन्द्रायुधमारुह्य प्रियगीतैः प्रथमप्रस्थितैः वनहरिणैरुपदिश्यमानवर्त्मा पश्चिमया सरस्तीरवनलेखया निमित्तीकृत्य तं गीतध्वनिमभिप्रतस्थे —इस वाक्य का विस्तार निम्नलिखित विधि से किया जा सकता है —

यदा स सुखश्रवं गीतशब्दमशृणोत् तदा संजातकुतूहलं तत्प्रभवमुपलब्धुं स ऐच्छत् । तदनुरोधात् गमनाय मतिं विधाय इन्द्रायुधपृष्ठे पर्याणं समारोप्य तमारुरोह । तन्मार्गोपदेशाय इव सदाप्रियगीतरवाः वनहरिणा तस्मात् पूर्वमेव तदभिप्रेतां दिशं प्रस्थिताः । ताननुसरन् स पश्चिमेन सरस्तीरप्रान्तेन तं गीतध्वनिम् उद्दिश्य ययौ ।

ऊपर दिए हुए उदाहरणों की शैली के अनुसार तथा सेक्शन ४२० की सहायता से विद्यार्थी संस्कृत-लेखकों की कृतियों से वाक्यों को लेकर उनकी टीका कर सकते हैं।

# चतुर्थ सेक्शन

## पत्र-लेखन

४२७—पत्र लेखन के विषय में संस्कृत लेखकों ने बहुत ध्यान नहीं दिया। जितने संस्कृत ग्रन्थ विद्यमान हैं उनमें पत्रों के बहुत कम उदाहरण मिलते हैं, क्योंकि हमारे पूर्वज पत्रलेखन-प्रणाली का अधिक आश्रय नहीं लेते थे। अतएव संस्कृत में पत्रलेखन में वे कठिनाइयाँ नहीं आती जो प्राय अंग्रेजी में आती है, क्योंकि अंग्रेजी में विविध प्रकार के पत्र चलते हैं—वैयक्तिक, व्यापारिक, राजकीय, आदि आदि। अंग्रेजी में कुछ निश्चित विधियाँ होती हैं जिनके अनुसार पत्र प्रारम्भ किए जाते हैं। सम्बोधित व्यक्ति की स्थिति के अनुसार पत्रों के इन स्वरूपों में भी वैभिन्न्य होता है। इस अन्तर के अतिरिक्त दूसरी कोई भी ऐसी बात नहीं रहती जिसमें यह पहिचाना जा सके कि अमुक वैयक्तिक पत्र है (पिता का पत्र पुत्र को), अमुक राजकीय पत्र है (अमात्य की ओर से राजा को) अथवा अमुक पत्र किसी अन्य प्रकार का है (एक व्यक्ति की ओर से अन्य व्यक्ति को)। संस्कृत में पत्रलेखन की जो बहुत प्रचलित विधियाँ हैं वे उदाहरणपूर्वक इस सेक्शन में दी जायँगी।

४२८—पहिले दो उदाहरण दिए जायँगे, तदनन्तर विद्यार्थी से कहा जायगा कि पत्र के विवरण का अध्ययन करे।—

(१) स्वस्ति। महेन्द्रद्वीपात् परशुरामो लंकायाम् अमात्यं माल्यवन्तमभ्यर्हयति। अत्रैव परममाहेश्वरं लंकेश्वरम् अभिनन्द्य ब्रवीति। विदितमेतद् वो यदस्माभि दण्डकारण्यतीर्थोपासकेभ्यः तपोधनेभ्य प्रतिज्ञातमभयम्। तत्र विराध-दनु कबन्ध प्रभृतयः केऽप्यभिचरन्तीति श्रुतम्। तत् तान् प्रतिषिध्य सद्वृत्तिम् अस्मद्धिता च माहेश्वरप्रीतिमनुरुध्यतां भवंत।

ब्राह्मणातिक्रमत्यागो भवतामेव भूतये।
जामदग्न्यश्च वो मित्रमन्यथा दुर्मनायते॥ इति।

(२) और भी अधिक अर्वाचीन प्रणाली का नमूना यह है —

स्वस्ति। श्रीमन् संस्कृताद्यनेकविद्याविनयविराजमाना राजमान्याः श्रीयुतगोखले उपनामधारिण कृष्णरावाख्या शतश साष्टांगप्रणाम-पुरस्सर विज्ञाप्यन्ते। यत् काशीतो भवदर्थे आनीतस्य मानवधर्म-शास्त्रग्रन्थस्य वार्ताहरदेयभागेन सहित मूल्य सार्धदशरूपकपरि-मितमिमा पत्रिका भवद्धस्त प्रापयतो गोविंदस्य हस्ते दीयतामिति एषा विज्ञप्ति।

| | |
|---|---|
| पुण्य पत्तने<br>मार्गशीर्षसुदि १८०७ संवत्सरे<br>१५ | पटवर्धनकुलोत्पन्नस्य<br>हरिसूनोर्नारायणस्य |

४२६—अब विद्यार्थी को निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए—

(१) प्रत्येक पत्र "स्वस्ति" शब्द से प्रारम्भ होता है।

(२) जिस स्थान से पत्र लिखा जाता है उस स्थान का उल्लेख पहिले किया जाता है, और पंचमी विभक्ति में रक्खा जाता है। इस पंचमी विभक्त्यन्त शब्द का अन्वय प्रधान क्रिया के साथ रहता है।

कभी कभी उस स्थान का उल्लेख अन्त मे किया जाता है और सप्तमी में रक्खा जाता है जैसा कि ऊपर दिए हुए उदाहरण न० २ में है।

( ३ ) सम्बोधन का शब्द प्रत्यक्ष प्रकट नहीं किया जाता। प्रत्युत तत् तत् सम्बन्धों को सूचित करने वाले किसी शब्द द्वारा प्रकट कर दिया जाता है, जैसे, 'आयुष्मन्' शब्द किसी छोटे सम्बन्धी के लिए प्रयुक्त होता है। 'मित्र' शब्द मित्रता का सम्बन्ध सूचित करने के लिए प्रयोग मे आता है।

( ४ ) लेखक का नाम अन्त में नहीं लिखा जाता, बल्कि प्रारम्भ में आता है, और आदि वाक्य का कर्ता बनाकर रक्खा जाता है। सम्बन्ध की घनिष्ठता की मात्रा प्रथम वाक्य की क्रिया में प्रकट की जाती है ('अभ्यर्हयति' का अर्थ है "अञ्जलि अर्पण करना है" जिसका अर्थ यह हुआ कि लेखक सम्बोधित व्यक्ति का मित्र है। 'विज्ञाप्यन्ते' से यह प्रकट होता है कि लेखक और सम्बोधित व्यक्ति मे केवल साधारण परिचय मात्र है। 'परिष्वज्य दर्शयति' से प्रकट होता है कि लेखक सम्बोधित व्यक्ति का निकट सम्बन्धी है, जैसे पिता, पति आदि )।

विशेष—अर्वाचीन पत्रो मे लेखक का नाम अन्त मे आता है और षष्ठी विभक्ति मे रक्खा जाता है ( जैसा कि ऊपर के उदाहरण न० ७ के पत्र मे है )। इस षष्ठ्यन्त शब्द का सम्बन्ध 'विज्ञप्ति' 'प्रार्थना' या इसी प्रकार के अन्य शब्द से रहता है। ध्यान रहे कि यह शैली अधिक लोकोपचारपूर्ण है, और उसी दशा में काम में लाई जानी चाहिए जब कि लेखक सम्बोधित व्यक्ति को न जानता हो, अथवा सम्बोधित व्यक्ति से परिचित न हो।

( ५ ) पत्र का प्रारम्भ प्रथम पुरुष में हुआ करता है, यद्यपि पत्र के मध्य भाग मे दूसरे पुरुष भी आ सकते हैं।

(६) सम्बोधित व्यक्ति का जो नाम कभी कभी अंग्रेजी में कागज के बाएँ कोने पर अन्त मे लिखा जाता है और लिफाफे के ऊपर पूरा पूरा लिखा जाता है—वही नाम संस्कृत मे लेखक के निवास-स्थान के सहित आदि वाक्य मे दिया जाता है, और क्रिया का कर्ता अथवा कर्म बना कर (जैसा कि ऊपर के उदाहरण न० २ मे है), अथवा उसके साथ किसी अन्य प्रकार से सम्बद्ध करके रक्खा जाता है। यही पत्र का पता कहलाता है।

(७) संस्कृत मे पत्र लिखने की तारीख नहीं दी जाती। परन्तु आवश्यकता पड़ने पर उस क्रिया का क्रियाविशेषणात्मक विस्तार बनाकर सप्तमी विभक्ति मे या पत्र के बाएँ कोने मे अन्त में रखते हैं जैसे, शुभानुसंवत्सरे वैशाखवदि १३ भौमे।

४३०—सुविधा के लिए पत्र दो श्रेणियों में बाँटे जा सकते हैं—

**(१) घरेलू पत्र**—वे हैं जो किसी कुटुम्ब के भिन्न भिन्न प्राणियो के बीच मे लिखे जाते हैं।

**(२) अन्य पत्र**—वे हैं जो मित्र द्वारा मित्र के पास, शिष्य द्वारा आचार्य के पास, अमात्य द्वारा राजा के पास, अथवा एक व्यक्ति द्वारा अन्य व्यक्ति के पास भेजा जाता है। इन्हे हम "विविध पत्र" के नाम से सम्बोधित करेगे।

## १—घरेलू पत्र

४३१—पिता द्वारा पुत्र के पास भेजे हुए, बड़े द्वारा छोटे के पास भेजे हुए, अथवा पति द्वारा पत्नी के पास भेजे हुए पत्रो में सम्बन्ध की घनिष्ठता की मात्रा "स्नेहात् परिष्वज्य," "उत्तमागे चुम्बन" "सस्नेह-मालिग्य" आदि आदि से प्रकट की जाती है।

यहाँ पर कुछ उदाहरण दिए जायँगे —

( क ) पिता की ओर से पुत्र को

स्वस्ति। यज्ञशरणात्सेनापति पुष्पमित्रो वैदिशस्थं पुत्रमायुष्मतमग्निमित्रं स्नेहात्परिष्वज्य अनुदर्शयति। विदितमस्तु। योसौ राजसूययज्ञे दीक्षितेन मया राजपुत्रशतपरिवृतं वसुमित्रं गोप्तारमादिश्य निरर्गलस्तुरगो विसृष्टः स सिंधोर्दक्षिणरोधसि चरन्नश्वानीकेन यवनाना प्रार्थित। तत उभयोः सेनयोर्महानासीत्संमर्दः। किंतु वसुमित्रेण प्रसह्य ह्रियमाणो मे वाजिराजो निवर्तित। सोऽहमिदानीं पौत्रेण प्रत्याहृताश्वो यक्ष्ये। तदिदानीमकालहीनं विगतरोषचेतसा भवता वधूजनेन सह यज्ञसंदर्शनायागतव्यमिति।

( ख ) स्वस्ति। उज्जयिनीतः परममाहेश्वरो महाराजाधिराजो देवस्तारापीड सर्वसंपदामायतनं चंद्रापीडमुत्तमांगे चुम्बन्नदयति। कुशलिन्य प्रजा.। किंतु कियानपि कालो भवतो दृष्टस्य। बलवदुत्कंठित नो हृदयम्। देवी च सहांतःपुरैर्ग्लानिमुपनीता। अतो लेखवाचनविरतिरेव प्रयाणकालता नेतव्येति।

( ग ) और भी आधुनिक ढंग का पत्र निम्नलिखित प्रकार का होगा—

स्वस्ति। पंचवटीतो गोविंदशर्मा पुण्यपत्तने पुत्र विश्वनाथं ( अथवा आयुष्मंतं विश्वनाथं ) सोत्कंठं सस्नेह निर्भरमालिंग्य कुशलं वार्तयति यथा। कार्यं च। कुशलमिहास्माकं सर्वेषाम्। भवदीया कुशलवती वार्ता सर्वदा प्रहेया। अद्यैव भवदर्थेऽस्मन्मित्रस्य परशुरामस्य हस्ते विंशती रूपका दत्ता। तेषां विनियोग कथं कृत इति यथावसरं निवेदनीयमिति।

शाके १८०७ मार्गशीर्षवदि १४ भौमेऽहनि।

४३२—पिता अपने पुत्र को, बड़ा अपने छोटे को, तथा बड़ा सम्बन्धी अपने छोटे सम्बन्धी को अधोनिर्दिष्ट ढंग से पत्र लिखेगा—

स्वस्ति । श्रीमच्चिरजीविषु अमुकशर्मसु प्राणाधिकतरेषु अमुकस्य (पितु, भ्रातु आदि जैसा भी हो) सस्नेहा आशिष कोटिश स्फुरतु । विदितमस्तु आदि

स्वस्ति। अमुकस्थानात् अमुकस्थानवासिन चिरजीविनम अथवा आयुष्मतम् अमुकशर्माणम् अमुकशर्मा सस्नेहमाशीःसहस्रपूर्वकं कुशलं वार्तयति, अथवा सोत्कठं सस्नेहं समालिग्य कुशलं वार्तयति यथा । आदि,

(क) पति की ओर से पत्नी को

स्वस्ति । अमुकस्थाने पालितपरमपतिव्रतागुणा सौभाग्यशालिनीं भार्यामुकानाम्नीम् अमुक. सस्नेहं समालिग्य कुशलं वार्तयति यथा । कार्यं च । कुशलमिहास्माकम् । तत्रत्यसमस्तमानुषाणां कुशलवती वार्ता प्रहेया । अथवा एवगुणासु प्राणेभ्योपि प्रियतरासु नितांतालिंगनपूर्वकस्नेहसमूहा आदि ।

४३३—जब छोटा अपने बडे को अथवा पत्नी अपने पति को पत्र लिखे तो इस ढग से लिखे—

१—पुत्र की ओर से पिता को —

(१) स्वस्ति । अमुकस्थाने अनेकगुणालकृतस्नेहगुणभूषितपुत्रवत्सलपूज्यपितृपादारविदान् अमुकस्थानात्सदाविनीतः सुत (अथवा सदाज्ञाविधायी पितृभक्तितत्पर सुत) अमुको महाभक्त्या सबहुमान क्षितितलनिहितमौलिना साष्टागं प्रणम्य सविनय विज्ञापयति। ××× सर्वाभ्यो मातृप्रभृतिभ्यो मदीय. प्रणामो वाच्यः । कार्यादिकं च सदादेष्टव्यमिति ।

(२)स्वस्ति।श्रीमत्पितृचरणेषु अकिंचित्करकिंकरस्य सुतस्य(कभी कभी मम) बद्धकरसपुट प्रणतिततिसहस्रमजस्रम् । कार्यं च इत्यादि

(३) स्वस्ति श्रीजन्मकर्मार्थयज्ञेषु जनकेष्वितः।
स्नेहार्द्रभावसहिता स्फुरन्तु नतयः पराः॥

टिप्पणी—जब छोटा भाई बड़े भाई को अथवा पुत्र अपनी माता को पत्र लिखे तो उसे आवश्यक परिवर्तन कर देना चाहिए।

२—पत्नी की ओर से पति को —

स्वस्ति। यथास्थाने सकलपूज्यतमगुणगणालंकृतभर्तृपादान् (कभी कभी नाम दे दिया जाता है) अमुकस्थानात्सदाज्ञाविधायिनी अमुका पतिसेवातत्परा कंठाश्लेषपूर्वकं सस्नेहं सोत्कंठं सविनयं प्रणम्य विज्ञापयति यथा। कार्यं च।

## २—विविध

४३४—अब हम "विविध" वर्ग वाले पत्रों को लेंगे। मित्र को लिखते समय लोग प्रायः सम्मानद्योतक शब्दों का प्रयोग करते हैं जैसे, अमुकम् अर्हयति, अभिनन्दयति, अभिनन्द्य ब्रवीति, सस्नेहम् अनुदर्शयति, प्रणतिपुरःसरं निवेदयति इत्यादि।

इस प्रकार के एक पत्र का उदाहरण पहिले ही दे दिया गया है (उदाहरण नं० १ देखिए)। मित्र को पत्र लिखते समय विद्यार्थी उस पत्र को नमूना मान सकता है।

नीचे कुछ नमूने दिए जाते हैं—

(१) स्वस्ति। यथा स्थाने विद्वत्वदाक्षिण्यौदार्यादिगुणालंकृतशरीरं परमप्रेमनिधानं वयस्यम् अमुकम् अमुकस्थानादमुकः सोत्कंठं सस्नेहं गाढमालिंग्य कुशलं वार्तयति यथा। कार्यं च।

(२) स्वस्ति। अस्मदेकाश्रयीभूतेषु विद्याविनयादिमंडितेषु पूज्यतमेषु अमुकस्थाननिवासिषु अमुकशर्मसु अमुकस्थानवासिनः अमुकस्य प्रणतिसहस्रमजस्रम्।

४३५—अपरिचित लोग निम्नलिखित सामान्य ढंग को काम में ला सकते हैं —

स्वस्ति। अमुकस्थाननिवासी अमुकनामक श्रीमत सकलविद्या-वदातचेतसः अमुकान् अनेकप्रणामपूर्वक विज्ञापयति। अथवा अमुका एवगुणोपेता अमुकेन प्रणामपुरःसर विज्ञाप्यन्ते निवेद्यते वा अथवा श्रीमताम् अमुकनाम्ना—समक्ष (सनिधौ)अमुकस्थानवासिन. अमुकनाम्न. सविनया विज्ञप्ति। इत्यादि

इस नमूने के ढग पर किसी भी पुस्तक-प्रणेता को पत्र लिखकर प्रार्थना की जा सकती है कि अमुक पुस्तक की एक प्रति डाक के द्वारा भेज दे।

स्वस्ति। आंग्लभौमगीर्वाणादिभाषासु परा प्रतिष्ठा गता कलिकातानगरस्थमहापाठशालाधिकृता श्रीतर्करत्नवागीशाख्या प्रणामपुर.सर विज्ञाप्यन्ते। यत् भवत्प्रणीतम् अलकारदर्पणाख्य ग्रंथम् अधिकृत्य काचित् विज्ञप्तिपत्रिका मया मित्रहस्ते अद्य दृष्टा। तदवलोकनेन त ग्रथ क्रेतु मन्मनसि बलवतीच्छा प्रादुर्भवति। तदनुरोधात् राजशासनपत्रद्वारेण वार्ताहरभागसहित मूल्य सार्धचतुष्टयरूपकम् इत प्रेषितम्। तद्यावच्छक्य सत्वर तद्ग्रथस्य प्रेषणेनानुग्राह्यमात्मानमिच्छामि। ग्रथश्च निम्नलिखितबाह्यनामा प्रेषणीय इति विज्ञप्ति.।

पुण्यपत्तने संस्कृतपाठशालायाम् सवत् १९३५ श्रावनवदी ११ शनौ } अभ्यंकरोपनामकस्य गोविदसूनो रामशास्त्रिण:

टिप्पणी—इन सभी पत्रों मे प्राय सम्बोधित व्यक्ति के कुशल के लिए भगवान् से या किसी देव या देवो से प्रार्थना कर दी जाती है। यह अन्त में रक्खी जाती है, इस प्रकार—शमिह भावत्कं भव्यमनदिनमेधमानमाशास्महे अथवा अत्यन्त संक्षेपत इति शम्।

४३६—विद्यार्थी अपने अध्यापक को इस प्रकार लिखेगा —

स्वस्ति । अमुकस्थाने अनेकतीर्थावगाहनपवित्रीकृतमानसान् परमाराध्यपरमपूज्यश्रीगोविंदाचार्यपादारविंदान् अमुकस्थानात्सदादेशवर्ती अमुकनामक परमभक्त्या क्षितितलनिहितमौलिना साष्टांग प्रणम्य सविनयं विज्ञापयति, अथश्च एवं गुणोपेता श्रीमदुपाध्यायपादा भक्तितत्परेण अमुकनाम्ना शिष्येण सविनयप्रणामपूर्वक विज्ञाप्यन्ते, इति विज्ञप्ति अमुकशर्मण इत्यादि ।

इस ढंग के अनुसार विद्यार्थी बीमारी की छुट्टी के लिए अध्यापक को इस प्रकार लिख सकता है —

स्वस्ति । सकलविद्यावगाहनविशदीकृतमानसा परमपूज्या गोपालरावाख्या अनेकप्रणामपूर्वकं सविनय विज्ञाप्यन्ते । यन्मम गेहेद्य मातापितरावुभावपि ज्वरपीडितौ सतौ शय्याग्रस्तौ । तौ तथा परित्यज्य पाठशालां गतुं नाहमुत्सहे । मामपि च बलवती शिरोबाधा पीडयति । अत अद्य मम अनुपस्थिति मर्षयितुमर्हन्ति आचार्यपादा इति सविनया विज्ञापना सदाभवदादेशवर्तिन. शिष्यस्य,

खिस्ताब्दे दशममासस्य द्वादश वासरे } कालेकुलोत्पन्नस्य गोविंदसूनोर्हरेः
१८८५

४३७—कुछ और नमूने देकर इस सेक्शन की समाप्ति की जाती है । ( "स्वस्ति" प्रत्येक नमूने में प्रयुक्त किया जा सकता है ) ।

(१) मंत्री अथवा अन्य राज-पुरुष की तरफ से राजा को —

श्रीसमस्तसामंतसेनानिर्वाहकेषु परोपकारसत्कारनिपुणेषु निजकीर्तिधवलितदिगंतरेषु महाराजाधिराजचरणेषु, आदेशवर्तिनो

महाराजकिंकरस्य समस्ताशीराशी महस्रमजस्रम् अथवा °का °णा, °रा:, °णा: आशी सहस्रपूर्वक निवेद्यन्ते, अथवा अमुकस्थाने देव विनयनतशिरा. अमुक पादद्वंद्वारविंदे भक्त्या मूर्ध्नि अजलि रचयति। कार्यं च लिख्यते इत्यादि।

(२) बडे की तरफ से छोटे को —

अमुकस्थानात् अमुक: अमुकस्थाने अमुक सप्रसाद समादिशति यथा (कार्य च) इत्यादि

(३) छोटे की तरफ से बड़े को .—

पूज्यपरमाराध्यस्वामि अमुकपादान् अमुकस्थानात्सदादेशकारी अमुक. साष्टाङ्गप्रणामपूर्वक विज्ञापयति।

(४) सन्यासी को

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यदेवभूदेवनरदेवपूजितेषु श्रीपादेषु अमुकस्य प्रपंचविस्मरणपूर्वक नारायणस्मरणप्रणामसहस्र-मजस्र विज्ञप्तिश्च।

४३८—अब हम विद्यार्थी से कहेगे कि ऊपर के पृष्ठो मे दिए हुए नियमों के अनुसार कतिपय पत्र लिखे। इन नियमो का अनुसरण करने से वह किसी भी प्रकार का पत्र किसी भी हैसियत से लिख सकता है। लेख्य विषय मे पर्याप्त वैभिन्न्य मिलेगा, परन्तु ऊपर दी हुई विधियाँ प्राय काम दे जायगी।

अभ्यास ४५—५२

१—अपने पिता को एक पत्र लिखिए जिसमें यह दिखाइए कि आप ने पाठशाला में अपने अध्ययन मे क्या प्रगति की।

२—पिता की ओर से पुत्र के पास एक पत्र लिखिए, जिममे यह

दिखलाइए कि आप उसके पास कुछ पुस्तकें तथा उपहार भेज रहे हैं

-अपने मित्र के पास एक पत्र लिखिए, जिसमें यह प्रार्थना कीजिए कि अमुक प्रीतिभोज में अथवा अमुक धार्मिक उत्सव के अवसर पर आकर दर्शन दीजिए ।

-एक पुस्तक-विक्रेता के पास पत्र लिखिए, जिसमें उससे प्रार्थना कीजिए कि अमुक अमुक पुस्तकों की आपको आवश्यकता है, अतः उन्हे शीघ्र भेजिए ।

-अपने गुरु को एक पत्र लिखिए जिसमें यह दिखलाइए कि अमुक अमुक गृह-कार्य के कारण आप पाठशाला मे उपस्थित न हो सकेंगे, अत अमुक अवधि तक के लिए अवकाश प्रदान किया जाय ।

-किसी मित्र को पत्र लिखिए जिसमें उससे यह प्रार्थना कीजिये कि मेरे लिए कुछ आर्थिक सहायता भेज दीजिए ।

-अपने सहपाठी को एक पत्र लिखिए जिसमे यह प्रार्थना कीजिए कि अपनी सस्कृत व्याकरण की पुस्तक कुछ दिनो के लिए उधार दे दीजिए ।

-किसी पाठशाला के प्रधानाध्यापक की ओर से ज़िले के शिक्षाधीश के पास कतिपय सहकारी अध्यापक माँगते हुए एक पत्र लिखिए ।

# कठिन शब्दों की व्याख्या

## प्रथम पाठ

विदूषक के विषयमें पुरूरवा द्वारा कथित, जबकि उसने चन्द्रमा की उपमा मोदक से दी। प्रत्येक दशा मे भोजन ही भुक्खड़ आदमी का उपयुक्त क्षेत्र हुआ करता है' अर्थात् उसके रूपक और उसकी उपमाएँ भी भोजन-विषयक होती हैं।

'निश्चयपूर्वक कौन व्यक्ति यह विश्वास कर सकता है कि यह स्त्री वही है',—इसकी मुखाकृति में ऐसा घोर परिवतन हो गया है।

"अर्थपति"—व्यक्तिवाचक संज्ञा (कुबेर), इसका अर्थ है—मानों विमर्दक अर्थपति का बाह्य जीवन है, वह उसे अपने प्राणों के समान प्यारा समझता है, वे—प्राण जो 'अन्तश्चरा' हैं।

एक प्रश्न, 'क्या पांडव लोग भयोत्पादक वस्तु हैं'।

भीम सहदेव से कहते हैं "न तो मेरे सुयोग्य भ्राता (धर्म), न अर्जुन, न तुम ही, कारण हो।" **मम शिशोरेव** मुझ जैसे बच्चे ही का।

**द्वितीय हृदयम्**—दूसरा हृदय, तू मेरे अस्तित्व (जीवन) का अंश-भूत है।

**निस्तेजा**—तेजहीन, साहसहीन, तथा अग्निरहित, दाहशक्ति रहित। यह भस्मचय मे भी अन्वित है, जो बहुत बड़ा होते हुए भी सरलता से ही पाँव तले रौंदा जाता है क्योंकि उसमें आग नहीं रहती।

**आहितलक्षणः**— काकुत्स्थ' ऐसा नाम रक्खा गया, 'काकुत्स्थ'

इस नाम से विख्यात हुआ, अथवा (अमरकोशानुसार 'अपने सद्गुणों के कारण प्रसिद्ध')।

'जो मेरे ही समान मेरे मन की दूसरी गाँठ है।' कामन्दकी द्वारा मालती से कहा गया है जब कामन्दकी ने उससे यह बताया कि माधव कौन था।

**पश्चिमे वयसि वर्तमानस्य**—अपनी अन्तिम अवस्था में वर्तमान जिसकी अवस्था काफी बड़ी हो चुकी थी।

**शुकमादाय**—अपने साथ एक सुग्गा लिए हुए। **आश्चर्यभूत**—आश्चर्य की वस्तु। **इति कृत्वा**—ऐसा विचार कर, इस विचार से। **देवपादमूलमागता**—श्रीमान् के चरणों में आई।

**गर्भस्थस्यैव**—जब कि वह गर्भ ही में रहता है, तभी, अर्थात् ये पाँचों उसके साथ साथ पैदा होते हैं।

**भूपते**—भूपतिना, केवल तीन वस्तुएँ उसके द्वारा नहीं दी जा सकती थी क्योंकि वे राजत्व के आवश्यक लक्षण थी।

इस पंक्ति का अर्थ यह है कि यद्यपि सम्पत्ति तथा विद्या (सरस्वती) के प्रकृत्या भिन्न भिन्न स्थान (स्थितियाँ) होते हैं तथापि इस राजा मे वे साथ-साथ रहती हैं। लक्ष्मी और सरस्वती का साथ साथ निवास बड़ा दुर्लभ हुआ करता है, पर इस राजा में दोनो का साथ-साथ निवास पाया जाता है। **एकसस्थम्**—एका सस्था यस्य।

**व्यतिकरितदिगन्ता**—जिन्होंने दिगन्तों (दिशाओं के अन्तों) को व्याप्त कर रक्खा है। **दिशाम् अन्ताः इति दिगन्ताः**। **सुकृतविलसितानाम् स्थानमूर्जस्वलानाम्**—जो उत्तम कार्यों के ज़बर्दस्त विलासों (प्रदर्शनों) के घर हैं अर्थात् जिन्हों ने अनेक पुण्य कार्य किए हैं।

## द्वितीय पाठ

चन्द्रसरोरक्षका—चन्द्र-सरोवर का रक्षा करने वाले, अर्थात् खरगोश।

जिसके ऊपर राजा अपनी आँखे अधिक लगाता है अर्थात् जो औरों की अपेक्षा अधिक प्रियतर दृष्टि से देखा जाता है।

इसका अर्थ यह है 'राक्षस तुम्हारे बाणों के लिए उपयुक्त निशाने हैं, इसलिए अपने धनुष को इनके ऊपर झुकाओ।"

उसी प्रकार राजा और मागधी (सुदक्षिणा) जो कि उनके (शिव तथा उमा और इन्द्र तथा शची) के समान थे अपने पुत्र से प्रसन्न थे जो कि उनके समान था (अर्थात् कार्तिकेय और जयन्त के समान था)।

बहु मन्यते—माना जाता है, बड़े सम्मान की दृष्टि से माना जाता है। आशानिबंधन जाता जीवलोकस्य—सारे संसार भर की आशा का बन्धन हो गया। श्री सीता जी के कहने का तात्पर्य यह है—"वस्तुत. वह स्त्री धन्य है जिसने मेरे स्वामी का मनोरंजन करके लोगों की आशाओं को अपने ऊपर केन्द्रित करा लिया है।"

पृथ्वी के कहने का तात्पर्य यह है कि श्रीसीता जी को त्यागने में राम इन विचारों से ज़रा भी प्रेरित नहीं हुए थे, जिनमें एक के भी अनुसार श्रीराम जी के विरुद्ध निर्णय हो सकता था।

दूषण, खर, त्रिमूर्धा—राम द्वारा मारे गए हुए राक्षसों के नाम हैं।

वस्तुत. उसका जीना मृत्यु है, और उसके लिए मृत्यु विश्राम है, अर्थात् इस प्रकार के मनुष्य का अस्तित्व जीती जागती हुई मौत है, बल्कि साक्षात् मौत उसके लिए विश्राम है।

यह सन्देहात्मक पंक्ति है। इसका अर्थ यह मालूम पड़ता

है "जो हर्ष तथा विषाद दोनों में उपयुक्त वस्तु बन सकता है वह दुर्लभ है" अर्थात् सम्पत्ति तथा विपत्ति के दिनों में मित्र के अतिरिक्त कोई भी साथ नहीं दे सकता। **ये चान्ये सुहृद समृद्धिसमये द्रव्याभिलाषाकुला ते सर्वत्र मिलन्ति** - इसकी तुलना **सैम्सन एगो निस्ट्रस** की उक्ति से कीजिये-' सम्पत्ति के दिनों में वे लोग झुण्ड के झुण्ड इकट्ठा हो जाते हैं, विपत्ति के दिनों में, वे अपना मुँह छिपा लेते हैं, खोजने पर भी नहीं मिलते।" **तत्त्वनिकषग्रावा तु तेषा विपत्**—परन्तु विपत्ति उनके तत्व को पहिचानने की कसौटी है ( जिस पर उनका वास्तविक चरित्र परखा जा सकता है )।

**हिंसाशून्यम्**—क्षतिरहित, किसी को कष्ट पहुँचाए बिना प्राप्त। "**अशनम्**" का अन्वय "**व्यालाना समाप्ति प्रयान्ति**" के साथ होगा—"नष्ट हो जाते हैं, क्षीण हो जाते हैं" "जीविका उपार्जन करने के प्रयत्न में बिल्कुल क्षीण हो जाते हैं"।

भगवान् विष्णु के प्रति सम्बोधित है "हमारे शब्द आप की महिमा का वर्णन करके बन्द हो जाते हैं-यह या तो हमारी क्षीणता ( थकावट ) के कारण हो जाना है, अथवा वर्णन करने की असमर्थता के कारण, न कि इस कारण कि आप के गुणों का अन्त हो चुका।"

## तृतीय पाठ

**बिन्दूत्क्षेपान्**—चक्कर करती हुई पहिये के द्वारा ऊपर की तरफ फैंकी हुई जलकी बूँदे।

प्रियवदा के कहने का तात्पर्य यह है-दुष्यन्त के अतिरिक्त उस स्त्री का जीवन कौन बचा सकता है जिसने गाढे प्रेम के लक्षण प्रदर्शित किये हैं।

**प्रावृषा सभृतश्रीः**-जिसकी शोभा वर्षा ऋतु के कारण बढ जाती है।

कृतकार्य —वनम् का विधेय है। इसका अर्थ हुआ "जिसका मनोरथ सिद्ध हो चुका है।" "यद्" कर्म है "अध्यास्ते" का।

अधिष्ठाय— नेता अथवा सचालक होकर; पथप्रदर्शक होकर।

"अमी" का सम्बन्ध है "वह्नयः क्लृप्तधिष्ण्याः" से। "क्लृप्तधिष्ण्याः" का अर्थ है "जिनके स्थान नियत कर दिये गए हैं"।

मण्डप की लम्बाई चौड़ाई दी। शतमध्यर्द्धं—एक सौ पचास।

रघुप्रतिनिधि.—रघु के प्रतिनिधि अर्थात् अज। कामदेव के समान बाल्यावस्था के अतिरिक्त किसी भी अवस्था को धारण कर।

सम्प्रति आवसत्—हाल ही में रह चुका है।

वह उसके बाद सोता था और प्रातःकाल उसके जागने पर जागता था।

"अयजन." का सम्बन्ध साधारणतया वक्ता से हुआ करता है। दुष्यन्त के कहने का तात्पर्य है "इस व्यक्ति ने (अर्थात् मैंने) एक बार उससे अर्थात् हंसपदिका से प्रेम किया, इसी कारण रानी वसुमती के सम्बन्ध में मुझे बहुत कड़े कड़े व्यंग्य सुनने पड़े हैं।

दोष विवक्षता त्वया—दोष को कहने की इच्छा करने वाले आप के द्वारा।

क्रियान्तरान्तरायमन्तरेण—आपके अन्य कर्तव्यों में विघ्न पहुँचाए बिना, अर्थात् ऐसे समय पर जब कि आप को दूसरा कुछ भी काम न करना रहे।

कल्पितशस्त्रगर्भम् जिसके अन्दरूनी भाग में शस्त्र तैयार करके रक्खे हुए थे।

चतुरस्रयानम् एक ऐसी सवारी जिसमे चार कोने हों अर्थात् पालकी। चतस्र. अस्रयो यस्य तत्।

मञ्चान्तरराजमार्गम्—वह राजमार्ग जो कि मचों की पंक्तियों से बना हुआ था।

क्लृप्तविवाहवेषा — विवाह के वेष मे सजी हुई।

कष्टसश्रया — दुःखो से भरा हुआ।

यत्—चूंकि। इसका अर्थ यह है कि पागल कुत्ते के जहर के समान सीता-विषयक यह बदनामी हर जगह फैल गई है, यद्यपि बड़े बड़े अद्भुत उपायों द्वारा यह हटाई जा चुकी थी।

प्रियासहचर — मेरी प्रिया की साथी अर्थात् मेरी प्रिया के साथ।

गोदावरीपरिसरस्य—जिसके समीप गोदावरी नदी है।

दंष्ट्रानखलाङ्गलप्रहरण —जिसके अस्त्र उसके दाँत, पजे, और दुम हैं। तृष्णा छिनत्ति—प्यास बुझाता है।

अजातशत्रु —जिसका कोई शत्रु ही नही था। लिखितैरिव—चित्र मे खिचे हुए से, मानों हम लोग चित्र थे जिसमे हिलने डुलने तथा बदला लेने की शक्ति नही हुआ करती।

जलानि या तीरनिखातयूपा वहत्ययोध्यामनुराजधानीम्—सरयू नदी जिसके तट पर यज्ञस्तम्भ बने हुए हैं, अयोध्या राजधानी के बगल से अपना जल बहाती है।

वाच्यदर्शनात्—निन्दा को देख कर। नृपति सन्—राजा होता हुआ।

## चतुर्थ पाठ

अचिरप्रवृत्तोपदेशम्—जिसमे उपदेश को प्रारम्भ हुए बहुत दिन नही बीते हैं, चूंकि हाल ही मे वह अपने स्वामी के हाथों में सौंपी गई थी। कीदृशी मालविका—मालविका का क्या हाल है? उसने कितनी निपुणता प्राप्त कर ली है?

सुख प्रष्टुम्—यह पूछने के लिए कि उसका क्या हाल है।

पृथूपदिष्टाम्—महाराज पृथु द्वारा बताई हुई।

इन्द्र द्वारा उद्दिष्ट कार्य के सम्बन्ध में जो अपनी शक्ति दिखा चुका था, जो उद्दिष्ट कार्य को करने की क्षमता सिद्ध कर चुका था।

सोऽहम्—इसलिए मै।

जब कौत्स ने देखा कि रघु ने कुबेर से आकाश से सम्पत्ति ( निधि ) की वर्षा करवाई है तब उसने कहा था—वृत्ते स्थितस्य—( राजाओ के ) कर्तव्य मे लगे हुए के। मनीषितम्—आकाश ने भी आपके अभिलषित मनोरथ को प्रदान किया है।

ज्येष्ठा—हिमवान् की बड़ी कन्या। त्रिपथगा—तीन मार्गों से बहने वाली आकाश, पृथ्वी और पाताल।

राज्याश्रममुनिम्—वह राजा जो राज्यरूपी आश्रम मे मुनि के तुल्य था।

काकपक्षधरम्—जिसके घुँघराले बाल थे अर्थात् जो अभी बिल्कुल बालक था।

तेजसाम् हि न वय समीक्ष्यते—जो तेजयुक्त होते हैं उनके विषय मे उम्र नही देखा जाती। भर्तृहार जी के न खलु वयस्तेजसो हेतु " से तुलना कीजिए।

कृपयाविष्टम्—कृपा की भावना से भरे हुए को।

यहाँ पर शरद् ऋतु की उपमा एक ऐसे दूत से की गई है जो अपने मित्र ( गगा जी ) को स्वामी ( अर्थात् समुद्र ) के पास पूर्णतया प्रसन्न चित्तवृत्ति की दशा मे ( अत्यन्त शुद्ध जल वाली गगा-पक्ष में ) बड़ी कठिनाइयों को पार करके उन गगा जी को ठीक रास्ते पर लाया है ( गगा पक्ष मे-नदी को उसके सामान्य मार्ग पर लाकर ), जो दुबला पड़ गया है ( जो गगा जी मार्ग मे सकीर्ण हो गई हैं ), जो स्वामी से क्रुद्ध हो गया है क्योंकि स्वामी ने बहुत सी पत्नियाँ रख ली

हैं (गगा पक्ष में—जिसका जल वर्षाऋतु में गॅदला हो जाता है चूॅकि समुद्र भी नदी रूपी बहुत सी पत्नियाॅ रख लेता है)।

**मम वचनात्**—मेरे कहने से। **पूर्वाभाष्यम्**—जो लोग प्राय विपत्तिग्रस्त रहा करते हैं उनके बातचीत करने का यही एकमात्र ढग है।

**स**—राम। **याचमान शिव सुरान्**—देवताओं से आशीर्वाद माॅगता हुआ। देवताओं से सीता जी के कल्याण की प्रार्थना करता हुआ।

**यथास्थित सर्वम्**—सभी बाते जैसी थी वेसी ही हैं। **भिक्षमाणो वन प्रियाम्**—अपनी पत्नी के बारे मे जगल से पूछता हुआ।

**प्राणान् दुहन्निवात्मानम्**—मानों अपने शरीर में से प्राणों को निचोड़ते हुए उसने शोक को अपने मस्तिष्क मे सीमित रक्खा अर्थात् वह जीवन से निराश हो गया, इस से हृदय मे दुखी था।

"**आ यत्र तापसान्**"—अनुमान भिडाता है। "आ" का अर्थ हुआ करता है "हाॅ", शायद ऐसा ही हो।"

## पचम पाठ

**अनाययत्** अर्थात् हारीत, जब उसने सुग्गों को उस निस्सहाय अवस्था मे देखा। **मुक्तप्रयत्नम्**—जिसने प्रयत्न करना (छटपटाना) बन्द कर दिया था।

**येन असत्यसन्धे जने सखी पद कारिता**—जिसने मेरी सखी को उस असत्य प्रतिज्ञ पुरुष मे विश्वास करवाया।

**आसन प्रतिग्राहित**—तुमने (गुरु जी का) आसन ढोवाया गया।

**धात्रीकर्म वस्तुत परिगृह्य**—दाई के कर्तव्य से लेकर अन्य सभी कार्यों का भार लेकर यानी जो कार्य दाइयाॅ करती हैं वह सब काम करता

हुआ। कदाचित् यह वाक्य यों पढ़ा जा सकता है। 'धात्रीकर्म वस्तुत. परिगृह्य'—दाई के कर्तव्यों का भार वस्तुत लेकर।

वृत्तचूडौ—जिनका चूडाकर्म (मुंडन संस्कार) हो चुका था। त्रयीवर्जम्—तीनों वेदों को छोड़कर।

तौ दंपती बहु विलप्य शिशोःप्रहर्त्रा शल्यं निखातमुदहारयतामुरस्त.—विलाप करके वे दोनों (स्त्री पुरुष) अपने शिशु के बध करने वाले से छाती मे गडे हुए बाण को निकलवाने लगे।

सांगं च वेदमध्याप्य—अंगों-समेत वेद पढ़ाकर। अंग छः हैं—शिक्षा, छन्द, व्याकरण, निरुक्त, कल्प, और ज्योतिष।

उत्क्रान्तशैशवौ—जो अपनी शैशवावस्था पार कर चुके थे। कविप्रथमपद्धतिम्—कवियों का पहिला मार्ग, जिसने पहिले पहिल कवियों का रास्ता दिखाया। वह श्री वाल्मीकिजी "आद्य कवि" हैं अत' उनके लिए उक्त विशेषण दिया गया है।

## अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

भावेन—श्रीमान् जी के द्वारा, इसका संकेत सूत्रधार की तरफ है

रजनीतिमिरावगुण्ठिते पुरमार्गे घनशब्दविक्लवा इत्यादि शिवद्वारा कामदेव के भस्म कर दिए जाने पर रति द्वारा कहा गया है "रात्रि के अन्धकार में आच्छादित"।

तां कुलप्रतिष्ठां कुलदेवताभ्यः प्रणामय्य—जो अपने कुल की शक्ति अथवा वैभव थी ऐसी उस कन्या से कुलदेवताओं को प्रणाम करवा कर। कारयितव्यदक्षा—जो कुछ (दूसरों से) कराया जाना चाहिए उसको भली भाँति जानती हुई। सतीनां पादग्रहणमकारयत्—उससे सती स्त्रियों के चरण पकड़वाए।

उत्सवसंकेतान्—एक जातिविशेष के लोगों का नाम है। जयोद्घोषणाम्—अपनी विजय की घोषणा

अथानाथा: प्रकृतय.—दशरथकी मृत्यु के बाद । अनाथा:—राजा के मर जाने के कारण स्वामी से हीन।

त्व रक्षसा भीरु यतोऽपनीता—राम ने सीता से कहा है। रक्षसा—रावण द्वारा

गुणानुरक्तामनुरक्तसाधन कुलाभिमानी कुलजा नराधिप—इत्यादि द्रौपदी ने युधिष्ठिर से कहा है—अपने उपयुक्त सभी साधनों को रखने वाला, तथा अपने कुल पर गर्व करने वाला, तुम्हारे अतिरिक्त कौन सा राजा, गुणों के कारण पति में अनुरक्त रहने वाली तथा उच्चकुल म पैदा हुई पत्नी-तुल्य सम्पत्ति को दूसरो स हरण करवा लेगा। क इव—सम्भवत कौन सा ?

य पयो दोग्धि पाषाण स रामात् भूतिमाप्नुयात् इत्यादि ये चार पक्तियाँ तथा आगे की दो पक्तियाँ रावण ने सीता जी से कही हैं। रावण सीता जी का चित्त अपनी ओर आकृष्ट करने का प्रयत्न कर रहा था। इन पक्तियों का अर्थ है "जो पुरुष पत्थर मे से दूध निकालता है वही श्रीरामजी से भूति (ऐश्वर्य) प्राप्त कर सकता है।" कहने का तात्पर्य यह है कि "यह बिल्कुल असम्भव है"

बोधयन्त हिताहितम्—जो तुम्ह हितकर तथा अहितकर बाते समझा रहा है।

कि विलापयसे—मुझे क्यों ज्यादा बातचीत करवाते हो ?

आज्ञा कारय रक्षोभिर्मा प्रियाण्युपहारय। क शक्रेण कृत नेच्छेदधिमूर्धानमजलिम्—मुझसे और राक्षसों से प्रिय लगने वाले कार्य कराइये। सिर पर हाथ लगाकर और अञ्जुलि जोडकर इन्द्र द्वारा किए गए हुए प्रणाम का कौन न चाहेगा, अर्थात् मुझसे हराया गया हुआ इन्द्र जिस प्रकार मुझे प्रणाम करता है, उसी प्रकार मेरी प्यारी को (तुझको) भी

प्रणाम करेगा । मूर्धानमधिगतः अथवा अधिगतो मूर्धा येन तमधि-मूर्धानम् ।

एनम् अर्थात् राम रक्षोगणं क्षितुम्—राक्षसों के समूह का नष्ट करने के लिए । गाधिसुत—विश्वामित्र ।

## छठवाँ पाठ

अधरोत्तरव्यक्तिर्भविष्यति—यह स्पष्ट हो जायगा कि कौन छोटा है, कौन बड़ा है ।

अहम् अयम—गणदास, जिसने हरदत्त के विषय में राजा से शिकायत की ।

शापितासि मम लवंगिकावलोकितयोर्जीवितेन यदि वाचा न कथयसि—यदि तुम इसे वाणी द्वारा नहीं कहोगे तो मैं तुम्हें अपने प्राणों की शपथ दिलाता हूँ । जब मालती माधव के प्रश्नों का उत्तर केवल सिर हिलाकर देती थी तब माधव ने यह बात कही थी । जरद्द्रविड धार्मिक—बुड्ढा द्रविड सन्यासी "इच्छया" का अन्वय "निसृष्टैः" के साथ होगा । इसका अर्थ है 'स्वेच्छानुसार" "अभिमतम्" का अन्वय "मनोरथम्" के साथ होगा । इसका अर्थ है "चाहा हुआ, वाञ्छित" ।

किं बहुना—बहुत कहने से क्या लाभ ? अर्थात् संक्षेपतः ।

स्वहृदयेनापि विदितवृत्तान्तेनामुना जिह्रेमि—चूँकि मेरा हृदय सारा वृत्तान्त जान गया है इसलिए मैं उससे अपने हृदय से लज्जित हूँ ।

दूरीकृताः खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः—गुणों से, वनलताओं ने बगीचे की लताओं को बहुत ज्यादा मात कर दिया है । अर्थात् अनलंकृत प्रकृति सबसे अधिक अलंकृत कर देती है ।

शरीरस्था·· मग्नभूषणा—जब शकुन्तला गर्भवती थी उस समय

उनकी जो दशा थी उसका वर्णन है। मुर्दाक्षणा अपने सारे आभूषणों को नहीं पहिने हुए थीं बल्कि थोड़े से अत्यन्त आवश्यक आभूषणों को पहिने हुए थी—जैसे, मङ्गलसूत्र कङ्कण इत्यादि। मुखेन–मुखेन उपलक्षिता। तनुप्रकाशेन—धुँधले प्रकाश वाले (चन्द्रमा) से। विचेयतारका—ऐसी रात्रि जिसमे सितारों को खोजना पड़ता है, क्योंकि वे प्रभातकाल में बहुत कम रहने हैं।

मर्त्येषु असंमूढ —तमाम मनुष्यों में जो मूढ नहीं है वही मुझे जानता है।

अकथ्यमाने—अर्थात् पुण्डरीकवृत्तान्ते।

अवधूतप्रणिपाता पश्चात् सतप्यमानमानसोऽपि इत्यादि—यद्यपि मानवती स्त्रियाँ पहिले तो प्रणाम को ठुकरा देती हैं, तथापि बाद मे वे पश्चात्ताप से दुखित होती हैं और अपने प्रिय को मनाने से हृदय में भीतर ही भीतर लज्जित होती हैं अर्थात् वे खुलकर मनाना पसद नहीं करती।

कष्ट जन कुलधनैरनुरजनीय —जब लक्ष्मणजी ने कहा "यात्र-दार्याया हुताशने विशुद्धि" अर्थात् अग्निद्वारा सीता जी की विशुद्धि तक, तब श्रीरामचन्द्र जी कहते हैं 'हा, कितने दुख की बात है कि जिनका विमल यश ही धन है उन्हें प्रजा को प्रसन्न रखना पड़ता है। इसलिए यह कार्य ( विशुद्धि ) केवल प्रजा को प्रसन्न रखने के लिए किया गया था। इसलिए जो कुछ बुरी बातें हम ने तुम्हे कही हैं वे वस्तुत तुम्हें उचित नही हैं। नः—अस्माभि ।

अविनयबहुलतया—क्योंकि चढती हुई जवानी तमाम अविनय-पूर्ण कार्यों से भरी रहती है। तमपि—पुण्डरीकम्।

स्पृशति बहुमानोन्नतिपदम्—पदवी को प्राप्त कर लेता है। इत.—मयि।

विनयप्रधानै —विनय॰ प्रधान॰ येषाम्, जिनमें विनय सबसे प्रधान है।

"नन्दमौर्यनृपयो" का अन्वय "अस्तोदयौ" के साथ होगा। अविभिन्नकालम्—साथ ही साथ। इन पंक्तियों से सूर्य की अपेक्षा चाणक्य की उत्कृष्टता सूचित होती है। "जो अपने प्रकाश के कारण सहस्रकिरण वाले सूर्य भगवान के प्रकाश को भी मात कर देता है—वह प्रकाश जो सर्व-व्यापी नहीं है और पर्याय से (अन्तर से) शीत और उष्ण पैदा करता है (चाणक्य की तरह एक ही समय में नहीं—चाणक्य एक साथ ही शीत तथा उष्ण पैदा कर देता है)।

न तेन सज्ज क्वचिदुद्यत धनु॰—दुर्योधन के गुणों का वर्णन है, "शत्रुओं के विरुद्ध उठाया गया हुआ अथवा खींचा गया हुआ।" उसकी आज्ञाएँ राजाओं द्वारा बड़े सम्मान के साथ पाली जाती हैं। "गुण" का अर्थ "डोरा" भी है।

सबाल आसीद् वपुषा चतुर्भुज —नारदमुनि विष्णु से शिशुपाल के विषय में कह रहे हैं। बाल —लड़का होते हुए (भी)। मुखेन पूर्णेन्दुनिभस्त्रिलोचनः—मुख में पूर्णचन्द्रमा के समान वह त्रिनेत्र भगवान् शंकर के तुल्य था। अब, युवा होने के कारण, उसने राजाओं को कर देने के लिए विवश कर दिया है, और वस्तुत॰ सर्वथा सूर्य के समान है (जो अपनी किरणों से पर्वतों को व्याप्त कर लेता है)।

## सातवाँ पाठ

१—"सर्वज्ञस्य" में तृतीया का अर्थ है। केवल एक आदमी के द्वारा फैसला कराने का उत्तरदायित्व, चाहे वह आदमी कितना भी सर्वज्ञ क्यों न हो, दोषपूर्ण हो सकता है।

६—मिथ्या॰॰निर्भरा—झूठी मूठी महिमा के घमंड से भरे

हुए । आत्मप्रज्ञा इत्यादि—वे मंत्री की राय से घृणा करते हैं क्योंकि वे सोचते हैं कि मंत्री की राय को मानने मे मेरी बुद्धिमत्ता का अपमान है ।

८—महाश्वेताप्रणामपुरःसरम्—पहिले महाश्वेता को प्रणाम कर के ।

६—अवाङ्मनसगोचरम्—जो वाणी और मन की पहुँच के बाहर है । अर्थात् जिसका न तो वर्णन हो सकता है, न चिंतन हो सकता है ।

१२—तृणबिन्दो परिशंकित —तृणबिन्दु घोर तपस्या कर रहे थे इसलिए उनसे डरा हुआ इन्द्र ।

जब कौत्स ने देखा कि महाराज रघु बिल्कुल धनहीन हो गए हैं, तो वह वहाँ से चलने लगा । निर्गलिताम्बुगर्भम्—शरद्घन से चातक भी नहीं माँगता क्योंकि उसका जलरूपी गर्भ निकल चुका रहता है ।

उन (श्रवण के माता पिता) के पास पहुँचकर राजा (दशरथ) ने उस दशा में स्थित एकलौते पुत्र को ( के विषय में ) तथा अज्ञानपूर्वक किया हुआ अपना कृत्य कह सुनाया । "उपेत्य"—कुछ विद्वानो का मत है कि "उपेत्य" का अर्थ है "उद्दिश्य" ।

रामस्य दर्शनं सुहृदाम्—राम का अपने मित्रों को देखना ।

कुलपांशव —कुल के कलंक, जो कुल की प्रतिष्ठा को दूषित करते हैं ।

म—दिलीप. यज्ञाय गां दुदोह—देवताओं को प्रसन्न रखने वाले यज्ञों को सम्पादन करने के लिए । अन्न उपजाने के लिए इन्द्र वृष्टि करते थे ( अक्षरार्थ—आकाश को दुहते थे ) इस प्रकार वे दोनों परस्पर अदल बदल में सेवाएँ करते थे और संसार का पोषण करते थे । गां दुदोह—पृथ्वी को दुहते थे ( कर वसूल करते थे ) ।

"केवलात्मने" से ब्रह्म की तरफ संकेत है जो एक तथा अविभाज्य हैं। "गुणत्रयम्" सत्व, रजस् और तमस्। बाद मे सृष्टि के समय ब्राह्मण विभक्त कर दिया गया। वे तीनों गुण क्रमशः ये है—रचना, पालन और नाश।

दुःखात् सुखमुपनतम्—विपत्ति भोग लेने के बाद जो प्रसन्नता होती है।

अरुणाय कल्पते—अरुण का स्वागत करने के योग्य है। "अरुण" सूर्य भगवान् के अग्रगामी दूत हैं जो रात्रि की समाप्ति सूचित करते हैं।

अनुहुंकुरुते—बदले म गरजता है, दूसरे का गरजना सुनकर स्वयं गरजता है।

सन्तानकामाय—सन्तान का इच्छुक।

"तस्याः" का अन्वय "प्रसादम्" के साथ होगा

पुराणशोभाम् अधिरोपितायाम्—अपनी पहिले की भी शोभा को प्राप्त। न स्पृहयाम्बभूव—जरा भी स्पर्धा नहीं करते थे, क्योंकि वह तो पहिले ही से अपनी राजधानी में उसका उपभोग कर रहे थे।

सानुनीति—सानुनय मेल मिलाप वाला रुख धारण कर के।

दिदृक्षुम् "त्वं शुभा न वा" इति द्रष्टुमिच्छन्तम्। नमस्कुर्या—यदि त्वं नमस्कुर्या।

## आठवाँ पाठ

पृष्ठ ७८

सत्क्रियाविशेषात्—विशेष प्रकार के सत्कार (स्वागत) के कारण। राजा के कहने का तात्पर्य यह है कि मैने ऐसा कोई कार्य नहीं किया है जिसके कारण इन्द्र के हाथों से ऐसा ऊँचा स्वागत पाऊँ।

सूर्योपस्थानात् प्रतिनिवृत्तम्—सूर्य का उपस्थान करके लौटे हुए को यानी सूर्य की पूजा करके लौटे हुए को।

उज्जिहानजीविताम् वराकीम्—जिसका प्राण निकल रहा था, ऐसी उस स्त्री को छोड़कर।

अलम् उत्तरोत्तरम्—और ज्यादा बातें न करो।

तासां चतुर्दश कुलानि—अप्सरसां चतुर्दश कुलानि।

मा तावदुद्धर शुचो दयिताप्रवृत्त्या इत्यादि—पुरूरवा ने हंस से कहा है। तावत्—पहिले अर्थात् अन्य कोई भी कार्य करने के पूर्व ही स्वार्थात् सतां गुरुतरा प्रणयिक्रियैव—सज्जन पुरुषों के विचार में याचक का कार्य अपने स्वार्थ की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण होता है।

प्रजा संरक्षति नृपः इत्यादि। तदभावे—उसके (अर्थात् रक्षा के) अभाव में सत् वस्तु अर्थात् विद्यमान वस्तु भी असत् (अविद्यमान) हो जाती है। तात्पर्य यह कि जान और माल की कोई सुरक्षा नहीं रह जाती।

स—रघु। अस्त्रम्—अस्त्रविद्याम्, रघु के पिता दिलीप स्वयं ही रघु के गुरु थे।

अनम्राणां समुद्धर्तुः तस्मात्—जो राजे नम्र नहीं हुए थे अर्थात् जिन्होंने रघु के सामने मस्तक नहीं झुकाया था उन राजाओं को जीतने वाले रघु से। आत्मा संरक्षितः सुह्मैः—सुह्मों ने अपने प्राणों की रक्षा की। वैतसीं वृत्तिम् आश्रित्य—बेंतों की नीति का सहारा लेकर, बेंतों की सी नीति धारण कर, अर्थात् अपने से प्रबलतर शत्रु से हार मान कर।

## अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

पृष्ठ ८०

१—जन्मकर्मतो मलिनतर-जनम—जहाँ पर के लोग अपने

जन्म तथा कर्मों की अपेक्षा बहुत ज्यादा मैले थे। निर्घृणतर—जिनके सारे कृत्य उनके हृदयों की अपेक्षा कहीं अधिक घृणित थे।

२—कुसुमघटित—वह प्रमोदोद्यान को कामदेव का धनुष समझती है जो पुष्पनिर्मित बाणों के कारण सुन्दर लगता है, और बगीचा भी सुन्दर है क्योंकि उसमें भौंरे फूलों में चिपके हुए हैं। शिलीमुख—बाण और भौंरा भी। पीतरक्ता—पीताश्च ते रक्ताश्च चम्पक पीला होता है और अशोक लाल होता है। राक्षस-पक्ष में-"पीतरक्ता" का अर्थ होगा-पीत रक्त यै ते।

३—आत्मसपन्—अपनी उत्कृष्टता। अभिजनात् प्रभृति—उच्चकुल से लेकर।

४—लब्धप्रसरा—स्वच्छन्द व्यवहार (कार्य) के लिए अवसर पाकर। दुःखोपचर्या—बड़ी मुश्किल से मनाई जा सकने वाली।

६—विनयाधानम्—नैतिक शिक्षा प्रदान करना, शिष्टता सिखलाना।

७—नव—अज। नवेतर—रघु। स्थिर सकल्प वाले महाराज अज ने तब तक अपने कार्य (समाधि लगाने का कार्य) नहीं बन्द किए जब तक उन्होंने परमात्मा का दर्शन नहीं कर लिया।

९—स्वनुष्ठित—अच्छी तरह से सम्पादित।

११—जब श्रीसीता जी ने श्रीहनुमान् जी को अशोकवाटिका में अपने समीप में देखा तो कहा था। पूर्वस्मात् इत्यादि—यह तो पहिले (रावण) से भिन्न मालूम पड़ता है क्योंकि यह बड़ी श्रद्धापूर्वक श्री राम जी का गुणानुवाद गा रहा है। अथवा, क्या बिना किसी प्रकारक क्रूरता किए हुए मुझमें विश्वास पैदा करने के लिए यह यहाँ आया है! प्रभातात् प्राक्—दृष्टानि स्वप्नदर्शनादीनि शुभनिमित्तानि।

१२—स. -मारुति । ताम्—सीताम्। प्रीते' पराजयमानाम्—जिसे रावण की बातें असह्य लगती थीं।

१४—एकाक्षरम्—एक अक्षर। ओम् माविञ्यास्तु पर नास्ति—जगत्प्रसिद्ध गायत्रीमन्त्र अर्थात् सावित्री से बढ़ कर कोई चीज नहीं है।

## नवाँ पाठ

### पृष्ठ ६०

वर्तमानकवि—जीता हुआ कवि अथवा समकालीन कवि। त्वयि बद्धभावा—तुम्हारे ऊपर उसका प्रेम लगा हुआ है। इतो गतम्—त्वयि आहितम्।

संसर्गमुक्ति खलेषु—खलसंसर्गमुक्तिः, खलों की संगत से घृणा करता हुआ।

सन्तानार्थाय विधये—सन्तानार्थक किसी विधि के लिए।

जब इन्द्र कामदेव को एक बड़ा कार्य सौंप रहा था तब उसने कहा था। आत्मसमम्—मेरे सदृश तुम। भूधरतामवेक्ष्य—पृथ्वी को धारण करने की योग्यता देखकर।

कृत्स्न गोत्रमंगलम्—सीता ने दोनों कुलों का मंगलकृत्य किया था।

ईशम्—उसके स्वामी अर्थात् श्रीरामचन्द्र। नितान्तरूक्षाभिनिवेशम्—जो सीता जी के विषय में बड़ी निर्दय धारणा रखते थे (अर्थात् त्यागने का विचार रखते थे)।

परकर्मापह'—अपने शत्रुओं के कार्यों को नष्ट करता हुआ। "परे" शात्रव' इत्यर्थः।

आवृणोदात्मनो रन्ध्र रन्ध्रेषु प्रहरन् रिपून्—शत्रुओं की कमजोरी देखकर उन्हें प्रहार कर अपनी कमजोरियों को छिपा लिया।

भगवति कमलालये भृशम् अगुणज्ञासि—राक्षस ने लक्ष्मी

से कहा है जब कि लक्ष्मी ने नन्द के गुणों का आदर न कर उसको त्याग दिया और चन्द्रगुप्त से प्रेम किया।

**साक्षात् प्रियामुपगतामपहाय पूर्वम्**—जब दुष्यन्त शकुन्तला का चित्र देखकर प्रसन्न हुआ तो विदूषक ने उससे यही कहा है। जब शकुन्तला स्वय दुष्यन्त के पास आई थी तो दुष्यत ने स्वय ही उसको त्याग दिया था।

**चिरेणानुगुण प्रोक्ता प्रतिपत्तिपराङ्मुखी**—जब सीताजी ने तिरस्कार पूर्वक रावण की प्रार्थनाओं को ठुकरा दिया तो उसने उनसे कहा था। प्रतिपत्तिपराङ् मुखी—मुझे अपना पति मानने के लिए ( तू ) तैयार नहीं।

स—जनक' आप्तवचनात्—विश्वसनीय मुनि के कहने से। मुनि की इस बात को सुनकर, जनकजी को विश्वास हो गया कि राघव मे पुरुषार्थ है, यद्यपि वे ( राघव ) बालक ही दिखाई पड़ते थे। त्रिदशगोपमात्रके—बीरबहूटी (इन्द्रगोप) नामक कीडे के बराबर।

## दसवाँ पाठ

पृष्ठ १०८

**विश्रम्भातिशयप्रसगसाक्षिण** अत्यन्त घनिष्ठता ( विश्रम्भ ) वाली घटनाओं के साक्षी ( गवाह )।

**एवमवस्थिते**—इन परिस्थितियों मे।

**तत्र प्रभवति देवी**—इसे करने का श्रीमती जी को (आपको) पूर्ण अधिकार है।

**अय जनः**—मालती। **न खलु स उपरत**—निश्चय ही वह जीव मरा हुआ नहीं है जिसे उसके प्यारे लोग स्मरण करे।

**समरशिरसि चचत् पचचूडश्चमूनाम्**—युद्ध के अग्रभाग में अर्थात् जिस स्थल पर खूब घनघोर युद्ध हो रहा हो उस स्थल पर।

स राजा मनसि धर्मेण इत्यादि। सर्व देवमयस्य—जो नारायण सर्वदेवमय हैं उनके समान वह था, क्योंकि उसके अन्दर बहुत से देवता निवास करते थे। मन में 'धर्म" देव रहते थे अर्थात् वह धर्म के समान न्यायी अथवा स्पष्टवक्ता था।

नियतमिह सर्वात्मना कृतावस्थितिना इत्यादि—निश्चय ही धर्म-देव यहाँ पूर्णरूप से निवास कर रहे हैं, कलियुग की लीलाओं को ठुकरा देते हैं, और सतयुग को सुख नहीं करते हैं—वह सतयुग जो धर्म कर्म करने के लिए बहुत ही उपयुक्त युग है। इस आश्रम में रहने वालों का जीवन इतना अच्छा है।

उदेति पूर्वं कुसुमम्। तव प्रसादस्य—कारण कार्य का जो सामान्य नियम है उसके विरुद्ध, आपके विषय में, आप की कृपा के पहिले ही सम्पत्तियों का आगमन हो गया।

शम्बूको नाम। शीर्षच्छेद्य —तुम्हें उसका सिर काट लेना चाहिए। ते=त्वया।

अपीप्सितम्। अकामयेताम्—दोनों माताएँ कौसल्या और सुमित्रा "वीरसू" शब्द की इच्छा नहीं करती थी—"वीरसू"— "वीर पुत्र पैदा करने वाली" नहीं कहलाना चाहती थीं।

वाग्रमस्वया मद्वचनात् स राजा—जब श्री रामचन्द्र जी ने निर्दयतापूर्वक सीता जी का त्याग किया, तब सीताजी ने लक्ष्मण जी से कहा था "मद्वचनात्" मेरी ओर से, मेरे कहने से।

देव्या शून्यस्य जगतो द्वादश परिवत्सरः —सीता जी से शून्य हुए (खाली हुए) संसार को बारह वर्ष हो गए। सीता जी को छोड़े गए बारह वर्ष हो गए।

अयं मैथिल्यभिज्ञानम्=यह मैथिली का अभिज्ञान है।

पुरः प्रवेशमाश्चर्यं बुद्ध्वा शाखामृगेण मा—जैसी दुष्प्रवेश्य

नगरी में बन्दर के प्रवेश को एक आश्चर्यजनक घटना समझकर।

त दृष्ट्वाऽचिंतयत् सीता—श्री हनुमान जी को पहिले पहिल बगीचे मे आया हुआ देखकर श्री सीता जी विचारती हैं। पहिले वह हनुमान जी को रावण समझती हैं। बताइये कि वह क्यों नहीं विश्वास करती कि यह व्यक्ति श्री रामजीद्वारा भेजा गया है। "इस समुद्र के उत्तर में रहने वाले श्री राम जी, खारे समुद्र के दक्षिण में बसी हुई इस नगरी को कैसे जान सकते थे?"

## ग्यारहवाँ पाठ

### पृष्ठ ११८

अलमलमुपालम्भेन—जब दोनो नर्तकों के बीच विवाद उठ खड़ा हुआ तो परिव्राजिका से कहा गया कि इस मामले का निर्णय करो। तब परिव्राजिका ने कहा—"जब शहर बिल्कुल पास हो म बसा हुआ हो, तब क्या रत्न की परीक्षा गाँव मे करवाई जाती है? तात्पर्य यह कि जो काम तुम लोग मुझसे करवाना चाहते हो उसको करने का अधिकार केवल महाराज को है, अथवा उसे करने के लिए सबसे उपयुक्त व्यक्ति महाराज हैं न कि मैं।

मा तावदनात्मज्ञे देवेन—अरे, ऐसा न करो, ऐसा न करो।

कि दीपिका पौनरुक्त्येन—इतने अत्यधिक दीपकों का क्या प्रयोजन? इनकी सख्या आवश्यकता से कहीं अधिक है।

आर्ये आत्रेयि किं वृत्तम्—ऐ पूज्य आत्रेयी, उसका क्या हाल हुआ।

ऋषुकदम्बकेषु—ऋषुओ मे सर्वश्रेष्ठ।

स्मर्तव्यशेष नयामि—उसको केवल स्मरण किए जाने लायक बनाए देता हूँ अर्थात् मारे डालता हूँ।

वीजम्—श्री सीता जी स्वय ही गर्भवती होने पर त्याग दी गई थीं

सा—पृथ्वी। मामेति व्याहरत्येव—ज्यों ही वह कह रहे थे "अरे ःसे मत ले जाओ, मत ले जाओ।"

अनपायिनि संश्रयद्रुमे गजभग्ने पतनाय वल्लरी—वृक्ष के ऊपर ग्राश्रित लता अवश्य गिर जाती है।

दर्शितभयेऽपि धातरि—भय को देख कर दृढचित्त वाले व्यक्ति (अपने कार्य को) बन्द नहीं कर देते।

सन्तानवाहीनि—लगातार चलते रहने वाले।

स्रोत सहस्रैरिव सम्प्लवन्ते—मानो हज़ारों धाराओं में होकर बहते हैं अर्थात् हज़ारों नए नए मार्गों में प्रकट होते हैं।

पचभि.—पाँच तत्व पचत्व गते—मर जाने पर।

तस्मिन्—अस्त्रे। अपना वलय पुनः प्राप्त करने के लिए कुश वासुकि के ऊपर जो बाण चलाया था।

तस्मिन् ह्रद सहितमात्र एव क्षोभात् समाविद्धतरङ्गहस्त—क्षोभ (उथल पुथल) के कारण तरगरूपी हाथों का ऊपर उछालते हुए।

रोधांसि निघ्नन्—तटों को धक्का मारने हुए।

त्वय्युत्कृष्टबलेऽभियोक्तरि। त्वद् वांछान्तरिताबि—आपकी इच्छाओं से रोक दी गई हुई अर्थात् आप केवल आगे धावा बोलने की इच्छा कीजिए, शेष सभी चीजें तैयार हैं। अनेक भाव सनम्यन्त पद परिस्थितियों की अनुकूलता सूचित करते हैं। चलिताधिकारविमुख—अपने पद से हटा दिए जाने के कारण तटस्थ। मार्गमात्रकथन-व्यापारयोगोद्यमे—जिसका काम केवल यह है कि मार्ग बतला देवे। "योग" शब्द अनावश्यक है।

अस्त्रज्वालावलीढप्रतिबलजलधेरन्तरौर्वायमाणे—अश्वत्थामा ने कहा है "फेंके हुए बाणों रूपी ज्वाला में चाटी गई हुई जो शत्रु

सेना थी वही समुद्र तुल्य थी। उस शत्रु-सेना-रूपी समुद्र के अन्दर बडवानल के समान दिखाई पडने वाले अथवा पराक्रम करने वाले।"

## बारहवाँ पाठ

पृष्ठ १२६

**श्रीशस्त्वाऽवतु**—इन चारों पक्तियों में "त्व" "न" "त्वा" "ते" इत्यादि छोटे रूपों का प्रयोग दर्शाया गया है। ये सब तृतीया के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। "तुम्हारे अथवा हमलोगों द्वारा सेवा किए जाने योग्य।"

**कार्यवशात्**—अपने काम के लिए। ताकि मैं उस समय की घटनाओं का ज्ञान पाऊँ और समझ जाऊं।

**तदेव पचवटीवनम्** जातनिर्विशेषा—साक्षात् अपने लड़कों के समान।

**आयुष्मन्नेव वाग्विषयीकृत**—जो हमारे वार्तालाप का विषय था।

**सन्दिशन्ति**—प्रणय-सन्देश भेजते हैं। **समुपसर्पति**—अपने प्यारों के पास जाते हैं।

**एक - अपर**—अज और रघु। **प्रभुशक्तिस्स्पदा**—उसकी प्रभुशक्ति के गर्व से। **प्रभुशक्ति**—कोष, दण्ड और बल से होती है। **प्रणिधान-योग्यया**—ध्यान के अभ्यास से। **शरीरगोपरान्**—शरीर से भरे हुए (श्वास)।

**लब्धयोन्मादितान्व्यसनशतशरव्यतामुपगता**—जो लोग धन पा जाने के कारण फूल कर कुप्पा हो जाते हैं उनकी दशा का वर्णन है। "व्यसनशत" इत्यादि—यद्यपि सैकड़ों विपत्तियों के लक्ष्य बन जाते हैं, तथापि वे यह नहीं समझते कि हमारा जीवन पतन घास के ऊपर ऊगी हुई घास के अग्रभाग पर स्थित जलबिन्दु के समान सन्निकट है।

**तस्य तरुषण्डस्य मध्ये मणिदर्पणम् इव**—विमल जल के कारण त्रैलोक्य लक्ष्मी के मुँह देखने के लिए दर्पण का काम करता था।

अर्थोष्मणा विरहित.—धन की गर्मी से रहित ।

कोऽप्येष एव पिशुनोग्रमनुष्यधर्म—पिशुन का यह गुण है कि वह किसी का तो कान भर देता है और किसी को जड़सहित नष्ट कर डालता है ( चुगली खा कर ) ।

रूप तदोजस्वि—अज के गुणों का वर्णन है । राजकुमार अज अपने कारण ( पिता ) से भिन्न नहीं थे, जैसे एक दिए से जलाया हुआ दूसरा दिया अपने कारण से भिन्न नहीं होता ।

## तेरहवाँ पाठ

### पृष्ठ १३८

ते गति ज्ञास्यन् – तुम्हारा समाचार जानने की इच्छा करता हुआ ।

वारितप्रसर —आगे बढ़ने से रोक दिया गया हुआ ।

श्रुतमृषे —ऋषि से सीखा गया हुआ । यद्यपि राघव अपने पूर्व जन्म ( वामनावतार ) के कार्यों से अनभिज्ञ थे तथापि उत्तेजित हो गए ।

क्षेमाय—सुरक्षा के लिए । शत्रून् हन्ति इति शत्रुघ्नः—यही उनके नाम की सार्थकता है ।

क्रथकैशिकेन्द्रः—भोज, वैदर्भराज । चन्द्रः प्रवृद्धोर्मिरिवोर्मिमाली—ऊँची ऊँची उठी हुई लहरों के साथ चन्द्रमा से मिलने के लिए जाने वाले समुद्र के समान ।

## चौदहवाँ पाठ

### पृष्ठ १४७

अत्रभवतो —गणदास और हरदत्त का । ज्ञानसंघर्ष.—शास्त्रार्थ, शास्त्रसम्बन्धी विवाद ।

अवश्यकर्तव्यतामापतितम् —अत्यन्त आवश्यक कर्तव्य हो गया है।

दक्षिणाक्षि—दाहिनी आँख को सिकोड़ कर दिए हुए सकेत को समझने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए । तुम उन लोगो पर इस प्रकार से आँख का इशारा करो कि वे तुरन्त समझ जायँ कि तुम्हारा क्या मतलब है ।

उत्क्रान्तमिवासुभि – मानो उनके प्राणो ने उन्हे त्याग दिया ।

पृष्ठत कृत्वा—पीछे की तरफ करके ।

अनुबान्ध-सदा-निरन्तर, शाश्वना । इयत्तया परिछेत्त् नालम्—सीमा के अन्दर नही रक्खा जा सकता, जिसकी सीमा है ही नही ।

हसित मुदा प्रसितम्—हँसी प्रसन्नतापूर्वक जारी रही । विलसितम्—प्रेम मे उज्जीवित प्रसन्नता से भरे खेल कूद घट गए । हतमदा—जिनकी उत्तेजना नष्ट हो गई है । पुरहितम्—जो चीज़ नगर के लिए हितकारी थी और नगर को वाञ्छित भी वह नही की गई ।

सयमधनान्— सयम ही जिनका धन है । कथमप्यबान्धवकृताम्—किसी भी प्रकार से बान्धवो द्वारा पैदा नही की गई हुई । सामान्य सम्मान पूर्वक इसको अपनी स्त्री करके मानना । इसके आगे तो फिर भाग्य की बात है । बहू के घर वालो को यह बात न कहनी चाहिए ।

## पन्द्रहवाँ पाठ

पृष्ठ १६०

मिथ्यावार्तासन्देशकै - झूठे समाचारो और सन्देशो से ।

इष्टिपशुमार मारित - यज्ञ-पशु के समान मार डाला गया । स - मातलि ।

चित्रलेखाद्वितीया—चित्रलेखा के साथ ।

क्रोधविह्वला—(शूर्पणखा) । भ्रातरौ- खरदूषणौ ।

लतानुपातम्—बारबार लताओ को झुका कर । नद्यवस्कन्द-नदी

के जल को उथल पुथल करता हुआ पानी सुड़कता था। चारुशिलोपवेशम्—किसी सुन्दर शिला पर बैठता हुआ।

विश्वासप्रतिपन्नानाम्—विश्वास में आए हुए लोगो का।

मन्थरविवेकम्—निर्णय करने मे मन्द।

अमन्दलीलया—सुन्दर लीला से।

स्थिते अर्धरात्रे—जब आधी रात हो गई।

विप्रदर्शी-यत्ना—जिस किसी का ब्राह्मण समझती थी उसी को मारने का प्रयत्न करती थी। जिघांसुवेदम् भासुरास्त्र--जिस किसी को भी मारने वाला समझ लेता था उसको मारने के लिए चमचमाते हुए अस्त्र लेता है।

## सोलहवाँ पाठ

पृष्ठ १६६

नौ गुणदोषत परिच्छेत्तुम्—हम लोगों के गुण तथा दोषो की परीक्षा करने के लिए।

समयपूर्वम्—प्रतिज्ञा (इकरार नामा) पूर्वक।

का गणना—क्या गिनती कहने की कोई आवश्यकता नही।

अचिराधिष्ठितराज्यः—जो अभी हाल ही मे राज्य पर (राजगद्दी पर) बैठा है।

आरूढमूलत्वात्-चूँकि अभी अपनी प्रजा के मन मे गहरी जड़ नही जमा पाई है। इसी कारण वह उस वृक्ष के तुल्य है जो अभी नया नया लगाए जाने के कारण ढाला ढाला है।

अनुभवसमा वेदनाम्—अनुभव की हुई वेदना के समान वेदना।

स्मरण—कृपया अपन जीवन को उस शोकाग्नि का इन्धन न बनाइए जो अग्नि विगत घटनाओ के स्मरण से पैदा होती है।

वेगोदग्रम्—वेग ( के साथ चक्कर करने ) के कारण भयानक। अयभर —यह उत्कर्ष उनमें प्रकृत्या (जात्या) विद्यमान है।

बहुक्षमा—विपुल क्षमा-शक्ति को धारण करने वाली ।

शुचो वश गन्तु नार्हसि—कृपया शोक के वशीभूत न हूजिए ।

यमौ—जुडवाँ। अर्थात् नकुल और सहदेव। कथैव नास्ति—कोई हिसाब लेने की आवश्यकता नहीं, कोई चर्चा ही करने की आवश्यकता नहीं। विस्फुरण—जिसने अपना गोल धनुष तान लिया है। अथवा जिसने अपना धनुष तथा चक्र दोनो तान लिया है (निकाल लिया है)।

## सत्रहवाँ पाठ

पृष्ठ १८०

"भर्तु." शब्द "प्रतीपम्" के साथ जाता है। "युवतियां इसी प्रकार "गृहिणी की पदवो" पाती हैं; इसके विपरीत आचरण वाली स्त्रियाँ अपने कुल का अभिशाप है।

अनन्यभाजम्—जो किसी भी अन्य व्यक्ति के प्रति अनुरक्त न हो। तथ्यमेव—"हर" जो पीछे से उसे पति मिले वस्तुत. इसी प्रकार के थे।

पुरी—अमरावती।

घनबद्ध—लोग अपने मित्रों और बान्धवों के साथ गोष्ठो करके आनन्द का अनुभव करते हुए खुशियाँ मनावें।

नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण—पहिए का चाका जिस प्रकार ऊँचे नीचे आता जाता है उसी प्रकार मनुष्य की दशा ऊचे तथा नीचे जाती आती है।

## अठारहवाँ पाठ

### पृष्ठ १६०

कार्यहन्तारम् कार्य को नष्ट करने वाले को।

कथ भवेत्—उसकी क्या दशा होगी ?

तत्तुल्य—भीष्मद्रोण तुल्य।

गूढा—स्वयं अदृश्य होने के कारण। बलादानीयेत पदात् पदम्—धीरे-धीरे जबर्दस्ती करके लाई जा सकती है। डर के मारे, आगे बढ़ने से वह इतना डरती है।

ध्रुवेच्छाम्—दृढ इच्छा वाली। इति ध्रुवेच्छामनुशासती सुतां, शशाक मेना न नियन्तुमुद्यमात्—इस प्रकार उपदेश देती हुई मेना, स्थिर इच्छा वाली (अपनी) पुत्री को (उस।) निश्चय से न हटा सकी। चाही हुई वस्तु के लिए जो मन दृढ निश्चय कर लेता है उस मन को और नीचे की ओर जाने वाले जल को कौन पलट सकता है।

दंष्ट्राङ्कुरात्–तेज़ दाँतो से।

"भूतये" का अन्वय "नृपतेः" के साथ होगा।

जीवितापहा–प्राणो को अपहरण करने वाली।

## उन्नीसवाँ पाठ

### पृष्ठ १६७

आविर्भूतज्योतिषाम्—जिसको सर्वश्रेष्ठ ज्योति दिखाई पड़ गई है।

प्राणं.—उसका प्राण नहीं लिया।

प्रसेदु.—प्रसन्न हो गईं, चमकने लगीं। प्रदक्षिणार्चि हविरग्निराददे—अपनी लपक को दाहिनी ओर घुमा करके अग्निदेव ने पूजा स्वीकार की।

परिमेयपुर सरौ—बहुत थोडे से नौकर चाकरों को लेकर। अनुभाव-विशेषात्—उनका उत्कृष्ट ज्योति के कारण।

अत्यगाढाश्रमम्—आश्रम के पास से होकर निकल गए। "कहीं मुनि की तपस्या में बाधा न पहुँचे" इस डर के मारे वहाँ नहीं रुके।

## बीसवाँ पाठ

### पृष्ठ २१२

असौ—कपालकुण्डला। पापम्—मालती का वध।

अन्यलिखितम्—उसका लिखा हुआ कोई अन्य कागज़।

स्पृहणीयशोभम्—जिसकी शोभा स्पृहणीय थी (ईर्ष्या करने योग्य थी)। "परस्परेण" का अन्वय "द्वन्द्वम्" के साथ होगा।

मोहकलिलम्—अज्ञान के कारण पैदा हुई घबराहट।

तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च—जो कुछ तुमने सुना है अथवा सुनोगे उस सब की तरफ से तटस्थ (विरक्त) हो जाओगे।

श्रुतिविप्रतिपन्ना—जो कुछ तुमने सुना है उसी से घबड़ाई हुई (व्याकुल हो गई हुई)।

## इक्कीसवाँ पाठ

### पृष्ठ २२२

कान्तमात्मीयम् पश्यति—अपनी चीज को सुन्दर समझती है।

द्वन्द्वसम्प्रहारम्—आपसी संघर्ष। प्रत्युपस्थिते—जब ऐसी नौबत आ पड़ी।

अलमप्रभु—बिल्कुल शक्तिहीन। अन्धकारतामुपयाति—धुँधला हो जाता है।

उत्कर्षनिकषः—बड़प्पन अथवा अधिकता की कसौटी।

सभाजनाक्षराणि पातयिष्यामि—बधाई (प्रशसा) के कुछ शब्द कहलाऊँगा ।

अगृहीते राक्षसे—जब तक राक्षस पकड़ नही लिया जाता । तथा त्वमसि = जारिणी ।

क्रियार्थम्—धार्मिक क्रियाओं के लिए ।

एनम्—आत्मानम् । नित्यजातं-नित्य-मृतम्—सदैव पैदा हुआ, सदैव मरा हुआ ।

लक्ष्मी तनोति—लक्ष्मी (शोभा) को बढ़ाता है ।

## बाईसवाँ पाठ

### पृष्ठ २३३

स्वरसयोग—स्वरों का सयोग ।

अतिभूमिं गतेन—उच्चतम शिखर पर पहुँचे हुए ।

अहो जाने-मैं बहुत ही पसन्द करता हूँ ।

चिन्ताविषघ्न—चिन्ता को नाश करने वाला ।

न वेद्मि इत्यादि-वह पृथ्वी पर गिर पड़ा, चाहे प्रेम के वेग के कारण, चाहे ,सो मैं नही जानता ।

सद्योविपाकस्य—जिसने तुरन्त फल पाया ।

पात्रविशेषन्यस्तम्—उत्तम पात्र में रक्खी हुई, अथवा उत्तम पात्र को दी हुई । गुणान्तरम्—उच्चतर गुण ।

स सखा—तुम्हारा मित्र, कामदेव । "मानों मै इस असह्य विपत्ति रूपी धूप से ढकी हुई, दीप-बत्ती हूँ ।"

स्वशरीर शरीरिणावपि श्रुतसयोगविपर्ययौ यदा—
जब मनुष्य का शरीर और उसकी आत्मा भी सयोगवान् तथा बियोगवान् होते हैं, तो भला बताओ बाह्य पदार्थों (पुत्र, कलत्र आदि) का वियोग, विद्वान् पुरुष को कैसे दु ख पहुँचा सकता है ?

किमात्मनिर्वादं कथामुपेक्षे भार्यामदोषामुत सन्त्यजानि—जब श्री रामचन्द्र जी का मन आगा पीछा मे पड़ा हुआ था कि सीता जी को त्याग दे अथवा अपनी बदनामी की चर्चा को सुनी अनसुनी कर दे। एकपक्षाश्रयविक्लवत्वात्—एक मार्ग का अनुसरण करने का निर्णय न कर सकने के कारण, उनका चित्त झूले के समान आगे पीछे आता जाता था।

## तेईसवाँ पाठ

### पृष्ठ २४२

भर्तृगतया—अपने पति के बारे मे। गतया-सबधिन्या।

उन्नमितोपदेश गणदास—गणदास के उपदेश अधिक उत्तम पाए गए।

देवस्य—दुष्यन्तस्य। उपरोधकारि—बाधा पैदा करने वाला।

स्फुरितोत्तराधर—स्फुरण भूयिष्ठ अधरो यस्य स. जिसका ओठ बडे जोरों से फडक रहा था, बोलने के लिये चेष्टा कर रहा था। अथवा इसमें भी बढिया अनुवाद यह होगा "जिसके नीचे का ओठ तथा ऊपर का ओठ—दोनो ओठ फड़क रहे थे।

तास्मात्—महतोऽपभाषमाणत्।

परोक्षमन्मथ.—जिसको कामदेव (अथवा प्रेम) का अनुभव न हो, जो प्रेम की पहुँच के बाहर हो। 'ऐ मित्र, जो बात केवल हँसी में कही गई है उसको सत्य न मान लो।'

शाठ्यमशिक्षित—जिसने शठता नही सीखी है। अप्रमाणम्—प्रमाण नही माना जाता, विश्वास-पात्र नही समझा जाता। विद्या इति—इसे विद्या की सुनियमित तथा सुव्यवस्थित शाखा मानकर।

त्वं यस्य नेत्रयो पथि स्थिता—तुम जिसकी आँखो के विषय में सयोगवशात् खड़ी थी, और जिसकी आँखे, इसी कारण से अवन्ध्य हो

गई (अव्यथ हुई क्योंकि उन्होंने अपना फल पाया)। रूढसौहृद'—गहरी मित्रता वाला।

रजसोऽपि परम्—हिमालय ने सप्तर्षियो से कहा है। रजोगुण के भी परे।

सुखश्रव—सुनने में सुखदायक। दिवौकसां पथि—आकाश।

अन्यथावृत्ति—विकृत, क्षुब्ध, आन्दोलित। कण्ठाश्लेषप्रणयिनि-कण्ठ का प्रगाढ आलिगन चाहने वाले।

अशिक्षितपटुत्वम्—बिना सिखाई पढाई हुई चातुरी (छल, कपट)।

काम प्रिया न सुलभा मनस्तु तद्भावदर्शनाश्वासि—उसके (शकुन्तला के) प्रेम का देख कर आश्वासन पाने वाला।

रतिमुभयप्रार्थना कुरुते—हम दानों की इच्छा तृप्ति (सन्तोष) पेदा करती है। "हम दोनो एक दूसरे से प्रेम करते हैं" इस बात के विचार मात्र से ही हम लोग सुख का अनुभव करते हैं।

## चौबीसवाँ पाठ

### पृष्ठ २५२

दृष्ट्वा मेघनाद दूरत एव कृतनमस्कार तमप्राक्षात्, तिष्ठतु पुरस्तात्—सामने ठहरे।

नववारिधरोदयादहोभिर्भवितव्य च निरातपत्वरम्यै—गर्मी के अभाव के कारण दिन अवश्य रमणीक होंगे।

प्रतिग्रहीतुं प्रणयिप्रियत्वात्—अपने भक्तो के ऊपर कृपा या प्रेम रखने के कारण।

अत्रभवत्या प्रसवादस्मद्गृहे तिष्ठतु—जब दुष्यन्त ने शकुन्तला को पत्नी मानने से इनकार कर दिया तब कुल पुरोहित ने यह उपाय सुझाया है। अत्रभवती-शकुन्तला। उपदिष्ट'-भविष्यवाणी द्वारा

बता दिया गया हुआ। **तल्लक्षणोपपन्न** —चक्रवर्ती के लक्षणों से युक्त। **विपर्यये**–यदि परिणाम कुछ दूसरा हो।

**लब्धान्तरा**—जब अयोध्या की अधिष्ठात्री देवी ने राजमहल मे प्रवेश प्राप्त कर लिया, यद्यपि राजमहल खूब जोरों से बन्द कर दिया गया था, तब कुश ने उस देवी से कहा है। **लब्धान्तरा**—प्रवेश प्राप्त करके।

**सा निन्दन्ती स्वानि भाग्यानि बाला बाहूत्क्षेप**—यहाँ "बाहूत्क्षेपम्" का अर्थ है "अपनी भुजाओं को ऊपर की ओर फेंकती हुई।" **स्त्रीसंस्थानम् ज्योति**—स्त्री के स्वरूप मे ज्योति (प्रकाश), स्त्री रूपधारिणी ज्योति। **अप्सरस्तीर्थम्**—एक पवित्रस्थान का नाम है।

**निशितनिपाता**—तेज या पैने गिरने वाले।

**च-च**–प्रत्येक पक्ति मे च-च का अर्थ है 'ऐसी बात हो न पाई थी कि इतने ही में। **घनाघन**—खूब घना और सञ्चित।

## पचीसवाँ पाठ

### पृष्ठ २६२

**ज्ञानवृद्धभाव**–ज्ञान में बड़े होने के कारण अर्थात्, यद्यपि दो के दोनो एक समान विद्वान् हैं। **पुरस्कारमर्हति**—पुरस्कार का पात्र है आगे किए जाने (रक्खे जाने) का पात्र है।

**अनियंत्रणानुयोग**—बिना किसी रुकावट के यानी स्वतन्त्रतापूर्वक पूछा जा सकता है।

**तत्पाटवात्**—उसकी चातुरी के कारण।

**बद्धकलकले**—जिसने बड़े जोरों का कोलाहल करना आरम्भ कर दिया था। **प्रदीप्तशिरसम्**—अपना फन फैला कर। **भीतोन्नाम**—भयभीत होने का बहाना करके। अर्थात् भयभीत व्यक्ति के समान।

**इमं ललनाजनं** **घुणाक्षरन्यायेन**–लकड़ी में अथवा पुस्तक के पृष्ठों मे कीडे द्वारा बनाया गया हुआ कटान जो अक्षरों के आकार

से मिलता जुलता है । कीडे लकडी को अथवा पुस्तक के पृष्ठो को इस प्रकार से काट देते हैं कि उसमे मानों अक्षर बन जाते हैं। घुणाक्षरन्यायेन—संयोगवशात्,अकस्मात् ।

प्रयोगेणाधिक्रियताम्—प्रयोग (प्रदर्शन) का विषय बनाया जाय, अर्थात् रगमच पर लाया जाय।

तातपरिजनस्य – मेरे पिता जी के नौकर । यथाभ्यस्तम्—जैसे तुम्हारा अभ्यास पड़ गया है वैसे ही ।

अष्टादशवर्षदेशीय —लगभग अठारह वर्ष का ।

अनुज्झितक्रम.—मर्यादा(औचित्य) की सीमा को बिना त्यागे हुए, अर्थात् मर्य्यादा का पालन करते हुए ।

आत्तदण्ड —दण्ड को ग्रहण कर ।

करणोज्झितेन—स्पर्श आदि की इन्द्रियों मे त्यक्त ।

तैलनिषेकबिन्दुना—टप् टप् चूते हुए तेल की बूँद से ।

कान्तिप्रदः—कान्ति ( ज्योति, शोभा ) का देने वाला ।

मासो इत्यादि—वैशाख का महीना, वसन्त ऋतु जब कि वृक्ष से लदे रहते हैं।

## छब्बीसवाँ पाठ

पृष्ठ २६८

कुब्जलीला—कुबड़े की चाल, कुबड़ी कुबड़ा चाल ।

प्रत्युत्पन्नमति—तात्कालिक बुद्धियुक्त धैर्यवान् ।

खलीकरोति—( मनुष्य को ) दुष्ट बना देता है ।

यद्गणीयसि—छोटी सी बात पर बड़ा सम्मान प्रदर्शित किया जाता है ।

अलमन्यथा गृहीत्वा—मेरे विषय में गलत धारणा मत बनाइए ।

चीयते—फल से युक्त होता है, सफल होता है ।

कल्याणी—पवित्र गाय ।

**अथवा मम भाग्यविप तवात्**—अज की उक्ति है । जब इन्दुमती के वक्ष.स्थल पर गिरते हुए स्वर्गीय माला ने उसके प्राण हर लिए और अज को तनिक भी हानि न पहुँचाया, तब अज ने कहा है ।

## सत्ताईसवाँ पाठ

### पृष्ठ २७६

**अभिनिवेश्य**—मन को पदार्थों या विषयों में लगाकर ।

**कालान्तरक्षमो न भवति**—विलम्ब को सहन करने मे असमर्थ है, बिलम्ब नही सहन कर सकता ।

**ईदृश**—तुम्हारे पैदा किए जाने की यह दशा हो गई है।

**भस्मावशेष चकार**—राख कर दिया ।

**उच्छ्रिरसा**—जिसका सिर (शिखर) आकाश मे ऊपर को गया हुआ है ।

**अभिषेकान्ते**—राज्याभिषेक के अन्त में ।

**विरलजनसम्पाते**—जहाँ बहुत कम लोगो का आना जाना हुआ करता है ।

**विमानोत्सग**-किसी राजा के महल का नाम ।

**लोकयात्रा सिद्धा**—इस प्रकार की जीवनयात्रा निश्चित है ।

**उभयो**—कुशलवयो । लोग उनके सगीत् नैपुण्य पर उतना आश्चय नही करते थे जितना कि इस पर कि वे राजा द्वारा स्वेच्छापूर्वक दिए हुए उपहारों को बडे तिरस्कारपूर्वक ठुकरा देते थे ।

**यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृह**—यह उन लोगो के लिए बड़ी लाभकारी शिक्षा है जिनकी आदत ऐन मौके पर काम करने की होती है । ऐन मौके पर तैयारी करने से कार्य सिद्ध नही होता । पहिले ही से सब प्रबन्ध करना चाहिए ।

## अट्ठाईसवाँ पाठ

पृष्ठ २८६

**सुख विशन्ति**—आसानी से प्रवेश प्राप्त कर लेते हैं।

**सर्वतोमुखो**—प्रत्येक बात मे अपरिमित, पूर्ण। **यस्य**—हिमालय की ओर सकेत है।

**असशय क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मन**

सज्जनो के हृदय की आन्तरिक प्रेरणा उनके लिए बहुत ही शुभ चिन्तक पथप्रदर्शक होती है जिसकी राय उन्हे माननी चाहिए। क्योकि उनका हृदय किसी अन्याय्य बात को सोच ही नही सकता।

**एवमादिभि.**—अर्थात् उपायै.। सा = उर्वशी।

**तदाश्रयिणी**—उसके विषय की।

**भावगम्यम्**—मन द्वारा चिन्तन करने योग्य।

**मखजम्**—विश्वजित् नामक यज्ञ से पेदा हुई। विश्वजित् नामक यज्ञ में रघु ने अपनी सारी सम्पत्ति दान कर दी थी।

**इयम्**—मालविका। **प्रेष्यभावेन**-नौकर की हैसियत से। वा--समान।

**पक्तिरथ.**—दशरथ:। पक्ति—दस नियमों का उल्लघन करके जो दशरथ ने किया था वह वस्तुतः उन्हें मना किया गया था। [तब बुद्धिमान् राजा होकर उन्होंने इस कार्य को कैसे कर डाला] क्योंकि अन्धकार (मद) से अन्धे होकर विद्वान् लोग भी गलत रास्ते पर चले जाते हैं।

**शकटेन**—शकटदासेन।

**खण्डनहेतव**—उसको निराश करने के बहाने।

## उन्तीसवाँ पाठ

पृष्ठ ३०१

**शक्ति**—राजा की शक्ति, प्रभुशक्ति, जिसमें तीन अग होते हैं—

प्रभावशक्ति—स्वय राजा का ऐश्वर्य ।

मंत्रशक्ति—अच्छी राय की शक्ति । उत्साह—शौर्यशक्ति ।

कल्पान्तदु स्था—कल्प के अन्त मे विपद्ग्रस्त दशा मे । कल्प—अखिल विश्व के प्रलय का समय । ऊहे—उठा लिया गया अथवा खीच लिया गया ।

पर—शत्रुः । बढते हुए शत्रु तथा रोग को विद्वान् लोग एक समान मानते हैं अर्थात् यदि उनका बढना ठीक समय पर नही रोक दिया जाता तो वे घातक सिद्ध हो जाते हैं ।

त्वत् प्रबोधप्रयुक्ताम्—आपको जगाने मे प्रयुक्त की हुई ।

सर्वतोमुखम्—जिसके मुख सभी दिशाओं मे हो ।

स—हिमालय· पितृणा मानसी कन्याम्, वह कन्या पितरों के मन से पैदा हुई थी ।

नव इव चिरेणापि—यद्यपि चिरकालव्यतीत हो गया, तथापि मेरा शोक मानो नया हो गया है ।

असौ—हनुमान् ।

स्फुटन्निव—मानो आन्तरिक उद्‌गार के कारण फूट रही थी ।

वयो—राम तथा लवकुश मे जो समानता थी वह केवल अवस्था और वस्त्र म भिन्न थी, अन्यथा और सभ बातो मे मिलती जुलता थी अथात् लवकुश तथा राम अवस्था और वेष क अतिरिक्त अन्य सभा बातो मे मिलते जुलते थे ।

नाक्षिकम्प व्यतिष्ठत—बिला आँख झपाए खडा था, उनका ओर टकटकी लगाकर खड़ा था।

मरुत सुत—भीम । दर्शितविक्रियम्—जिसने अपने मन का विकार दिखा दया था ।

तद्योधा—उसके योधा लोग ।

श्रुतमधिगम्य—प्रखर ज्ञान प्राप्त करके । शरीरजन्मन रिपून्—

काम, क्रोध, लोभ, इत्यादि छ विकार।

प्रियप्राया—प्राय दया से भरी हुई। जिसका स्वाद पहिले अथवा पीछे कभी भी विकृत नही होता, अर्थात् जो सर्वदा एक समान रमणीय रहती है।

न सस्थास्यते—नही रुकेगी, पूर्ण होगी।

सीताम्—द्रष्टुम् का कर्म। उपाक्रंस्त—समुद्रतट की तरफ बढा।

यावदर्थपदाम्—अर्थ को स्पष्ट कर देने भर के लिए जिसमे शब्द थे।

अखिलीकृत्य—बिना उसको शक्तिहीन किए हुए।

मोपयध्वम् भयम्—भय मत करो। महेन्द्र—एक पर्वत का नाम है। धैर्यमाधिपत—उनके हृदयो ने हिम्मत धारण की।

## तीसवाँ पाठ

### पृष्ठ ३१३

नरपतिप्रबोधनार्थम्—राजकुमार की जो आँखे राजा के ऊपर लगी हुई थी उन्हे चाण्डालकन्या की तरफ फेरने के लिए।

अनाश्रवासीत्—परवाह नही किया। समगिरेताम्—प्रण किया।

प्रतिविधाय तिष्ठत्सु—राजा के जो मनसूबे सम्भव थे उनके विरुद्ध कार्रवाई करके।

वर्तयते—अपना भरण पोषण करता है। स्वत मारे हुए हाथियों पर जीविका निर्वाह करता है। जो महान् पुरुष अपनी ही शक्ति से ससार को नीचा दिखा देता है वह अपने भरण पोषण के लिए दूसरो से इच्छा नही रखता।

अस्तसंख्यम्—अनगिनती। अत्र—इस युद्ध मे।

शक्ति—बल और तीनो राज-शक्तियाँ। षाड्गुण्यम्—छ उपाय। अगानि—शरीर के अवयव तथा किसी राज्य के अगभूत भाग।

मा कस्यचिदुपस्कृथा —मेरे लिए भोजन की बहुत सी सामग्रियां मत तैयार करो ( दृश्यपेयभोज्यादिक किमपि मा कुरु )।

**वदमान** —चमकता हुआ ( भासमान )।

**व्यवहर्तुमभियोक्ष्यते**—अदालत म जाने के लिए प्रयत्न करेगा। **कौपीनावशेषम्**—उस एक दम दरिद्र बना देंगे।

**कृतपूर्वसंविद्**—जिन्होंने अपने मनसूबे की पूर्ति के लिए पहिले षडयन्त्र रचा था। **समयोपलभ्यम्**—आज के प्रस्थान के समय मिलने वाला।

**संविदामीश**—शक्तियों के स्वामी। **विरोध्य**—जो मूर्खता के कारण शत्रुता कर लेते हैं परतु बाद मे नम्र हो जाते हैं उन लोगो का।

**शान्तिमधिकृत्य**—शान्ति के विषय मे। **स्वन्तम्**—शोभन अन्तः परिणामः यस्य स., तथोक्तम्।

**भूपति** —चेदिराजः। यह सम्भव नही है कि सिंह ( कृष्ण ) आक्रमण के डर के मारे आसानी से दुबुक जायँगे।

**उदधिश्यामसीमाम्**—जिसकी काली काली सीमा समुद्र है, अर्थात् समुद्र तक। **नगर** पुर द्वार की अर्गला के समान लम्बी भुजाओं वाला अर्थात् विपुल शक्ति वाला।

**लतां नर्तयमानवत्**—मानों हवा के झोंके के साथ लता को नचाता हुआ। **सन्त्रस्ता**—रावण से डरे हुए। **नायासयन्त**—हस्तक्षेप नही किया, कुछ भी प्रभाव नहीं डाला। **स्मरात्**—काम पीड़ित होने के कारण।

परिशिष्ट—१

# चुने-चुने शब्दसमूह तथा मुहाविरे

स दैवाधीन कृत, यद्भावि तद्भवतु इत्युक्त्वा परित्यक्त—वह अपने भाग्य पर छोड दिया गया।

तव निर्णये स्थास्यामि, तव निर्णय प्रमाण—आप का निर्णय मुझे मान्य होगा। प्रतिज्ञाम्—अभिसधा-पालयति—अपनी प्रतिज्ञा का पालन करता है।

यथाशक्ति, यावच्छक्यं—अपने भरसक, जहाँ तक हो सके।

बहुकौतुक स देश—वह देश कौतुकों से भरा हुआ है।

पचवर्षदेशीय.—लगभग पाँच वर्ष का। मध्याह्नप्राय कल्प' समय.—लगभग दोपहर है। कि कर्तुमुद्यतोसि, किंकार्यव्यग्रोसि, किमारभस्त्वंम्—किस फेर फार मे हो।

स सर्वेषा मूर्ध्नि तिष्ठति—वह सब के ऊपर है। अदत्तावकाशो मत्सरस्य—जलन या डाह से परे।

सा दारुणा प्रतिज्ञा लोके प्रकाशतां गता-प्रकाशीभूता—वह भयंकर प्रतिज्ञा ससार मे ज्ञात हो गई।

शून्यमनस्क, शून्यहृदय, हृदयेनासन्निहित, विगतचेतन—अन्यमनस्क

कृतमेतादृशेन असंगतेन प्रलापेन—इस तरह की असगत बाते न करो

मनोरथानामगतिर्न विद्यते—इच्छा के लिए कोई चीज अगम्य नहीं।

मरण प्रकृति विकृतिर्जीवितमुच्यते—मृत्यु प्राकृतिक चीज है, जीवन तो केवल विकारमात्र है।

भावमनुप्रविश्—अपने आप को किसी की इच्छा के अनुकूल बनाना।

एकचित्तीभूय—एक हो कर। यदृच्छया, स्वयं, स्वेच्छात—अपनी इच्छा से। तद्वचनानुसारेण अनुरोधेन—उसके कहने के अनुसार। अनुज्यष्ठम्—ज्येष्ठता के अनुसार।

राजेति का मात्रा-गणना मम—मेरे लिए राजा किस खेत की मूली हैं, मैं राजा की कुछ भी परवाह नहीं करता।

दैवहतकम्, दग्धदैवम्, हतदैवम्—अभाग्य, दुर्भाग्य।

बलवती शिरोवेदना मां बाधते—मुझे बहुत जबर्दस्त सरदर्द है।

भवताऽविनयमन्तरेण परिगृहीतार्था कृता देवी—रानी को तुम्हारी धृष्टता के विषय में अवगत करा दिया गया।

ते स्वकर्म साधु निरवाहयन्—आचरन्—उन लोगों ने भली भाँति व्यवहार किया।

शासने तिष्ठ भर्तुः—अपने पति की आज्ञा के अनुसार कार्य करो।

लक्ष्मीभूमिकायां वर्तमाना—लक्ष्मी का अभिनय करने वाली।

कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने—अपनी सौतों के प्रति प्रियसखी का सा व्यवहार करना। मनो वाक्-काय कर्मभिः—मनसा, वाचा, कर्मणा।

कुशाग्रबुद्धि—तेज बुद्धि वाला।

यथाकालं व्यवहर—परिस्थितियों के अनुसार अपना आचरण बनाओ।

तस्यैकदेशः अभिनेयार्थं कृतः—इसका एक अंश अभिनय के योग्य बना दिया गया है।

लक्ष्मीं तनोति—शोभा को बढ़ाता है।

गंडस्योपरि पिटिका संवृत्ता, अयमपरो गंडस्योपरि स्फोटः—पहिले अनर्थ के ऊपर यह एक और नया अनर्थ आकर उपस्थित हो गया (फोड़ा के ऊपर फुंसी)।

मधुरालाप, प्रियवद—मीठी वाणी बोलने वाला । अदत्त-बाह्यनामा लेख—ऐसा पत्र जिस पर कोई भी पता न लिखा हो । दत्तलिखितमद्बाह्यनाम पत्र प्रेषय—पत्र को मेरे पते से भेज देना ।

आमत्रयस्व-आपृच्छस्व सहचरम् -अपने साथी से विदा हो लो ।

सर्वविश्रम्भेष्वभ्यन्तरीकरणीया—सभी गुप्त मामलों में उसे सम्मिलित रखना चाहिए । तस्या विकारो विलबाक्षम -उसकी बीमारी ऐसी नहीं है जिसमें देर करने की गुंजाइश हो ।

वयोवृद्ध, प्रवयस्—उम्र में बड़ा । ज्ञानवृद्ध—ज्ञान में बड़ा ।

मम छिद्रेण लब्धावकाश—मेरी कमजोरी से फायदा उठाकर ।

वसन्तसमयावतार, मधुप्रवृत्ति—वसन्त का आगमन ।

क्लेशलेशैरभिन्न—जरासा भी थकावट से प्रभावित न होकर । वेतालोपहत—पिशाच (भूत) से ग्रस्त । अनेकव्याध्युपसृष्ट—अनेक रोगों से ग्रस्त । न न किञ्चिद् छिद्यते -इसमें हमारी स्थिति पर जरा भी प्रभाव नहीं पड़ता । कृतककलह कृत्वा—नकली झगडा करके । मम वचसा तस्य हृदयं द्रवीभूतम्, मम वचसस्य हृदये दृढ पद लेभे—मेरी बातों का उसके हृदय पर बडा असर पडा ।

पण्डितम्मन्योसौ—वह अपने को पंडित लगाता है ।

द्वौ नञौ प्रकृतार्थं गमयत—दो निषेधवाचक शब्दों से एक विधिवाचक अर्थ निकलता है ।

इति वार्ता प्रसृता—ऐसी अफवाह फैली थी ।

अनुपूर्वश —एक के बाद दूसरा । वृक्ष वृक्ष सिंचति—एक वृक्ष के बाद दूसरे को सींचता है ।

स पितामहनाम्नाऽभिधीयते-आहूयते—उसका नाम उसके पिता-

मह के नाम पर रक्खा गया है। प्राप्तव्यवहारदशा—बड़ा हो जाने पर। षोडशवर्षवयोवस्थामस्पृशत्—वह सोलह वर्ष का हो गया।

अस्मिन्विषये सर्वेषा..तेषामैकमत्यम्—इस बात पर वे सब एक-मत हैं।

शरसंधान कुर्वन्—बाण का निशाना लेकर। कानिर्दिष्टकारण गम्यते—बिना किसी निश्चित लक्ष्य के कहाँ जा रहे हो। प्रकाशता गम्—खुल जाना। अवलेपमुद्रा—अभिमान का रुख।

निकृतमिवात्मान सदर्श्य—क्रुद्ध व्यक्ति का सा आकार बना कर। गगनकुसुमानि-खपुष्पणि चि, मनोराज्यविजृम्भण—मन के लड्डू खाना।

अकस्मात्, महसा, एकपदे—यकायक। एतावान्मे विभवो भवत सेवितुम्—आप की सेवा करने के लिए इतना ही कर सकता हूँ।

एव पिंडीकृत्य मह्य विशति रूपकान्देहि—सब मिलाकर मुझे बीस रुपए दीजिए। सर्वे मिलित्वा सप्त वय—सब मिल कर हमलोग सात हैं।

इयं कथा मामेव लक्ष्यीकरोति--यह कहानी मेरे ही विषय मे है क्षीणभूयिष्ठाया क्षपायां—जब रात लगभग समाप्त हो चुकी थी। अधुना प्रभातप्राया-कल्पा रजनी—इस समय लगभग प्रात: काल हो गया है। मृतप्राय-कल्प लगभग मरा हुआ। अन्या गतिर्नास्ति, अन्यच्छरण नालोक्यते—दूसरा कोई चारा नही है।

एष तव वचसो निष्कर्ष -पिंडितोर्थ —आपके भाषण का साराश यह है।

अराजके जनपदे—ऐसे देश मे जिसमें राजा न हो, जहाँ अराजकता हो। जन्मदिवस —जन्म दिन। मृततिथि —निधन तिथि।

भवतु-तथा-इति स प्रत्युवाच—उसने उत्तर दिया "बहुत अच्छा" इदं मे इष्टसिद्धये कल्पेत—इससे मेरा काम चल जायगा।

चिंताविषघ्नोऽगदः—चिन्ता को मिटाने वाली दवा। विषवैद्यः, जांगुलिक.—जहरीली दवाइयाँ बेचने वाला।

व्याजस्तुति —ऊपर से देखने मे प्रशसा ।

अस्मिन्नर्थेऽत्रभवतं प्रमाणीकरोमि, अत्र भवान् प्रमाणं—इस विषय मे मै आपसे फरियाद करता हूँ ।

साक्षी नोपतस्थौ—गवाह उपस्थित नही हुआ। शोभनाकृति, सुभगाकृति, चारुदर्शन, प्रेक्षणीय—सुन्दर आकार वाला। तव कथा सत्येव प्रतिभाति-अवभासते–तुम्हारी कथा सची सी मालूम पड़ती है।

सुखार्थे विषयशब्द न प्रयुजते–"विषय" शब्द सुख के अर्थ में नहीं प्रयोग किया जाता। द्वितीयगामी न हि शब्द एष न —हमारी यह पदवी किसी दूसरे मे लागू नहीं होती। कोपरो नियोगोनुष्ठीयतामिति प्रार्थयामास—उसने प्रार्थना की कि अब कौनसी दूसरी आज्ञा बजा लाऊँ। वयं स्वकर्मण्यभियुज्यामहे—हमलोग अपने अपने काम मे लगते हैं ।

देवि सामयिका भवाम —हे देवी, हम लोगो को समय का पाबन्द होना चाहिए।

तीक्ष्णमति-तेज बुद्धि वाला। मदधी, स्थूलबुद्धि–मोटी बुद्धि वाला

प्रस्तावसदृश, प्राप्तकाल, कालोचित, समयानुरूप —अवसर के लिए उपयुक्त।

न ते वचोऽभिनन्दामि—मै तुम्हारे वचनो का अनुमोदन नहीं करता। युवानो विस्मरणशीला —नौजवान लोग भुलक्कड़ हुआ करते हैं (चीजों को भूल जाया करते हैं।) अतिस्नेह पापशंकी—अतिस्नेह से पाप की शका होने लगती है।

लोके गुरुत्व विपरीतता वा स्वचेष्टितान्येव नरं नयति—मनुष्यो को अपने ही कार्य उन्हे बड़ा अथवा छोटा बना देते हैं।

बध्नाति मे चक्षुश्चित्रकूट —चित्रकूट मेरे नेत्रों को आकृष्ट करता है।

अव्याजमनोहरम् अकृत्रिमलावण्य निसर्गरमणीय वपु—प्रकृत्या सुन्दर शरीर।

गुणास्तावत्तस्य नैव विद्यते—गुण तो उसमे एक भी नही हैं।

शीघ्रमिति मुकर—रही करने की, सो तो सरल है। पितेति मां स मानयति—यह पिता हैं ऐसा समझकर मुझे मानता है।

वेलोपलक्षणार्थम्—समय मालूम करने के लिए।

कस्मिन् दोषं निक्षिपामि, क दोपपक्षे स्थापयामि—किसके मत्थे दोष मढ़ूँ।

भस्मीकृ, भस्मसात्कृ—राख कर डालना। भस्मीभू—राख होजाना।

तस्य वदनं हर्षोत्फुल्लं बभौ—उसका मुखड़ा हर्ष से खिल उठा। सर्वं विपर्यासं यातं—सभी चीजें बदली हुई थी।

उदगभिमुखं मे गृहम्—मेरे घर में उत्तरी झलक है

दूरारूढा -दूराधिरोहिण -उत्सर्पिण खलु एते मनोरथा वस्तुत ये बड़ी उच्चाकाङ्क्षाए हैं।

मृगा मृगै सगमनुव्रजन्ति—हिरन हिरनों के साथ रहते हैं।

कृतक-मौनम्, मिथ्या मौन—दिखावटी मौन।

इति मे निश्चय, दृढ मन्ये—मुझे पूरा विश्वास है।

उपचारातिक्रम - प्रणिपातलघन - प्रमाष्टुं मयमारभ —दण्डवत् प्रणाम का तिरस्कार करने का प्रायश्चित्त करने के लिए यह काय है।

लोकापवादो बलवान्मतो मे—मै लोकनिन्दा को बहुत महत्व शाली चीज मानता हूँ। नृपे सुदृढमनुरक्ताः प्रजा —प्रजाएँ राजा में बहुत जबर्दस्त अनुराग रखती हैं।

युवतयो गृहिणीपद यांति—युवती स्त्रियाँ गृहिणी की पदवी पाती हैं।

उदार-आर्य-नेपथ्यभृत्—बड़ी सजधज के साथ वस्त्र पहने हुए।

वैरभाव, विपक्षवृत्ति —शत्रुता का रुख।

आत्मन्यारोपितालोकाभिमाना —अपने में मिथ्या गौरव समझने (मानने) वाले।

राजदर्शन लेभे—राजा से मुलाकात की। दर्शनानुग्रह मिच्छामि—दर्शन पाकर अनुगृहीत होना चाहता हूँ।

विपदुत्पत्तिमतामुपस्थिता जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु—जो पैदा होता है वह अवश्य मरता है।

चकित नृपस्य पार्श्वमुपैमि—मैं राजा के पास भयभीत होता हुआ जाता हूँ।

परोक्षे,परोक्षम्—पीठ पीछे। उर्वशी प्रत्यादेश श्रिय—उर्वशी लक्ष्मी का मान कर देती है।

सकलवचनानामविषय वर्णनविषयातिक्रांत मोघवर्णनप्रयत्नं-तत्स्थानम्—यह स्थान वर्णनातीत है।

ते कुलस्याधय—वे कुल के अभिशाप हैं।

इति समय कृत—ऐसा सौदा (शर्त) ठहरा था।

अपि च, अपर च—अतिरिक्त।

तस्मिन्नवसरे तेन धीर विक्रांत—उस अवसर पर उसने वीरता-पूर्वक व्यवहार किया। चित्ते अव तृ, मनसि कृ, अनुस्मृ—मन में धारण करना। शोकवश मा गम—शोक मत कीजिए। गर्भेश्वर—जन्म से ही धनवान्।

सीतादेव्या कि वृत्त—महारानी सीता का क्या हुआ।

आपतति हि संसारपथमवतीर्णानामेते वृत्तान्ता—इस प्रकार की घटनाएँ संसारी मनुष्यों के ऊपर पड़ती हैं।

अश्रुतपूर्व—पहिले कभी न सुना हुआ।

लतान्तरित लताव्यवहितविग्रह—लताओं के पीछे अपने शरीर को छिपा कर।

भ्रूभंग कृ—भौं टेढी करना। स पुनरपि स्वकार्ये मनो व्यवध न्यवेशयत्—वह फिर अपने काम में दत्तचित्त हो गया। भवति नम्रास्तरव फलागमै—फलों के बोझ से वृक्ष झुक जाते हैं। कृतनिश्चय, दृढनिश्चय

कृतसकल्प, विहितप्रतिज्ञ—तुला हुआ कटिबद्ध । परस्परवधोद्यतौ—एक दूसरे को मारने पर तुले हुए ।

आनदपरवश ,आनन्देन विगतचेतन इव भूत्वा—आनन्द के मारे अपने आपे मे नही रह गया । अप्रास्ताविकं, अप्रस्तुत, अप्रासगिक, अप्रकृतम् एतत्—यह तो प्रस्तुत विषय के बाहर है ।

अस्ति मे विशेषोऽद्य—आज मेरी तबियत अच्छी है । अभिभू-अतिरिच्—मात कर देना ।

दुर्गम. दुर्ज्ञेय, दुर्बोध—जो समझ मे न आव । आयाधिक व्ययं करोति—वह अपनी आय से अधिक खर्च करता है । स श्रुतिपथम् अतिक्रात. व्यतीत —जहाँ तक सुनाई पड सकता था उसके आगे चला गया ।

न मनागपि, न स्तोकांशेनापि—ज़रा भी नहीं ।

मृत्पिडबुद्धि —काठ का उल्लू ।

समेत, सहित—एक साथ । आसन्नपरिचारक —अंगरक्षक ।

भिन्नोष्टधा विप्रससार वश —कुटुम्ब आठ भागों मे विभक्त हो गया।

साहसे श्री प्रतिवसति—लक्ष्मी वीर पुरुष के ऊपर कृपा करती है ।

प्रभाता रजनी—दिन निकल आया । विच्छेदमाप कथाप्रबध.—कथा मे भङ्ग हो गया । सभ्या स्व स्व स्थानं प्रतिजग्मु —सभा विसर्जित हो गई । तस्याक्ष्णो. प्रभातमासीत्—उसके नेत्रों के सामने ही दिन निकल आया ।

कि बहुना—सक्षेप में, बहुत कहने से क्या ।

हर्परोमाचित पुलकित कंटकित तनु —प्रसन्नता के मारे उसके शरीर पर रोंगटे खडे हो गए ।

तस्या सहसा प्रावर्तताश्रुधारा—वह फूट फूट कर रोने लगी । संभूय प्रशंसागिर उदतिष्ठन्—(लोगों के मुँहों मे) प्रशसा फाट पडी ।

अप्रस्तुत किमिति अनुसधीयते—क्यो गोलमोल बातें करते हो । ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवनिषेवणं नेष्टम् अध्रुवाद् ध्रुव वर, वरमद्य

कपोतो न श्वो मयूर, वरं तत्कालोपनता तित्तिरी न पुनर्दिव सातरिता मयूरी—नौ नकद न तेरह उधार।

अनुदिवस दिन दिने दिने—प्रतिदिन। शतश—सैकड़ों। एकैकश आनु र्व्येण—एक एक करके।

प्रयत्नसवर्धित—बड़ी देखभाल से पाला पोसा हुआ। निपुण-मन्विष्य—सावधानी के साथ खोजकर। अधुनाह वीतचित—अब मुझे चिता नही। न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते—स्वेच्छाचारी पुरुष कलक की परवाह नही करता। प्रतिपात्रमाधीयता यत्न—प्रत्येक पात्र की देखरेख की जाय।

प्रस्तुतविषये, प्रकृत—इस मामले मे, वर्तमान मामले मे। तेन—यदि ऐसी बात है तो।

कि मिष्टमन्न खरसूकराणा—भैस के आगे बीन बजावे भैस खड़ी पगुराय।

ज्वलनमुपगत-अग्निदीप्त-गेह—घरमे आग लग गई। कर्मगृहीत, रूपाभिग्राहित, लोप्त्रेण गृहीत—कार्य करते हुए पकडा गया।

किन्नरमिथुन यदृच्छयाद्राक्षीत्—सयोगवशात् दो किन्नरो को देखा। घुणाक्षरन्यायेन—अकस्मात् अनायास। स मया समापत्तिदृष्ट—मेरी उससे अकस्मात् भेट हो गई।

स्वभावो दुरतिक्रम—स्वभाव नही बदल सकता। क्षीर दधिभावेन परिणमते अथवा दधिभावमापद्यते—दूध दही मे परिणत हो जाता है।

हस्ते निक्षिप् या समर्पय्—सौपना। अय जन कस्य हस्ते सम र्पित निक्षिप्त—यह पुरुष (मै) किस के हाथ म सौपा गया है?

समाश्वसिहि, धैय निधेहि हृदये—धैर्य धारण करो।

इत्थम् अथवा एवं गते-सति—ऐसी परिस्थिति मे। दुर्गत, दुर्दशापन्न दु.स्थित—विपत्ति मे पड़ा हुआ। येन केनापि प्रकारेण—चाहे जिस तरह से भी हो। यथावसर, यथाकाल—अवसर अथवा परिस्थितियों के

अनुसार।

अतिभूमि गतो रणरणकोऽस्या —इस स्त्री की चिंता पराकाष्ठा को पहुँच गई है।

निमिमील नरोत्तमप्रिया - राजा की प्यारी ने आँखें बन्द करलीं। अद्य निर्वात नभ —आज बड़ी उमस है।

मृत्यु मुखान्मुक्त —काल के गाल से बचा हुआ।

यद्भावि तद्भवतु—जो होना हो सो हो। यद्भावि तद्भवतु शुभम शुभ वा—चाहे अच्छा हो चाहे बुरा, जो होना हो सो हो। प्रकृतिमापद्, संज्ञा-चेतना-लभ्-प्रतिपद्, प्रकृतो स्था—होश में आना। आगामिनि सोमवासरे—आगामी सोमवार को।

ता सुखशयित पृच्छ—उससे पूछो कि नींद अच्छी आई या नहीं। रात्रावपि निकामशयितव्यं नास्ति–रात को भी मैं आराम से नहीं सो सकता।

दीर्घिकावलोकनगवाक्षगता—एक ऐसी खिड़की पर बैठकर जहाँ से एक कुआँ दिखाई पड़ रहा था। आकृतिविशेषेष्वादर पद करोति—सुन्दर स्वरूप का आदर होता ही है। पद हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते—गुणों से सभी जगह लोग आकृष्ट हो जाते हैं। तनुवाग्विभवोपि सन्—यद्यपि मेरे पास भाषा-सम्पत्ति नहीं है। त वाग्वश्येवानुवर्तते—उसको भाषा पर पूर्ण अधिकार है।

इद वृत्त लेख्य-पत्र आरोपय, पत्रे निवेशय–इसको लेखबद्ध कर दो।

अस्माभि सहैककार्याणां – जिन्होंने हमारा सहयोग दिया है।

सहाध्यायिन्—सहपाठी। समदु खसुख.—सुख तथा दु:ख का साथी।

अहमहमिकया प्रणामलालसा —प्रणाम करने की लालसा से एक दूसरे के साथ होड़ लगाते हुए।

अभिनद्य ब्रवीति—अभिनन्दन करके कहता है। च्यवनाय सा प्रणिपातय या मदीयो नमस्कारो वाच्य —च्यवन जी से मेरा प्रणाम कहना। उपचारपद—लोकाचार (शिष्टाचार) के वाक्य।

स नाद्यापि पर्यवस्थापयति-सस्तभयति आत्मान—वह अब भी अपने होश मे नही आ रहा है।

महदपि राज्य न मे सौख्यमावहति—मेरा बड़ा राज्य भी मुझे सुख नही पहुँचाता।

अपि रक्ष्यते त्वया रहस्यनिक्षेप—क्या आप न गुप्त बात को सुरक्षित रक्खा है। विश्वास्य-विश्रम्भ-भूमि. स मम—वह मेरा विश्वास पात्र है। विश्रम्भस्थाने मन्—गुप्त मामलों मे विश्वास करना।

प्रसवकाल, प्रसवावस्था—किसी स्त्री का प्रसवकाल (बच्चा जनने का वक्त)। प्रसूता प्राप्तप्रसवा तद्भार्या—उसकी स्त्री सोहर मे है।

दिष्टया सुतमुखदर्शनेन आयुष्मान्वर्धते—अपने पुत्र का मुख देखने पर आप को बधाई देता हू।

प्रसन्न-उपपन्न ते तर्क—आप का अनुमान ठीक है।

अग्निसात्कुरु, ज्वलनाय समर्पय—अग्निदेव को सौंप दो।

तस्याचरण वचसा न विसवदति—उसका आचरण उसकी बातो के विरुद्ध नही है। स्वार्थाविरोधेन—अपने मतलब का पूरा पूरा ध्यान रखते हुए। अभिरूपभूयिष्ठा परिषद्—ऐसी परिषद् जिसमे अधिकतर विद्वान् लोग हों।

तस्य वचसि दुराशय मा कल्पय-आरोपय—उसके वचनो मे बुरी भावनाओं का आरोप न कीजिए।

तत्परतयैव वेदांतवाक्यानि योजयति—वेदान्त वाक्यो को उसीमे सम्बन्धित बताते है।

जनहितमपि तावत् त्वया चिंतनीय-मनसि कार्यमेव-अवेक्षणीय आपको प्रजा के हित का भी ध्यान रखना चाहिए। स्वहितपरायणो मा भू—केवल अपना ही हित मत देखिए। सांवत्सरिकं स्वाध्यतास्—ज्योतिषियों से परामर्श ले ली जाय।

मर्मच्छिद्-भिद् मर्माणि कृतत्—हृदय को भेदना। मद्वचन-माक्षिप्य—मेरी बात को बीच ही मे काटकर।

तस्योत्साहभंग मा कृथा —उसके उत्साह को भङ्ग मत करो।

आतुरो जीवितसशये वर्तते—रोगी की हालत बहुत खतरनाक है।

अध तम., सूचिभेद्य तम —घना अधकार। सतमस—सब तरफ छाया हुआ अन्धकार।

हाहानिनादेन दिशो बधिरयत.—"हा हा" की आवाज से दिशाओं को बहिरा करने वाले।

स्वासुभिर्भर्तुरानृण्यं गत —प्राण देकर स्वामी से उऋण हो गया।

पश्चिमे वयसि, परिणतवयसि—वृद्धावस्था मे।

दूरगतमन्मथ। सा, अतिभूमि गतोस्या अनुराग—उसका बहुत गहरा प्रेम हो गया है।

मम विकार परिच्छेदातीत —मेरी मनोव्यथा वर्णनातीत है।

एकस्य मूल्येन व्यय शुध्यति, सर्वा व्ययशुद्धि सपद्यते—एक की मूल्य से प्राप्त आय मे सारा खर्च चलता है।

वैद्ययत्नपरिभावी गद —वैद्यों के प्रयत्नों को विफल करने वाला रोग।

दीर्घसूत्री विनश्यति—बहुत देर लगाने वाला नाश को प्राप्त होता है।

वसुधा तस्य हस्तगामिनीमकरोत्—पृथ्वी उसके हाथो में सौंप दी। लेख तस्य हस्त प्रापयिष्यामि—पत्र को उसके हाथ में दूँगा।

सर्व दैवाधीन-आयत्तं—सब कुछ भाग्याधीन हुआ करता है। मया प्रायोपवेशनं कृत विद्धि— निश्चय समझिए मे अनशन करके मर जाऊँगा। असशय, नियतं, नूनं खलु अवश्यमेव निमित्तसव्यपेक्ष—किसी कारण के ऊपर निर्भर करने वाला।

विषण्ण, मुक्तावयव—खिन्न, दुःखित, उदास।

सर्वजनस्योपहास्यतामुपयाति—सभी लोग मे हँसे जाते हैं।

तस्या श्रीर्वचनानामविषया—उसका सौन्दर्य वर्णनातीत है।

सविस्तर सविस्तरेण, विस्तरत -श सुविस्तर—विस्तारपूर्वक।

सा पुपोष लावण्यमयान् विशेषान्—अथवा मनोहर वपु प्रचीयमानावयवा'—उसके सुन्दर सुन्दर अग बढते गए।

क्षुण्णाद्वर्त्मनो रेखामात्रमपि न व्यतीयु—पीटी हुई लकीर मे बाल भर भी बाहर नही गए।

नाहमात्मविनाशाय वेतालोत्थापन करिष्यामि—अपने ही नाश के लिए मै श्मशान को नही उठाऊँगा।

पुत्रसक्रातलक्ष्मीका गुणवत्सुतरोपितश्रिय —पुत्रों को सम्पत्ति का सारा भार देकर।

लुप्तार्थवचन—ऐसी बात जिसका नाम निशान न रह गया हो।

अशाम्य वैर—भारी शत्रुता।

स लोष्टघात हत —डेला मार मार कर वह मार डाला गया।

अव्यतिरिक्तेयमस्मच्छरीरात्—यह मेरे शरीर से भिन्न नहीं है।

विषमपदविमर्शिनी टीका—कठिन कठिन विषयो को स्पष्ट करने वाली टीका।

आत्मन्यप्रत्यय चेत —अपने आप मे विश्वास नही है।

अलमप्रासगिकेन, अप्रसगेन, प्रकृतमेवानुसधीयता—असम्बद्ध बातें न करो।

चक्षुर्विषयातिक्रान्तेषु-नयनपथातीतेषु-अतरितेषु- अदृष्टिगोचरेषु-अतर्हितेषु-कपोतेषु—कबूतरो के गायब हो जाने पर।

कर्तव्यानि दु खितैर्दु खनिर्वापणानि—दु खित व्यक्तियों को चाहिए कि अपने दु खों की शान्ति कर ले।

शिष्य उपदेशं मलिनयति—शिष्य उपदेश की बदनामी कराता है।

प्रकृत-प्रस्तुत अनुसृ अथवा अनुसधा—विचाराधीन विषय की तरफ आना।

प्रस्ताव, प्रस्तुत-प्रकृत विषय, प्रस्तुत, प्रकृत—विचाराधान विषय।

तपस्विव्यजनोपेता, तापसच्छद्मना, तापसरूपधारिणा—तपस्वी का वेष धारण कर।

निष्कारणो बधु—निष्प्रयोजन मित्र।

मम द्रव्यस्य कथ त्वया विनियोग कृत—मेरे द्रव्य को आप ने किस प्रकार व्यय किया।

अह त्वदधीनोऽस्मि—मै आप के अधीन हूँ। अयमर्थस्त्वदायत्त, अत्र भवान् प्रभवति—यह मामला आपके अधीन है। कलहशील, कलहकाम—झगड़ा करने वाला।

कि वो विवादवस्तु—आप लोगों का झगड़ा किस बात पर है। वादग्रस्तोऽर्थ—झगड़े वाला विषय।

अतिथिविशेष—सम्माननीय अतिथि।

एव तावदाक्षिपामि, अन्यत सचारयामि—मै इस प्रकार उसके विचारो को दूसरी तरफ लगाऊँगा।

अतर्भेदाकुल गृह—अपने मे ही फूटा हुआ घर।

अपि कुशल-शिव भवत—आप का कुशल तो है? त्वा सुख-कुशल पृच्छति—आपका कुशल पूछता है। देवी सुख प्रष्टुमागता—रानी आपका कुशल पूछने आई है। अल निर्बंधेन—हठ मत करो। किमस्माक स्वामिचेष्टानिरूपणेन—स्वामी की चेष्टाओ की देखरेख करने मे हमें क्या प्रयोजन?

मनो मे सशयमेव गाहते अथवा आशकते—मेरा मन अब भी शका मे पड़ा है।

नतोन्नतभूमिभाग, उत्खातिनी भूमि—ऊँची नीची जमीन? पातोत्थान—उत्थान पतन। नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण

जिस प्रकार गाडी का पहिया ऊँचे और नीचे को जाता आता रहता है उसी प्रकार मनुष्य के जीवन मे उत्थानपतन हुआ करते हैं। निपात्यतां-उच्छेद्यतामसौ प्रजापीडक —अत्याचारी का नाश हो।

परिणतप्रायमह —दिन ढल रहा है, सूर्यास्त होने वाला है।

त्वया स्वहस्तेनागारा कर्षिता —तुमने तो अपने हाथो ही सत्यानाश कर डाला।

द्वीपिचर्मपरिच्छन्न गर्दभ —व्याघ्र की खाल मे ढका हुआ गदहा।

चापलाय प्रचोदित —चपलता करने के लिए प्रेरित हो कर। अविरलवारिधारासपात, पटुधारासार —निरन्तर जल धारा। किमुद्दिश्य भवान्भाषते—आप किस बात की तरफ लक्ष्य करके कह रहे हैं।

मा भवानगानि मुचतु—निराश मत होइए। मुक्तैरवयवैरशयिषि-अग अग शिथिल हो जाने पर मै सो गया। स्रसते देहबंध —सारा शरीर शिथिल हो रहा है।

जलबिंदुनिपातेन क्रमश पूर्यते घट.—बूँद बूँद सों घट भरै। कन कन जोरे मन जुरे।

स्थगियतामिय कथा—इस विषय को छोडिए। अवसन्नप्रायाणि मे गात्राणि, सीदति अगानि—मेरे अग प्रत्यंग शिथिलप्राय हो रहे हैं।

शिखी केकाभिस्तिरयति मे वचन —मोर अपनी बोली से मेरी आवाज को दबा लेता है।

श्रवणगोचरे तिष्ठ—ऐसे स्थान पर खडे होओ (रहो) जहाँ बात सुनाई पड सके।

महति प्रत्यूषे—बडे प्रात. काल।

न परिहसामि, नायं परिहासस्य समय:—हँसी नही कर रहा हूँ। परमार्थेन ग्रह_ सच्चा मानना।

लब्ध स्वास्थ्य मया, अहं निर्वृत:, वीतचिंत:—मैं स्वस्थ चित्त हूँ। जातो ममायं विशद प्रकाम अंतरात्मा—मेरी आत्मा पूर्णतया स्वस्थ है। यथाकाम, पर्याप्त, प्रकाम—स्वेच्छानुसार

सुखसुप्त—सुख पूर्वक सोया हुआ।

फल्, मूर्च्छ्—प्रभाव करना। मारुतस्य रंहः शिलोच्चये न मूर्च्छति—वायु का वेग पर्वत के ऊपर कुछ भी प्रभाव नहीं कर सकता। मूर्च्छन्त्यमी विकारा ऐश्वर्यमत्तेषु—प्रभुता से मतवाले पुरुषों के ऊपर ये विकार बड़ा प्रभाव करते हैं। निशि मूर्च्छतां तमसा—रात्रि में घना होने वाला अंधकार। वज्रं तपोवीर्यमहत्सु कुंठम्—घोर तपस्या करने वालों पर वज्र कुछ भी प्रभाव नहीं डालता। इति, एतदभिप्राय: अर्थात, वस्तुत—असल में।

नृपस्तस्यां बद्धभाव, कृतानुराग, प्रीति-भाव बबंध—राजा उससे प्रेम करने लगा।

शृणु मे सावशेष वच—मेरी बात अन्त तक सुनो। कल्याणोदर्कं-स्वतं-भविष्यति—इसका परिणाम अच्छा होगा।

अलमतिविस्तरेण—बहुत विस्तार मत करो। अलं-कृत-परिहासेन—हँसी न करो

कुतूहलेन तस्य चेतसि पदं कृतं—उसके हृदय मे उत्सुकता पैदा हो गई।

मानमर्हति, मान्य., पूज्य—वह सम्माननीय है। स पुरस्कारमर्हति—वह प्रथम पूजे जाने योग्य है।

परसुखासहिष्णु—दूसरो के सुख से ईर्ष्या करने वाला। ते परस्पर-यश पुरोभागा:—वे एक दूसरे की कीर्ति से ईर्ष्या करते हैं।

तुलया धृ—बराबर समझना। तत्कार्यं साधयितुमलं स.—वह इस कार्य को करने में समर्थ है।

प्रतिशासनम्—सँदेशा लेकर भेजना।

बधनभ्रष्टो गृहकपोतश्चिल्लाया मुखे पतित —कुआँ से बच कर वह खाई मे जा गिरा।

कथ कथमपि मुक्त —बाल बाल बच गया ।

सुरक्षिता ता प्रेषय—उसको सुरक्षित करके भेजो।

अत्यतविलुप्तदर्शन, एकातनष्ट—सदा के लिए गायब।

असन्निवृत्त्यै गत, अत्यतगत—सदा के लिए चला गया।

अप्रबोधाय सा सुष्वाप—वह सदा के लिए सो गई।

अब्रह्मण्य, अत्याहितं—महान् अनर्थ हो गया।

स सत्कारो मम मनोरथानामप्यभूमि —स्वागत आशातीत हुआ।

उत्सर्गा सापवादा —नियमों मे अपवाद हुआ करते हैं। अपवादैरिवोत्सर्गाः कृतव्यावृत्तय —सामान्य नियम अपवादो से नियमित रहते हैं।

इति लोकवाद न विसवादमासादयति—इस उक्ति मे अपवाद नहीं है। प्रतिप्रसव —अपवाद का भी अपवाद।

शिर.शूलस्पर्शानमपदिशन्—सिर दर्द का बहाना करता हुआ। अनामयापदेशेन—बीमारी का बहाना करके।

स्वनियोगमशून्य कुरु,अनुतिष्ठात्मनो नियोग —अपना काम करो।

असौ क्रमाद्यौवनभिन्नशैशव.—उसका शैशव धीरे धीरे युवावस्था को प्राप्त होगया। हर्षोत्फुल्लनयन —हर्ष के मारे उसकी आँखे खिल उठी।

भवतात्मा क्लेशस्य पदमुपनीत. —आपने अपने को क्लेश मे डाल दिया। स कातर इति वाच्यतां गत —"वह कायर है" ऐसी बदनामी हुई। सा तण्डुलान् सूर्यातपे दत्तवती, आतपायोज्झितवती—उसने चावलों को घाम मे फैला दिया।

कियताप्यशेन, ईषत्, मनाक्—कुछ अश तक। सर्वथा—सब प्रकार से।

लोकदृष्ट्या—सब साधारण जनता की दृष्टि से। अक्षिगतोऽहं तस्य—मै उनकी आँखो की किरकिरी हूँ।

मुखामुखि, सम्मुखं—आमने सामने—पूर्वाभिमुख गृह—ऐसा घर जिसका मुँह पूर्व की ओर हो।

वस्तुत, तत्त्वत —असल म। वस्तुवृत्तेन, परमार्थत', तत्त्वत.—असल मे।

सकटष्वविषराणधी'—सकट क समय जिसकी बुद्धि व्यथित न हो। फले विसवदति—फल देने मे असमर्थ है।

तस्य धैर्य न हीयते, न स्खलति—उसका धैर्य क्षीण नही होता। पत्राभावे—पत्र के अभाव मे। तस्य स्मृतिलोप सजात'—उसकी स्मरण शक्ति लुप्त हो गइ। सन्ततिविच्छेद, लोप —सन्तान का न होना।

अनिर्वेद. श्रियो मूल—दु खी न होना लक्ष्मी का मूल है।

सुदिन—अच्छा दिन।

पातोत्पातौ, व्यसनोदयौ—उत्थान तथा पतन। स लक्ष्यच्युतसायकोऽभूत्—उसका बाण निशाने से चूक गया। तव महिमानमुत्कीर्त्यं वच. सहियते—आप की महिमा बखान करने मे वाणी असफल हो जाती है।

लुप्तप्रतिज्ञ, असत्यसन्ध, भग्नप्रतिज्ञ—अपनी प्रतिज्ञा को न पालन करने वाला।

अतिपरिचयादवज्ञा—अत्यन्त घनिष्ठता होने से अपमान होने लगता है।

को वृत्तान्तस्तत्रभवत्या —श्री मती जी का क्या हाल है?

नात्र मुनिर्दोषं ग्रहीष्यति—मुनि जी इसमे दोष न निकालेगे।

दृष्टदोषा मृगया—शिकार के दोष विदित हैं।

सहृदय, सचेता —सहृदय। सचेतसः कस्य मनो न दूयते—किस कोमल हृदय व्यक्ति का मन दुखी नहीं होता।

आत्मान मृतवत्सदर्शयामास—अपने को मरा हुआ सा दिखला दिया। कृतककोप कृत्वा—झूठा गुस्सा करके, गुस्से का बहाना करके। प्रसुप्तलक्षण, व्याजसुप्त, लक्षसुप्त—सोने का बहाना करके।

पर्याप्तमाचामति—पेट भर पीता है।

तै सोपराधी स्थापित—उन लोगो ने उसे अपराधी ठहराया।

उदार-प्रथम.:कल्प—अच्छा (सुन्दर) प्रस्ताव।

सुश्लिष्टमेतत्—यह ठीक जँचता है।

मन्मुखासक्तदृष्टि—मेरे मुँह की तरफ दृष्टि लगा कर। आसक्त-बद्ध-दृष्टि—टकटकी लगाकर। स्तिमित-अनिमेष लोचन—निश्चल दृष्टि से। मनो निष्ठाशून्य भ्रमति—अस्थिर मन भ्रमता रहता है।

रध्रान्वेषिन्, छिद्रान्वेषिन्—दोष ढूँढने वाला।

सप्तभूमिकः प्रासाद—सात मंजिल वाला महल।

हस्तौ समानीय, अजलि बद्धा, कृताजलि, सा (प्रा) जलि—हाथ जोड़ कर। भुजाभ्यां तामापीड्य—दोनों भुजाओ से आलिंगन करके।

महतां पदमनुविधेयम्—बड़ों के मार्ग का अनुसरण कीजिए। पदवीं प्रतिपद्य पुरस्कृतमध्यमक्रम—बीच के मार्ग के अनुसरण करके। दु खं दु:खानुबधि, विपद्विपदमनुबध्नाति—विपत्ति एकके बाद दूसरी आती जाती है। अत कि प्राप्नोति—इससे क्या निष्कर्ष निकलता है। परस्ताद-वगम्यते—जो इसके बाद आवेगा वह समझ लिया गया। ततस्तत—आगे कहिए। तद्यथा—वह इस प्रकार है।

शांत पापम्, प्रतिहतम् अमंगलम्—ईश्वर न करे।

स्वनामत्यागं करोमि—अपना नाम कहाना त्याग दूँगा।

तीर्ण-पूर्ण-प्रतिज्ञ., पालितसगरः, सत्यप्रतिज्ञ., सत्यव्रत., सत्य-संध—प्रतिज्ञा पालन कर चुका हुआ।

अधुना मुच शय्याम्—अब बिस्तर छोड़ दीजिए।

युद्धाय सनद्धा अथवा वद्धपरिकरास्ते—उन लोगों ने युद्ध के लिए कमर कस लिया है।

शुचो वशं मा गम, शोकाधीन मा भू, वैक्लव्य मावलबस्व—शोक मत करो।

ज्वलन्निव ब्रह्ममयेन तेजसा—ब्रह्ममय तेज से चमकता हुआ सा।

इति ख्यात, कृतनामधेय, दत्तसंज्ञ—वह इस नाम से प्रसिद्ध है। उमाख्यां सा जगाम—वह उमा नाम से प्रसिद्ध हुई।

किं तया दृष्टया, कोर्थस्तस्या दर्शनेन—उसका दर्शन करने से क्या लाभ। अलं परिदेवनेन—रोने से क्या लाभ, मत रोओ।

मृत्युमुखे वर्तते, कालालीढ, मृत्युगोचरं गत—वह मृत्यु के मुख में है। इद च अशेषविद्याग्रहणसामर्थ्यं—समस्त विद्या को प्राप्त कर लेने की यह सामर्थ्य। ममाशय सम्यग्गृहीतवानसि—आपने मेरा अभिप्राय पूर्ण रूप से समझ लिया है।

आनन्दस्य परां कोटिं काष्ठाम् अधिगत—वह बहुत प्रसन्न हुआ।

रोषात् दंतैर्दंतान्निष्पिष्य—क्रोध के मारे दाँतों को पीसता हुआ।

यौवनपदवीमारूढः, प्राप्तयौवन, यौवनदशामापेदे—वह युवावस्था को प्राप्त हो गया। वत्सतर महोन्नतां स्पृशति, महोक्षभावं श्रयति—बछवा बड़ा बैल हो जाता है।

तस्याः आबद्धधारमश्रु प्रावर्तत, उद्बाष्पे नयने जाते—उसकी आँखो से आँसुओ की धारा बह चली।

चौर्यवृत्ति—चोरी की आदत। ज्ञातदु ख, दु खशील, परिचितक्लेश—विपत्ति भोगने में अभ्यस्त।

रेखामात्रमपि—बाल भर भी।

सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पंडित—सर्बस जाता देखि करि आधा लेय बँटाय।

बाहुयुद्ध—हाथों का युद्ध। एकतः-अन्यत., एकंच-अपरच - एक तरफ तो यह—दूसरी तरफ। तु, तावत्—इसके विपरीत। सर्वथा, सर्वत्र—सवत्र। दत्तहस्तावलब—हाथ बॅटा कर। परपरया आगम्—परंपरा से चला आना।

त्रिशकुरिवान्तरा तिष्ठ—त्रिशकु की तरह बीच ही मे लटके रहो।

आवेदयति प्रत्यासन्नमानद अग्रजातानि शुभानि निमित्तानि—होनहार बिरवान के होत चीकने पात।

अहो दारुणो दैवदुर्विपाक—हाय रे दुर्भाग्य। प्रबलक्षुधावसन्न—भूख से खूब व्याकुल।

तव मुख कमलश्रियमुद्वहति-आहरति-कलयति—तुम्हारे मुख में कमल की शोभा है।

सशयितजीवित—अपने जीवन को खतरे मे डालने वाला।

धुरि कीर्तनीय, प्रतिष्ठापयितव्य—सब के आगे रक्खा जाना। स सर्वेषा धुरि मूर्ध्नि-तिष्ठति—वह सब के ऊपर है। वसिष्ठाधिष्ठिता', वसिष्ठपुर सरा-प्रमुखा-पुरोगमा—जिसके अगुआ वशिष्ट थे।

व्रणविरोपण तैलम्—फोडे को अच्छा करने वाला तेल।

सुस्थोसौ, कुशलमस्य—वह कुशल पूर्वक है। पूर्ववत्-प्रकृतिस्थ. समजायत—पहले की तरह स्वस्थ हो गया।

किमस्मान् सभूतदोषैरधिक्षिपथ—हम लोगों के ऊपर लाछन क्यों लगाते हो?

इति कर्णपरपरया श्रुतमस्माभि—हम ने लोगों के मुँहो से यह बात सुनी है।

सोत्साह, सर्वात्मना—पूरे दिल से। सर्वात्मना तस्मिन्कर्मणि स व्यापृतः—वह तन मन से इस काम में लगा है। यथेच्छं, पर्याप्तं, प्रकामं, निकामं—अपनी इच्छा भर।

दीर्घ स्थूलस्थूलं नि:श्वस्य—बड़ी गहरी साँस लेकर।

भूस्वर्गायमानमेतत्स्थल, भूलोकगत स्वर्ग—यह पृथ्वी पर स्वर्ग है।

अहमनुपदमागत एव—मै तुम्हारे पीछे-पीछे अभी आता हूँ। जघामवलब्—नौ दो ग्यारह हो जाना।

विना पुरुषकारेण दैव न सिध्यति—परमात्मा उनकी सहायता करता है, जो अपने आप अपनी सहायता करते हैं। का गतिः, किमन्यच्छरण—दूसरा क्या चारा है।

हंत बीभत्समेवाग्रतो वर्तते—वह सामने बड़ा बीभत्स दृश्य है।

स त्वा बहुमन्यते—वह आप को बहुत मानते हैं।

इषवः सिध्यति लक्ष्ये चले—बाण हिलते डुलते हुए लक्ष्य को बेध देते हैं।

का अथवा कियती मात्रा तेषां मम, तानहं तृणाय मन्ये अथवा तृणीकरोमि—मै उन्हे तृण बराबर समझता हूँ। वाचयमो भव, वाचं नियच्छ, तूष्णीं जोषम् आस्स्व—जबान सँभालो। सर्वगामी-अव्यभिचारी अयं नियम—यह नियम सर्वत्र लग जाता है। रागः शुक्लपटे स्थायीभवति—लाल रग सफेद वस्त्र पर खूब पक्का पड़ जाता है। स लोकस्य मन आददे—सर्व साधारण जनता के मन पर उसका पूरा प्रभाव था। लेभेतर चेतसि नोपदेश, अलब्धपदो हृदि—उसके हृदय पर उपदेश का कुछ भी प्रभाव न पड़ा।

तद्वच तस्य हृदयमर्मास्पृशत्—वह बात उसके अन्त करण पर असर कर गई।

चतुर शशकान् विश्वासस्थाने धृत्वा—चार खरगोशों को जमानत के तौर पर रख कर।

मानुषीं गिरमुदीरयामास—मनुष्य की सी बोली बोला।

इति राज्ञां शिरसि वामपादमाधाय—इसप्रकार राजाओं को नीचा दिखा कर।

ब्रह्मसायुज्य प्राप्त., ब्रह्मलीनः, ब्रह्मभूय गत—ब्रह्म में लीन हो गया।

दुर्दैव, दुर्भाग्यं, मदभाग्यं, दैवविपर्यास , दुर्विपाक—दुर्भाग्य।

अस्मार्तकालात्—युगों से, बहुत प्राचीन काल मे।

स महति जीवितसशये अवर्तत—वह बडे भारी मौत के खतरे मे था।

अल सेवया (स्नेहभणितेन)मध्यस्थता गृहीत्वा भण—चापलूस न करो, न्यायपूर्वक बोलो।

उन्नमत्यकालदुर्दिन—असमय का तूफान आ रहा है। अनावृष्टि सपद्यते लग्ना—अकाल (सूखा) पड़ने वाला है।

निर्बन्धपृष्ट अथवा पुन' पुनश्चानुबध्यमान स जगाद सर्वं—हठ-पूर्वक पूछे जाने पर उसने सब कुछ बता दिया।

जानकी करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी विरहव्यथेव—जानकी करुण रस का साक्षात् अवतार है।

वाच्यता याति, दोषभाजन दोपभाक्-दोपपात्र-भवति—वह कलङ्क का पात्र बन रहा है।

कि कथ्यते श्रीरुभयस्य तस्य—उस दम्पती की शोभा अवर्णनीय है।

सभावनीयानुभावास्याकृति.—उसके स्वरूप से उसके प्रताप का अनुमान लगाया जा सकता है। आकृतिरेवानुमापयत्यमानुषतां—उसका स्वरूप ही बता देता है कि वह मनुष्य योनि से परे है।

अधरोत्तरव्यक्तिर्भविष्यति—स्पष्ट हो जायगा कि कौन बड़ा है कौन छोटा है। ओजस्वितया सा न परिहीयते शच्या'—तेज में वह शची से कम नहीं है। न प्रतिच्छदात्परिहीयते मधुरता—उसकी शोभा चित्र में कम नहीं है।

अमी विनोदनोपाया सन्दीपना एव दु:खस्य—ये विनोद तो दु:ख को और भी बढाते हैं।

दर्पाध्मात, मदोद्धत, उत्सिक्त—घमंड से मतवाला।

निद्रावश, निद्रा-विधेय—नींद के वशीभूत। मूढ़ परप्रत्ययनेय-बुद्धि:—मूढ पुरुष के मन पर दूसरों के विश्वासों का प्रभाव जम जाता है।

पुरुषोत्तमे इति भणितव्ये—पुरुषोत्तम ऐसा कहने के बजाय। अध्ययने आरब्धव्ये किमिति क्रीडसि—अध्ययन आरम्भ करने के बजाय तुम खेलते क्यों हो। हर्षस्थाने अलं विषादेन—प्रसन्न होने के बजाय दुखी न हो।

परोपकरणीकृत भूत—दूसरों का साधन बन कर। उपकरणीभावमायात्येवंविधो जन—इस प्रकार के लोग सहायक साधन बन जाते हैं।

चक्रवृद्धि—ब्याज दर ब्याज। सरला वृद्धि—साधारण ब्याज। पंचकेन शतेन पंचोत्तर शत—पाँच रुपया सैकड़ा दर से। दृष्ट युष्माभि कथारसस्याक्षेपसामर्थ्यम्—आपने देख लिया कि कथा के रस ने किस प्रकार मुझसे विषयान्तर करा दिया। स्वार्थपर, स्वार्थदृष्टि—स्वार्थ को देखने वाला। अतिरमणीय कथावस्तु—कथा का विषय अत्यन्त रमणीक है। पक्षपातिनौ आवामनयो—हम दोनों इन दोनों में पक्षपात रखते हैं।

न चेदन्यकार्यातिपात—यदि इस कार्य से अन्य कर्तव्यों में बाधा न पड़े। अव्यापारेषु व्यापारं स करोति—वह उन मामलों में हस्तक्षेप करता है जिनसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं।

मैनमन्तरा प्रतिबध्नीत—उसे मत टोको।

काले काले, अन्तरा अन्तरा—समय समय पर।

श्रमसहिष्णु, जितश्रम—थकावट सहने का अभ्यासी।

नायमेकान्तो नियम.—यह ऐसा नियम नहीं है जो बदलता न हो।

रामस्य दैवदुर्नियोग कोपि—यह राम का दुर्भाग्य था।

परिहासविजल्पित, नर्मभाषित—हँसी में कहा गया हुआ

अध्वसजातखेदात्—यात्रा की थकावट के कारण। उत्थाय पुनरवहत्—उसने फिर यात्रा प्रारम्भ की। सप्ताहगम्योऽध्वा—यह एक हफ्ते की यात्रा है।

स्वगृहनिर्विशेषमत्र वस—यहाँ अपने घर के समान रहो।

स्वपुत्रनिर्विशेष सम्वर्धित—साक्षात अपने पुत्र के समान पाला हुआ।

जानुभ्यां अवनौ गम् अथवा पत्—घुटने टेकना। जानुदघ्नद्वयसमात्र—घुटने तक गहरा।

भ्रकुटि बन्ध् या रच्, भ्रुवौ सकुच् या भिद्—भौं सिकोड़ना।

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य—बुद्धि ही बल है। तदाख्यया भुवि पप्रथे, तदाख्यां जगाम—उस नाम से विख्यात हुआ।

चिताशतैर्बाध्यमान-अभिभूत—सैकड़ों चिन्ताओं से पीड़ित।

प्रतस्थे स्थलमार्गेण, वर्त्मना—स्थल से रवाना हो गया।

अलसेक्षण—अलसाई हुई आँखों वाला।

एष ते जीवितावधि प्रसाद —यह वार्ता तुम्हारी जिन्दगी भर चलेगी। कतिपयदिवसस्थायिनी यौवनश्री'—युवावस्था की शोभा केवल थोड़े दिनों रहती है। कालांतरक्षमा माला—बहुत देर तक टिकने वाली माला।

अर्गलानिरुद्धं पक्षद्वारं—पक्षद्वार अर्गला से निरुद्ध था।

किमिति चिरायित त्वया, वेलातिक्रमः कृतः—तुमने देरी क्यों की।

मुहूर्त तत् आस्ता, तिष्ठतु तावत्—थोड़ी देर इसे रहने दो।

विषयसुखनिरतो जीवितमत्यवाहयत्—विषय वासनाओं से रहित जीवन बिताया। चित्रकूटयायिनि वर्त्मनि—चित्रकूट जाने वाले मार्ग में अयं पथा नदीमुपतिष्ठते—यह रास्ता नदी को जाता है।

अनुदिवस परिहीयसेऽगै'—तम प्रतिदिन दुबले होते जा रहे हो। मदलेखया दत्तहस्तावलंबा—मदलेखा की भुजाओं पर टेक लगा कर

**वामहस्तोपहितवदन**—अपना मुँह अपने बाएँ हाथ पर रख कर।

**त्र्यवरा साक्षिणो ज्ञेया**—कम से कम तीन गवाह होने चाहिएँ।

**अस्मास्ववहीनेषु**—हम लोगों के पिछड़ जाने पर। **शान्ते पानीयवर्षे**—वृष्टि शान्त हो जाने पर।

**सुखमुपदिश्यते परस्य**—दूसरे को उपदेश देना बड़ा सरल है।

**लब्धावकाश, प्राप्तावकाश, निर्व्यापार, लब्धक्षण**—फुरसत में।

**परित्रायस्वैना मा कस्यापि तपस्विनो हस्त पतिष्यति**—इसकी रक्षा, करो कहीं ऐसा न हो कि यह किसी तपस्वी के हाथ में पड़ जाय।

**भूमिसात्कृ**—जमीन के बराबर कर देना। **दरिद्रसमानतां नीत गमित**—गरीबों के समान कर दिया गया।

**मनुष्या स्खलनशीला**—मनुष्य से गलती होती ही है।

**यदत्रावसरप्राप्त तत्र प्रभवति भवती, बधे मोक्षे चाधुना मा ते प्रभवति**—वह आप को रोकने अथवा छोड़ देने में पूर्णत: स्वतन्त्र है।

**सर्वथा त्वमेवात्र दोषभाक्**—इसमें आप ही सब प्रकार से दोषी हैं। **सखीगामी अयं दोष**—यह दोष मेरी सखी का है।

**प्राणयात्रा-धारण-रक्षण**—जीवन का अवलम्ब। **साधुवृत्त**—सदाचारी। **दशान्तराणि**—भिन्न-भिन्न दशाएँ।

**अनया दृष्ट्या**—इस विचार से गौर करने पर

**एवमादि**—इसी प्रकार की। **यस्ते छन्द, यद्भवते रोचते, कामचार, स्वच्छन्द, स्वैरिन्, कामवृत्ति**—स्वेच्छानुसार व्यवहार करना। **कामरूप:**—इच्छानुसार रूप करने वाला। **यथाभिलषित क्रियतां**—जैसा तुम्हारा मन हो वैसा करो। **स न तस्या रुचये बभूव**—वह उसकी रुचिका नहीं था।

**अल्पविषय तस्य यश इयत्तया परिच्छेत्तु नाल**- उसके यश की कोई सीमा नहीं। **न गुणानामियत्तया**—गुणों की सीमितता के कारण नहीं।

यावदहं ध्रिये—जब तक मै जीवित हूँ। वन्यफलै शरीरवृत्ति निर्वर्तयति—जगली फलो पर जीवन निर्वाह करता है।

स्मार्ते काले—जहाँ तक स्मरण शक्ति जाती है

राजकुले राज्ञे-निविद्—मुकदमा दायर करना। नयनै -दृष्टिभि -पा, निध्यै—किसी की तरफ बडे गौर से ताकना। जनन्या मे योगक्षेमं वहस्व, जननीमवेक्षस्व-चितय—मेरी माता का देखभाल करना। विगतासुर्बभूव,प्राणैरहीयत—वह मर गया। मित्रैर्वियुज्यते—वह मित्रों से वियुक्त होता है। उन्मार्गगामी अभूत्—वह रास्ता भूल गया।

च्युताधिकार अधिकारभ्रष्ट—अधिकार से च्युत हो गया हुआ

किंकर्तव्यता-प्रतिपत्तिमूढ—क्या करूँ, क्या न करूँ ऐसा सोचकर चकराया हुआ।

उपनम्,उपस्था—भाग्य मे बदा होना। तव दुःखमुपनमेत्—तुम्हारे भाग्य मे दु ख ही बदा होगा।

कस्यात्यतं सुखमुपनत—निरन्तर सुख किसके भाग्य मे बदा है।

दोषमपि गुणत्वमुपपादयितु—बुरी परिस्थिति मे पडकर जहाँ तक हो सके लाभ उठाना। लक्ष्यभेद—लक्ष्य को बीधना।

अप्रभुरस्मि आत्मन न प्रभवाम्यात्मन., गात्राणामनीशोस्मि सवृत्त—मै अपने आप का प्रभु नही रह गया।

सकलशास्त्रपारगत, शास्त्रपारदृश्वा—जो सारा विद्याओं का पडित हो चुका है।

गतोसि सर्वास्वायुधविद्यासु परां प्रतिष्ठाम्—आपने सारी अस्त्र-विद्याओं पर पूर्ण पाडित्य प्राप्त कर लिया है

आवां प्रतिद्वद्विनौ भवाव—आओ हम दोनों होड़ बद ले। दैत्येभ्यो हरिरलं—हरि दैत्यो के लिए काफी हैं।

अतीत्य-अतिक्रम्य वृत्—उससे बहुत बढ़कर है।

तुल्यप्रतिद्वद्वि बभूव युद्ध—बराबर का युद्ध था।

यत्किचित्करमेतत्—कोई हर्ज नही। किं तस्या वृत्त, कस्तस्या वृत्तात —उसका क्या मामला है।

कि मम तेन कार्यं-कोर्थ.—मुझसे इससे क्या प्रयोजन।

सन्निधानस्य अकिंचित्करत्वात्—सन्निधान से कोई मतलब नही।

परिणतप्रज्ञ,कठोरधी—'पक्की बुद्धि वाला। साकूत मा निर्वर्ण्य—मेरी तरफ इशारा पूर्वक देखते हुए।

प्रत्युत् या व्रज्-गम्—मिलने के लिए जाना। प्रत्युत्था, अभ्युत्था—मिलने के लिए उठना

आप सप्लवते-सभिद्यते—जल मिलते हैं।

तस्य हृदय स्नेहार्द्रीभूत, स्नेहेनाभ्यष्यद्त—उसका हृदय स्नेह से पिघल गया।

मेधाविन्,धारणावत्—अच्छी स्मरण शक्तिवाला। स्मृतिविषयता-स्मृतिपथ-स्मर्तव्यशेष-कथावशेष गम् अथवा नी—केवल स्मरण में रह जाना।

एको दोषो गुणसन्निपाते निमज्जति—अच्छे गुणो के समूह मे एक दोष विलीन हो जाता है।

चित्त-मनो-व्यापार-वृत्ति—मन का व्यापार। मनसि उत्-इ, उद्भू, बुद्धा सजन्—मन मे आना। आस्ता तिष्ठतु तावत् प्रथम प्रश्न.—पहिली बात का कोई परवाह नही।

उत्कण्ठासाधारण परितोषमनुभवामि—मुझे पश्चात्ताप-मिश्रित प्रसन्नता होती है।

मार्गात् भ्रष्ट—रास्ता भूल गया।

गोत्रस्खलित—नाम लेने म गलती। तस्माद्गर्दभान्-व्याघ्रधिया-बुद्ध्या पशव पलायते—पशु गदहे को बाघ समझकर भागे जाते हैं।

अलमन्यथा गृहीत्वा—मेरे विषय मे गलत धारणा न करो।

आपातरमणीय—इस सम[illegible] अच्छा मालूम पड़ने वाला।

खल सर्षपमात्राणि परच्छिद्राणि पश्यति । आत्मनो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति—अपना ढेढर न देखना दूसरोंकी फूली देखना । पर का अवगुन देखियत अपनो देखत नाहि ।

तिले तालं पश्यति, अणुं पर्वतीकरोति—वह राई का पर्वत बना देता है।

अस्मात्स्थानात्पदात्पदमपि न गतव्य—एक पग भी आगे न बढो ।

कर्मणो गहना गति.—भाग्य की अद्भुत गति है ।

अपि ज्ञायन्ते ते नामधेयत —क्या उनके नाम जानते हो ।

अस्य मातरं नामत पृच्छेयम्—मै उसकी माता का नाम पूछूँगा ।

नामग्राहं मामाह्वयति—वह मेरा नाम लेकर मुझे पुकारता है ।

वाच्यस्त्वया मद्वचनात्स राजा—मेरी तरफ से राजा से कह देना ।

मामुद्दिश्य तस्मै सभाजनाक्षराणि पातय—मेरी तरफ से नमस्कार कह देना ।

मानुषतासुलभो लघिमा—ऐसी लघुता जो मनुष्य मात्र मे स्वाभाविक होती है ।

दुर्जातबन्धु.—विपत्ति में मित्र । स सुहृद् व्यसने य स्यात्—जो विपत्ति म मित्रता बनाए रक्खे वही मित्र है ।

मालती मूर्धानं चालयति—मालती अपना सिर हिलाती है ।

ननु शब्दपति क्षितेरहम्—मै पृथ्वी का नाम मात्र का स्वामी हूँ ।

बहुलीभूतमेतत् वृत्त —यह मामला सब को मालूम हो गया है ।

यत्नादुपचर्यतामसौ—खूब ध्यानपूर्वक उसकी देख भाल होने दो ।

स्नेहस्यैकायनीभूता—प्रेम का एक मात्र पात्र ।

किमुद्दिश्य, किंनिमित्त, किमपेक्ष्य फल—किस उद्देश्य से ।

प्रत्यर्थिभूता सा समाधे —समाधि करने मे वह एक बाधा थी ।

श्लाघ्ये गृहिणीपदे स्थिता गृहिणी के सम्माननीय पद पर आरूढ ।

इति तस्य बुद्धौ न संजात, इति तस्य हृदये नापतितम्—यह बात उसके मन मे नही सूझी ।

स्मृत्युपस्थितौ इमौ द्वौ श्लोकौ—ये दोनो श्लोक हमे स्मरण हो आये।

कस्मिन्नपि पूजार्हे अपराद्धा शकुतला—शकुन्तला ने किसी पूज्य पुरुष का अपराध कर दिया है ।

तव न कदापि मया विप्रिय कृत, प्रतिकूलमाचरित—मैने कभी एक बार भी तुम्हारा अपराध नही किया है ।

शीघ्रकोपिन्, सुलभकोप—जल्दी क्रुद्ध हो जाने वाला ।

च्युत भ्रष्ट-अधिकार—पद से गिरा हुआ ।

प्रकाश निर्गत—खुल गया, प्रकाशित हो गया ।

तवोपालभे पतितास्मि, उपालभपात्रं जाता—मै तुम्हारे व्यंग्यो का पात्र हो गई ।

गृहीतावसर, लब्धावकाश—अवसर पाकर ।

लोकाचार विरुद्ध, लोकविद्विष्ट—ससार की रीति के विरुद्ध ।

अत्र स्वरुच्या वर्तता भवान्, यथाभिलाषं क्रियताम्—इस मामले मे जैसा आपका रुचे वैसा कीजिए ।

यथाज्ञापयति देव—श्रीमान् की आज्ञा का पालन किया जायगा ।

आनुलोम्य—स्वाभाविक क्रम ।

प्रातिलोम्य, व्युत्क्रम, विपर्यय, व्यत्यास - उलटा क्रम ।

अपह्रिये परिश्रमजनितया निद्रया—थकावट से पैदा हुई नींद से अभिभूत हूँ ।

आनदपरिवाहिणा चक्षुषा—हर्ष भरी आँख से ।

प्रथम कुतूहल सपरिग्राहमासीत्—पहिले तो मेरी उत्सुकता बढ चली ।

विवर्णभाव प्रपेदे—पीली पड़ गई ।

शरीरभूता मे शकुतला—शकुन्तला मेरे शरीर का अग हो गई है ।

भूमिकाकल्पनम्—पाठनिर्वाचन ।

तस्य नरस्य विशेष ब्रूहि—उस व्यक्ति का पूरा पूरा विवरण दो ।

तेनाष्टौ परिगमिता समा कथचित्—बडी कठिनता से उसने आठ वर्ष बिताए ।

इद धिय पथि न वर्तते—यह बात समझ के बाहर है ।

आस्ता, तिष्ठतु तदधुना, यातु, किमनेन—अब इसे हटाओ ।

किमर्थमगृहीतमुद्र कटकान्निष्कामसि—बिना टिकट लिये क्यों शिविर से बाहर जाते हो ।

अमुद्रालाछित —पास ( टिकट ) के बिना ।

तया हृदयवल्लभोऽभिलिख्य कामदेवव्यपदेशेन सखीपुरतोऽपहृत.—उसने अपने प्रियतम का चित्र यह कह कर अपनी सखी को दे दिया कि यह कामदेव का चित्र है ।

मध्यमाबावृत्तातोऽतरित आर्येण—श्रीमान् जो मध्यम माता का हाल छिपा गए ।

जालातरप्रेषितदृष्टिरन्या—जगले में से झाँकती हुई दूसरी ।

आज्ञा गुरूणा ह्यविचारणीया—बड़ो की आज्ञा पर विचार नहीं किया जाता, उसका पालन करना अनिवार्य है ।

नाटक न प्रयोगतो दृष्टम, प्रयोगेणाधिकृत न दृष्ट—नाटक को रग मच पर अभिनय किया हुआ नही देखा है ।

स्थिरप्रतिबधो भव—विरोध करने में दृढ रहो ।

आसन्न-शरीर परिचारक—अग रक्षक ।

स्वानुभव —निजी अनुभव ।

यौवनमगेषु सन्नद्ध—अगों मे यौवनावस्था व्याप्त हो गई है ।

ज्ञायता क क कार्यार्थीति—पता लगाओ कौन कौन प्रार्थी हैं ।

विरहोत्कठ हृदय—विरह (अनुपस्थिति) मे उत्कण्ठित रहने वाला हृदय ।

स गृह गंतुमुदताम्यत्—वह घर जाने के लिए उत्कंठित था।

अन्त पुरविरहपर्युत्सुको राजर्षि—राजर्षि अपनी रानियो के विरह
के कारण क्षीण होते जा रहे है।

पितृस्थाने, पितृभूमौ—पिता के स्थान पर।

प्रथमं,प्रथमत, प्रथम तावत्—पहिले तो।

अपरच,पुन, पुनश्च—दूसरे।

अर्थिन्,वादी, अभियोक्तृ—मुद्दई।

प्रत्यर्थी, अभियुक्त, प्रतिवादी—मुद्दालेह।

द्वित्राण्यहान्यर्हसि सोढुमर्हन्—ऐ पूज्य, दो तीन दिन प्रतीक्षा
कीजिए।

यदभिरोचते वयस्याय—मेरे मित्र को जो अच्छा लगे।

हृदयंगम परिहास—आनन्ददायी मजाक।

सुखश्रव, श्रुतिसुख, श्रवणसुभग, मजुलस्वन—कानों को सुखद।

विहितप्रतिज्ञ -गृहीतक्षण' अह—मैने प्रतिज्ञा कर ली है।

अनयोर्वृत्तेय प्रतिज्ञा—उन दोनो ने इस प्रकार प्रतिज्ञा कर ली।

तव विरूपकरणे तेन सुकृतमतरे धृत—उसने अपने पुण्य कर्मों की
शपथ लेकर कहा है कि तुम्हे हानि न पहुँचाऊँगा।

मरणोन्मुख,आसन्नमृत्यु,मुमूर्षु—मरने के करीब।

प्रसवोन्मुखी, आसन्नप्रसवा—बच्चा देने वाली।

दासी महिषीपद माहिता, देवीभाव गमिता—दासी को रानी की
पदवी दे दी गई।

तदुभयथापि घटते—यह दोनों प्रकार से सम्भव है।

चिरप्रवृत्त—बहुत दिनों स चालू।

सदाचार, सदवृत्त, साधुवृत्त—सदाचारी।

का वृत्तिमुपजीवत्यार्य:—आपका क्या व्यवसाय है।

प्रयोग:—क्रिया। शास्त्र, आगम—सिद्धान्त, मत।

शासनात् करणं श्रेयः, वाचः कर्मातिरिच्यते—कहने से करना अच्छा होता है।

स कथयत्यागमिनमप्यर्थं—वह तो भविष्य की घटनाओं को भी बता देता है।

वरं मृत्युः न पुनरपमानः—मृत्यु अच्छी है पर अपमान नहीं।

दौहृदलक्षणं दधौ—उसकी गर्भावस्था के लक्षण दिखाई पड़े।

कठोरगर्भा—बढ़े हुए गर्भ वाली।

त्वयोपस्थातव्यं, सन्निहितेन भाव्यं—आपको उपस्थित रहना चाहिये

समतीतं च भवच्च भावि च—भूत वर्तमान तथा भविष्य।

अग्निं साक्ष्ये आधाय—अग्नि को साक्षी बनाकर।

तं वक्षसा परिरभ्य क्रोडीकृत्य—उसको छाती से लगाकर।

भावितविषवेगः—विष से प्रभावित होने का बहाना करके।

अश्रुतिमभिनयति—न सुनने का बहाना करता है।

आर्यध्वजिन्-लिंगिन्—न्याय-शील होने का बहाना करता हुआ।

प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरं—कीचड़ को धोने की अपेक्षा उसे न छूना ही अच्छा है।

द्विषामामिषतां ययौ—शत्रुओं का शिकार बन गया।

प्रथमं वयः, नवम्-अक्षत-यौवनं—नई जवानी।

ततस्ततः, ततः परं कथय—आगे कहो।

प्रस्तूयतां विवादवस्तु—झगड़े वाला मामला बताओ।

प्रवर्त्यतां भगवतो ब्राह्मणानुद्दिश्य पाकः—पूज्य ब्राह्मणों के स्वागतार्थ भोजन की तैयारी करो।

किंनिमित्तं ते संतापः—तुम्हारे दुःख का क्या कारण है?

क्षुद्बोधित—क्षुधा से प्रेरित।

परमार्थतः प्रेम—सच्चा प्रेम।

स सदा प्रत्युत्पन्नमतिः, प्रबोधननिरपेक्षः—उसे प्रेरणा करने (सिखाने) की आवश्यकता नहीं।

एष सनिकार नगरान्निर्वास्यते—यह पुरुष अपमान-पूर्वक नगर से निकाला जाता है।

ब्रुवते हि फलेन साधवो न तु कण्ठेन निजोपयोगितां—सज्जन लोग अपनी उपयोगिता कार्यों मे सिद्ध कर देते, मुँह से कहते नहीं।

अनागतविधाता—भविष्य के लिये व्यवस्था करने वाला।

आपदर्थे धन रक्षेत्—आपत्ति के दिनों के लिए धन को बचा रखना चाहिये।

स्तूयमाना नात्सिच्यन्ते अथवा अनुद्धता—प्रशसा किये जाने पर फूल कर कुप्पा नहो हो जाते।

दर्पाध्मात, उत्सिक्त, अवलिप्त, उद्धत—अभिमान से फूले हुए।

चौरदण्डेन दण्डयेत्—अपराधी को चोर की सी सजा देनी चाहिए

अनियन्त्रणानुयोगस्तपस्विजन.—तपस्वियो से बिना किसी सकोच के प्रश्न करना चाहिये।

मदोप्यविरतोद्योग. सदा विजयभाग्भवेत्—धीमे धीमे परन्तु निरतर काय करने वाला विजयी होता है।

तद्वचो मम हृदये शल्यं जात—वे बाते मेरे हृदय में काँटे के समान लगतो हैं।

स प्रहार. करालता गत.—घाव भयानक हो गया।

वृत्तातेन श्रवणविषयप्रापिणा—जब यह वृत्तात उसके कानों मे पहुँचा।

इद प्रायेण तत्र कर्णपथमायात. श्रुतिविषयमापतितमेव—सम्भवत यह आप के कानों में पड़ा होगा।

प्रत्युत्पन्नमति—हाज़िर जवाब।

धनी उपगत दद्यात् ( धन ) स्वहस्तपरिचिह्नित दद्यात्—महाजन को चाहिए कि अपने हाथ से लिखी हुई रसीद दे।

तदहं विदधे तव स्तव दमयन्त्या सविधे—इसलिए मैं दमयन्ती के पास तुम्हारी प्रशंसा करूँगा

नाद्यापि प्रसादं गृह्णामि, प्रसन्ना न भवसि—आप अभी तक प्रसन्न नहीं हो रही हैं।

वाक्यानि प्रतिसमादधाति–कथनों (वक्तव्यों) का समाधान करता है।

कृतकालोपनेय आधि—निश्चित समय पर पूरी की जाने वाली प्रतिज्ञा।

आत्मवशं नी, वशं कृ—अपने अधीन कर लेना।

अस्थिमात्रावशेष, कंकालशेष—जिसकी केवल हड्डियाँ ही हड्डियाँ रह गई हों।

अत्र पुरावृत्तकथा अनुसंधेया—यहाँ पौराणिक कथा का हवाला दिया गया है।

भर्तुः प्रतीपं मास्म गमः—पति के विरुद्ध न होना।

नार्हसि मे प्रणयं विहन्तुम्—कृपया मेरी प्रार्थना को न ठुकराना।

तस्य मनो मार्दवमभजत, कठिनतामजहात्—उसका हृदय कोमल पड़ गया

स चानुनीतो मृदुतामगच्छत्—अनुनय विनय करने पर उसका हृदय कोमल पड़ गया।

किमपि सानुक्रोशः कृतः—वह कुछ कुछ कोमल पड़ा।

दुःखविश्रामं ददाति—दुःख में आराम देता है।

हृदि एनां भारतीं उपधातुमर्हसि—कृपया इस वाणी को खूब अच्छी तरह याद रखना।

पातालं मामद्य सस्मरयतीव भुजगलोकः—शूरों का यह समूह मानो मुझे पाताल की याद दिलाता है।

अये सम्यगनुबोधितोऽस्मि—ओहो, मुझे अच्छी याद आई।

इति जनप्रवाद किंवदंती श्रूयते, इति प्रवाद —ऐसी अफवाह है।

विश्वासप्रतिपन्न—विश्वास मे आया हुआ।

दोषानपि गुणपक्षमध्यारोपयति, गुणपक्षे स्थापयति—दोषो को भी गुण करके बताते हैं।

सवदत्यक्षराणि—अक्षर एक दूसरे से मिलते जुलते हैं।

सागरे नद्यो विलीयंते—नदियाँ सागर मे विलीन हो जाती हैं।

वामहस्तोपहितवदना—बाएँ हाथ पर मुँह रखकर।

खुरत्रये भर कृत्वा—तीन खुरों पर खड़ा होकर।

भाग्यायत्तामत. परम्—इसके आगे तो भाग्य पर निर्भर है।

सकलारिपुजयाशा यत्र बद्धा सुतैस्ते—जिस पर तुम्हारे पुत्रों ने शत्रुओ को जीतने की सारी आशा लगा रक्खी है।

हर स्मर स्वेन वपुषा नियोजयिष्यति—हर कामदेव को उसका शरीर पुनः दे देंगे।

एव सर्वतो निरुद्धचेष्टाप्रसरस्य मे—इस प्रकार जब सभी तरफ़ मेरे कार्य बन्द हो जायँगे।

अपवाद उत्सर्ग व्यावर्तयितुमीश्वर —अपवाद किसी भी नियम के क्षेत्र को सीमित कर सकता है।

अत' पर पुन कथयिष्यामि—इसके आगे फिर कहूँगा।

तस्य चार्थस्य सतत मनसि विपरिवर्तमानत्वात्—यह मामला निरन्तर उसके मस्तिष्क म नाच रहा था।

गमिष्याम्युपहास्यताम—मै हँसी का पात्र बनूँगा।

अवितथमाह प्रियवदा—प्रियवदा ठीक कहती है।

न स्त्री स्वातत्र्यमर्हति—स्त्री को स्वतत्रता नही मिलनी चाहिए।

तत् देवोहस्ते निक्षिप्ता मया युक्तमेवानुष्ठितं—तो मै ने उसे महारानी के हाथों में देकर उचित ही किया।

ते नाभ्युत्तिष्ठन्ति गुरून्—वे अपने गुरुजनों को आगे से लेने के लिए नहीं उठते।

उत्तिष्ठमान शत्रु—उभड़ता हुआ शत्रु।

स्थाने खलु सज्यते दृष्टि—ठीक ही है जो नेत्रों ने टकटकी बाँध रक्खा है।

प्रथम गुणितमिव तवोत्तर—तुम्हारा उत्तर मानो रटा हुआ सा है।

प्रजा प्रजा' स्वा इव तन्त्रयित्वा—प्रजाओं के ऊपर अपनी सन्तान सा शासन करके।

कियदवशिष्ट रजन्या—कितनी रात बाकी रह गई है?

सफलीकृत भर्तृपिंड—नमक हलाल करके।

कथैव नास्ति—क्या कहना है।

जनप्रवाद—लोक-निन्दा।

तथा च लौकोकनामा भाणक—लोकोक्ति इस प्रकार है।

मुद्रां परिपालयन् उद्घाट्य दर्शय—मुहर को बचाकर इसे खोलिए और मुझे देखाइये।

प्रत्यक्षीकृ—अपना आँखों देखना।

क्रय्य, क्रयार्थ प्रसारित—विक्री के लिये, बिकाऊ।

कृतज्ञता, कृतवेदित्व—एहसान मानना।

जरावलुप्तमानावमानचित'—वृद्धावस्था के कारण मानापमान का विचार बिल्कुल त्याग कर।

यौगिकार्थ—शब्दार्थ। रूढार्थ—प्रचलितार्थ। अन्वर्थ, यथार्थ, परमार्थ—सच्चा अर्थ।

अन्यथा एषा वीप्सा न चरितार्था भवति—वर्ना यह पुनरुक्ति कोई अर्थ नहीं रखती।

एकैक, व्यस्त—एक एक। (सर्वाविनयानामेकैकमप्येषामायतनं, तदस्ति किं व्यस्तमपि त्रिलोचने)

कोपोद्दीपनाय अलं अथवा पर्याप्तमिद—उसके क्रोध को भड़काने के लिये यह काफी होगा।

योग व्रज्, स्थाने भूमौ भू—किसी चीज के तौर पर काम आना।

मरुत परिवेष्टार आसन्—देवता लोग भोजन परसने वाले थे।

इद पादोदक भविष्यति—यह पाँव धोने के लिए जल का काम देगा।

सर्वांगिका आभरणसयोगा—शरीर के अग प्र यग में अच्छे लगने वाले आभूषण। रत्नानुविद्ध, मणिप्रत्युत, रत्नखचित—जवाहरात से जड़ा हुआ। पद कृ—स्नान कर लेना।

मन -धिय-चित्त बंध्—अथवा आ+धा अथवा सन्निविश—(प्रेरणार्थक) या युज्—(प्रेरणार्थक)- हृदय को किसी चीज पर लगाना।

अनेन समयेन परिणतो दिवस—इस समय तक सूर्य डूब गया था।

आधीयता धर्मे धी—धर्म म बुद्धि लगाओ।

विषयेषु मनो मा संनिवेशय--नश्वर पदार्थों मे मन को मत लगाओ।

विनाशधर्मसु अचिरप्रवृत्तो ग्रीष्मसमय. अभी ही शुरू होने वाला ग्रीष्म।

गुणा विनयेन शोभते—गुणो की शोभा नम्रता से होती है।

व्यवस्थापितवाक्, वाच व्यवस्थाप्य—'क्या कहना है" इस बात का निश्चय करके।

इति प्रतिपादितमाकुलोभवेत्—यह स्थिति डगमग हो जायगी।

स्निग्धजनसंविभक्त दु ख—प्रिय मित्रो द्वारा बँटाया गया हुआ शोक।

केन वान्येन सह साधारणीकरोमि दु.ख—किस दूसरे पुरुष के साथ अपना शोक बँटाऊँ।

चर्मिन्, फलकपाणि—ढाल से सुसज्जित। खड्गचर्मधर—ढाल और तलवार लिए हुए।

नयनोपातविलोकित, साचिवीक्षण, अपांगदृष्टि, कटाक्षः—
तिरछी चितवन।

विदूषक संज्ञां लभयति—विदूषक को संकेत करता है।

अर्थवत, सार्थ, चरितार्थ, अर्थयुक्त, अन्वर्थ—अर्थ से भरा हुआ।

सीदति मे हृदयं—मेरा हृदय बैठा जाता है।

प्रबलपिपासावसन्नानि अंगकानि—प्रबल प्यास के कारण अंग अंग
शिथिल पड़ रहे है।

तस्य धैर्यमहीयत, स लुप्तस्खलित धैर्य—उसका धैर्य टूट गया।

मया रथस्य मंदीकृतो वेग—मैने रथ के वेग को धीमा कर
दिया है।

शिथिलितप्रयत्ना, श्लथोद्यमा—जिन्होने अपने प्रयत्नो को शिथिल
कर दिया है।

मंथरविवेक चेत—वह चित्त जो विवेक करने मे मन्द हो।

प्रत्यभिज्ञानमंथर—पहिचानने मे मन्द।

पराभवो मम हृदि प्रत्युप्त शल्यमिव, न्यक्कारो हृदि वज्रकील
इव मे तीव्रं परिस्पंदते—हार के कारण मे व्यथित हो रहा हूँ।

बधिरान्मंदकर्ण श्रेयान्—जहाँ कुछ न मिल रहा हो वहाँ थोड़ा
मिल जाना अच्छा है।

वक्तुं सुकरमिदमध्यवसितुं तु दुष्कर—करने से कहना सरल
होता है।

तंतुनाभ स्वत एव तंतून् सृजति—मकड़ी स्वयं अपने जाले को
तानती है।

सोल्लास, प्रमुदितचित—प्रसन्नचित्त।

मिषतां न आमिष आच्छिनत्ति—हम लोगो के देखते देखते
शिकार छीन लेता है।

चारचक्षुष महीपाला—राजा लोग गुप्तचरों के द्वारा देखते हैं।

उपक्रोशमलीमसै: प्राणै: किम्—अपकीर्ति से कलंकित प्राणो को रखकर क्या लाभ।

संशयस्थं जीवितं तस्य, स संशयितजीवित आसीत्, जीवितं संशयदोलाधिरूढ—उसके प्राण संकट मे थे।

वचनीयमिदं व्यवस्थितं—यह मेरे ऊपर एक चिरस्थायी दाग लग जायगा।

कुंठित-प्रतिहत-रुद्ध-गति—ठप्प

इदं सोपपत्तिकं न भाति—यह युक्ति संगत अथवा तर्क-संगत नहीं मालूम पडता।

लब्धप्रतिष्ठ—जिसने प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है।

पुलकित, रोमांचित—रोंगटे खडे हो गए।

यात्राभिमुख प्रवृत्त—यात्रा के लिए प्रस्थान करना।

अभिन्नगतय: शब्दं सहन्ते मृगा:—वे मृग जिनकी गति भिन्न नहीं होती शब्द सुन लेते हैं।

सचकित—चौंककर।

अविदितगतयामा रात्रि:—वह रात जिसके पहर चुपचाप बीत गए।

शनैर्निद्रा निमीलितलोचनं मामकार्षीत्—निद्रा ने धीरे-धीरे मेरी आँखें बन्द कर दी।

ज्वलति चलितेधनोऽग्नि—जब इंधन में खोद खाद कर दी जाती है तब आग जल पड़ती है।

नैतावता पीडा निष्क्रामति—अनर्थ की इति यहीं नहीं हो जाती।

मुखे चपेटादा—मुँह पर चाँटा मारना

चित्ते भयं जनयति—मन में भय पैदा करता है।

बद्ध प्ररूढ बद्धमूल—जिसकी जड गहरे तक गई हो।

तस्य हृदयं पस्पर्श विस्मय:—वह आश्चर्य से चकित हो गया।

तद्धि प्रसिद्ध-तरेण प्रयोगेण शीघ्रं बुद्धिमारोहति, प्रसिद्धबलेन प्रथमतरं प्रतीयते—चूँकि यह अत्यन्त सामान्य अर्थ में प्रयुक्त हुआ

है इसलिए यह सरलता से चित्त मे जॅच जाता है।

जर्जरितकर्णविवर-जर्जरीकृतकर्णपुट नाद —कान के पर्दे को फाड देने वाला आवाज।

सा देवीशब्देनोपचर्यते—वह 'रानी' कह कर पुकारी जाती है।

पितुरनन्तरमुत्तरकोशलान्समधिगम्य—उत्तर कोशल प्रदेश को पिता के बाद प्राप्त करके।

यदि नावसीदति गुरु प्रयोजन —यदि किसी बडे कार्य की हानि न हो।

खल करोति दुर्वृत्त तद्धि फलति साधुषु—दुष्ट पुरुष अपराध करता है और सज्जन उसका फल भोगता है।

आतपलघनात्—लू लगने के कारण।

पुनरुक्तता नी —व्यर्थ बनाना।

अभिव्यक्तायां चन्द्रिकायां कि दीपिकापौनरुक्त्येन—जब स्पष्ट चॉदनी विद्यमान है तो मशाल व्यर्थ है।

अश्वमेधसहस्रेभ्य सत्यमेवातिरिच्यते-विशिष्यते—सत्य हजारो अश्वमेधयज्ञो से कही बढकर है।

कथ जीवित धारयिष्यामि—मै कैसे जिऊँगा। न ह्यय मन्त्र: स्वातन्त्र्येण कचिदपि वाद समर्थयितुमुत्सहते—यह मन्त्र स्वतः किसी भी सिद्धान्त का समर्थन नही कर सकता।

नियम्य शोकावेग—शोक की तेजी को रोक कर।

विकारस्य गमनीयास्मि सवृत्ता—मै तो विकार से प्रभावित होने वाली बना दी गई।

विकारि यौवन—जवानी पर बड़ी जल्दी प्रभाव पड़ जाता है।

धृतद्वैधीभावकातरं मे मन —मेरा मन दुविधा में पडा है, इसी से चिन्तित है।

विहगा. समदु.खा इव चुक्रुशुः—पक्षी मानो समवेदना के कारण चीख पड़े।

भिन्नःरुचिर्हिलकः—लोगों की पसन्द भिन्न भिन्न होती है।

निगतु सहसा न वेतसगृहाच्छक्तोस्मि—बेत के घर में से निकलने म असमर्थ हूँ। विललाप विकीर्णमूर्धजा—बालों को बिखेर-बिखेर कर रोई।

गमयति रजनी विपाददीर्घतरां—शोक के कारण बहुत बडी लगने वाली रात्रि को बिताता है।

शास्त्रे प्रयोगे च मां विमृश—शास्त्र मे तथा प्रयोग में मेरी परीक्षा ले लो।

अनुगृहीतोस्मि, महानय प्रसाद —मै अनुगृहोत हो गया। मेरे ऊपर यह बड़ी कृपा हुई।

द्वावप्यागमिनौ प्रयोगनिपुणौ च दोनों शास्त्र सम्पन्न तथा प्रयोग मे निपुण हैं।

नगरगमनाय मति न करोति—वह राजधानी मे जाने का मन नही क ता।

सखीमुखेनोचे—सखी के द्वारा बोला।

अपत्यमन्योन्यसश्लेषण पित्रो—सन्तान माँ बाप का पारस्परिक बन्धन है।

अतिपिनद्धेन वल्कलेन नियत्रितास्मि—मै इस कसे हुए वल्कल वस्त्र से जकडी हई हूँ।

समयः स्नानभोजनं सेवितु—स्नान और भोजन करने का समय है।

कालानुवर्तिन्—समय देख कर काम करने वाला।

नैव वारातर विधास्यामि—अब दूसरी बार ऐसा न करूँगा।

अनवसरग्रस्तोर्थिभाव—अब भीख माँगने की प्रथा नही रह गई।

अकालक्षेप अविलंबिन, अकाल-हीन—बिना समय खोए हुए।

अमुष्य धिया रसनाग्रनर्तकी, समस्ता एव विद्या जिह्वाग्रेऽभवन्
—विद्या तो उसकी जिह्वा के अग्रभाग पर नाचती थी।
धारासारैर्महती वृष्टिर्बभूव—मूसलाधार पानी बरसा।
शतसख्या मामिय स्पृशति—१०० की सख्या मुझे स्पर्श करती है।
हृदय सस्पृष्टमुत्कठया—हृदय उत्कठा से प्रभावित हो गया।
मित्राणा तत्वनिकषग्रावा विपत्—विपत्ति मित्रता की कसौटी है।
ग्राहकैर्गृह्यते चौर. पदेन—चोर अपने पाँव के निशानो से पकड़ा
जाता है। ब्रह्मशब्दस्य व्युत्पाद्यमानस्य—जब ब्रह्म शब्द की
व्युत्पत्ति का जाती है।
क्षुण्णाद्वर्त्मन —पीटी हुई लकीर से।
परतपो नाम यथार्थनामा—वस्तुत यथार्थ नाम वाला परन्तप।
ध्रुवसिद्धेरपि यथार्थनाम्न —सार्थक नाम वाले ध्रुव सिद्धि का।
उपकार प्रत्युपकारेण निर्यातयितव्य —उपकार का बदला उप-
कार मे दिया जाना चाहिए।
असमर्थित, अतर्कित, अतर्कितोपनत—अप्रत्याशित।
समवायो हि दुस्तर, सहति कार्यसाधिका—मेल मे शक्ति है।
ज्योति शब्दस्तेजसि प्रयुज्यते—"ज्योति." शब्द 'प्रकाश" के अर्थ
मे आता है।
ज्योति शब्दो ज्वलन एव रूढ - "ज्योति" शब्द रूढि से "अग्नि"
के लिए प्रयुक्त होता है।
अनुपभुक्तभूषण—आभूषण पहिनने मे अनभ्यस्त।
रणधुरां वह्, समरशिरसि वृत्—सेना का अग्रणी होना।
वाचिक, वाचनिक, शब्दाख्येय—मौखिक सन्देश।
वाग्व्यवहार —मौखिक वाद विवाद।
लोक व्यवहार-दृष्ट्या—सासारिक व्यवहार की दृष्टि से।
निर्व्यूढस्तेऽपत्यस्नेह —तेरा अपत्य-स्नेह पूर्ण रूप से प्रकट हो गया।
काल कञ्चित्प्रतीक्ष्यतां—थोड़ा देर तक प्रतीक्षा कीजिए।

सहस्व मासद्वय—दो महीने तक प्रतीक्षा कीजिए ।

स्फुलिंगावस्थया वह्निरेधापेक्ष इव स्थित —चिनगारी की दशा में स्थित आग ईंधन का प्रतीक्षा कर रही है ।

त्वत्तो न किमपि परिहास्यते—आप को किसी बात को कमी न रहेगी ।

न कामचारो मयि शङ्कनीय —यह शंका न कीजिएगा कि मैंने स्वच्छन्दता से आचरण किया है ।

सूर्यातप सेव्—घाम लेना । अग्न्यातप सेव्—आग तापना ।

वृद्धिक्षयौ—बढना घटना ।

अंतरा—रास्ते में । परिपन्थीभू—विघ्न डालना ।

किं स्वातन्त्र्यमवलम्बसे—क्या तुम मनमानी कर रहे हो ।

सर्वत्र नो वार्तमवेहि—हमारा सब प्रकार से कुशल जानो ।

युज्यते, बाढं, तथेति उक्त्वा—"बहुत अच्छा" कह कर ।

छंदोनुवृत्ति —दूसरे को इच्छा के अनुकूल आचरण करना ।

ईश्वरेच्छा बलीयसी, प्रभवति भगवान् विधि.—ईश्वर की इच्छा बली होती है ।

बलात्, हठात्, अकामत —अनिच्छया जबर्दस्ती ।

कुंठितमति आसीत्, निरुत्तरीकृत.—वह निरुत्तर हो गया ।

कष्टमभ्यापन्न —विपदवस्था में पडा हुआ ।

नैतच्चित्र, किमत्र चित्रम्—इसमें कोई आश्चर्य नहीं है ।

सत्य-पालित-सगर सन्ध —प्रतिज्ञा पालन करने वाला ।

लघुसंदेशपदा सरस्वती—संक्षिप्त संदेश ।

सम्यग्ग्रथित-साधुविन्यस्त पद—जिसमें खूब अच्छी तरह से सोच साच कर शब्द रक्खे गए हों ।

करुणार्थग्रथित—करुणा जनक शब्दों से भरी हुई ।

त्वं मम जीवितसर्वस्वीभूत.—तुम मेरे जीवन के सर्वस्व हो ।

लौकिकज्ञ—संसार की रीति को जानने वाला।

न तर्हि प्रागवस्थाया परिहीयसे—तो आप पहिले से बुरा दशा में नही हैं।

अनुरूपभर्तृगामिनी—अपने अनुरूप पति वाली।

वैरसाधन-निर्यातन —बदला लेना।

बाढम् , अथकिम्—हाँ। तथेति उक्त्वा—हाँ कह कर।

वैतसी वृत्तिम् आश्रि—बलवान् शत्रु के सामने झुक जाना।

---

## परिशिष्ट—२

# शुद्ध करने के लिए वाक्य

१—अरण्येऽधिवस्तु यतय इच्छति।

२—सन्यासी बहवो दिनान्येकस्थाने नावसेत्।

३—यद्रामादृतरेणायोध्या शून्या दृश्यते तत्कैकेयीवचनस्य परिणामः।

४—अस्य गिरेरभितो बहवोऽश्मान सति।

५—अस्य वर्त्मन परित पलाशवृत्ता दृश्यते।

६—हा धिड् मेऽन्यायाचरण कुर्वते।

७—स एव बिचारयन् सकला रात्रिर्व्यतीयाय।

८—दुर्योधन पाडवान्नास्निह्यत्।

९—शत्रवे बाणानह क्षिपामि स तु महय दृशदो मुचति।

१०—मम वचन स न विश्वसिति।

११—सर्वेभ्य पुत्रेभ्यो गोपाल पितु श्रेष्ठ।

१२—सर्वाभ्यो नदीभ्यो भागीरथी द्राघिष्ठा।

१३—स भोजनादनु बहिरगच्छत्।

१४ ससारसुखानि केवल दु खस्थानमस्तीति साधोरतरेण को जानाति।

१५—इय नगरी त्रय क्रोशा आयता।

१६—धनिनं द्रव्य याचित भिक्षुकै।

१७—अम्भोनिधि सुधा ममथे देवै।

१८—तेषां मे च सख्यमस्ति।

१९—अय वित्तसचयस्त एव।
२०—ता वात्रानय मां वा तत्र नय।
२१—हे जगन्नाथ मे सर्वाणि पापानि क्षमस्व।
२२—ता स्त्रिय आत्मनो निदति।
२३—सा युवतिरात्मान हतप्रायाममन्यत।
२४—क्रुद्ध पुरुष शिलायामप्यधिगेते।
२५- गोपालो वा रामोह वा त्व तत्कार्यं करिष्यथेति मा भाति।
२६—पथिक उन्थिते सति तस्य सार्धमहमगच्छम्।
२७—समागतेषु बालेषु तान्फलानि दातुमारभस्त्र।
२८—तस्मिन् राजनि वसुधामीशाने न कोपि सामतस्तमभिभ
वितु येते।
२९—अजासु क्षेत्र नीयमानासु ता शस्यमखादयत्।
३०—भार्याया आक्रोशत्या सा भर्त्रा प्रतिषिद्धा।
३१—दभश्च पैशुन्य च सदा गर्हणीयौ।
३२—रूपवतीभार्या सदा प्रीतिपात्रा भवति।
३३—पिता च माता च वार्द्धक्ये परिपालनीयः।
३४—यत्स एवमुवाच तत्तस्य दोष एव।
३५—यत्क्रौर्यमित्याचक्षते तत्प्रकृतिरेव खलानाम्।
३६—अन्येषा पुत्राणा राम एव पितु प्रेयानासीत्।
३७—त्वं मम प्राणानामपि प्रियतरा अतस्त्वा सर्वं कथयामि।
३८—अह तत्र गन्तु न शक्नोमि हि मध्ये नद्यायातवती।
३९—वर भिक्षां याचितु न तु परसेवाविधिम्।
४०—अह वा त्वं वा तच्चकार।
४१—स गृह प्रत्यागतो वा नेति मां सत्वरं निवेदय।
४२—राज्ञापराधिनं शाता रूपका दण्ड्या.।
४३—इन्द्रः स्वयशः किन्नरमिथुनैर्गापयामास।

४४—प्रासादस्य परितोऽमात्य भिक्षुकान् स्थापयति राजा।
४५—क्षुधितेन वत्सेन पय पायय तमन्न वा खादय।
४ —राज्ञी वनात्पुष्पाणि दासीरानाययत्।
४७—अहं मम मित्र मा पारितोषिकमदापयम्।
४८—गुणिषु पूजास्थान गुणा एवास्ति न लिंग वा न वय।
४६—तस्या नार्या अवलोकनस्य पात्र ते नरा बभूव।
५०—अत्र विषये ईश्वरो न दोषास्पद।
५१—सा तपस्विनी मत्कृपापात्र जातम्।
५२—गोविंद तस्य भार्या च स्तुत्यचरिते स्त।
५३—तपो दमो निस्पृहता च सर्वे अमी यतिषु प्रशस्या।
५४—ऋते रामं जनक कमपि नृप शिवधनुर्भंजयितु न शशाक।
५५—अय पर्वतोऽस्य ग्रामस्योत्तर।
५६—ग्रामस्य पूर्व गोविंद आगच्छत्।
५७—त दिवसमारभ्य मम मन पर्याकुल जातम्।
५८—पुत्रविवाहस्यानन्तर पिता ग्रामस्य बहिरावसथेऽध्युवास।
५६—स शिष्येणोपनिषद वेदयामास।
६०—स्वामिना भृत्येन धेनु पयो दोह्यते।
६१—भिक्षुक श्रेष्ठिन धनं याचयति।
६२—स नर पादम्य खज अय तु नयनस्य काण.।
६३—स जबुद्वीप नावि गत शकटे च प्रत्यागतः।
६४—यज्ञदत्त कुण्डिनपुराय प्रेपित स मासद्वये प्रत्यागमिष्यति।
६५—रथस्य एव बहु शोभन्ते तत्कृतमत्यादरस्य।
६६—हिरण्यकशिपुग्रीवस्य प्राणा आसन्।
६७—गोविंदो यूयं चैतदकुरुताम्।

६८—अह ते वीराश्च शत्रून् पराजयन्।

६९—त्वमह गोपालसूनवश्च तत्कृत्य कुर्युं ।

७०—अयं बटुस्ते ब्राह्मणा वा ग्राम गच्छतु।

७१—यूय वय वा नदी गमिष्यथ।

७२—अतस्त्वां दूरादेव नम ।

७३—इमा वार्तामह वयस्य कथयामि ।

७४—यदि स त्वया पाठ नाध्यापयति तर्हि मा तन्निवेदय।

७५—देवा. स्वभयकारण ब्रह्माणमाचख्यु ।

७६—तस्मै अहं दूत प्रहितवान्, किंतु पाटलिपुत्राय न कोऽप्यद्यापि विसृष्ट ।

७७—अयं नरश्चौराणामतीव बिभेति।

७८—ममागमनस्य प्रागेव स गत ।

७९—अल त बहु ताडयितु सोऽत्यशक्त ।

८०—अस्य पुस्तकस्य रामाय प्रयोजन नास्ति।

८१—ये यतयोऽरण्येऽधिवसति तेभ्यो नृपानुग्रहस्य क उपयोग.।

८२—भक्ति देवो रोचते ।

८३—अह देवदत्तस्य शता रूपका धारयामि।

८४—स मयि द्रुह्यति नाह तस्मा अभिद्रुह्यामि।

८५—न किमपि त्वामधुना प्रत्याशृणोमि।

८६—राजत्योपरि चण्डवर्मा शास्ति।

८७—अह शत्रु हत्वा स प्रत्याजगाम।

८८—रामो रावण हत्वा बिभीषणो लकाराज्ये स्थापित ।

८९—त्वया प्रातरेव गा पयो दोग्धव्यमिति तमादिशन्, रामोऽत्रागतवान्।

९०—गौतमीवर्जं सर्वे निष्क्राता.।

६१—अश्मभिर्घात स शत्रुभिर्हत· ।

६२—रामाय द्वौ पुत्रावास्ताम् ।

६३—प्रभवति निजाय कन्यकाजनाय महाराज ।

६४—वासुकि पातालतलस्येष्टे ।

६५—मामग्रे कि तिष्ठसि ।

६६—अस्य पर्वतस्य पूर्वं महावापी वर्तते ।

६७—अस्मादुत्तरतस्तु रौद्र श्मशानम् ।

६८—दिवसे त्रि सध्यामुपासीत ।

६९—वर्षत्रये दशकृत्वोऽपि मम गृहे त्व नागच्छ. ।

१००—उपवनाद्दक्षिणेनार्त्तरव श्रुत्वा दु खितान् शरण प्रत्यशृणोत् ।

१०१—अधुना सुवृष्टिर्भवति चेत्सुभिक्ष सर्वत्रा जनिष्ट ।

१०२—अपि नाम स राजास्मत्समीहितं सपादयिता ।

१०३—अह ह्यः पथि महात भुजग ददर्श ।

१०४—अत्र विषये तत्र सदेहो माऽभूत् ।

१०५—मा चौरानभैष्ट ।

१०६—यद्यह तत्र बभूव तदा त्व भ्रातु सार्धं मा कलहमकृथा
इति तमख्यम् ।

१०७—स्वपुत्र यथा अन्येषा पुत्रेभ्योऽपि प्रीतिः कर्तव्या ।

१०८—अशीतिदिवसा यावत्स भृत्यो मामसेविष्ट ।

१०९—यावद्धनमीश्वरेणास्मान् दीयते तस्मिन्सतोषो मान्य. ।

११०—ते रथे कुसुमपुराय यातवत ।

१११—सा मृतवतीत्याकर्ण्याह दु खितो जातवान् ।

११२—शिशूना भाषित स्मितं च पित्रोरानन्दोत्पादकम् ।

११३—अय मम चिरन्तनो वयस्यो भवितव्य· ।

११४—त्वय्यस्मान्नुशासति कथमस्माभिरभिभूत भाव्यम् ।

११५—कुमन्त्रिणा नृपसभा न प्रवेष्टव्यम् ।

११६—गोपालो नाम वयस्येन सहागच्छम् ।
११७—जितौ मया षोडशसहस्राणां रूपकाणाम् ।
११८—काञ्ची नाम नगर्यां धनमित्रनाम वणिगवसत् ।
११९—सुवर्णपुर नाम नगरे द्वौ कोलिकौ वयस्यभावेन आवसत.
१२०—चन्दनमिव शीतले कदलीगृहेऽपि सा निर्वृति नालभत ।
१२१—रामेतिनामा दशरथस्य पुत्र आसीत् ।
१२२—उपला इव शत्रुष्वस्मानवस्कन्दस्तु वय किं कुर्यानेति न जज्ञिम ।
१२३—सुरगुरुमिव प्रज्ञस्यास्य ब्राह्मणस्य दक्षिणां किं न दत्से ।
१२४—तव च मे च सख्यमस्ति ।
१२५—चेत्त्वं मम कार्यं करोषि त्वामहं मुद्रिकाशतं दास्यामि ।
१२६—सा नारी रविरिव भ्राजमान सुतमलब्ध तु इयं बहु-कुरूपम् ।
१२७—अश्वमारोढुं मे रोचते ।
१२८—त्वामावस्थातु कथमहमनुमस्ये ।
१२९—अहं त्वामेतत्कर्तुमिच्छामि ।
१३०—इमं ग्रथं वाचयितु न शक्यते ।
१३१—इममाम्रवृक्षमधः पातयितुं न सांप्रतम् ।
१३२—वरं देशमपि त्यक्तुं न तु नीचसेवा विधातुम् ।
१३३—दशरथाय त्रिभार्याभ्य पुत्रचतुष्टयमुदपादि ।
१३४—विजयतु भवान् य एव जनानानन्दय ।
१३५—एना भवतेऽनुरक्ता किं निष्कारणेन त्यजसि ।
१३६—इमं दिवसमारभ्य मामाद्विजया दशमी भवति ।

## परिशिष्ट २

# शब्दकोष

### अ

अंशुमालिन्—(पु) सूर्य ।
अकलित—(वि) दुर्बोध ।
अकिंचनत्व—निर्धनता ।
अक्षयत्वं—विनाश हीनता ।
अगुण—बुरा गुण ।
अगृध्नु—(वि०) लालची नहीं ।
अग्निसात्कृ—जला देना ।
अग्रजन्मन्—(पु०)—ब्राह्मण ।
अग्रणी—नेता ।
अग्र(त्रि०)—सर्वोत्तम ।
अघ—पाप ।
अंक—धब्बा, दाग ।
अंकुर—अंकुर ।
अंग—हिस्सा ।
अंगराग—सुगंधित लेप ।
अंगुलि(स्त्री०)—उँगली ।
अंगुलीयक क—अँगूठी ।
अचिंतनीय(वि०) जो सोचा न जा सके ।
अज(वि०)—जन्म न लेने वाला ।
अंजन—अंजन ।
अतिक्रांत—बीता हुआ ।
अतिगर्हित—अत्यन्त निन्दनीय ।
अतिप्रसंग—अत्यन्त जंगलीपन ।
अतिभूमि—पराकाष्ठा ।
अतिमात्र—बहुत ज्यादा ।
अतिमुक्तलता—माधवी लता ।
अतियन्त्रणा—बहुत दुःख ।
अतिलोल—अत्यन्त कमज़ोर ।
अतिलोहित—बहुत लाल ।
अतिह्रेपण—अत्यन्त लज्जाजनक ।
अत्यादर—बहुत ज्यादा आदर ।
अत्रांतरे—इसी बीच में ।
अदूरवर्तिन्—दूर नहीं ।
अधिक्षिप्त—झिड़का गया हुआ । फटकारा हुआ ।

अधिज्य—डोरी चढ़ा हुआ ।

अधिराज —महान् राजा ।

अध्वर —यज्ञ ।

अनङ्ग —कामदेव ।

अनतिपात्य—देरी न करने योग्य ।

अननुदार—उपयुक्त पत्नी जिसके न हो ।

अनतर—लगातार

अनपायिन्—अनश्वर ।

अनम्र --जो नम्र न हो, अभिमानी ।

अनर्घत्व—अमूल्य होना ।

अनवगीत—आनन्दित ।

अनातप—ठडा, धूप से सुरक्षित ।

अनातुर—जो बीमार न हो ।

अनात्मज्ञ—बेवकूफ ।

अनादि—जिसका आदि न हो ।

अनायास—सरल ।

अनामय--नीरोगता ।

अनिर्वृत—दुखी ।

अनीश—जिसका प्रभुत्व या अधिकार न हो ।

अनुचर —सेवक, पीछे पीछे चलने वाला ।

अनुज —छोटा भाई ।

अनुत्तम—जिससे बढ़कर कोई न हो ।

अनुत्सेकः—अभिमानहीनता ।

अनुत्सेकिन्—जो फूलकर कुप्पा न हो ।

अनुबध —तारतम्य, धारा ।

अनुपक्रम्य—जो अच्छा न किया जा सके ।

अनुपधि—छलहीन

अनुमित—अनुमान किया गया हुआ ।

अनुविद्ध—चारों ओर फैला हुआ ।

अनुवृत्ति—अतीत का अनुभव ।

अनृत—मिथ्या ।

अतरात्मन्—अन्तरात्मा ।

अतराय – विघ्न ।

अतरिक्ष—आकाश ।

अतरित—गायब हो गया ।

अतर्लीन—छिपा हुआ ।

अन्तर्वेदि —यमुना और गंगा के बीच का प्रदेश ।

अपकारिन्—अपकार करने वाला ।

अपचार —अनुचित आचरण ।

अपदेश —बहाना ।

अपयशस्—कलंक ।

अपरिसमाप्त -जो कभी समाप्त न हो ।

अपवाद —बदनामी, निन्दा ।

अपहस्तित—व्यक्त ।

अपुनरुक्त—जो पुनरुक्त न हो। प्रतिदिन नया नया ।

अपूर्व—जिसकी समता का पहिले कभी न था।

अपोहन—तर्क शक्ति।

अप्रतिभट—जिसकी जोड का कोई न हो।

अप्रतिविधेय—जिसका कोई उपाय न हो।

अप्रतिहत—पूरा पूरा।

अप्रत्यय—जिसको अपने ऊपर विश्वास न हो।

अप्रमेय—असख्य।

अबला स्त्री।

अब्जभू—ब्रह्मा।

अभिख्या—शोभा।

अभिगमन—रति, मैथुन।

अभिजन—उच्च कुल मे जन्म।

अभिज्ञान—पहिचान, चिन्हानी।

अभिनव—नई, ताजी।

अभिनिवेशः—लागू होना श्रद्धा, रुचि।

अभियुक्त—विद्वान्।

अभियोक्तृ—आक्रमणकारी।

अभिरमणीय—अत्यन्त सुन्दर।

अभिलाष—इच्छा।

अभिव्यक्त—स्पष्ट।

अभिषेणय—सेना से मुडभेड करना।

अभि (ति) सधान—धोखा देना, ठगना।

अभ्यवहार्य—भोजन।

अभ्यागत—अतिथि।

अभ्युपेत - हाथ में लिया हुआ।

अमगल—अनर्थ, नीच विचार।

अमर्षित—क्रुद्ध।

अमल—निर्मल, शुभ।

अमानुष—मनुष्यातीत।

अमानुषी—निर्बुद्धि स्त्री।

अमोघ—अचूक, अव्यर्थ।

अम्बुवाह—बादल।

अयस्—लोहा।

अरुण—सूर्य का सारथि।

अरुन्धती—वसिष्ट जी की पत्नी।

अर्जन—प्राप्ति, कमाना।

अर्थ्—सम् पूर्वक) चुरादि आत्मने। विचारना, कल्पना करना। (प्रपूर्वक), पीछा करना।

अर्थ्य—अर्थयुक्त।

अर्हन्—योग्य।

अल्पमेधस्—मूर्ख।

अवकल्प्य—विचारने योग्य।

अवक्षय—नाश।

अवकाश—गुजाइश, कारण।

अवताडन—पेरना।

अवपात.—शिकार पकड़ने के लिए गढ़ा।

अवद्य—निन्द्य।

अवधूत — घृणित।

अवमानिन्—अपमान करने वाला।

अवयव—अंग।

अवलोकिता—एक नौकरानी का नाम

अवसन्न—समाप्त।

अवसान—अन्त।

अवस्थित—टिका हुआ।

अविक्षत—जो घायल न हुआ हो, कुशल।

अविधवा—वह स्त्री जो विधवा न हो।

अविनीत—उजड्ड।

अव्यापन्न—न मरा हुआ, जिन्दा।

अव्याहत—बिना रोकटोक।

अशनि—वज्र।

अशन— भोजन।

अशरण—निस्सहाय।

अशुभ—दुर्घटना।

अशेषत पूर्णतया।

अश्वमुख.– घोड़मुहा जन्तु।

अश्वमेध —एक प्रकार का यज्ञ जिसमें घोड़े का वध किया जाता है।

अस् (उत् पूर्वक)—कर्मवाच्य-नलट जाना (विपरि पूर्वक) बदल जाना।

असंविदान—अनभिज्ञ।

असक्त—जो राग न रखता हो, बेलगाव वाला।

असदृश—अनुचित अशोभन।

असार—कमजोर, अयोग्य।

असारता—कमज़ोरी, क्षण भंगुरता, अस्थिरता।

असित—काला।

असिपत्र—तलवार की धार।

अस्ताचल—वह पर्वत जिसके पीछे सूर्य छिप जाते हैं।

अहङ्कार—घमंड।

अह्नाय—तुरन्त, शीघ्र।

आकर—खान।

आकार—स्वरूप।

आकुल—भरा हुआ, परिपूर्ण, व्यथित, पीड़ित।

आक्रन्दित—रोना।

आखण्डल—इन्द्र।

आखु.—चूहा।

आख्यात—कहा हुआ, घोषित किया हुआ।

आगन्तुक—अतिथि, अनजान।

आगम—आना, वेद।

आगमिन्—सिद्धान्तों में पारंगत।

आशु—शीघ्र।

आश्रम —जीवन की एक मजिल।
आस्—(अनु पूर्वक —अदादि—आत्मने—सेवा करना।
आसक्त—लगा हुआ।
आसक्ति —राग, लगाव।
आस्तरण— बिछौना।
आस्थान—परिषद्।
आस्थान मण्डप—परिषद् भवन, सभाभवन।
आहव --युद्ध।
आहार – भोजन।
आहितु डिक —बाजीगर।

## इ

इ (प्रति पर्वक)-प्रेरणार्थक-विश्वास करना, (व्यप पूर्वक)।
अलग कर देना,अलग हो जाना
इक्ष्वाकु —एक सूर्य वशी राजा, रघु के पुरखा।
इंद्रिय —इन्द्रिय।
इधन—ईधन, जलाने की सामग्री।
इरावती—एक स्त्री का नाम है।

## ई

अनु पूर्वक)—भ्वादि—आत्मने—देख भाल करना।
ईक्षण — नेत्र।
ईप्सित—चाहा हुआ।
ईश —मालिक, अधिपति, शिव।
ईश्वर (विशे )—योग्य।
ईश्वरः — स्वामी।
ईह्—भ्वादि० आत्मनें —इच्छा करना

## उ

उचित—साधारण, सामान्य, प्रथागत
उच्छ्रित—ऊँचा, उठा हुआ।
उत्कर्ष —ऊँचाई, अच्छाई।
उत्कुल—कुल में धब्बा लगाने वाला
उत्कुष्ट –जोर की आवाज।
उत्खात—उखाड दिया गया हुआ, नष्ट किया हुआ।
उत्खातिन्—गड्ढों से भरा हुआ, ऊँचे नीचे स्थलों से भरा हुआ।

उत्तसय—बाँधना, अलकृत करना।
उत्तर (विशे०)—बादवाला, पिछला।
उत्तरा—अभिमन्यु की पत्नी।
उत्तरोत्तर—सर्वदा बढने वाला, आगे आगे, दिनों दिन।
उत्तान (विशे०)—शुद्ध, कपट रहित, शुद्ध।
उत्तानित—खुला हुआ, फैला हुआ।
उत्पलिनी—कमलिनी।
उत्पीड—माला, अलक।
उत्सव—जलसा, प्रसन्नता या आनन्द का अवसर।
उदन्त—वृत्तान्त, इतिहास।
उदय—दर्शन।
उद्दाम—(क्रियाविशे०)- बे रोक, बड़े जोर से।
उद्यत—तुला हुआ, कमर कसे हुए, लगा हुआ, तत्पर।
उद्यम—इरादा, सकल्प।
उद्धत (विशे०)—घमडी, ऊँचा।
उद्‌बाष्प(विशे०)—आँसू बहाता हुआ।
उन्नतत्व—श्रेष्ठता, उत्तमता।
उन्नति (स्त्री०)—बड़प्पन, उदारता, उच्चता, श्रेष्ठता।
उन्मुख (विशे०)—तैयार।
उपकंठ:—सान्निध्य, सामीप्य, पड़ोस
उपकार—भलाई, नेकी।
उपकारिन्—उपकार करने वाला।
उपकार्या—राजा का शिबिर।
उपघात—नाश, क्षति।
उपचार—बाह्य प्रदर्शन, ऊपरी लोकाचार।
उपदेश—शिक्षा, राय, सलाह।
उपद्रव—हानि।
उपनत—आया हुआ, प्राप्त हुआ, पड़ गया हुआ।
उपनिपात—घटना, होना।
उपपन्न(विशे०)—योग्य, उचित।
उपमा—तुलना,।
उपरत—मरा हुआ।
उपराग—ग्रहण।
उपरोध—बाधा, क्षति।
उपलक्षण—लाक्षणिक, चिह्न।
उपलभः—पता लगाना।
उपवास—भोजन न करना, भूखा रहना।
उपहत—मरा हुआ, बरबाद किया हुआ।
उपस्थित—जो समीप में आ गया है, जो पड गया है।
उपहास्यता—हँसी का पात्र।
उपाधि—दशा, परिस्थिति।

उपाध्याय —आचार्य ।

उपालम्भ—ताना, व्यंग्य ।

उपांशु—(क्रियाविशे०)—एकान्त मे ।

उपाश्रय —आश्रय, शरण ।

उषस् – (स्त्री०) प्रात.काल ।

उष्मन् (पुं०)—गर्मी ।

उष्णिमन्—(पुं०)—गर्मी ।

ऊ

ऊरीकृत—हाथ मे ले लिया गया हुआ।

ऊरु —जघा ।

ऊर्जस्वल (विशे०)—बडा शक्तिशाली

ऊर्मि(स्त्री०)—लहर ।

ऊह् (अप पूर्वक) भ्वादि—परस्मै—हटाना, नष्ट करना ।

ऋ

ऋजु (विशे )—जो बुरा न हो, सीधा, मत्सररहित, स्वच्छ ।

ऋषिकल्प (विशे०)—ऋषितुल्य ।

ऋषिकुमार —ऋषि का पुत्र ।

ऋष्यशृङ्ग —महाराज दशरथ के दामाद ।

ए

एकपदे (क्रिया० विशे०)—यकायक ।

एकाग्र (विशे०) -एक चीज पर लगा हुआ

एकान्त(वि०)—आत्यतिक, चिरस्थायी, लगातार । (विशेषण के साथ(– बहुत ज्यादा ।

एकैकश (क्रियाविशे०)—एक एक करके ।

एधित—पाला पोसा गया हुआ, बडा किया गया हुआ ।

एनस्—पाप

ऐ

ऐक्ष्वाक—इक्ष्वाकु का वशज ।

ऐरावत —इन्द्र का हाथी ।

ओ

ओजस्विन्—प्रतापी, तेजस्वी ।

औ

औदरिक —भुक्खड़, पेटू ।

औदासीन्य—उदासीनता, तटस्थता ।

## क

ककुद—कूबड़, (अलंकार) प्रधान, सर्वश्रेष्ठ।

कच — बाल, केश।

कज्जल—काजल।

कठ्(उत्पूर्वक)—भ्वादि—आत्मने—उत्सुक होना उत्कंठित होना।

कतिपय—कुछ, थोड़े से।

कथमपि—(क्रियाविशेषण)—बड़ी कठिनाई से।

कदली—केले का वृक्ष।

कनक—सुवर्ण।

कन्दरम्—गुफा।

कदम्ब—समूह, पुञ्ज, राशि।

कमलयोनि—ब्रह्मा।

कप् (अनुपूर्वक)—तरस खाना, दया करना।

कर्ण—(आपूर्वक चुरादि-उभयपदी-सुनना।

कर्णधार.—मल्लाह।

कलकल—शोर।

कलहंस—हंस।

कलभ—हाथी का बच्चा।

कला—चन्द्रमा की कला।

कलिका—कली।

कलेवरम्—शरीर।

कल्प—विधि, प्रकार।

कल्पांत—सृष्टि का अन्त या नाश।

कल्य—(विशे) बड़े सबेरे।

कल्याण (विशे.)—श्रेष्ठ, उत्तम, धन्य, भाग्यवान।

कल्याणिन् (विशे)—धन्य, भाग्यवान्।

कष्ट (विशे०)—कठिन।

काकपक्ष-क्षकः—घुंघराले बाल।

कांचनं—सुवर्ण।

काम—इच्छा, कामदेव।

कामगम—स्वेच्छानुसार चलने वाला।

कामत (क्रियाविशे०)—वासना से अभिभूत होकर।

कामसू (विशे)—इच्छाओं को पूरी करने वाली।

कामिन् (पु)—प्रेमी।

कार्तांतिक.—ज्योतिषी, भाग्य बताने वाला।

काषाय—गेरुआ वस्त्र।

किन्नर.—स्वर्गीय गवैयों का एक वर्ग।

किंवदन्ती—अफवाह।

किरीटी (न्)—अर्जुन।

कुटिल—(विशे०)—टेढा, मक्कार।
कुट्टिम —फर्श।
कुटुबिन्—(पु०) गृहस्थ।
कुतूहल — उत्सुकता।
कुधी—मूढ, मन्द बुद्धि।
कुमुद—कमल।
कुमुदिनी—कमल का पौधा।
कुशलम्—कुशल, कल्याण।
कुशलिन्—(विशे०)—कुशल पूर्वक
कुशाग्रबुद्धि—तेज बुद्धि वाला।
कुसरित् - नाला।
कृ—(पुर पूर्वक)-तनादि उभयपदी आगे रखना, अगुआ बनाना। (अपा पूर्वक) हटाना, रोकना। (उप पूर्वक) उपकार करना। (वि पूर्वक) कर्मवाच्य बदल जाना प्रभावित हो जाना, (विप्र पूर्वक) तंग करना, छेड़ना, हानि पहुँचाना। विप्रकृत—जिसके साथ अन्याय किया गया हो, जिसके साथ दुर्व्यवहार किया गया हो, सताया गया हुआ, हानि पहुँचाया गया हुआ।
कृतधी -(विशे०)-बुद्धिमान्, विचार शील।
कृत्स्न—(विशे०)—सम्पूर्ण, अखिल।
कृपण—(विशे०)—अधम हृदय वाला।
कृश— (विशे०)—दुबला पतला।
कृष्—भ्वादि—परस्मै—(वि पूर्वक) झुकाना।
कृषि—(स्त्री)—खेती।
क्लृप्-(परि पूर्वक) प्रेरणार्थक लगाना बनाना, (सम् पूर्वक प्रेरणार्थक) सकल्प करना, तै करना, लक्ष्य करना।
कृष्णवर्त्मन्—(पु०)—अग्नि।
केतन —घर, निवास स्थान।
केशिन् (पु०)—एक राक्षस का नाम।
केसरिन् (पु०)—सिंह।
कोटर र—खोखला, गड्ढा।
कोटि (स्त्री०)—शिखर, अन्त, चोटी, अग्रभाग।
पराकोटि —उच्चतम शिखर।
कोश -प —कला।
कौतूहल—उत्सुकता, उत्कण्ठा।
कौपीन—लँगोटा।
कौबेरी—उत्तर दिशा।
कौरव्य.—कुरु का वंशज।
कौलीन—बदनामी, अपयश।
कौर्म (विशे०)— कच्छप सम्बन्धी।
कौशिक.—विश्वामित्र (कुशिक के पुत्र।

कौशिकी—एक स्त्री का नाम।

क्रकच.—आरी।

क्रम् (आपूर्वक)—आक्रमण करना, छीन लेना, झपट्टा मारना।

क्रिया—काम।

क्रीडनीय—खिलौना।

क्लैब्य—कमजोरी, नपुंसकता, डरपोकपन नामर्दों का सा व्यवहार (आचरण)।

क्षणिक—क्षण भर कायम रहने वाला, थोड़ी देर तक रहनेवाला।

क्षत्र—क्षत्रिय, योद्धाओं का वर्ग।

क्षपित—नष्ट।

क्षप—रात्रि।

क्षम (विशे)—योग्य, समर्थ, उचित।

क्षय—घटना, नाश, कम होना।

क्षात्र (विशे)-क्षत्रिय वर्ण से सम्बन्ध रखने वाला।

क्षाराबुधि—खारा सागर।

क्षितिप ]
क्षितीश्वर.]—राजा, पृथ्वीका स्वामी।

क्षिप् (आपूर्वक) तुदादि-परस्मै-पटकना, भड़काना, प्रलोभित करना, (निपूर्वक) समर्पण करना, लगाना।

क्षुद्र(विशे)-तुच्छाशय, अधम, अयोग्य।

क्षेत्र—खेत।

क्षोभ—बड़े जोर का धक्का।

## ख

खम्—आकाश।

खड—टुकड़ा, तोड़ना।

खल्वाट.—गंजा।

खिन्न(विशे)—थका हुआ, परिश्रान्त

## ग

गणक—ज्योतिषी।

गणिका—वेश्या।

गति (स्त्री)—आश्रय, चारा, अवलम्ब।

गद्‌गद (क्रिया. वि)--गला रुँधा हुआ।

गंध.—महक।

गधद्विप'—सर्वोत्तम जाति का हाथी, जिसके गण्डस्थल से एक प्रकार की खुशबू निकलती रहती है।

गभस्ति'—किरण।

गम् (प्रत्युद् पूर्वक)—स्वागत करने के लिए जाना।

**गर्भेश्वरत्व**—धनी घर में पैदा होना, उत्तराधिकार में धन प्राप्त करना।

**गाभीर्य**—गहराई।

**गाह्**—(भ्वादि-आत्मने) घुसना, धँसना।

**गिरीश**—शिवजी।

**गुण**—अच्छा परिणाम, लाभ, प्रभाव।

**गुरु** (विशे०)—प्रधान, सर्वाग्रणी (पु०)-पिता, गुरवः-बडे लोग।

**गृहमेधिन्** (पु०)—गृहस्थ।

**गृहिणी**—स्त्री, गृहस्थ की स्त्री।

**गोत्र**—कुल, वंश।

**गोमायु**—सियार।

**गौरव**—बडप्पन।

**ग्रह**—पकड़।

**ग्राम्य** (विशे०)—देहाती, उजड्ड, गँवारू।

## घ

**घट्** (सम् पूर्वक प्रेरणार्थक)—जोड़ना, मिलाना।

**घर्मांशु**—सूर्य।

**घातकः**—जल्लाद।

## च

**चक्रवर्तिन्**—चक्रवर्ती राजा।

**चक्रवाल**—क्षितिज।

**चक्ष्** (प्रत्या पूर्वक) अदादि आत्मने-त्याग देना, इनकार कर देना।

**चचत्** (विशे०)—हिलता हुआ।

**चञ्चू**—चोंच।

**चद्रकांत**—चन्द्रकान्तमणि।

**चपल** (विशे०)—विचारहीन, चंचल अस्थिर।

**चमू** (स्त्री)—सेना।

**चय**—राशि पुञ्ज।

**चर्**—भ्वादि-परस्मै-(वि पूर्वक)—घूमना फिरना, टहलना।

**चर**—गुप्तचर, खोफिया।

**चल**—(विशे०)—चंचल।

**चलचित्तता**—चित्तकी चंचलता।

**चलित**—एक प्रकार का नृत्य।

**चातक**—चातक पक्षी।

**चापलम्**—चपलता।

**चामर**—चँवरी।

**चारित्र्य**—शुद्धाचरण सदाचार।

**चारुता**—सुन्दरता।

**चि**—(प्र पूर्वक)-कर्मवाच्य--बढना, उन्नति करना (परि पूर्वक)--प्राप्त-

करना ।

चिकीर्षा—करने की इच्छा ।

चित्र—(विशे०) आश्चर्य, विचित्र ।

चित्रार्पित—चित्र में खिंचा हुआ ।

चूडा—शिखर चोटी ।

चूडामणि—सिर का मणि ।

चूत—आम का वृक्ष ।

चेष्टा—कार्य ।

चेष्टित—आचरण ।

च्युतात्मन्—गिरी हुई अथवा भ्रष्ट आत्मा वाला ।

## छ

छद्मन्—(नपुं०) कपट बहाना ।

## ज

जड—(विशे०) मूढ ।

जनता—जनसमूह ।

जन्तु—जानवर, प्राणी ।

जन्मभूमि (स्त्री०)—जहाँ किसी का जन्म हुआ हो वह देश ।

जयन्त—इन्द्र का पुत्र ।

जलचर—जल में रहने वाला जानवर ।

जलद, जलमुच्—बादल ।

जलयन्त्र—पानी का कल, कृत्रिम जलाशय ।

जलाशयः—जल का स्थान, तालाब ।

जात—बच्चा, समूह, बच्चों का समूह ।

जाति (स्त्री०)—जाति ।

जाल्म—बदमाश, शठ, धूर्त ।

जीव्—अनु (पूर्वक) भ्वादि—परस्मै—जीते रहना, किसी के बाद में भी जिन्दा रहना ।

जीवन—जीवन, जिन्दगी ।

जीवलोक—संसार, विश्व ।

जृम्भ्—(समुत् पूर्वक) भ्वादि—आत्मने—प्रयत्न या चेष्टा करना । (वि पूर्वक)—दिखाई पड़ना, व्याप्त करना ।

ज्या—धनुष का डोरी ।

ज्ञातिः—जाति बिरादरी वाले ।

ज्ञापय—(ज्ञा का प्रेरणार्थक) वि पूर्वक—सम्मान पूर्वक कहना, प्रार्थना

करना। आ-पूर्वक आज्ञा देना।
ज्योति शास्त्र—ज्योतिष।

ज्योतिष्मत्—(विशे०)—चमचमाता हुआ, दीप्तिमान्।

## ट

टिट्टिभी—टिटिहरी।

## ढ

ढौक्—(भ्वादि-आत्मने) समीप में आना।

## त

तटिनी—नदी।
तनु (विशे०)—दुबला पतला।
तपन—सूर्य।
तप्त—घाम में पीडित।
तदानींतन—समकालीन, एक ही समय में रहने वाला।
तमसा एक नदी विशेष।
तमिस्रा अन्धकार।
तरंग—लहर।
तरलता—चंचलता, आन्दोलन, इन्द्रियों का क्षोभ।
तात पिता, प्रेम सूचक शब्द।
तापस—तपस्वी।
ताल—ताड़ का वृक्ष।
तितिक्ष्—भ्वादि-आत्मन०-(तिज् की सन्नन्त धातु)—क्षमा करना।
तिमिरः-र—अन्धकार।
तीक्ष्ण (विशे०)—तेज़, कठिन, अति कठोर।
तीर्थ—तीर्थ स्थान, पुण्य स्थान, योग्य व्यक्ति, योग्य पदार्थ।
तीर्थोदक—तीर्थ का जल, पवित्र जल।
तुषार (विशे०) —ठंढा, ठढक।
तुषार —हल्की बौछार।
तूर्य-र्य—वाद्य यन्त्र, नगाड़ा।
तूल —रुई।
तूष्णीम्—(क्रिया वि०)—चुपचाप।
तॄ—भ्वादि-परस्मै (अव पूर्वक) यात्रा को समाप्त कर देना, गर्भस्थ चीजों को निकाल देना। (प्र (पूर्वक—प्रेरणार्थक—धोखा देना, (वि पूर्वक) देना।
तेजस्विन्—(विशे०)—वीरों की सी आत्म युक्त, (संज्ञा) योद्धा।

त्वच्—(स्त्री०)-चमडा, छाल।

त्रयं—तीन का समूह।

त्रिपुरहर—तीनों पुरों को नष्ट करने वाले (शिवजी)।

त्रिमूर्ति—(विशे०)-तीन स्वरूप वाला

## द

दक्ष (विशे०)—बुद्धिमान, चतुर।

दक्षिण (विशे०)—सभ्य, शिष्ट।

दंड—डठल (कमल का)।

दम्—(प्र पूर्वक प्रेरणार्थक)-दबाना, कुचलना।

दमन—नियन्त्रण, बन्धन।

दम्य.—जवान बैल जो अभी पालतू नही बन पाया है, जो अभी जोता नही गया है।

दयित—(विशे० अथवा स०)-प्रिय, स्वामी।

दरी—घाटी।

दर्प—घमण्ड।

दर्पण—आईना।

दर्भ.—कुश।

दल—भाग, टुकडा, छोटा सा अंकुर, पत्ता।

दवाग्निः—जगल की आग।

दशन—दाँत।

दार—(पु०)-नित्यबहुवचनान्त- पत्नी, भार्या।

दारुण—(विशे०)--दु खद।

दिवसेश्वर—दिनपति, सूर्य।

दिव्य--(विशे०)--स्वर्गीय, अलौकिक।

दीक्षित- दीक्षा द्वारा तैयार किया हुआ।

दीन—(विशे०)-करुणापात्र अभागा, दु.खी।

दीप्—(दिवादि-आत्मने)---चमकना, जलना।

दीपक—दिया, चिराग।

दीप्तिमत्—(विशे०)—चमक वाला, चमचमाता हुआ।

दु स्मर—(विशे०)-जिसका स्मरण करके दु ख हो।

दुराराध्य—(विशे०)--जो आसानी से सन्तुष्ट न किया जा सके।

दुरित—पाप।

दुर्ग—(विशे०) -जिसके पास तक पहुँचना कठिन हो(संज्ञा),कठिनाई।

दुर्जनत्वम्—दुष्टता।

दुर्जय (विशे०)—जिसको जीतना मुश्किल हो।

दुर्धर्ष—(विशे०) भयानक, जिस पर आक्रमण करना कठिन हो।

दुर्निवार—(विशे०)-जिसको रोकना कठिन हो।

दुर्भिक्ष—अकाल, अन्नाभाव।

दुर्लंध्य—(विशे०)-जिसको लंघन करना मुश्किल हो।

दुर्ललित—(विशे०) प्यार करके बिगाड़ दिया गया हुआ।

दुश्चर—(विशे०)-कठिन, घोर, जिसका आचरण करना कठिन हो।

दुष्कर—(विशे०)-जिसको करना कठिन हो।

दुष्कृत्—(पु०)- पापी दुष्ट।

दुष्कृत—बुरा कर्म।

दुष्टाशय } विशे०)-दुष्ट हृदय वाला।
दुरात्मन् }

दूरीकृ—(तनादि उभयपदी)-मात कर देना।

दूषण—अपराध, ऐब, अवगुण, त्रुटि

देवरातः—(व्यक्तिवाचक)-माधव का पिता।

देवी—रानी।

देहभृत् } (पु०) देहधारी।
देहिन् }

दैवदुर्विपाकः—दुर्भाग्य।

द्युति—(स्त्री०)-चमक, शोभा, छवि।

द्रढय—दृढ करना।

द्रव्य—भौतिक पदार्थ।

द्रु—भ्वादि-परस्मै-द्रवीभूत होना, भागना।

द्रुम.—वृक्ष।

द्विगुणित—(विशे०)-दुगुना।

द्विज—पक्षी, ब्राह्मण।

द्विजाति—ब्राह्मण।

द्विप—हाथी।

द्विरद—हाथी।

द्विरेफ.—भौरा।

द्वीप—टापू।

## ध

धनंजय.—अर्जुन का नाम है।

धनेश—धन के स्वामी अर्थात् कुबेर।

धन्य (विशे०)—भाग्यवान्।

धान्विन् (पु०)—धनुर्धारी।

धर्म.—कर्तव्य, धार्मिक कृत्य, आचरण की औचिति।

धर्मक्रिया—धार्मिक कार्य।

धर्मपत्नी } धर्म पूर्वक व्याही हुई स्त्री।
धर्मदाराः }

धर्मारण्य—तपोवन।

धर्मासन—न्यायासन, अदालत ।

धा—जुहोत्यादि-उभयपदी (अतिसम् पूर्वक)—ठगना (अन्तर् पूर्वक) अपने को छिपाना । (अभिपूर्वक) कहना, बोलना । (सम् पूर्वक) सन्धि करना, बर्ताव करना, जैसे बाण ठीक किया जाता है उस तरह ठीक करना ।

धातृ—(पु०)-सृष्टिकर्ता ।

धामन्—(नपु०) शोभा, द्युति ।

धारणा—मन की दृढ एकाग्रता ।

धारावाहिन्—निरन्तर ।

धारिणी—एक रानी का नाम ।

धीर—दृढ चित्त वाला, साहसी, अध्यवसायी ।

धीरता—धैर्य, मन की मजबूती ।

धुर्य—नेता, प्रधान ।

धुक्ष्—(सम् पूर्वक) भ्वादि-आत्मने-सुलगाना ।

धू—(उत् पूर्वक) भ्वादि-उभयपदी-हिलना, फड़फड़ाहट त्याग देना ।

धूर्त—बदमाश ।

धृ—भ्वादि तथा चुरादि-परस्मै-धारण करना, थामना, (उत् पूर्वक अथवा समुत् पूर्वक) रक्षा करना, उखाड फेंकना, उठाना निकाल लेना ।

ध्याम (विशे०)—गन्दा, मलिन ।

ध्वनत्—गर्जता हुआ, कड़कता हुआ ।

## न

नकुल—नेवला ।

नक्षत्र—तारा ।

नग—पर्वत ।

नद्—भ्वादि-परस्मै-प्रसन्न होना-आनंद मनाना, (अभिपूर्वक) स्वागत करना, बधाई देना ।

नदन—इन्द्र का बगीचा ।

नलिनिका—एक नौकरानी का नाम ।

नलिनी—कमल का पौधा ।

नवीकृ—तनादि-उभयपदी नया कर देना, पुनर्जीवित कर देना ।

नह् (सम् पूर्वक)—दिवादि-आत्मने-तैयार हो जाना ।

नाट्य—नाच, नाटक ।

नामग्रहण—नाम लेना ।

निःश्रेयस—महत्तम आनन्द, सर्वश्रेष्ठ सुख ।

निःसत्यता—झूठ ।

निःस्नेह—निर्दय, हृदयहीन।
निकाम (विशे०)-खूब, प्रचुर, अत्यधिक।
निकष. (ग्रावन्.)—कसौटी।
निखिल (विशे०)—सम्पूर्ण।
निगाद्य—कहे जाने योग्य, चर्चा किए जाने योग्य।
निग्रह—दण्ड।
निचुल—निचुल नामक एक वृक्ष।
निज—अपना।
नितरां—(क्रिया विशे०)-अत्यन्त।
नितांत—अत्यधिक।
निदाघ—ग्रीष्म ऋतु।
निदान—मौलिक कारण।
निधन—मृत्यु।
निबंधन—जोड़ने वाली लड़ी।
निमित्त शुभ लक्षण, कारण, लक्षण।
निमिष—पलक गिरना।
नियम—धार्मिक कृत्य।
नियमेन—(क्रिया विशे०) जैसा कि नियम है।
नियोग—आज्ञा, कर्त्तव्य।
निरतिशय—जिसको किसी ने मात न किया हो।
निरत—लगा हुआ।
निरपेक्ष } (विशे०) तटस्थ,
निरभिलाष } उदासीन।
निरस्त—निकाला हुआ।
निराकरण—काट देना, फेंक देना।
निर्गम—निकास, निकलने का द्वार।
निर्गुण—(विशे०)-गुणरहित, अयोग्य।
निर्झर—झरना, सोता।
निर्बंध—हठ।
निर्वाण—पूर्ण सन्तोष, अथवा आनन्द, गर्मी को कम करना।
निर्वात.—जहाँ हवा न हो (हवा एक दम शान्त हो)।
निर्वाद—बदनामी।
निर्वापण—हल्का करना, कम करना।
निर्वृत्ति—(स्त्री०)—सन्तोष, सुख।
निर्वृत्त—हो गया हुआ।
निशाचर—राक्षस।
निषेवित—भरा हुआ।
निष्कंप—निश्चल, स्थिर।
निष्पीडित—निचोड़ा हुआ, दबाया हुआ।
निष्प्रतीकार—(विशे०)—जिसका कोई इलाज न हो।
निसर्ग—प्रकृति।
निसृष्ट—दत्त।

निस्वन —ध्वनि ।
निस्त्रिंश—निर्दय, पैनी ।
निष्पन्द—निश्चल ।
नी—भ्वादि-परस्मै-(अनु पूर्वक) स्नेह करना, (उप पूर्वक) यज्ञोपवीत संस्कार करना, (समा पूर्वक) इकट्ठा करना, जुटा देना ।
नीरध्र—घना ।
नील—नीला ।
नुद्—(वि पूर्वक-प्रेरणार्थक) मन बहलाना, मनोरंजन करना ।
नूपुर—पायजेब ।
नैमित्तिक—प्रभाव, परिणाम ।
नैषध—महाराज नल का नाम है जो निषधदेश के राजा थे ।
नैष्ठुर्य—निष्ठुरता, प्रकृति की उग्रता ।
नैसर्गिक—प्राकृतिक, औत्पत्तिक ।

## प

पक्कण—चाण्डाल की झोपड़ी ।
पक्ष—पक्ष, एक तरफ ।
पङ्कच्छिद्—गन्दगी को हटाने वाला ।
पञ्चाल—पञ्चाल देश के राजा ।
पञ्जर—पिंजड़ा ।
पटु—निपुण ।
पठ्—(परिपूर्वक प्रेरणार्थक)—पढ़ाना ।
पत्—(भ्वादि--परस्मै०- परिपूर्वक)—मँडराना, चक्कर काटना । (प्रणि-पूर्वक) प्रणाम करना ।
पतग:—मकोड़ा, पतिंगा, सूर्य ।
पतिंवरा–पति को वरण करने वाली ।
पत्रपुट—पत्तों का पात्र (दोना) ।
पत्रलेखा—व्यक्ति वाचक संज्ञा ।
पत्रोर्ण—रेशम का वस्त्र ।
पथ्य—कल्याण, हितकारी भोजन ।
पद्—(व्यापूवक-प्रेरणार्थक) मार डालना, (प्रतिपूर्वक) कबूल करना, स्वीकार करना, दिखाना, हारमानना, प्राप्त करना । (उप-पूर्वक प्रेरणार्थक) अस्तित्व में लाना, करना ।
पन्नग:—साँप ।
पयस्विनी—गाय ।
पयोद:—बादल ।
परभृत:—कोयल ।
परमप्रख्य—बड़ी कीर्ति वाला ।
परमार्थ —सर्वोच्च सत्य ।
परमार्थत:—वस्तुत:, वास्तव में ।
परंतप—शत्रुओं का नाश करने वाला

दुःख देने वाला ।
(?)परा--सिलसिला ।
पराक्रम —वीरता,शूरता ।
परागत—लौटा हुआ ।
परावृत्त—घूम आया हुआ, लौटा हुआ ।
परिगृहीत—जिसके ऊपर कृपा दिखाई गई हो ।
परिग्रह —विवाह ।
परितर्पण—सन्तुष्ट करने वाला ।
परिदेवना—रोना धोना ।
परिपथिन्—विघ्नकारी बाधक ।
परिभव —तिरस्कार ।
परिभाविन्—तिरस्कार करने वाला, नीचा दिखाने वाला ।
परिवार. } नौकर चाकर ।
परिजन }
परि (री)वाह—जलमार्ग, नाली, पानी के निकलने का मार्ग ।
परिव्राजिका—सन्यासिनी ।
परिषद्—सभा ।
परीक्षित्—एक राजा का नाम ।
परीत—अभिभूत
परोक्षे—पीठ पीछे ।
पर्यटन—टहलना, घूमना ।
पर्याप्त—योग्य, समर्थ ।
पर्याय —नियमित पारी या क्रम ।
पल्लव—डाली , टहनी ।
पल्लविका—एक नौकरानी का नाम ।
पल्लवित—जिसमे पत्ते आ गए हों ।
पवन—हवा ।
पांसुल—धब्बा या दाग लगाने वाला ।
पांडु—पाला, सफेद ।
पाणिग्रह —विवाह ।
पाताल -लम्—पाताल ।
पात्र—पात्र ।
पानीय—जल ।
पापभाज्—पापी ।
पारक्य—शत्रुपक्षीय ।
पारग्रामिक—शत्रुपक्षीय ।
पारसीका —फारस देश वाले ।
पार्श्व —पास, बगल ।
पावक —आग ।
पावन—पवित्र करने वाला ।
पिंगल—पीला, लाल, भूरा ।
पिट—टाकरी ।
पिठर—बर्तन, कड़ाही ।
पिपासु—प्यासा ।
पिशुन—चुगुलखोर ।
पिशुनता—चुगुलखोरी ।
पीठ—आसन, सिंहासन ।
पीडित—दुःखित ।

**पीवर**—मोटा ।

**पुङ्गव**—बैल, समासो के अन्त मे आने पर इसका अर्थ होता है "सर्वश्रेष्ठ" ।

**पुण्य**—पवित्र ।

**पुण्यभाज्**—पुण्यात्मा ।

**पुरन्दर**—इन्द्र ।

**पुरस्कृत**—जो आगे आगे चलता हो ।

**पुराण**—पुराना ।

**पुष्**—दिवादि परस्मै-प्रदर्शित करना।

**पुष्पित**—फूला हुआ ।

**पुष्पेषु**—कामदेव ।

**पूरोत्पीड**—जल की प्रचुरता ।

**पूर्ववत्**—पहिले की तरह ।

**पृथग्जन**—तुच्छ मनुष्य, गँवार, अपढ ।

**पृष्ठ**—सतह, पीठ ।

**पेशल**—चतुर, निपुण ।

**पोत**—जहाज़ ।

**वीरपोत**—जवानी से भरा हुआ योद्धा ।

**पौरव**—पुरु का वंशज ।

**पौरुष**—पराक्रम, सामर्थ्य ।

**पौरुहूत**—इन्द्र सम्बन्धी ।

**प्रकीर्ति**—नाम की चर्चा ।

**प्रकीर्तित**—कहा गया हुआ ।

**प्रकृति**—मन्त्रि-समूह ।

**प्रकोप**—क्रोध ।

**प्रकोष्ठ**—घर के अन्दर का आँगन ।

**प्रक्रांत**—पराक्रम ।

**प्रक्षीण**—नष्ट ।

**प्रगल्भ**—ढीठ ।

**प्रजागर**—रात की जगाई, रात को जागते रहना ।

**प्रजापति**—सृष्टिकर्ता ।

**प्रणय**—प्रेम ।

**प्रणयिता**—प्रेम ।

**प्रणयिनी**—प्रियसखी ।

**प्रणिधि**—गुप्तचर ।

**प्रतनु**—बहुत छोटा ।

**प्रताप**—शक्ति, पराक्रम गर्मी ।

**प्रतिनिर्विष्ट**—हठी ।

**प्रतिपादित**—दिया हुआ ।

**प्रतिबन्धवत्**—कठिनाइयों अथवा विघ्न बाधाओं से युक्त ।

**प्रतिबुद्ध**—जगा हुआ ।

**प्रतिबोधवत्**—बुद्धिशक्तिवाला तर्क शक्ति वाला ।

**प्रतिम**—समान ।

**प्रतिवाच्**—उत्तर, जवाब ।

**प्रतिष्ठा**—स्थिरता, स्थिति की दृढता, दृढ स्थिति ।

प्रतिसक्त—लगा हुआ, गढ़ा हुआ।
प्रतीकार
प्रतिक्रिया } इलाज, उपाय
प्रतीत—विश्वास करने वाला।
प्रतीप—विरुद्ध, विपक्ष।
प्रत्यग्र—नया, ताजा।
प्रत्यर्थिन्—शात्रव, विरुद्ध, अड़चन डालने वाला।
प्रत्यादेश—ढक लेने वाला प्रतिद्वन्द्वी, पछाड़ देने वाला, आच्छादित कर लेने वाला।
प्रथित—प्रसिद्ध।
प्रत्यक् पश्चिम की तरफ।
प्रत्युत्पन्नमति - हाजिर जवाब।
प्रदान—विवाह मे देना।
प्रदोष—सध्याकाल।
प्रद्रुत—भाग गया हुआ।
प्रबन्ध—निबन्ध।
प्रभव—उत्पत्तिस्थान।
प्रभाव—शक्ति, बल।
प्रभुत्व—शक्ति अधिकार।
प्रमदवन—आमोद प्रमोद का बगीचा।
प्रमाण—सीमा, तुलादण्ड। अधिकारी
प्रमाणीकृ—अधिकारी मानना। प्रमाण मानना।
प्रमाथिन्—व्यथा पहुचने वाला।
प्रयत—पवित्र, तपस्या से विशुद्ध किया गया हुआ।
प्रयाण—आगे को चलना।
प्रयुक्त—लगाया हुआ, इस्तेमाल किया हुआ।
प्रयोग—प्रयोग, क्रिया व्यवहार।
प्रलाप—रोना धोना।
प्रवणकृ—झुका हुआ, खीचा हुआ।
प्रवयस्—बुड्ढा।
प्रवात—हवा का वेग, झझावात, आँधी-तूफान से युक्त दिन।
प्रवातशयनम्—वह बिस्तरा जो झझावातके बीच मे लगाया गया हो
प्रवृत्ति—प्रारम्भ
प्रव्रज्या संन्यास।
प्रशमित—ठीक कर दिया हुआ।
प्रश्चोतन—छिड़काव।
प्रसन्न—खुश।
प्रसगत—यानी, बात की चलन मे बात के सिलसिले मे।
प्रसह्य—जबरदस्ती।
प्रस्ताव—चर्चा, हवाला।
प्रस्तुत—इस समय छिड़ा हुआ विषय।
प्रसूति—सन्तान।
प्रसून—फूल।

प्रस्थ—एक बटखरे को कहते हैं।
प्रहरण—अस्त्र।
प्रहसन—हँसी मजाक।
प्राक्—पूर्व की तरफ।
प्राकार—चहार दीवारी।
प्राग्रसर—प्रथम, सब से आगे।
प्राङ्मुख—अपना मुँह पूर्व की तरफ करके।
प्राणायाम—साँस रोकना, श्वासावरोध।
प्रातराश—कलेवा, प्रातःकाल का भोजन।
प्रांतः—अन्त, सिरा, किनारा।
प्राप्तप्रसव—बच्चा दे चुकी हुई।
प्रार्थना—इच्छा, प्रणययाचना।
प्रावृष्—वर्षा ऋतु।
प्राश्निक—निर्णायक, मध्यस्थ।
प्रिय—प्यारा।
प्रेषित—भेजा हुआ, खारिज, बरखास्त।
प्रोद्दीप्त—आग लगाया हुआ।
प्लवग (व)—बन्दर।

## फ

फण-णा—फन (साँप का)।
फल—फल, परिणाम।
फलेग्रहि—फलयुक्त, सफल, समय पर फल धारण करने वाला।

## ब

बक—बगुला।
बटु—युवक लड़का।
बंदी—कैदी।
बंधुल—वेश्या के घर का नौकर।
बल—सेना।
बलि—पूजा।
बलीवर्दः—बैल।
बांधव—रिश्तेदार, भाई बिरादरी।
बालिश—मूर्ख।
बिंब—परछाईं।
बीभत्समान—डरता हुआ, दुखित होता हुआ।
बुद्धिजीविन्—बुद्धि लगाने वाला।
ब्रह्मर्षि—ब्राह्मण ऋषि।

# भ

भग्नोद्यम—जिसके प्रयत्न विफल हो गये हों, हार गया हुआ।
भज—भ्वादि उभय पदी-मनोरंजन करना, आशा करना, अभ्यास करना।
भक्तिमत्—भक्तिवाला।
भद्र—सम्बोधन करने का एक ढंग है, महाशय जी, श्रीमान् जी।
भद्रा—सभ्य वा शिष्ट स्त्री।
भरणं—पोषण।
भरतर्षभः—भरतवंशियों में सर्वश्रेष्ठ।
भर्तृदारिका—राजकुमारी।
भव—उत्पत्ति, शंकरजी।
भवन—घर।
भवितव्यता—होनहार, होनी, भाग्य।
भागधेय—भाग्य, तकदीर।
भाग्य—समृद्धि, ऐश्वर्य, सुख के दिन।
भाजन—पात्र।
भाष् (अपपूर्वक-भ्वादि-आत्मने०) निन्दा करना, गाली देना।
भाव—भावना, प्रेम प्रकाश होना, विद्वान् व्यक्ति, सम्माननीय महोदय।
भासुर—चमचमाता हुआ, चमकीला।
भास्वत्—चमकता हुआ, सूर्य।
भिक्षाशित्व—भीख माँगकर जीवन निर्वाह करना।
भीम—भयंकर, भयानक।
भुजंग—साँप।
भुवन—संसार।
भू—(वि पूर्वक-प्रेरणार्थक) सोचना, सिद्ध करना, निर्णय करना, देखना, भिन्न होना, जानना (सम् पूर्वक)-पैदा होना।
भूत—प्राणी।
भूतधारिणी - पृथ्वी।
भूमिका—पार्ट, नाटक का पात्र।
भूमिदेव—ब्राह्मण।
भूय—फिर।
भूयिष्ठ—खूब।
भूरिवसु—व्यक्तिवाचक संज्ञा, मालती का पिता।
भैक्ष्य—भीख माँगना।
भोग—भोग, विलास।
भ्रंश—हानि।
भ्रांतिमत्—घूमता हुआ, चक्कर काटता हुआ।

# म

मंगल—शुभ, शुभकृत्य, (समासों में) शुभ, जैस, मगलतूर्य.- शुभ नगाडा, मगलस्नानम्--शुभ-स्नान ।

मजु—माठा ।

मजुल —एक प्रकार की लता ।

मंडन—आभूषण, सजावट ।

मद्—(उद् पूवक प्ररणार्थक) पागल कर देना, मतवाला कर देना ।

मद —नशा, प्रबल इच्छा, चूता हुआ रस ।

मदमुच्—मद बहाने वाला ।

मधु—शराब ।

मधुर —सुन्दर, मीठा ।

मधुमास.—बसन्त समय ।

मधुसूदन:—कृष्ण, मधुनामक राक्षस को मारने वाले ।

मध्यस्थ—निर्णायक ।

मनस्विन्—बुद्धिमान्, दृढचित्त,

मनस्विनी--बुद्धिमना स्त्री ।

मनीषिन्—बुद्धिमान् पुरुष, ऋषि ।

मनोभू: } कामदेव ।
मनसिज }

मत्र् -(आ पूर्वक- चुरादि -आत्मने०) बिदा होना ।

मंत्रकृत्—मत्र बनाने वाला ।

मत्रवत्—मत्रो से युक्त, मत्र वाला ।

मंथर—मन्द, धीमा ।

मद—कुन्द, कुठित ।

मदभाग्य—मन्द भाग्य वाला, अभागा ।

मदायमान—पिछड़ा हुआ ।

मदीकृत—धीमा किया हुआ ।

मदात्सुक्य —जिसका दिल दुखी हो, निकाल दिया हुआ ।

मन्मथ —कामदेव ।

मन्यु —शोक, दुःख, क्रोध ।

मरिच —मिर्च ।

मरीचि —किरण ।

मर्त्य —मनुष्य, मरणशील ।

मलयजं—चन्दन का रस ।

महाजन —भीड़, जनता ।

महाभाग —भाग्यवान् पुरुष ।

महातेजस्—बड़ा तेजस्वी ।

महार्ह—महँगा, कीमती ।

महीपाल —राजा ।

महेंद्रः—बडे इन्द्र।
महेश्वर—बड़ा ईश्वर (पति)।
महोक्ष—बैल।
महौषधि—बडी दवा।
मागधी—सुदक्षिणा, मगधदेश के राजा की लड़की।
मात—प्यार का शब्द।
मान—घमंड।
मानिनी—घमडी स्त्री।
मानुष्यक—मनुष्य प्रकृति।
मारुत—हवा।
मालाकार—माली।
माल्यम्—माला।
मिश्र—प्रतिष्ठा सूचक प्रत्यय-जिसका अर्थ होता है, "सम्माननीय, योग्य"।
मुक्ताफल—मोती।
मुग्ध—कपट रहित, निरपराध।
मुद्—(अनुपूर्वक--भ्वादि आत्मने॰) अनुमोदन करना, समर्थन करना।
मुद्रा—मुहर।
मुरारि—विष्णु।
मूर्छ्—(भ्वादि-परस्मै॰) प्रभाव डालना, बल दिखलाना, बल पाना, मोटा पड़ना, घना पड़ना।
मुसल—मूसर या मूसल जिससे ओखली मे अनाज कांड़ा जाता है।
मुहु—बारबार।
मूर्तिमत्—मूर्तिमान्।
मूर्धज केश, बाल।
मृगतृष्णिका--मृगतृष्णा, झूठी आशा।
मृणाल—कमल का रेशा।
मृणालिनी—कमल।
मृद्—मिट्टी।
मृदु—कोमल चित्त वाला, कमजोर।
मृप्—(चुरादि-परस्मै॰) सहन करना।
मृषा—व्यर्थ, गलती से।
मृषोद्य—झूठ।
मेखला—करधनी, पेटी।
मेघनाद—व्यक्ति वाचक सज्ञा। रावण के पुत्र का नाम।
मेधा—बुद्धि, गुण।
मेध्य—पवित्र।
मैथिलेय—मैथिली के पुत्र, कुश।
मोक्ष—छुटकारा।
मौल—पुराना नौकर, बाप दादो के जमाने से चला आया हुआ नौकर।
म्लेच्छ—बहिष्कृत जाति का व्यक्ति, जङ्गली, असभ्य।

## य

यजन—यज्ञ।

यत्किंचनकारिता—नीच काम करना।

यथार्थ—अर्थ के अनुसार, ठीक ठीक।

यथावत्—(क्रिया विशे) उचित विधि के अनुसार,उचितरीति से।

यदृच्छया (क्रियाविशे)—स्वेच्छानुसार। अकस्मात्।

यम् (नि पूर्वक)—(भ्वादि--परस्मै) हटाना।

यम—जुड़वाँ।

यष्टि(स्त्री)—माला, हार।

यस् (आपूर्वक---प्रेरणार्थक)—दुख देना, व्यथित करना।

या (प्रपूर्वक)अदादि-परस्मै -- प्रस्थान करना, रवाना होना।

याच्ञा—दीन होकर माँगना।

यातुधान—राक्षस।

यादृच्छिक (विशे)—आकस्मिक।

यावदर्थ (क्रियाविशे)—हर माने में।

युज् (रुधादि--उभयपदी) इरादा करना, भाग्य में बदा होना। (निपूर्वक प्रेरणार्थक) नाधना, जोतना, जोड़ देना, मेल कराना। (प्रपूर्वक) आत्मने-काय करना, नाटक रूप में प्रदर्शित करना।

युध्—युद्ध।

युवराज—युवराज।

योग.—मन को एकाग्र करने की विद्या।

योजनं—आठ मील की दूरी।

योनिः—उद्‌गमस्थान, मूल कारण,

## र

रहस्—(नपु)-वेग, चाल।

रजनिचर—राक्षस।

रणरणक—चिन्ता।

रंज्—(अपपूवक-कर्मवाच्य)असन्तुष्ट हो जाना।

रणधुरा—समर का अग्रभाग।

रणशिक्षा—युद्ध शास्त्र, युद्धकला।

रत्नाकरः—समुद्र।

रध्रं—विवर, गड्ढा, छेद, सूराख।

रभ् (परि पूर्वक) भ्वादि—आत्मने

—गले लगाना, आलिगन करना।

रय —धारा, प्रवाह, वेग।

रश्मि —लगाम।

रस्—भ्वादि–परस्मै गरजना।

रस.—रस (शृगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स अद्भुत।

रसवत्तर—अधिक स्वादिष्ट।

रसातल—पाताल।

रसाल —आम्रवृक्ष।

रसिक(विशे०,—शोभायुक्त, रमणीक, रस को समझने वाला।

रहस्य—भेद, गुप्तबात। रहस्यभेद गुप्त बात का खुल जाना।

राक्षसः—नन्द वंशीय राजों के मंत्री का नाम "राक्षस" था।

राग —वासना, उत्कट इच्छा।

राजन्वत्—(विशे०)-न्यायशील अथवा सज्जन राजा द्वारा शासित।

राजर्षि—क्षत्रिय ऋषि।

राजतंत्र—शासन-विद्या, शासन-शास्त्र।

रात्रिचरी—राक्षसी।

राध्—(आ पूर्वक-प्रेरणार्थक)-प्रसन्न करना, किसी की इच्छा के अनुसार व्यवहार करना।

रामगिरि.—एक पर्वत का नाम।

रुजा-ज्—(स्त्री०)-पीडा, आधि, मनोव्यथा।

रुधिर—रक्त।

रोगिन्—(विशे०)--रोगी, बीमार।

रोषण—(विशे०) क्रोधी।

रोषणता—क्रोधी प्रकृति।

रौरव—(विशे०)—रुरु नामक मृग की छाल से बना हुआ।

## ल

लक्ष्मन्—(नपुं) -धब्बा, दाग।

लक्ष्मी.—शोभा, द्युति।

लघय—कम करना, घटाना।

लभ्—(उपा पूर्वक) भ्वादि--आत्मने-व्यंग्य बोलना, ताना मारना, कलंक लगाना। (प्रपूर्वक)-भ्वादि परस्मै-बड़बड़ाना, जल्पना।

ललामन् (नपुं०)—एक आभूषण।

ललामम्—एक आभूषण।

लवंगिका—मालती की सौतेली बहिन।

लवणाम्भस्—(पु०) -समुद्र ( खारे पानी वाला )।

लाघव -नैराश्य, हीनता, बेइज्जती, नीचा देखना।

लाञ्छन—निशानी। श्री कण्ठपद-लाञ्छन "श्रीकण्ठ" शब्द से प्रसिद्ध।

लिख्—(वि पूर्वक) तुदादि परस्मै--गाड़ देना, लगा देना, बीध देना।

लिखित—लेख दस्तावेज।

लुभ्—(प्र पूर्वक प्रेरणार्थक) प्रलोभित करना, उसकाना(वि०पूर्वक-प्रेरणार्थक) किसी के चित्त को उभाड़ना या प्रलोभित करना।

लोध्र.लोध्रम्— लोध्र नाम का वृक्ष, अथवा लोध्र वृक्ष का फूल।

लोल—(विशे०)-उत्सुक,

## व

वश्य —वशज।

वध्यस्थान —फांसी घर।

वत्स —बछड़ा।

वत्सतरी—बछिया।

वनज्योत्स्ना —माधवी लता।

वनदेवता--वन की देवता।

वनस्पति —वृक्ष।

वन्य -जंगली।

वप्—(निर् पूर्वक-भ्वादि-परस्मै) देना, उपहार देना।

वप्तृ—(पु०) बोने वाला।

वम्—(उत् पूर्वक-भ्वादि -परस्मै) -कै करना, उँडेलना, निकालना।

वयस्—(नपु०) कौआ, पक्षी।

वर—(विशे०)-सर्व श्रेष्ठ, सर्व प्रथम

वर.—दूल्हा।

वराक—(विशे०)बेचारा, दयनीय।

वरीयस्—(विशे०) अच्छा, बड़ा।

वर्ण —जाति।

वर्ग्य - किसी गुट्ट का, किसी वर्गका।

वर्ग्या.- नाटकीय पात्रों का समुदाय।

वर्णिन्—ब्रह्मचारी।

वल्कल- -पेड़ की छाल का वस्त्र।

वल्गित—उछाल, कुदाव।

वल्मीक.-क—बाँबी, बिमौट।

वल्लभ—प्रिय, इष्ट। वल्लभा-पत्नी।

वश —अधीनता।

वशिन्- (विशे०) ऋषि, जिसने इन्द्रियों को जीत लिया हो।

वश्या—आज्ञा कारिणी पत्नी।

वस्—(अध्यापूर्वक-भ्वादि-परस्मै०)। आबाद करना, बसाना, प्रवेश करना।
वसति (स्त्री.)—निवास स्थान।
वसंतोत्सव—वसन्त ऋतु का उत्सव।
वह्—(प्रेरणार्थक) जाना भ्रमण करना (निर् पूर्वक प्रेरणार्थक) करना, व्यवस्था करना।
वाच्य—कलंक।
वाजिन्—घोड़ा।
वाद—अफवाह, बातचीत।
वाम—उलटे आचरण वाला, विरुद्ध आचरण वाला।
वायस—कौआ।
वारण—हाथी।
वारयोषित्—वेश्या।
वाराणसी—बनारस, काशी।
वारिधर.—बादल।
वारियन्त्र—जल-चक्र (जल को ऊँचा उठाने वाली एक घूमती हुई पहिया।)
वार्त—कुशल, कल्याण।
वार्धक—वृद्धावस्था।
वासगृहं—मकान का भीतरी हिस्सा।
विकसित—बढ़ा हुआ, फैला हुआ।
विकार.—रोग, बीमारी।
विकारहेतुः—प्रलोभन।
विक्रम—पराक्रम, वीरता।
विक्लव—डरा हुआ, दुःखित, घबराया हुआ।
विगुण—बुरा, अयोग्य।
विग्रह—शरीर, झगड़ा, शत्रुता।
विघात—विघ्न, रुकावट, अड़चन।
विचक्षण—विद्वान्, निपुण, चतुर।
विजया—(और जया)—एक प्रकार का मन्त्र जिससे भूख प्यास की व्यथा दूर हो जाती है और अद्भुत शक्ति मिलती है!
विजिह्म—टेढ़ा, कुटिल।
विज्ञापना—प्रार्थना।
विटप—शाखा, डाली।
विडम्ब्—(चुरादि-परस्मै) नकल करना।
वितथ—झूठा।
वितीर्ण—पैदा हुआ, उतरा हुआ, दिया हुआ।
विदग्धता—चतुरता!
विदेश—विदेश, पराया देश।
विद्युत्वत्—बादल।
विद्विष्—शत्रु।
विधातृ—सृष्टि कर्ता।
विधृत—रक्षित।

विधेय —नौकर।

विधेयज्ञ—जो अपना कर्तव्य जानता है, आज्ञाकारी।

विनशनः—दिल्ली के उत्तर पश्चिम मे एक देश।

विनिमय —अदला बदली।

विपक्ष —शत्रु।

विपश्चित्- बुद्धिमान, विद्वान् पुरुष।

विपिन—जंगल।

विप्रलब्ध—धोखा खाया हुआ, ठगा हुआ।

विप्लव —उलट फेर विरुद्धता।

विभव —जायदाद, ऐश्वर्य धन।

विभावरी—रात्रि।

विभु —स्वामी, अधिपति।

विभ्रम —घबराहट, हानि।

विमनस्—रंजीदा, दुखी, खिन्न।

विमानित—अपमानित।

विमार्ग —गलत रास्ता, अनुचित मार्ग।

वियुक्त—अलग हो गया हुआ।

विरत—समाप्त, बन्द।

विराग —असन्तोष।

विराम —बन्द हो जाना, समाप्ति।

विरोध —वैर।

शाश्वतविरोध—सहज वैर।

विलासः—भोग शृंगार पूर्ण मनोविनोद।

विवृत - खुला हुआ।

विवेक —विचार, बुरा भला पहिचानने की सामर्थ्य, निर्णय।

विश्—(अभिनि पूर्वक) तुदादि-आत्मने-घुसना। (सम् पूर्वक) —सोना।

विशुद्धि—शुद्धता, पवित्रता।

विशेष —अन्तर।

विश्रब्ध—(क्रियाविशे०) विश्वासपूर्वक

विश्रंभ —विश्वास।

विश्रम्भस्थानम्—विश्वास का पात्र।

विश्राम —आराम।

विश्वंभरा—पृथ्वी।

विश्वसनीयता—विश्वास पैदा कर देने की शक्ति।

विषण्ण—खिन्न।

विषम—उलटा, कठिन।

विषय —क्षेत्र, प्रान्त, इन्द्रियों के भोग्य पदार्थ, इन्द्रिय सुख।

विषाण. ण—सींग।

विषाद—शोक, भय, दुःख।

विष्टर —आसन।

विसर —राशि,

विसृष्ट—विदा किया हुआ भेज दिया गया हुआ।

विस्तीर्ण—चौड़ा, फैला हुआ।
विस्फारित—फैला हुआ।
विहित—डिगरी, आज्ञा।
विह्वल—व्याकुल, दुखित, शोकाभिभूत।
विह्वलता—व्यथा।
वीरसू—वीर पुत्र पैदा करने वाली।
वृ—चुरादि, परस्मै,-माँगना।
वृकोदर—भीम।
वृज्—चुरादि-परस्मै,-निकालना, (आपूर्वक)-झुकाना, (विपूर्वक) रहित होना, हीन होना।
वृत्—(निर् पूर्वक प्रेरणार्थक) खतम करना। (परि पूर्वक) चक्कर काटना, (प्रपूर्वक) पैदा होना, उठना, शुरू होना, (व्यपपूर्वक) पीछे को घूम जाना।
वृत्ति—(स्त्री) जीविका, व्यवहार आचरण।
वृद्धि—(स्त्री) बढती, बढना।
वृषल—शूद्र, चन्द्रगुप्त की पदवी।
वृषांक—शिवजी (जिनके ध्वज पर बैल का चिह्न है)।
वृष्टि—वर्षा।
वेग—तेजी।
वेगानिल—तेज हवा का झोंका।
वेणुलता—बाँस की छड़ी।
वेतस—बेत, नरकुल।
वेदि-दी—वेदी, यज्ञ की वेदी होम करने की वेदी।
वेधस्—ब्रह्मा।
वेशवनिता—वेश्या।
वेश्मन्—घर।
वेष्टन—पगड़ी।
वैकृत—अशुभ लक्षण।
वैतान—यज्ञ सम्बन्धी, पवित्र।
वैतानिक—पवित्र, यज्ञ में अर्पित।
वैतालिक—भाट।
वैदेही—सीता।
वैद्युतानल—बिजली की आग।
वैरिन्—शत्रु।
वैहायस—हवा मे स्थित, हवाई।
व्रत—आचरण पद्धति।
व्रीडित—लज्जित।
व्यक्ति—(स्त्री०)--प्राकट्य, आविर्भाव
व्यक्तं—(क्रियाविशे०)- स्पष्ट ही है।
व्यग्रत्व—किसी चीज मे लगा होना।
व्यजन—पंखा।
व्यतिकर—घटना।
व्यपदेश—कुल, नाम, जाति।
व्यय—खर्च, विघ्न, रुकावट, हानि।
व्यलीकं—दुःख, शोक।

व्यवहार—अदालती तरीका।
व्यवहारासन—न्यायालय।
व्यवहित—अलग किया हुआ।
व्यसन—दुःख, आवश्यकता, कठिनता, खूब दृढता-पूर्वक लगन।
व्याकुल—गहरे से अथवा ध्यान पूर्वक लगा हुआ।
व्याल—साँप।
व्याध—बहेलिया, शिकारी।
व्याहार, व्याहृति—शब्द, वाणी।

## श

शकल—टुकडा।
शक्ति—एक अद्भुत अस्त्र।
शक्र—इन्द्र।
शची—इन्द्र की पत्नी।
शकुः—काँटा, बाण।
शप्—भ्वादि-उभयपदी-निन्दा करना।
शबरः—पहाड़ी जाति का व्यक्ति।
शब्दः—शब्द, पदवी।
शम्—(निपूर्वक) दिवादि-परस्मै.-सुनना, पाना। (प्रेरणार्थक) हटाना, दबाना, दमन करना (प्रपूर्वक--प्रेरणार्थक) तै करना ठीक करना।
शमयितृ—नाशकर्ता।
शरजन्मन्—कार्तिकेय, षण्मुख।
शरण—घर।
शरणागत—शरण में आया हुआ, रक्षार्थ आया हुआ।
शरद्—(स्त्री) वर्ष, साल।
शरव्य—निशाना, लक्ष्य।
शर्मन्—सुख।
शर्वरी—रात्रि।
शरासन—धनुष।
शरीरिन्—शरीर धारी, प्राणी।
शल्य—बाण।
शश—खरगोश।
शश्वत्—(क्रियाविशे.)- हमेशा के लिए।
शस्त्रभृत्—अस्त्रधारी, योद्धा।
शाखामृग—बन्दर।
शांत—हलका हो गया हुआ, घट गया हुआ, हटा हुआ।
शांति—नाश, हटाव।
शालि—एक प्रकार का धान।

शालिन्—युक्त ।
शाव —शावक --बच्चा ।
शास्—(अनुपूर्वक) अदादि-परस्मै-- राय देना ।
शाश्वत—चिरस्थायी, नित्य ।
शासन—आज्ञा ।
शिक्षा—राय, उपदेश ।
शिखा—लपक ज्वाला ।
शिखिन्—मयूर ।
शिथिलय—ठढा कर देना, शिथिल कर देना, ढीला कर देना, कमज़ोर कर देना ।
शिरोधर —गर्दन ।
शिल्प—कला, चातुरी ।
शिलापट्ट —पत्थर की पटिया ।
शिलोच्चय —पहाड़ पत्थरों का समूह ।
शिव—कल्याण, भलाई ।
शिष्— वि पूर्वक प्रेरणार्थक) मात कर देना, बढ जाना ।
शुक्ति —सीप ।
शुच्—(स्त्री ) शोक, दु:ख ।
शुद्धांत —राजा का रनिवास, रनिवास के निवासी अर्थात् रानी अथवा रानियाँ ।
शुश्रूष्—सेवा करना ।
शुभशंसिन्—शुभ सूचक ।
शूलिन्—(पु०) शिवजी ।
शृणि—(स्त्री ) -चाबुक अंकुश ।
शैल —पहाड ।
शैवल—काई ।
शोण (विशे )—लाल ।
शोणित—खून ।
शोभा—छवि, सुन्दरता ।
श्रीश —विष्णु ।
श्रुत—प्रसिद्ध,ख्यात ।
श्रुति—कान ।
श्रेयस्—सुख, सौभाग्य, कल्याण, (विशे ) अच्छा, अधिक, प्रशंसापात्र ।
श्रेष्ठिन्—(पु )--सेठ, सौदागर ।
श्रोत्रिय —विद्वान ब्राह्मण ।
श्वापद —शिकारी जानवर, जङ्गली जानवर ।
श्वेतमान—(विशे०) सफेद ।

## ष

षंड—समूह ।

## स

संयमन—रोकना, खींचना ।

संयोग—मेल, जोड़ ।

संरंभ—क्रोध, उग्र प्रकृति ।

संवाद—होलिया ।

संव्यवहार—सौदागरी, व्यापार, तिजारत ।

संविभक्त—हिस्सा बँटा हुआ अलगाया हुआ ।

संश्रय—अवलम्ब, सहारा ।

संसर्ग—सम्पर्क, लगाव, सम्बन्ध ।

संसार—संसार ।

संस्तीर्ण—बिखेरा हुआ ।

संस्थापन—नींव जमाना ।

संस्थित—मरा हुआ, खत्म हो गया हुआ ।

संहार—संसार का विनाश, प्रलय ।

सकल—सम्पूर्ण अक्षत ।

सकाम—जिसकी इच्छाएँ पूरी हो गई हों, सन्तुष्ट ।

सक्त—जारी, शुरू किया हुआ ।

संकर—जातियों का गड़बड़ सड़बड़ मिल जाना ।

संकल्प—विचार ।

संकल्पयोनि—कामदेव ।

संकुल—भरा हुआ ।

संकोच—अंगों को सिकोड़ लेना ।

संग—लगाव, सम्बन्ध, आसक्ति ।

संघ—समूह ।

संचकित—(विशे०)-चौंका हुआ

सज्ज—(विशे०) तैयार ।

सज्—(प्र पूर्वक)-भ्वादि-परस्मै-आसक्त होना । (व्यति पूर्वक) जोड़ना ।

संजीवनौषधि—(स्त्री०) पुनरुज्जीवित करने वाली जड़ी ।

सत्केतु—अच्छा ध्वज ।

सत्क्रिया—गुण, भलाई, नेकी, सत्कार ।

सत्त्व—जीव, प्राणी ।

सद्—भ्वादि-परस्मै-डूबना, गिरना, (वि० पूर्वक) खिन्न होना, उदास होना, (उत् पूर्वक) डूबना, विपत्ति में पड़ जाना ।

सदस्य—यज्ञ में सहायक ।

संतति—(स्त्री०) सन्तान-औलाद, बाल बच्चे ।

संदिष्ट—आज्ञप्त ।

सन्धानम्—ठीक करना, निशाना

हिम्मत करना ।
सहकार —आम्रवृक्ष ।
सहज (विशे०)—प्राकृतिक ।
सहस्रकिरण } सूर्य (एक हजार
सहस्रधामन् } किरण वाले) ।
सहाय —साथी, मित्र ।
सहोदर —सगा भाई ।
साक्ष्यम्—गवाही ।
साद —दुबला पन, पतला पन ।
सादृश्य —तुलना, बराबरी, उपमा ।
साध्—( प्रपूवक प्रेरणाथक ) आगे
बढ़ाना, और आगे उठा देना ।
साधन —सेना ।
साध्वसं—डर ।
सानु—(नपु )—शिखर चोटी ।
सानुमत्—(पु०)-पहाड ।
सानुराग (विशे०)—भक्त, अनुरक्त ।
साम्प्रतिक (विशे )—उचित ।
सार —ताकत, बल, शक्ति ।
सारिका—एक प्रकार का पक्षी, मैना ।
सार्थ.—समूह, समुदाय ।
सार्थवाह —समूह का नेता ।
सावधान (विशे०)—ध्यान देने वाला।
साहसकारिन् ( विशे० )—ढीठ,
साहसी, वीर ।
साहित्य —साहित्यिक प्रबन्ध ।
सित (विशे०)—सफेद ।
सिध् (निपूर्वक)—भ्वादि परस्मै मनः
करना रोकना ।
सिद्ध —अर्द्ध देव ।
सिंधु —समुद्र ।
सीरध्वज.—जनक जी को "सी
ध्वज" कहते हैं ।
सुख (विशे )—सुखदायी ।
सुतीक्ष्ण—एक ऋषि का नाम ।
सुधा—अमृत । सुधास्यन्दिन्
(विशे०)—अमृत बरसाने वाले
या अमृत टपकाता हुआ ।
सुभगम्—(क्रियाविशे० ) सुन्दर
पूर्वक ।
सुश्लिष्टम्—(विशे०) अच्छी त
ठीक किया हुआ या रक्खा हुआ ।
सुयोधन —दुर्योधन का नाम ।
सुरद्विप्—(पु०) देवताओं का श
सुहृद्भेद.—मित्रों का अलग हो
"हितोपदेश" नामक ग्रन्थ
द्वितीय अध्याय ।
सूक्त—उत्तम शब्द, मीठे शब्द ।
सूत्रधारः—बढ़ई ।
सृ—भ्वादि-परस्मै उप पूर्वक)
जाना ।
सृज्—(वि पूर्वक प्रेरणार्थ)

बिदा करना।

सेतु.—पुल।

सैंह (विशे०)—सिंह का।

सो—(व्यव पूर्वक) दिवादि-परस्मै। प्रयत्न करना सोचना।

सोदर्य —सगा भाई

सौजन्य—उत्तम स्वभाव या प्रकृति।

सौदामिनी—बिजली।

सौभाग्यविलोपिन् (विशे०) शोभा—को नष्ट करने वाला।

सौहार्द—मित्रता, मैत्री।

स्कंधावार —सेना का एक विभाग।

स्तबकरिता—गुच्छ या समूह बनाना।

स्तनित—बादलों की गड़गड़ाहट, कड़कड़ाहट की आवाज।

स्त्रैण—स्त्री जाति।

स्थलवर्त्मन् (नपु)—स्थल मार्ग।

स्थली—प्रदेश, स्थान।

स्था (आ पूर्वक)—आश्रय लेना।

स्थाणु —शिव जी।

स्थायिन् (विशे)—स्थायी, नित्य।

स्थिति (स्त्री.)—स्थिरता, स्थायित्व,, औचित्य।

स्थिर (विशे)—दृढ।

स्थिरीकृ (तनादि उभयपदी)—धैर्य धारण करना।

स्थास्नु (विशे —दृढ, स्थायी।

स्थैर्य—स्थिरता।

स्नातक.—दीक्षाप्राप्त ब्राह्मण गृहस्थ।

स्नानीय वस्त्र—नहाने के समय पहिना जाने वाला कपडा।

स्निग्ध—प्रिय, स्नेही, मित्रपक्षीय।

स्निग्धदृष्टि (विशे)—गौर से ताकने वाला, टकटकी लगा कर देखने वाला।

स्फटिकमणि—"स्फटिक मणि" एक विशेष प्रकार का मणि है।

स्फुट (विशे)—साफ, दृश्य, स्पष्ट।

स्मय —गुस्ताखी, अभिमान।

स्यंद्—(अभि पूर्वक) भ्वादि-उभय-पदी) बहना, चूना, रिसना, पिघल जाना।

स्रोतोवहा—नदी।

स्वच्छदम्-(क्रियाविशे) स्वेच्छानुसार मनमानी।

स्वद्—भ्वादि-आत्मने-पसन्द करना।

स्वभावज (विशे)—प्राकृतिक।

स्वस्थ (विशे)—नीरोग, तन्दुरुस्त।

स्वाधीन (विशे)—स्वतन्त्र।

स्वास्थ्य—आराम, शान्ति, चैन।

स्वेच्छया (क्रिया विशे)—स्वेच्छानुसार, पेट भर।

## ह

हतक (विशे.)—अभागा।
हन् (अप पूर्वक)—अदादि परस्मै,-नष्ट करना। (प्रति पूर्वक)—हटा देना, मार के बदले में मारना।
हरि.—इन्द्र।
हरिचंदन—एक प्रकार का पीला चन्दन।
हरिणीदृश् (विशे.)—हिरन के समान नेत्र वाली।
हव्य—हवन किया जाने वाला पदार्थ।
हस् (भ्वादि-परस्मै)—उज्ज्वल कर देना विमल कर देना।
हारीत—एक प्रकार का कबूतर।
हार्दिक्य—एक योद्धा का नाम।
हित.—हित चाहने वाला।
हितवादिन्—हितैषी।
हिम—बर्फ।
हिमवत् (पुं.)—हिमालय पहाड़
हिमरश्मि]—चन्द्रमा (शीतल किरणों
हिमांशुः]— — वाला)
हुंकारः—'हुँ' की आवाज़।
हृ—(अभ्यव पूर्वक) भ्वादि-परस्मै खाना (उत् पूर्वक) जड़ से उखाड़ना, उन्मूलन करना, (निर् पूर्वक) निकालना, खैंचना। (सम् पूर्वक) गिराना, काट देना, कम कर देना, ... कर देना, रोक देना, ... करना, नियन्त्रित करना। (व्या पूर्वक), बोलना।
हृषीकेशः—कृष्ण।
हेमंत—ठंढा।
हैम—बर्फ से पैदा हुआ।
ह्रदः—जल का गहरा तालाब, झील।

दुर्गा प्रसाद जायसवाल, श्यामप्रिंटिंग प्रेस, प्रयाग।